यदुवंश का इतिहास

लेखक
महावीर सिंह यदुवंशी

सर्वाधिकार सुरक्षित

●●●

प्रकाशक
ब्रजमण्डल यदुवंश विकास समिति (रजि.)
मुख्यालय – रनवारी, तहसील छाता, जिला मथुरा, उ. प्र. 281401
सम्पर्क नं. – 9837888440

●●●

प्रकाशन तिथि
अक्षय तृतीया
7 मई 2019

●●●

मूल्य – 300/– तीन सौ रुपये

●●●

मुद्रण–संयोजन
श्रीहरिनाम प्रेस, बाग बुन्देला
लोई बाजार, वृन्दावन – मो. 7500987654

विषय सूची

पूर्वकथन 5
सृष्टि खण्ड 14
पौराणिक-काल सूर्यवंश 55
वैवस्वत मनु 55
वैदिक सभ्यता के प्रवर्तक वैवस्वत मनु 55
चन्द्रवंश 59
सूर्यवंश-चन्द्रवंश सम्बन्ध 60
महर्षि अत्रि 61
अत्रि परिवार 62
सती अनसूया 63
वैदिक-साहित्य में चन्द्रमा 65
पुरुरवा 67
महर्षि विश्वामित्र 68
आयु वंश 71
आयु पुत्र नहुष 72
ऋग्वेद में राजाओं का वर्णन 80
यदुवंश 82
महाराज यदु 82
पूर्व महाभारत काल 84
पुरुवंश 85
यदुवंश 90
क्रोष्टु वंश 101
श्रीकृष्ण परिवार 107
श्रीकृष्ण का बहुआयामी स्वरूप 108
शूरसेन का नामकरण 120
शूरसेन या मथुरा जनपद की सीमाएँ 120
वर्तमान शौरीपुर-बटेश्वर 122
श्रीकृष्ण का जीवन परिचय 125
कंस के समय मथुरा 126
कृष्ण-जनम 127
जरासंध की मथुरा पर चढ़ाई 130
महाभिनिष्क्रमण 131
पाण्डव परिवार 136
अक्षौहिणी सेना की गणना 139
अग्निपुराण, अ. 366 के अनुसार 139
श्रीकृष्ण का द्वारका का जीवन 143
यादवों का अन्त 150
जैन-परम्परा में श्रीकृष्ण सम्बन्ध 152
गोत्र-समस्या-शंका समाधान 155
कलियुग के आदि-यदुवंश-प्रवर्तक-श्रीवज्रनाभ 168
महाभारत में यदुवंश-
विनाश की भूमिका इस प्रकार वर्णित है 169
मौसल-पर्व 170
ऋषि-शाप 170
विवेचना 175
मथुरा में शासन-सत्ता 176
श्रीकृष्ण-लीला-स्थलों की खोज तथा स्थापना 177
ऐतिहासिक-शोध 179
अन्य स्रोतों से प्राप्त 180
कालगणना 182
श्रीवज्रनाभ का महाप्रयाण 184
श्रीवज्रनाभ-महत्ता 184
पौराणिक यदुवंश-तालिका 187
ऐतिहासिक-काल 189
उत्तर महाभारत काल 189
यदुवंशियों का राज्य विस्तार 191
बौद्धकाल (सोलह महा जनपद) 192
बुद्धकाल में उत्तर भारत 194
मथुरा के शक राजा 198
कालिदास द्वारा शूरसेन जनपद का वर्णन 202
हूण आक्रमण 203
मध्य काल 205
हर्षवर्धन 205
हर्ष का साम्राज्य विस्तार 205
हर्ष के उत्तराधिकारी 206
यशोवर्मन 209
राजपूत काल 211
बयाना- श्रीपथ के यदुवंशी राजा 215
द्वितीय वंशावली 217
तृतीय वंशावली 220
चतुर्थ वंशावली 221
सजला - चन्द्रवंशीय शासकों का 221
यदुवंशी राजाओं की वंशावली (सातवीं शताब्दी से वर्तमान काल तक) 225
(शोधपूर्ण-वंशावली) 225
विश्लेषण-हर्षवर्धन काल से-
ग्यारहवीं शताब्दी तक 228
मुसलमानों का सिंध पर आक्रमण 229
'हिन्दू शाही' राजाओं की वंश-परम्परा और उनका-
मुसलमानों से संघर्ष 230
महमूद गजनवी 233
मथुरा की लूट का अभियान और महावन का युद्ध 235
महावन का राजा कुलचन्द्र 237
मथुरा नगर की भीषण लूट 241
गंडदेव का प्रतिरोध 243
महमूद के परवर्ती (बाद के) राजपूत-
राज्य और उनके राजा 245
कामाँ (कामवन) 246
काम्यवन के दरवाजे 248
भारत का प्रसिद्ध नगर बयाना 248
बयाना जादौं- राज्य के प्रसिद्ध राजा 254
महाराजा विजयपाल-(सन् 999-1046 ई.) 255
कनावर का युद्ध और बयाना पतन 256
महाराजा तिमनपाल 259
महाराजा धर्मपाल 262
तिमनगढ़ का पतन 263
पुनरावलोकन 266
कुंवरपाल 270
देव बहादुर अर्जुनदेव एवं करौली 271
मंडरायल दुर्ग पर अधिकार 272
महाराज चन्द्रसैन 274
देवगिरि 276
महाराजा गोपालदास देव बहादुर 277
बहादुरपुर 278

राव मुकुटदास या मुकुन्ददास 279
कल्याणराय किसके इष्ट रहे 280
शक्तिपीठ कैलादेवी 280
करौली राजवंश राजचिन्ह 285
अर्जुनदेव के उत्तराधिकारी 285
गोपालदास (सन् 1545-1569) 286
धर्मपाल द्वितीय (सन् 1644-1665) 287
रतनपाल (सन् 1655-1688 ई.) 288
कुंवरपाल द्वितीय (1688-1724) 289
महाराजा गोपाल सिंह-(1724-1757 ई.) 289
करौली के राजा सुजान सिंह 291
तुरसनपाल (1757-1772 ई.) 292
मानकपाल (1772-1804 ई.) 293
हरबख्शपाल (1804-37 ई.) 294
प्रतापपाल (1837-1850 ई.) 295
नरसिंहपाल (1850-1852 ई.) 296
भरतपाल 297
मदनपाल (1854-1869) 298
जयसिंहपाल (1871-1875) 299
करौली रियासत के प्रमुख ठिकाने 301
चन्द्रवंश की यदुवंशी शाखाएँ 308
यदु वंश की खाँपें 310
जादौन वंश (यदुवंश) 312
यदुवंशी शाखा जादौन का नामकरण 313
छोकर (यादव) जादौन 316
अमेरिया या अमरेटिया 316
पालोरिया या पिलोरिया 316
बनाफर यादव 317
मूल यदुवंशी/जादौंन के गाँव 329
कौशाम्बी जिले के गाँव 329
करौली क्षेत्र- (दुर्ग और गढ़ियाँ) 330
तहसील और मुख्य गाँव 331
करौली राज्य के जादौंन जागीरदारों को-
कोटडियाँ (जागीर) 331
रुहेलखण्ड के जादौंन राजपूत 334
बिहार राज्य 334
हरियाणा राज्य 334
पंजाब राज्य 334
हिमाचल प्रदेश 335
गुजरात 336
महाराष्ट्र 336
कर्नाटक 336
गुजरात के जाड़ेचों की शाखाएँ 336
महाराष्ट्र 336
पहाड़ी क्षेत्र 337
भाटियों की शाखा-प्रशाखाएँ 337
भाटी राजपूतों की शाखाएँ 338
उत्तर प्रदेश की यदुवंशी/जादौंन-शाखाएँ 339
अन्य शाखाएँ 341
जाड़ेचा वंश (गुजरात) 341
भाटी-वंश (जैसलमेर) 342
दक्षिण भारत के यदुवंशी राज्य 344
देवगिरि के यादव 345
त्रिपुरी के कलचुरी 346
द्वारसमुद्र के होयसल 348
मान्यखेट (मालखेड़) के राष्ट्रकूट 349
विजयनगर का यादव साम्राज्य 351
शाखाएँ-सालुव वंश 354
तुलुव वंश 354
आरविदु वंश 355
मैसूर का वाडियार वंश 356
परिशिष्ट - 1 358
मथुरा जिले के यदुवंशी जादौंन-
राजपूतों के गाँव 358
11. आजनौक 366
12. सैमरी 367
13. छाता (छत्रवन) 368
14. उमराया 369
15. लोधोली (लुधौली) 369
16. साँखी 370
17. पाली 370
18. संकेत 370
19. देवपुरा 370
20 गाजीपुर 371
21. बन्दी 371
परिशिष्ट-2 372
अहीर जाति 372
परिशिष्ट-3 378
गोत्र-सम्बन्धी वैज्ञानिक-दृष्टिकोण 378
वैदिक गोत्र प्रणाली और Y गुणसूत्र 378
आत्मज या आत्मजा का सन्धि विच्छेद 379
परिशिष्ट-4 381
सहगमन, जौहर एवं शाका: विश्लेषण 381
भाटियों द्वारा किये गये शाकों का विवरण 381
परिशिष्ट-5 384
प्राचीन भारत के विश्व प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र 384
1. तक्षशिला 384
2. बनारस 385
3. नालन्दा 385
4. विक्रम शिला 387
परिशिष्ट-6 388
(क) पर्जण्य (पर्जन्य) 388
पर्जण्य सूक्त 388
सहिता पाठ 388
(ख) आभीर 392
परिशिष्ट -7 396
'जादौंन' शब्द की उत्पत्ति 396
परिशिष्ट-8 398
स्वामी विवेकानन्द के विचार 398
सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पुस्तकें 401
वैदिक साहित्य 401
पौराणिक साहित्य 401
संस्कृत साहित्य 402
हिन्दी साहित्य 403
अन्य धार्मिक-ग्रन्थ 403
ऐतिहासिक पुस्तकें 404
अंग्रेजी साहित्य 407
गजेटियर्स 408
दैनिक समाचार पत्र 408

पूर्वकथन

इतिहास क्या है-

इतिहास राष्ट्र के जीवन की कहानी है। इतिहास का उद्देश्य यदि सही माने में पूरा हो और उसका अध्ययन निष्पक्ष दृष्टि से किया जाए, तो संसार में अनेक तनाव, अनेक मिथ्या भावनाऐं तथा स्पर्धा की अनेक स्थितियाँ अपने आप दूर हो जाऐं। किसी देश का इतिहास इस बात का प्रतीक नहीं है कि उस देश में कौन-कौन राजा हुए और वे किस प्रकार समाप्त हो गये। न इतिहास का उद्देश्य यह बताना है कि कौन-कौन से ध्वंसावशेष, ताम्रपत्र, शिलालेख या सिक्के कहाँ पड़े हुए हैं और उनमें क्या लिखा है? इतिहास का उद्देश्य एक राष्ट्र तथा जाति के जीवन में उतार-चढ़ावों को अंकित करना है। इतिहास से हमें यह लाभ होता है कि हम समझ सकें कि किन परिस्थितियों में हमारे पूर्वजों ने अपना विकास किया। क्या कारण थे कि वे अपने प्रयास में असफल रहे, कौन सी स्थितियाँ थीं जिन्होंने उनके प्रयत्नों को पुष्पित किया और फिर ऐसे कौन से कारण आ गये जिनके कारण गौरवपूर्ण से गौरवपूर्ण देश, जातियाँ या जनसमूह अवनति के गर्त में गिरते चले गये। जब हम यह देखते हैं कि आज का यूनान किसी समय पश्चिमी देशों का जगद्गुरु माना जाता था, जब हमको यह पता लगता है कि एक समय था जब मिश्र की सम्पन्नता की तुलना संसार के अन्य देशों के भौतिक विकास से करना कठिन था और जब हमको यह ज्ञात होता है कि भारत के दर्शन, धर्म और विचारधारा का प्रभाव देश- देशान्तर में फैल गया तो हमें इस बात का विश्वास होता है कि किस प्रकार हमारा देश या उसके समकालीन अन्य देशों के लोग आज से हजारों वर्ष पहले कैसे-कैसे बड़े-बड़े काम करने में सफल हो गये। यह हमें आशा का सन्देश देता है। साथ ही जब हम इतिहास की बारीकी पर जाते हैं तो हमें पता लगता है कि हमारी किस क्षुद्रता ने, किस कमजोरी ने हमको पीछे कर डाला।

कहावत है कि इतिहास अपने को दोहराता है। इसका अर्थ केवल यह है कि जब मनुष्य इतिहास के सन्देश को ठीक तरह से हृदयंगम नहीं कर सकता तो उसको वे कठिनाईयाँ, वे असफलताऐं, वे निराशाऐं फिर से झेलनी पड़ती हैं जो किसी समय उसके पूर्वजों को झेलनी पड़ी थीं, और यदि यह पिछली गलतियों को, कमियों को, आने वाले खतरों को नये युग के अनुरूप उचित ढंग से मूल्यांकित कर लेता है तो उसे आगे बढ़ने में सहायता मिलती है, और वह वे

गलतियाँ नहीं दुहराता, जो उसके पूर्वजों ने की थीं। इस दृष्टि से इतिहास का अध्ययन प्रत्येक राष्ट्र तथा जाति के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है। बिना इतिहास के ठीक-ठीक अध्ययन के किसी बालक को अपने देश के प्राचीन स्वरूप का बोध ही नहीं होता और बिना उसका बोध हुए नये का निर्माण सम्भव नहीं है। भारत के प्राचीन मनीषियों को यह बात अच्छी तरह मालूम थी और उन्होंने प्राचीन घटनाओं को और उनके अध्ययन को वेदों के समान ही धर्मग्रंथ की कोटि में रखा। पुराण प्राचीन इतिहास का ही नाम है और वह लिखे ही इसलिए गये कि आने वाली पीढ़ी को प्राचीन पीढ़ी के समय का ध्यान हो सके। दुर्भाग्य है कि पार्जीटर के अध्ययन के पहले कोई विदेशी विद्वान इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हुआ कि भारत के अठारह पुराणों में इतिहास भरा पड़ा है। अंग्रेज इतिहासकारों ने तो यह भी स्वीकार नहीं किया कि इन पुराणों में जो वर्णित तथ्य हैं उनमें कोई वास्तविकता हो सकती है। उन्होंने तो हमारे प्राचीन महाकाव्यों, रामायण और महाभारत में वर्णित वार्ताओं को भी कपोल-कल्पित कहा। लेकिन आज जब हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज (कन्नौज), कौशाम्बी, प्रतिष्ठान पुर, मथुरा और दिल्ली के उत्खनन ने यह सिद्ध कर दिया है कि इन नगरों में आज भी चार हजार वर्ष पुरानी सभ्यता के अवशेषों के प्रमाण हैं, तो फिर नास्तिकों को भी यह मानकर चलना पड़ा है कि रामायण, महाभारत अथवा पुराणों में जो कुछ लिखा गया है, वह कपोल-कल्पित नहीं है, बल्कि उसमें भारत का एक अत्यन्त गौरवशाली अध्याय छिपा हुआ है।

लेकिन आज का इतिहास राजाओं का इतिहास नहीं माना जाता। आज इतिहास लेखक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह तत्कालीन समाज की विचाराधाराओं का, सामाजिक व आर्थिक स्थिति का और समाज में व्याप्त असंतोष, संघर्ष और इस प्रकार की अन्य स्थितियों का भी सांगोपांग वर्णन करे।

इतिहास एक ऐसा विषय है जिसमें एक-एक प्रकरण को लेकर शताब्दियों तक खोज हो सकती है और इस दृष्टि से कोई भी इतिहास-पुस्तक अपने समय में सर्वाङ्ग सुन्दर होते हुए भी कुछ दिनों बाद पुरानी पड़ सकती है। इसलिए किसी पुस्तक के गुण-दोष की विवेचना करते समय मुख्य बात यह है कि इसने क्या दिया है, न कि यह कि क्या छोड़ दिया है।

अब तक जो कुछ कहा गया है उससे यदा-कदा व्यक्त की जाने वाली इस धारणा को बल मिल सकता है कि भारत कभी भी एक राष्ट्र न था, कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति विदेशी चाहे मुस्लिम, चाहे ब्रिटिश-विजय की ही उपज

हैं। यदि ऐसा होता तो लिखने योग्य भारतीय इतिहास केवल विजेताओं का ही इतिहास होता। विदेशी लेखक जो पाठ्य-पुस्तकें छोड़ गये हैं, उनसे सहज ही इस धारणा को बल मिलता है। परन्तु जिस समय मकदूनिया का सिकंदर हिन्दुस्तान के कल्पित-वैभव और जादुई नाम को सुनकर पूर्व की ओर आकर्षित हुआ था उस समय इग्लैंड और फ्रांस अभी-अभी लौह-युग में कदम रख रहे थे। भारत के लिए व्यापारिक मार्ग खोजने के प्रयास में ही अमरीका की खोज हुई है। यही वजह है कि अमरीका के मूल निवासियों को अब भी 'इण्डियन' कहा जाता है। अब के लोग जिस समय बौद्धिक दृष्टि से संसार में सबसे प्रगतिशील और सक्रिय थे, उस समय उन्होंने अपने चिकित्सा-ग्रंथ और काफी हद तक गणित के ग्रंथ भी भारतीय स्रोतों के आधार पर तैयार किये। एशियाई संस्कृति और सभ्यता के दो प्राथमिक स्रोत चीन और भारत ही हैं।

भारतीय इतिहास के बारे में लिखित स्रोत सामग्री बहुत कम है। चीन, रोम तथा यूनान देशों का ऐतिहासिक साहित्य बेहतर है। मिश्र, बेबीलोन, असीरिया तथा सुमेर के अभिलेख भी पढ़े जा चुके हैं। दूसरी ओर भारत में केवल अस्पष्ट जनश्रुतियों का अस्तित्व है, जिनमें मिथकों और आख्यानों के स्तर से ऊपर की प्रामाणिक जानकारी बहुत थोड़ी मिलती है। इनके आधार पर हम एक पूर्ण राजवंशावली भी तैयार नहीं कर सकते। कभी-कभी तो पूरे राजवंशों को ही भुला दिया जाता है। जो थोड़ा कुछ बचा है, वह इतना अस्पष्ट है कि मुस्लिम-काल की शुरुआत होने तक भारत के किसी प्रमुख व्यक्ति की तिथि निर्धारित करना लगभग असम्भव हो जाता है। किसी बड़े राजा का कितने प्रदेश पर शासन था, यह जानने में भी बड़ी कठिनाईयाँ हैं। राजवृतांत भी नहीं मिलते, आंशिक अपवाद हैं तो केवल कश्मीर और चंबा। भारतीय साहित्य की विभूतियों के बारे में भी यही बात है। उनकी कृतियाँ तो उपलब्ध हैं, परन्तु लेखक की तिथि के बारे में कुछ ही जानकारी मिलती है। मोटे तौर पर यह मालूम हो सकता है कि रचना किस सदी की है, अन्यथा अधिकतर यही कहा जा सकता है कि रचनाकार अवश्य हुआ है। कभी-कभी तो यह भी संदिग्ध होता है, बहुत सी कृतियाँ जो एक लेखक के नाम से प्रसिद्ध है, सम्भवत: एक ही लेखक की रचनाऐं नहीं हो सकतीं। इन सब कारणों से बुद्धिमान पंडित भी यह कहने लगे हैं कि भारत का कोई इतिहास नहीं है। निश्चय ही रोम या यूनान के इतिहास की तरह प्राचीन भारत का तथ्यपूर्ण एवं ब्यौरेवार इतिहास प्रस्तुत करना संभव नहीं है। लेकिन इतिहास क्या है? यदि इतिहास का अर्थ केवल बड़ी-बड़ी लड़ाईयों और कुछ खास अहंकारी नामों का सिलसिला ही है, तो भारत का इतिहास लिखना कठिन

है। परन्तु यदि किसी राजा के नाम की बजाय यह जानना अधिक महत्वपूर्ण है कि उसके राज्य के किसान हल का इस्तेमाल करते थे या नहीं, तो भारत का इतिहास मौजूद है।

इतिहासकार का काम न तो अतीत से प्रेम करना है, न अतीत से छुटकारा पाना, बल्कि वर्तमान को स्पष्ट करने वाली एक कुंजी के रूप में अतीत की गहराई में जाकर उसे खोलकर समझना है। इतिहासकार का अतीत-संबंधी चित्र जब वर्तमान की समस्याओं को समझने वाली अन्तर्दृष्टि से आलोकित होता है, तभी महान इतिहास रचा जाता है। इतिहास से सीखना केवल एकतरफा प्रक्रिया नहीं है। अतीत के प्रकाश में वर्तमान को समझने का अर्थ वर्तमान के प्रकाश में अतीत को समझना भी है। इतिहास का प्रयोजन है- अतीत और वर्तमान के बीच के अन्त:संबंध द्वारा इन दोनों के बारे में अधिकाधिक गहन जानकारी प्राप्त करते रहना।

पाश्चात्य विद्वानों ने भारत के इतिहास को बहुत करके गौतम बुद्ध या उनसे सौ-दो सौ वर्ष पूर्व से आरम्भ किया है। उससे पहले काल के इतिहास को उन्होंने प्रागैतिहासिक कहकर टाल दिया है। पुरातत्व से प्राप्त शिलालेख अवशेष, सिक्कों आदि को ही उन्होंने अपने इतिहास का आधार बनाया है। उन्होंने पौराणिक तो क्या वेदों के साक्ष्य से समन्वित पौराणिक सामग्री को भी त्याज्य और निरर्थक माना है। लोकमान्य तिलक, विनायकराव, चिन्तामणि, महर्षि दयानंद और मिश्र बंधुओं ने पाश्चात्य विचाराधारा का खण्डन किया है और उससे पृथक एक नई मान्यता को जन्म दिया है जिसमें इतिहास निर्माण की दृष्टि से वेद और पौराणिक सामग्री को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। मेरी भी मान्यता यह है कि अति रंजना दोष होते हुए भी पुराणों में अनन्त ऐतिहासिक सामग्री भरी पड़ी है और भविष्य में जितनी शोध होगी उतना ही समुज्ज्वल इतिहास हमारे सामने आता जायेगा। सूर्यवंश और चन्द्रवंश प्राचीन भारतीय इतिहास के मुख्य राजघराने थे। इनकी शाखा-प्रशाखाऐं ही समस्त देश में फैल गई थीं। पुराणों में तो उल्लेख है कि इनकी शाखाओं का विस्तार वर्तमान एशिया, यूरोप, अफ्रीका के अनेक देशों तक हो गया था।

यह इतिहास उस जाति के शासन का है। जिसे कभी आर्य कहते थे और आज हिन्दू कहते हैं। आज के युग में कुछ लोग साहस की कमी से हिन्दू नाम लेने में भी कतराते हैं। मेरा आशय यह है कि आर्य संस्कृति, भारतीय संस्कृति और हिन्दू संस्कृति एक ही चीज के नाम हैं। प्राचीन भारत के हिन्दू राज्य में जिन

महान आदर्शों और परम्पराओं का जन्म हुआ उनसे भारतीय जनता आज भी अनुप्राणित है। प्राचीन भारत के इतिहास में अनेक स्वर्णिम युग आये जिनमें प्रजा अत्यन्त सुखी और समृद्ध थी और राज्य का विस्तार भी मध्य एशिया तक ऐसा फैला जैसा अनेक प्रयासों के बावजूद मुगलकाल और ब्रिटिशकाल में न फैल पाया था।

इतिहास के विद्यार्थियों को आज तुर्ककाल, पठानकाल, मुगलकाल, अकबर महान, ब्रिटिशकाल आदि पर अनेक इतिहास ग्रंथ पढ़ने को प्रेरित किया जाता है। इन कालों के इतिहास ग्रंथ भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं परन्तु जिस काल की अवधि हजारों वर्षों की है और जो एक प्राचीनतम महान संस्कृति का उद्‌बोधक और प्रतीक है और जिसमें राजा और प्रजा दोनों ने महान आदर्शों और परम्पराओं का परिपालन किया है, उसको प्राचीन भारत का इतिहास कहकर टाल दिया जाता है। उस काल को उसके सही नाम से पुकारने में भी हमें संकोच होता है। आज भारतीय इतिहास मार्क्सवाद तथा वामपंथी विचारधारा से प्रेरित होकर लिखा जा रहा है। किसी इतिहासकार का यह कथन बहुत ठीक है कि यदि किसी राष्ट्र को सदैव अध:पतित एवं पराधीन बनाये रखना हो तो सबसे अच्छा उपाय यह है कि उसका इतिहास नष्ट कर दिया जाय। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यही हो सकता है कि किसी राष्ट्र के उत्थान में उसका इतिहास सबसे बड़ा सहायक एवं सुयोग्य मार्गदर्शक होता है।

भारतवर्ष एक अत्यन्त प्राचीन और महाविशाल देश है, जहाँ कभी किसी एक ही राजा का राज्य नहीं रहा, परन्तु समय-समय पर अनेक राजवंशों तथा राज्यों का उदय और अस्त होता रहा है। आर्यों द्वारा राज्यों की स्थापना हो चुकने पर अहम् और ईर्ष्या ने अपना प्रभुत्व दिखाया और परस्पर के झगड़ों से देश में रक्त की नदियाँ बहने लगीं। उसके बाद विदेशियों के आक्रमण का प्रारम्भ होता है। बौद्धों और ब्राह्मणों के धार्मिक संघर्ष ने भी देश को हानि पहुँचाई। फिर मुसलमानों का दौर चला और अन्त में यह यूरोपीय जातियों का लीला क्षेत्र बना। जिस देश पर शताब्दियों से विदेशियों के आक्रमण होते चले आये हों और जहाँ बाहरी लोगों के तथा इस देश के राजाओं के पारस्परिक युद्धों ने प्रचण्ड रूप धारण किया हो, वहाँ के इतिहास का ज्यों का त्यों बना रहना असंभव है। मुसलमानों के समय में तो प्राचीन नगर, मंदिर, मठ आदि धर्मस्थान, राजमहल और प्राचीन पुस्तकालय नष्ट कर दिये गये, जिससे भारतीय इतिहास के अधिकांश साधन विलुप्त हो गये। इन सब घटनाओं से स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में इस

देश का शृंखलाबद्ध इतिहास बना रहना और मिलना कठिन ही नहीं वरन असम्भव है।

तथापि यह सत्य है कि प्रमाणों की अनुपस्थिति बुद्धि ग्राह्य अनुमानों और तात्कालिक परिस्थिति के आधार पर सन्तोष करना पड़ेगा। सम्भव है प्रमाण मिलने पर ऐसे सिद्धान्त परिवर्तित हो जाएँ, फिर भी वर्तमान दशा के विचार से इतिहासकार को अपना मत व्यक्त करना पड़ेगा। वज्रनाभ-काल के पश्चात् यदुवंश इतिहास आधुनिक खोजों, जगा-भाटों के इतिवृत्त तथा जनश्रुतियों पर अधिक आधारित है।

मुसलमानों आदि के हाथ से नष्ट होने पर भी जो कुछ सामग्री बच रही और जो अब तक उपलब्ध हो चुकी है, वह भी इतनी प्रचुर है कि उसकी सहायता से एक सर्वांगपूर्ण इतिहास लिखा जा सकता है, परन्तु ऐसा इतिहास लिखने के लिए अनेक विद्वानों को वर्षों तक श्रम करने की आवश्यकता है। यह सामग्री चार भागों में विभक्त की जा सकती है- 1. हमारे देश की प्राचीन पुस्तकें, 2. विदेशियों के यात्रा विवरण और इस देश के वर्णन सम्बन्धी ग्रंथ, 3. प्राचीन शिलालेख तथा दानपत्र, 4. प्राचीन सिक्के, मुद्रा या शिल्प।

इतिहास की महत्ता पर फ्रेंच लेखक मिसले का कथन है- "कोई जाति मर नहीं सकती जब तक उसका इतिहास निर्मित होता रहे।" अर्थात् किसी भी राष्ट्र व समाज को जाग्रत, जीवंत, प्रगतिशील, समर्थ और सशक्त रहने के लिए अपने इतिहास की जानकारी आवश्यक होती है। किसी भी देश का इतिहास उसका दर्पण होता है। इतिहास में अतीत की हलचलों का गरिमापूर्ण सार होता है। इतिहास में अतीत और वर्तमान का जीवंत संवाद होता रहता है ताकि वर्तमान से भविष्य की योजना क्रियान्वित होती रहे।

आजकल भारत की अधिकांश जातियाँ स्वयं को क्षत्रिय कहती हैं। क्षत्रियों का इतिहास मात्र जातिगत इतिहास नहीं है बल्कि वह भारतवर्ष का गौरवपूर्ण सभ्यता, संस्कृति का इतिहास है। इसका कारण यह है कि यदि भारत के इतिहास से क्षत्रियों के इतिहास को निकाल दिया जाय तो इस देश के इतिहास में अल्पांश भाग ही रह जायेगा। वास्तविकता यह है कि क्षत्रिय-राजपूतों का इतिहास भारतवर्ष का इतिहास है। भारत के इतिहास का अधिकांश भाग क्षत्रियों द्वारा ही सृजित है, क्योंकि क्षत्रिय वर्ग ने ही सदैव इस देश के धर्म तथा संस्कृति की रक्षा अपने प्राण देकर की है। आज भारत की अधिकांश जातियाँ क्षत्रियों से उत्पन्न हैं। भारत का प्राचीन इतिहास राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत

समृद्ध रहा है। प्राचीन इतिहास में आर्य जाति के दो क्षत्रिय वंश प्रमुख थे- सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश। विदेशी इतिहासकारों को भारतीय इतिहास की मान्यता स्वीकार्य न होने के कारण क्षत्रिय-इतिहास को मनगढ़न्त, भ्रान्तिपूर्ण एवं काल्पनिक ढंग से लिखा गया है। अंग्रेज इतिहासकारों ने अपनी जाति के अभ्युदय के अनुसार भारत का इतिहास मनमाने ढंग से लिखा। अपने को विशेष शिष्ट और सभ्य समझने वाले कुछ भारतीय इतिहासकारों ने भी आँखें मूँद कर उनका अनुसरण किया और भारत के सबसे प्राचीन और गौरवशाली इतिहास को बेहद संकुचित तथा मनगढ़न्त कर दिया। जबकि वास्तव में इस देश के इतिहास के सामने किसी भी अन्य देश का इतिहास नहीं टिक सकता है।

वर्तमान काल में मूल क्षत्रिय बहुत कम रह गये हैं। आजकल जातीय घालमेल तथा कुछ ओछी मानसिकता वाले इतिहासकारों के द्वारा अप्रमाणित लिखने के कारण मूल क्षत्रिय की पहचान एक कठिन परीक्षा बन गई है, जिससे जातियों का वास्तविक स्वरूप विकृत होता जा रहा है। मूल क्षत्रिय को अपने अस्तित्व को बचाने की चिंता व्याप्त है।

जर्मनी के प्रसिद्ध लेखक होमर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'इंडिया टू नेशन टूडे' में लिखा है कि- "जब मैं भारत का प्राप्त इतिहास पढ़ता हूँ तो मुझे ऐसा आभास ही नहीं होता है कि भारत का इतिहास पढ़ रहा हूँ, जबकि उसके विपरीत ऐसा लगता है कि मैं भारत पर निरंतर हुए आक्रमणों का इतिहास पढ़ रहा हूँ। इससे मुझे ऐसा भी लगता है कि यह भारत का इतिहास है ही नहीं।" इतिहासकार का यह कथन भारतीय इतिहास की वास्तविक स्थिति प्रकट करता है। आज विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है और उसका विद्यार्थियों के मन-मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसे आज प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति समझता है। कार्लमार्क्स के अनुसार पराजय एवं अन्तर्विरोधी इतिहास के अध्ययन से वर्तमान शिक्षित पीढी पर विकृत मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। अत: आज विद्यार्थियों पर थोपे गये विकृत इतिहास को हटाकर शिक्षाविदों को भारत के वास्तविक इतिहास को सामने लाना होगा।

पुस्तक- 'जाटों का इतिहास' में प्रो. कालिका रंजन कानूनगो (पृ. 190) पर लिखते हैं- "सभी राष्ट्रों के इतिहास में ऐसे लोगों की कमी नहीं रही है, जिन्होंने कल्पना के आधार पर व्यक्तियों एवं जातियों के वंश-वृक्षों की रचना कर दी है। परन्तु इसके पीछे प्रयोजन क्या है? प्रथम, कोई सफल मनुष्य जो कल तक अकिंचन था अथवा कोई कम ख्याति प्राप्त कबीला जिसका अतीत

उज्ज्वल नहीं रहा और वह अचानक महत्वपूर्ण बन जाये, उसे अपने वर्तमान को समुज्ज्वल तथा भविष्य को समुज्ज्वलतर सिद्ध करने के लिए किसी समीचीन पृष्ठभूमि की आवश्यकता होती है और उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह एक काल्पनिक श्रेष्ठता की रचना कर लेता है।

द्वितीय, लोग अपनी वंश परम्परा को अपने द्वारा अंगीकृत नये धर्म के साथ अथवा अपने से अधिक शक्तिशाली अथवा अधिक सभ्य पड़ोसियों के साथ जोड़ लेते हैं जिसके उदाहरण वर्तमान में भी मिलते हैं।"

आज यदुवंश का इतिहास केवल वेद पुराणों तक ही सीमित रह गया है पौराणिक कालीन इतिहास के बाद तो यदुवंश-इतिहास बहुत सीमित मिलता है। आजकल देखने में आता है कि जातीय इतिहास लिखने वाले किसी भी इतिहासकार ने यदुवंश का शोधपूर्ण आद्योपान्त इतिहास नहीं लिखा है, केवल खण्डों में वर्णित अल्प सामग्री ही उपलब्ध होती है। कुछ जातीय इतिहास लेखक तो अप्रमाणित तथा काल्पनिक विवरण लिख रहे हैं एवं अन्य उच्चवर्गीय जातियों के इतिहास के साथ अपने इतिहास को जोड़ने की कोशिश कर रहे हैं जिन्हें पढ़कर पाठक भ्रमित हो जाता है। ऐसे भ्रामक इतिहास से समाज के लोगों में कुतर्कों का जाल फैलता है तथा समाज जातीय विघटन की दशा में पहुँचता है। यह भ्रामक छेड़छाड विशेषत: यदुवंश के विशाल क्षत्रिय इतिहास के साथ अधिक दृष्टिगोचर होती है।

देखने में आता है कि आजकल भारत का यदुवंश समाज कालगति के चलते अपने गौरवपूर्ण इतिहास को भूला हुआ है। उसे अपने पूर्वजों के बारे में ज्ञान न होने के कारण आज वे अपनी महिमामय कीर्ति से विस्मृत होकर अन्य इतिहासों के पीछे दौड़ रहा है। इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रखकर मैंने यदुवंश से संबंधित महापुरुषों के नाम, उनके महान जीवन चरित्रों को भौगोलिक स्थिति के अनुसार लिखने का प्रयास किया है, जिससे मूल यदुवंशी-यादव-जादौन अपने इतिहास को समझकर अपने पूर्वजों पर गर्व कर सकें तथा उनके चरित्रों से वर्तमान पीढ़ियों के रक्त में उन गुणों का विकास हो सके।

इन्हीं सब तथ्यों को देखने सुनने तथा दीर्घकालीन अध्ययन से प्राप्त ज्ञान और अनुभव द्वारा प्रभु कृपा से एक इतिहास लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई। (न तो मैं विद्वान हूँ और न इतिहासकार) अपने ही कुछ माननीय सामाजिक सज्जनों के आग्रह को भी स्वीकार करना पड़ा। अब तक के अर्जित ज्ञान तथा भ्रमण के आधार पर यदुवंश के इतिहास की जितनी शोध कर सका हूँ, इस पुस्तक के

रूप में पाठकों के समक्ष है। यह पुस्तक समाज के लिए कितनी उपयोगी होगी, इसका मैं कोई दावा नहीं कर सकता। मैंने इसमें यदुवंश इतिहास सम्बन्धित प्रमुख महापुरुषों वंशों तथा तत्संबंधित घटनाओं को समेटने का प्रयास किया है। जिससे समाज में इतिहास के अन्तर्गत उत्पन्न गलत धारणाओं तथा प्रश्नों के उत्तर समझने में आसानी हो सके। साथ ही भारतीय संस्कृति (हिन्दू संस्कृति) का उसे ज्ञान हो सके। यद्यपि वर्तमान युग का मानव इन वेद-पुराण की कथाओं में विश्वास तथा श्रद्धा नहीं रख रहा है इसीलिए उसका चरित्र हनन हो रहा है और उसका जीवन भी विषम और कष्टपूर्ण होता जा रहा है। मेरा प्रयास है कि प्राचीन और नवीन दोनों प्रकार की सामग्री पाठकों को पढ़ने को मिले, क्योंकि सबकी रूचि भिन्न-भिन्न होती है।

मेरा यह लघु प्रयास यदुवंश इतिहास लिखने के साथ-साथ भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा सभ्यता का विवेचन भी है जो यदुवंश इतिहास में निहित है। यद्यपि यह सम्पूर्ण इतिहास नहीं कहा जा सकता है क्योंकि भविष्य में कालगति के चलते यह पुस्तक भी पुरानी हो जायेगी। पुस्तक में कुछ त्रुटियाँ तथा संदिग्ध ब्यौरा भी हो सकता है उसके लिए मैं पाठकों से क्षमा चाहते हुए निर्णय उनके विवेक पर छोड़ता हूँ।

और अन्त में वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन तथा राजकीय संग्रहालय, मथुरा की लाइब्रेरी का मैं विशेष आभारी हूँ, जहाँ लगभग पिछले दस सालों से अनवरत मुझे अध्ययन की सुविधा प्रदान करते रहे हैं। साथ ही भाई डा. धीरेन्द्र सिंह जादौन का भी आभार प्रकट करता हूँ, जिनके द्वारा सोशल मीडिया पर डाले गये ऐतिहासिक शोधपूर्ण लेख मुझे प्राप्त होते रहे जिनसे मुझे वर्तमान इतिहास की जानकारी करने में काफी सहायता मिली तथा मार्गदर्शन भी समय-समय पर मिलता रहा।

लेखक,

- महावीर सिंह यदुवंशी

सृष्टि खण्ड

भारतीय इतिहास का आरम्भ-

अधिकाशत: विदेशी इतिहासों का आरंभ राष्ट्र की स्थापना काल से राष्ट्र भूमि के आवास काल से हुआ है। संसार के लगभग सभी इतिहास ग्रंथों का आरंभ भूमि और उसके निवासियों से आरंभ होता है, परन्तु भारतीय इतिहास का आरंभ सृष्टि की उत्पत्ति से होता है। पुराणों में सृष्टि उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन है। भारतीय पौराणिक साहित्य में सृष्टि का आरंभ अयोनिज माना गया है। संसार में ईश्वर को मानने वाले सभी धर्मों ने सृष्टि का निर्माण ईश्वर की मानसिक सृष्टि को ही माना है। विभिन्न पुराणों में सृष्टि निर्माण का कार्य सम्पंन करने वाले कहीं दुर्गा, कहीं शिव, कहीं विष्णु तथा कहीं ब्रह्मा को माना है लेकिन अन्य ईश्वर रूप से ब्रह्मा द्वारा ही सृष्टि रचना का ही मुख्यत: उल्लेख मिलता है। ब्रह्म पुराण में सृष्टि सृजन के संबंध में विवरण है कि प्रजापति ब्रह्मा ने चैत्र शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय जगत की रचना की थी। इसलिए भारत में इस तिथि को संवत्सर प्रतिपदा कहते हैं। हिंदुओं के प्रत्येक नये संवत्सर का प्रारंभ इसी दिन से होता है।

भारतीय कालगणना (कल्प)-

कई पुराणों में कल्प की गणना प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवत महापुराण (3.11) में इसका वैज्ञानिक वर्णन विस्तार में मिलता है। पृथ्वी आदि कार्यवर्ग का जो सूक्ष्मतम अंश है- जिसका और विभाग नहीं हो सकता तथा जो कार्यरूप को प्राप्त नहीं हुआ है और जिसका अन्य परमाणुओं के साथ संयोग भी नहीं हुआ है, उसे 'परमाणु' कहते हैं। इन अनेक परमाणुओं के परस्पर मिलने से ही मनुष्यों को भ्रमवश उनके समुदाय रूप एक अवयवी की प्रतीति होती है। यह परमाणु जिसका सूक्ष्मतम अंश है, अपने सामान्य स्वरूप में स्थित उस पृथ्वी आदि कार्यों की एकता (समुदाय अथवा समग्ररुप) का नाम परम महान है। इस समय उसमें न तो प्रलय आदि अवस्था भेद की स्फूर्ति होती है, न नवीन-प्राचीन आदि काल भेद का भान होता है, और न घट-पटादि वस्तुभेद की ही कल्पना होती है। इस प्रकार यह वस्तु का सूक्ष्मतम और महत्तम स्वरूप है। इसी के सादृश्य से परमाणु आदि अवस्थाओं में व्याप्त होकर व्यक्त पदार्थों को भोगने वाले सृष्टि आदि में समर्थ, अव्यक्त स्वरूप भगवान काल की भी सूक्ष्मता और

स्थूलता का अनुमान किया जा सकता है। जो काल-प्रपंच की परमाणु जैसी सूक्ष्म अवस्था में व्याप्त रहता है, वह अत्यन्त सूक्ष्म है, और जो सृष्टि से लेकर प्रलय-पर्यन्त उसकी सभी अवस्थाओं का भोग करता है, वह परम महान है।

दो परमाणु मिलकर एक 'अणु' होता है और तीन अणुओं के मिलने से एक 'त्रसरेणु' होता है, जो झरोखे में से होकर आई हुई सूर्य की किरणों के प्रकाश में आकाश में उड़ता देखा जाता है। ऐसे तीन त्रसरेणुओं को पार करने में सूर्य को जितना समय लगता है, उसे 'त्रुटि' कहते हैं। इससे सौ गुना काल 'वेध' कहलाता है और तीन वेध का एक 'लव' होता है। तीन लव को एक 'निमेष' और तीन निमेष को एक 'क्षण' कहते हैं। पाँच क्षण की एक 'काष्ठा' होती है और पन्द्रह काष्ठा का एक 'लघु'। पन्द्रह लघु की एक 'नाडिका' (दण्ड) कही जाती है, दो नाडिका का एक 'मुहूर्त' होता है और दिन में घटने-बढ़ने के अनुसार (दिन एवं रात्रि की दोनों संधियों के दो मुहूर्तों को छोड़कर) छः या सात नाडिका का एक 'प्रहर' होता है। यह 'याम' कहलाता है जो मनुष्य के दिन या रात का चौथा भाग होता है। चार-चार प्रहर के मानवीय 'दिन' और 'रात' होते हैं और पन्द्रह दिन-रात का एक 'पक्ष' होता है जो शुक्ल और कृष्ण भेद से दो प्रकार का माना गया है। इन दोनों पक्षों को मिलाकर एक 'मास' होता है जो पितरों का एक दिन-रात है। दो मास का एक 'ऋतु' और छः मास का एक 'अयन' होता है। अयन 'उत्तरायण' और 'दक्षिणायन' भेद से दो प्रकार का है। ये दोनों अयन मिलकर देवताओं के एक दिन-रात होते हैं तथा मनुष्य लोक में ये 'वर्ष' या बारह मास कहे जाते हैं। ऐसे सौ वर्ष की मनुष्य की परम आयु बतायी गयी है। चन्द्रमा आदि ग्रह, अश्विनी आदि नक्षत्र और समस्त तारामण्डल के अधिष्ठाता काल स्वरूप भगवान् सूर्य परमाणु से लेकर संवत्सर पर्यन्त काल में बारह राशि रूप संपूर्ण भुवनकोश की निरंतर परिक्रमा किया करते हैं। सूर्य, बृहस्पति, सवन, चन्द्रमा और नक्षत्र संबंधी महीनों के भेद से यह वर्ष ही संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर कहा जाता है। इन पाँच प्रकार के वर्षों की प्रवृत्ति करने वाले भगवान् सूर्य हैं।

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि- ये चार युग अपनी संध्या और संध्यांशों के सहित देवताओं के बारह हजार वर्ष तक रहते हैं। इन चारों युगों में क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष होते हैं और प्रत्येक में जितने हजार वर्ष होते हैं उससे दुगुने सौ वर्ष उनकी संध्या और संध्यांशों में होते हैं। अर्थात् सत्ययुग में चार हजार दिव्य वर्ष युग के और आठ सौ संध्या और संध्यांशो के

– इस प्रकार अडतालीस सौ वर्ष होते हैं। इसी प्रकार त्रेता में छत्तीस सौ, द्वापर में चौबीस सौ और कलियुग में बारह सौ दिव्य-वर्ष होते हैं। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन होता है, अत: देवताओं का एक वर्ष मनुष्यों के तीन सौ साठ वर्ष के बराबर हुआ। इस प्रकार मानवीय मान से कलियुग में चार लाख बत्तीस हजार वर्ष हुए तथा इससे दुगुने द्वापर में, तिगुने त्रेता में और चौगुने सत्ययुग में होते हैं। युग के आदि में संध्या होती है और अन्त में संध्यांश। इनकी वर्ष गणना सैकड़ों में है। इनके बीच का जो काल होता है उसी को कालवेत्ताओं ने 'युग' कहा है। प्रत्येक युग में एक-एक विशेष धर्म का विधान पाया जाता है। त्रिलोकी से बाहर महर्लोक से ब्रह्मलोक पर्यन्त यहाँ की एक हजार चतुर्युगी का एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात्रि होती है जिसमें जगत्कर्ता ब्रह्माजी शयन करते हैं। उस रात्रि का अन्त होने पर इस लोक का कल्प आरम्भ होता है, उसका क्रम जब तक ब्रह्माजी का दिन रहता है, तब तक चलता रहता है। उस एक कल्प में चौदह मनु हो जाते हैं। प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगी से कुछ अधिक काल (7/4/19 चतुर्युगी) तक अपना अधिकार भोगता है। प्रत्येक मन्वन्तर में भिन्न-भिन्न मनुवंशी राजा लोग, सप्तर्षि, देवगण, इन्द्र और उनके अनुयायी गन्धर्वादि साथ-साथ ही अपना अधिकार भोगते हैं। यह ब्रह्माजी की प्रतिदिन की सृष्टि है, जिसमें तीनों लोकों की रचना होती है। उसमें अपने-अपने कर्मानुसार पशु-पक्षी, मनुष्य, पितर और देवताओं की उत्पत्ति होती है। इन मन्वन्तरों में भगवान् सत्वगुण का आश्रय ले, अपनी मनु आदि मूर्तियों के द्वारा पौरुष प्रकट करते हुए इस विश्व का पालन करते हैं। कालक्रम से जब ब्रह्मा जी का दिन बीत जाता है तब वे तमोगुण के संपर्क को स्वीकार कर अपने सृष्टि-रचना रूप पौरुष को स्थगित करके निश्चेष्ट भाव से स्थित हो जाते हैं। उस समय सारा विश्व उन्हीं में लीन हो जाता है। सूर्य और चन्द्रमा आदि से रहित वह प्रलय रात्रि आती है तब वे भू:, भुव:, स्व: तीनों लोक उन्हीं ब्रह्माजी के शरीर में छिप जाते हैं। इस प्रकार काल की गति से एक-एक हजार चतुर्युग के रूप में प्रतीत होने वाले दिन-रात के हेर-फेर से ब्रह्माजी की सौ वर्ष की आयु होती है।

इस विवरण को हम संख्यावाची गणना द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं-

पुराणों में मुख्य पाँच लक्षण हैं- 1. सृष्टि, 2. प्रलय, 3. वंश, 4. वंशानुचरित, 5. मन्वन्तर। इनमें से मन्वन्तर का संबंध काल की गणना से है। मनु तथा मनु पुत्रगण जितने समय तक सप्तद्वीपा पृथ्वी का राज्य भोगते हुए धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का पालन करते हैं, वह समय मन्वन्तर कहलाता है। मन्वन्तर को समझने के लिए इस कालगणना का ज्ञान आवश्यक है, जो इस प्रकार है-

मनुष्य का एक महीना – पितरों का एक दिन-रात।
मनुष्य का एक वर्ष – देवताओं का एक दिन-रात।
मनुष्य के तीस वर्ष – देवताओं का एक माह।
मनुष्य के 360 वर्ष – देवताओं का एक वर्ष (दिव्य वर्ष)
4,32,000 मानव वर्ष – 1200 दिव्य वर्ष = एक कलियुग
8,64,000 मानव वर्ष – 2400 दिव्य वर्ष = एक द्वापरयुग
12,96,000 मानव वर्ष – 3600 दिव्य वर्ष = एक त्रेतायुग
17,28,000 मानव वर्ष – 4800 दिव्य वर्ष = एक सत्ययुग
योग- 43,20,000 मानव वर्ष – 12000 दिव्य वर्ष = एक महायुग या चतुर्युगी

सौर-मान (मानव वर्ष)-		देवमान या दिव्य वर्ष-
एक चतुर्युगी (महायुग)	– 43,20,000 वर्ष	12000
71 चतुर्युगी से कुछ अधिक	– 30,67,20,000 (एक मन्वन्तर)	8,52,000
कल्प की संधि	– 17,28,000	48,000
मन्वन्तर की 14 संख्याएँ	– 2,41,92,000	67,200
संधि सहित एक मन्वन्तर	– 30,84,48,000	8,56,800
14 संध्या सहित 14 मन्वन्तर	– 4,31,82,72,000	1,19,95,200

कल्प की संधि सहित 14 मन्वन्तर या एक कल्प-

(एक हजार चतुर्युगों का एक कल्प होता है) – 4,32,00,00,000 –1,20,00,000

ब्रह्मा का दिन – 4,32,00,00,000 ┐
ब्रह्मा की रात्रि – 4,32,00,00,000 ├ मानुषी वर्ष
दिन-रात्रि का योग – 8,64,00,00,000 ┘
ब्रह्मा का एक दिन-रात्रि – 8,64,00,00,000X30
एक ब्राह्म मास – 2,59,20,00,00,000X12
एक ब्राह्म वर्ष – 31,10,40,00,00,000

ब्रह्मा की परमायु इस ब्राह्म वर्ष के मान से एक सौ वर्ष है। इसे 'पर' कहते हैं। श्रीमद्भागवत के अनुसार ब्रह्माण्ड की सृष्टि से लेकर महाप्रलय तक इतना समय व्यतीत होता है। ब्रह्माजी का पूर्व परार्ध अर्थात् उनकी आयु के पचास वर्ष

बीत गये हैं। द्वितीय परार्ध का प्रथम कल्प (दिन) यह वर्तमान है, जिसका नाम 'श्वेतवाराहकल्प' है। इस कल्प के चौदह मन्वन्तरों (चौदह-मनुओं) में छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। वर्तमान में सातवें मन्वन्तर के 27 चतुर्युग (महायुग) बीत चुके हैं और 28 वें महायुग के सत्ययुग, त्रेता, द्वापर बीतकर 28 वाँ कलियुग चल रहा है, अर्थात् आजकल ब्रह्माजी का 51 वें वर्ष का प्रथम दिन चल रहा है और उसकी 13 घडियाँ, 42 पल, 3 विपल, 43 प्रतिविपल बीत चुके हैं। इसी प्रकार 'सूर्यसिद्धान्त' के अनुसार वैवस्वत मन्वन्तर के (जो आजकल चालू है) 71 महायुगों में 28 सत्ययुग, 28 त्रेता, 28 द्वापर तथा 27 कलियुग बीत चुके है। अब 28वाँ कलियुग चालू है जिसका आजकल प्रथम चरण (चतुर्थांश) वर्तमान है। उसमें भी आज (वि. सं. 2075, सन् 2018 ई. में) 5119 वर्ष (ज्योतिष के अनुसार) बीत चुके हैं।

एक कल्प = 4,32,00,00,000 मानवी वर्ष होते हैं। आज वि. सं. 2075 तक इस कल्प के 1,97,29,49,119 वर्ष बीत चुके हैं तथा 2,34,70,50,881 वर्ष शेष हैं। महर्षि दयानंद ने भी अपनी 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में 'आर्य सृष्टि संवत्सर' दिखलाते हुए इसी काल गणना का समर्थन किया है।

ब्रह्मा का एक वर्ष – 31,10,40,00,00,000 x 100

ब्रह्मा की सौ वर्ष आयु – 31,10,40,00,00,00,000 मानवी वर्ष

इस ब्रह्मा की आयु में से आज तक – 15,55,21,97,29,49,119 वर्ष बीत चुके हैं।

ब्रह्मा के आठ हजार वर्षों का काल ब्रह्मा का एक युग होता है तथा ब्रह्मा का एक हजार युग विष्णु के एक दिन के बराबर होता है।

प्रलय-

भारतीय इतिहास में जल-प्लावन (प्रलय) एक ऐसी ईश्वरीय घटना है जहाँ सृष्टि सृजन आरम्भ होता है। प्रलय संबंधी विवरण कई पुराणों में मिलता है। श्रीमद्भागवत के अन्तर्गत सृष्टि में प्रलय के चार प्रकार हैं-

1. एक मन्वन्तर का समय बीत जाने पर सृष्टि में प्रलय होता है, जो अवान्तर या पार्थिव प्रलय कहलाता है।

2. चौदहों मन्वन्तरों का पूर्ण समय एक कल्प (ब्रह्मा का एक दिन) के बराबर होता है। इस कल्प के अन्त में होने वाला प्रलय नैमित्तिक, दैनन्दिन या कल्प प्रलय कहलाता है।

3. ब्रह्मा की आयु के दोनों परार्धों (सौ वर्ष आयु) की समाप्ति पर प्राकृतिक महाप्रलय होता है, जिसमें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का लय होता है।

4. समस्त ब्रह्माण्ड का पूर्ण ब्रह्म परमात्मा में लय होता है, जो आत्यन्तिक प्रलय कहलाता है। पुनः काल, कर्म और स्वभाव से उस निराकार से साकार सृष्टि की उत्पत्ति होती है। यही सृष्टि और प्रलय का क्रम अनादिकाल से चला आ रहा है।

पहले पाश्चात्य लोग सृष्टि को केवल पाँच हजार वर्ष पुरानी मानते थे। आर्कविशप उशर का मत है कि सृष्टि आज से 4070 वर्ष पूर्व हुई थी। अन्य ईसाई लोग सृष्टि का आरम्भ सात हजार वर्ष पूर्व मानते थे। परन्तु अनेक पाश्चात्य विद्वान ग्रह-नक्षत्रों की उष्णता का परिणाम जानकर जगत की उत्पत्ति चालीस लाख वर्षों में मानने लगे। प्रो. जोली ने समुद्र-जल का खारीपन देखकर निर्णय किया कि संसार में समुद्र दस करोड़ वर्षों से बह रहा है। प्रसिद्ध अस्थितत्ववेत्ता डा. विलियम तथा डा. स्मिथ एडवर्ड आदि पृथ्वी की उष्णता की परीक्षा करके उसकी आयु दस करोड़ वर्ष की मानते हैं। यूरेनियम, हीलियम, बोलोनियम आदि धातुओं के परीक्षक वैज्ञानिक 24 करोड़ वर्षों से 30 करोड़ वर्ष मानते हैं। प्रो. रेड सृष्टि की आयु 50 करोड़ वर्ष मानते हैं। प्रो. हवसल एक अरब वर्षों से सृष्टि मानते हैं। (वर्ल्ड लाइफ, पृ. 187)

ये वैज्ञानिक अभी प्रयोगधर्मी विद्यार्थी हैं। समय-समय पर इनके मत बदलते रहते हैं। अन्ततः ये भारतीय मत में ही आकर ठहरते हैं। वैज्ञानिक खोजों के चलते धीरे-धीरे ये पाश्चात्य वैज्ञानिक हमारी भारतीय कालगणना 11 अरब, 97 करोड़, 29 लाख, एक सौ उन्नीस वर्ष पृथ्वी की सृष्टि को आरम्भ हुए मानने लगे हैं।

इस प्रकार हिन्दू संस्कृति अनादि अथवा प्राचीनतम सिद्ध है। अन्य स्थानों में इसी के एक देश को आधार बनाकर कई संस्कृतियाँ उत्पन्न हुईं, कई नष्ट हो गयीं। अतः हिन्दू संस्कृति ही अन्य संस्कृतियों की आदि जननी है। अन्य किसी भी संस्कृति में इतना काल-परिमाण नहीं मिलता, अतः वे संस्कृतियाँ आदि मती हैं, हिन्दू संस्कृति की भाँति अनादि नहीं।

मन्वन्तर-

मन्वन्तरों का विवरण श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, कूर्मपुराण, मार्कण्डेयपुराण आदि में विस्तार से मिलता है। विष्णुपुराण के अनुसार-

मन्वन्तर (मनु)	इन्द्र	देवता	सप्तर्षि	मनुपुत्र
1. स्वायम्भुव मनु स्वायम्भुव मन्वन्तर (आश्विन शुक्ल नवमी)	—	(तुषित-भागवत) यमि नामक 12 देवता	मरीचि, अंगिरा, पुलत्स्य, पुलह, क्रतु अत्रि, वशिष्ठ	प्रियव्रत, उत्तानपाद पुत्र प्रसूति, देवहूति, आकूति- तीन कन्याऐं।
2. स्वारोचिष मनु स्वारोचिष मन्वन्तर	विपश्चित (रोचन-भागवत)	पारावत, तुषितगण देवता	ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, पृषभ, निरय, परीवान्	चैत्र, किम्पुरुष (द्युमान, सुषेण, रोचिष्मान आदि - भागवत)
3. उत्तम मनु (औत्तम) औत्तम मन्वन्तर	सुशान्ति (सत्यजित् - भाग०)	सुधाम, सत्य, जप, प्रतर्दन, वशवर्ती ये पाँच 12-12 देवतओं के गण थे। (सत्य, वेदश्रुत, भद्र देवताओं के गण-भागवत)	वशिष्ठ जी के प्रमद आदि सात पुत्र	अज, परशु, दीप्त आदि (पवन, सृंजय, यज्ञहोत्र आदि-भागवत)
4. तामस मनु तामस मन्वन्तर	राजा शिबि (त्रिशिख-भागवत)	सुपार, हरि, सत्य, सुधि- 4 वर्ग प्रत्येक वर्ग में 27-27 देवता	ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक, पीवर	नर, ख्याति, केतुरूप, जानुसंघ, पृथु आदि 10 पुत्र।
5. रैवत मनु रैवतक मन्वन्तर	विभु	अभिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ, सुमेधा-14-14 देवताओं के गण	हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य, महामुनि	बलबंधु, सम्भाव्य, सत्यक आदि।

टिप्पणी- उपरोक्त चार मनु राजा प्रियव्रत के वंशधर कहे जाते हैं (स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत)

6. चाक्षुष मनु चाक्षुष मन्वन्तर	मनोजव	आप्य, प्रसूत, भव्य, पृथुक, लेख- प्रत्येक गण में 8-8 देवता	सुमेधा, विरजा, हविष्मान् उत्तम, मधु, अतिनामा, सहिष्णु	ऊरु, पुरु, शतद्युम्न आदि

टिप्पणी- आजकल सातवें मन्वन्तर में सातवें मनु सूर्यपुत्र श्राद्धदेव मनु (वैवस्वत मनु) की सृष्टि चल रही है।
भविष्य में होने वाले मनुओं का वर्णन इस प्रकार है-

7. श्राद्धदेव (वैवस्वत मनु) वैवस्वत मन्वन्तर	पुरन्दर	आदित्य, वसु, रुद्र आदि देवतागण	वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जगदग्नि, विश्वामित्र, गौतम, भारद्वाज	इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, करुष, पृषध्र।
8. सावर्णिक मनु	पाताल लोकवासी विरोचन के पुत्र बलि	सुतप, अभिताभ और मुख्य गणदेवता-प्रत्येक गण में 20-20 देवता	दीप्तिमान्, गालव, राम, कृप, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, ऋष्यशृंग, व्यास	विरजा, उर्वरीवान, निर्मोक आदि
9. दक्षसावर्णि मनु	अद्भुत	तीन देववर्ग-पार, सुधर्मा, मरीचिगर्भ- 12-12 देवता)	सवन, द्युतिमान्, भव्य, वसु, मेधातिथि, सत्य, ज्योतिष्मान्	धृतकेतु, दीप्तिकेतु, पंचहस्त, निरामय, पृथुश्रवा आदि।
10. ब्रह्मसावर्णि मनु	शान्ति	सुखासीन, निरुद्ध, सुधामा, विशुद्ध नामक सौ-सौ देवताओं के गण।	हविष्मान, सुकृत, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, सत्यकेतु अप्रतिमौजा।	सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिषेण आदि 10 पुत्र

11. धर्मसावर्णि मनु	वृष	विहंगम, कामगम और निर्वाणरति नामक 30-30 देवता	नि:स्वर, अग्नि तेजा, बपुष्मान, घृणि, आरुणि, हविष्मान्, अनघ	सर्वत्रग, सुधर्मा, देवानीक आदि।
12. रुद्रपुत्र सावर्णि	ऋतुधामा	हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा, सुराप नामक 5 गणों के 10-10 देवता	तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति तपोरति, तपोधृति, तपोद्युति, तपोधन।	देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ आदि
13. रुचि मनु	दिवस्पति	सुत्रामा, सुकर्मा, सुधर्मा, नाम देवगण में 33-33 देवता	निर्मोह, तत्वदर्शी, निष्प्रकंप, निरुत्सुक, द्यृतिमान, अव्यय, सुतपा।	चित्रसेन, विचित्र आदि।
14. भौम मनु	शुचि	चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिक, वाचावृद्ध- 5 देवगण	अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, मागध, अग्निध्र, युक्त, जित।	ऊरू, गम्भीर बुद्धि आदि।

सांख्य-सिद्धान्त के अनुसार सृष्टिक्रम-

विश्वोत्पत्ति-जगदुत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों में अनेक प्रकार के वर्णन मिलते हैं। श्रीमद्भागवत तथा महाभारत में सृष्टिक्रम के सांख्य सिद्धान्त का वर्णन विस्तार से मिलता है। जो इस प्रकार है- द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव- वास्तव में भगवान् से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है। वेद नारायण के परायण हैं। देवता भी नारायण के ही अंगों में कल्पित हुए है और समस्त यज्ञ भी परमात्मा की प्रसन्नता के लिए ही हैं और उनसे जिन लोगों की प्राप्ति होती है वे भी नारायण में ही कल्पित हैं। सब प्रकार के योग भी नारायण की प्राप्ति के हेतु हैं। सारी तपस्याऐं, सारा ज्ञान, समस्त साध्य और साधनों का पर्यवसान भगवान् नारायण में ही है। वे दृष्टा होने पर भी ईश्वर है, स्वामी है, निर्विकार होने पर भी सर्वस्वरूप हैं। उन्होंने ही ब्रह्मा को बनाया है और उनकी दृष्टि से ही प्रेरित होकर ब्रह्मा उनकी इच्छानुसार सृष्टि रचना करता है। भगवान माया के गुणों से रहित एवं अनंत है। सृष्टि, स्थिति और प्रलय के लिए रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुण- ये तीन गुण माया के द्वारा उनमें स्वीकार किये गये हैं। ये ही तीनों गुण द्रव्य, ज्ञान और क्रिया का आश्रय लेकर मायातीत नित्यमुक्त पुरुष को ही माया में स्थित होने पर कार्य, कारण और कर्तापन के अभिमान से बाँध लेते हैं। इन्द्रियों से परे भगवान् गुणों के इन तीन आवरणों से अपने स्वरूप को भलीभाँति ढक लेते हैं, इसलिए लोग उनको नहीं जान पाते। सारे संसार के और ब्रह्मा आदि के एकमात्र स्वामी वे ही हैं।

मायापति भगवान् ने एक से बहुत होने की इच्छा होने पर अपनी माया से अपने स्वरूप में स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार कर लिया। भगवान की शक्ति से ही काल ने तीनों गुणों में क्षोभ उत्पन्न कर दिया, स्वभाव ने उन्हें रूपान्तरित कर दिया और कर्म ने महत्तत्व को जन्म दिया। रजोगुण और सतोगुण की वृद्धि होने पर महत्तत्व का जो विकार हुआ, उससे ज्ञान, क्रिया और द्रव्यरूप तमोगुण प्रधान विकार हुआ। वह अहंकार कहलाया और विकार को प्राप्त होकर तीन प्रकार का हो गया। उसके भेद हैं- वैकारिक (सतोगुण), तैजस (रजोगुण) और तामस (तमोगुण)। वे क्रमशः ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्ति प्रधान हैं। जब पंचमहाभूतों के कारणरूप तामस अहंकार में विकार हुआ तब उससे आकाश की उत्पत्ति हुई। आकाश की तन्मात्रा और गुण 'शब्द' है। इस शब्द के द्वारा ही दृष्टा और दृश्य का बोध होता है। जब आकाश में विकार हुआ तब उससे वायु की उत्पत्ति हुई, उसका गुण स्पर्श है। अपने

कारण का गुण आ जाने से यह शब्द वाला भी है। इंद्रियों में स्फूर्ति, शरीर में जीवनीशक्ति, ओज और बल इसी के रूप हैं। काल, कर्म और स्वभाव से वायु में भी विकार हुआ। उससे तेज (अग्नि) की उत्पत्ति हुई। इसका प्रधान गुण रूप है, साथ ही इसके कारण आकाश और वायु के गुण शब्द एवं स्पर्श भी इसमें हैं। तेज के विकार से जल की उत्पत्ति हुई। इसका गुण रस है, कारण तत्वों के गुण शब्द, स्पर्श, और रूप भी इसमें हैं। जल के विकार से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, इसका गुण है गन्ध। कारण के गुण कार्य में आते हैं- इस न्याय से शब्द, स्पर्श, रूप और रस- ये चारों गुण भी इसमें विद्यमान हैं। सात्विक अहंकार से मन की और इंद्रियों के दस स्वामी देवताओं की भी उत्पत्ति हुई। उनके नाम हैं- दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति। राजस अहंकार के विकार से कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और प्राण- ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं वाणी, हाथ, पैर, गुदा और जननेन्द्रिय- ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुई। साथ ही ज्ञानशक्ति-रूप बुद्धि और क्रियाशक्ति रूप प्राण भी राजस अहंकार से ही उत्पन्न हुए।

जिस समय में पंचभूत, इंन्द्रिय, मन और सत्व आदि तीनों गुण संगठित नहीं थे, तब अपने रहने के लिए भोगों के साधन रूप शरीर की रचना नहीं कर सके। जब भगवान् ने इन्हें अपनी शक्ति से प्रेरित किया, तब वे तत्व परस्पर एक दूसरे के साथ मिल गये और उन्होंने आपस में कार्य-कारण भाव स्वीकार करके व्यष्टि-समष्टि रूप पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों की रचना की। वह ब्रह्माण्ड रूप अंडा एक हजार वर्ष तक निर्जीवरूप में जल में पड़ा रहा, फिर काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार करने वाले भगवान् ने उसे जीवित कर दिया। उस अंडे को फोड़ कर उसमें से वही विराट पुरुष निकला, जिसकी जंघा, चरण, भुजाएँ, नेत्र, मुख और सिर सहस्त्रों की संख्या में हैं। विद्वान पुरुष (उपासना के लिए) उसी के अंगों में समस्त लोक और उनमें रहने वाली वस्तुओं की कल्पना करते हैं। उसकी कमर से नीचे के अंगों में सातों पाताल की और उसके पेडू के ऊपर के अंगों में सातों स्वर्ग की कल्पना की जाती है। ब्राह्मण इस विराट पुरुष का मुख है, भुजाऐं क्षत्रिय हैं, जांघों से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं। पैरों से लेकर कटि पर्यन्त सातों पाताल तथा भूलोक की कल्पना की गई है, नाभि में भुवर्लोक की, हृदय में स्वर्लोक की और परमात्मा के वक्षस्थल में महर्लोक की कल्पना की गई है। उसके गले में जनलोक, दोनों स्तनों में तपोलोक और मस्तक में ब्रह्मा का नित्य निवास स्थान सत्यलोक है। उस विराट् पुरुष की कमर में अतल, जाँघों में वितल, घुटनों में पवित्र सुतल लोक और जंघाओं में तलातल की

कल्पना की गई है। एड़ी के ऊपर की गाँठों में महातल, पंजे और एडियों में रसातल और तलुओं में पाताल समझना चाहिए। इस प्रकार विराट् पुरुष सर्वलोकमय है। विराट् भगवान के अंगों में इस प्रकार भी लोकों की कल्पना की जाती है कि उनके चरणों में पृथ्वी है, नाभि में भुवर्लोक है और सिर में स्वर्लोक है।

उन्हीं विराट पुरुष के मुख से वाणी और उसके स्वामी देवता अग्नि उत्पन्न हुए हैं। सातों छन्द (गायत्री, त्रिष्टुप, अनुष्टुप, उष्णिक, बृहती, पंक्ति, जगती) उनकी सात धातुओं से निकले हैं। मनुष्यों, पितरों और देवताओं के भोजन करने योग्य अमृतमय अन्न, सब प्रकार के रस, रसनेंद्रिय और उसके स्वामी देवता वरुण विराट् पुरुष की जिह्वा से उत्पन्न हुए हैं। उनके नासाछिद्रों से प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पाँचों प्राण और वायु तथा घ्राणेन्द्रिय से अश्विनीकुमार, समस्त औषधियाँ एवं साधारण तथा विशेष गन्ध उत्पन्न हुए हैं। उनकी नेत्रेन्द्रिय रूप और तेज की तथा नेत्र-गोलक स्वर्ग और सूर्य की जन्मभूमि है। समस्त दिशाऐं और पवित्र करने वाले तीर्थ कानों से तथा आकाश और शब्द श्रोत्रेन्द्रिय से निकले हैं। उनका शरीर संसार की सभी वस्तुओं के सारभाग तथा सौन्दर्य का खजाना है। सारे यज्ञ, स्पर्श और वायु उनकी त्वचा से निकले हैं, उनके रोम सभी उद्भिज पदार्थों के जन्मस्थान हैं, अथवा केवल उन्हीं के, जिनसे यज्ञ संपन्न होते हैं। उनके केश, दाढ़ी-मूँछ और नखों से मेघ, बिजली, शिला एवं लोहा आदि धातुएँ तथा भुजाओं से प्रायः संसार की रक्षा करने वाले लोकपाल प्रकट हुए हैं। उनका चलना-फिरना भूः भुवः स्वः- तीनों लोकों का आश्रय है। उनके चरण-कमल प्राप्त की रक्षा करते हैं और भयों को भगा देते हैं, तथा समस्त कामनाओं की पूर्ति उन्हीं से होती है। विराट् पुरुष का लिंग जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापति का आधार है तथा उनकी जननेन्द्रिय मैथुन जनित आनंद का उद्गम है। विराट् पुरुष की पायु-इंद्रिय यम, मित्र और मलत्याग का तथा गुदाद्वार हिंसा, निऋति, मृत्यु और नरक का उत्पत्ति-स्थान है। उनकी पीठ से पराजय, अधर्म और अज्ञान, नाड़ियों से नद-नदी और हड्डियों से पर्वतों का निर्माण है। उनके उदर में मूल प्रकृति, रस नाम की धातु तथा समुद्र, समस्त प्राणी और मृत्यु समायी हुई है। उसका हृदय ही मन की जन्मभूमि है। ब्रह्मा, नारद, धर्म, सनकादि, शंकर, विज्ञान और अन्तःकरण- सब के सब उनके चित्त के आश्रित हैं। सभी देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग, रेंगने वाले जन्तु गंधर्व, अप्सराऐं, यक्ष, राक्षस, भूत-प्रेत, सर्प, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष और भी नाना प्रकार के जीव- जो आकाश, जल या स्थल में रहते

हैं, ग्रह-नक्षत्र, पुच्छल तारे, तारागण, बिजली और बादल- ये सब के सब विराट् पुरुष ही हैं। यह संपूर्ण विश्व- जो कुछ कभी था, है या होगा- सबको वह घेरे हुए है और उसके अन्दर यह विश्व उसके केवल दस अंगुल के परिमाण में ही स्थित है (ब्रह्माण्ड के सात आवरणों का वर्णन करते हुए वेदान्त प्रक्रिया में ऐसा माना है कि- पृथ्वी से दस गुना जल है, जल से दस गुना अग्नि, अग्नि से दस गुना आकाश, आकाश से दस गुना अहंकार, अहंकार से दस गुना महत्तत्व और महत्तत्व से दस गुनी मूल-प्रकृति है। वह प्रकृति भगवान् के केवल एक पाद में है। इस प्रकार भगवान् की महत्ता प्रकट की गई है। यह दशांगुल न्याय कहलाता है)। जैसे सूर्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुए ही बाहर भी प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही पुराण-पुरुष परमात्मा भी संपूर्ण विराट् विग्रह को प्रकाशित करते हुए ही उसके बाहर-भीतर-सर्वत्र एकरस प्रकाशित हो रहा है। जो कुछ मनुष्य की क्रिया और संकल्प से बनता है, उससे वह परे है और अमृत एवं अभयपद (मोक्ष) का स्वामी है। यही कारण है कि कोई भी उसकी महिमा का पार नहीं पा सकता। संपूर्ण लोक भगवान् के एक पादमात्र (अंशमात्र) हैं तथा उनके अंश मात्र लोकों में समस्त प्राणी निवास करते हैं। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक के ऊपर महर्लोक है। उसके भी ऊपर जन, तप और सत्यलोकों में क्रमशः अमृत, क्षेम एवं अभय का नित्य निवास है। अपने इसी विराट् स्वरूप का दर्शन पूर्ण-ब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध के समय गीता का अमर-ज्ञान देते समय अर्जुन को कराया था। जिसे अर्जुन अपने भौतिकीय-नेत्रों से उसके प्रकाशित स्वरूप को देख नहीं पाया था।

विष्णु पुराण में कहा है कि- इस प्रकार जैसे नारियल के फल का भीतरी बीज बाहर से कितने ही छिलकों से ढका रहता है, वैसे ही यह अण्ड इन सात प्राकृत् आवरणों से घिरा हुआ है। उसमें स्थित हुए स्वयं विश्वेश्वर भगवान् विष्णु ब्रह्मा होकर रजोगुण का आश्रय लेकर इस संसार की रचना में प्रवृत्त होते हैं तथा रचना हो जाने पर सत्वगुण विशिष्ट विष्णु उसका कल्पान्तपर्यन्त युग-युग में पालन करते हैं। फिर कल्प का अन्त होने पर अति दारूण तमः प्रधान रुद्र रूप धारण कर वे जनार्दन विष्णु ही समस्त प्राणियों का भक्षण कर लेते हैं। इस प्रकार समस्त प्राणियों का भक्षण कर संसार को जलमय करके वे परमेश्वर शेष शय्या पर शयन करते हैं। जागने पर ब्रह्मा रूप होकर वे फिर जगत की रचना करते हैं। वह एक ही परमात्मा जगत की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन संज्ञाओं को धारण करते हैं।

ब्रह्माजी की उत्पत्ति-

सृष्टि के पूर्व यह संपूर्ण विश्व जल में डूबा हुआ था। उस समय एकमात्र श्रीनारायण देव-शेषशय्या पर सोये हुए थे। एक हजार चतुर्युग पर्यन्त जल में शयन करने के बाद जब उन्हीं के द्वारा नियुक्त उनकी कालशक्ति ने उन्हें जीवों के कर्मों की प्रवृत्ति के लिए प्रेरित किया। कर्म-शक्ति को जाग्रत करने वाले काल के द्वार विष्णु भगवान् की नाभि से प्रकट हुआ वह सूक्ष्मतत्व कमलकोश के रूप में सहसा ऊपर उठा और उसने सूर्य के समान अपने तेज से उस अपार जलराशि को प्रकाशित कर दिया। संपूर्ण गुणों को प्रकाशित करने वाले उस सर्वलोकमय कमल में वे विष्णु भगवान् ही अंतर्यामी रूप से प्रविष्ट हो गये। तब उसमें से बिना पढाये ही स्वयं संपूर्ण वेदों को जानने वाले साक्षात् वेदमूर्ति श्री ब्रह्माजी प्रकट हुए, जिन्हें लोग स्वयंभू कहते हैं। उस कमल की गद्दी पर बैठे हुए ब्रह्माजी को जब कोई लोक दिखायी नहीं दिया, तब वे आँखें फाड़कर आकाश में चारों ओर गर्दन घुमाकर देखने लगे, इससे उनके चारों दिशाओं में चार मुख हो गये। उस समय प्रलय कालीन पवन के थपेड़ों से उछलती हुई जल की तरंगों के कारण उस जलराशि के ऊपर उठे हुए कमल पर विराजमान आदि देव ब्रह्माजी को अपना तथा उस लोकतत्व रूप कमल का कुछ भी रहस्य न जान पड़ा। ब्रह्माजी सोचने लगे- 'इस कमल की गद्दी में बैठा हुआ मैं कौन हूँ? यह कमल भी बिना किसी अन्य आधार के जल में कहाँ से उत्पन्न हो गया? इसके नीचे अवश्य कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिए, जिसके आधार पर यह स्थित है।'

ऐसा सोचकर वे उस कमल की नाल के सूक्ष्म छिद्रों में होकर उस जल में घुसे। किन्तु उस नाल के आधार को खोजते-खोजते नाभि देश के समीप पहुँच जाने पर भी वे उसे पा न सके। उस अपार अधंकार में अपने उत्पत्ति-स्थान को खोजते-खोजते ब्रह्माजी को बहुत काल बीत गया। यह काल ही भगवान् का चक्र है जो प्राणियों को भयभीत (करता हुआ उनकी आयु को क्षीण) करता रहता है। अन्त में विफल मनोरथ होने पर वे वहाँ से लौट आये और पुनः अपने आधारभूत कमल पर बैठकर धीरे-धीरे प्राणवायु को जीतकर चित्त को संकल्परहित कर समाधि में स्थित हो गये। इस प्रकार दिव्य सौ वर्ष तक अच्छी तरह योगाभ्यास करने पर ब्रह्माजी को ज्ञान प्राप्त हुआ, तब उन्होंने अपने उस मूल को जिसे वे पहले खोजने पर भी नहीं देख पाये थे, अपने ही अंतःकरण में प्रकाशित होते देखा। तब विश्वरचना की इच्छा वाले लोकविधाता ब्रह्माजी ने भगवान् के

नाभि-सरोवर से प्रकट हुआ कमल, जल, वायु, आकाश और अपना शरीर केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे, इनके सिवाय और कुछ उन्हें दिखाई न दिया। रजोगुण से व्याप्त ब्रह्माजी प्रजा की रचना करना चाहते थे। जब उन्होंने सृष्टि के कारण रूप केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे तब लोकरचना के लिए उत्सुक होने कारण वे श्रीहरि की स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी की स्तुति से प्रसन्न होकर प्रकृति और पुरुष के स्वामी भगवान् ब्रह्मा को जगत की अभिव्यक्ति करवाकर अपने उस नारायण रूप से अदृश्य हो गये।

दस प्रकार की सृष्टि-

तब भगवान् के द्वारा सृष्टि कार्य में नियुक्त ब्रह्मा ने उस कमलकोश में प्रवेश किया और उस एक के ही भूः भुवः स्वः- ये तीन भाग किये, यद्यपि वह कमल इतना बड़ा था कि उसके चौदह भुवन या इससे अधिक लोकों के रूप में विभाग किये जा सकते थे। जीवों के भोग-स्थान के रूप में इन्हीं तीन लोकों का शास्त्रों में वर्णन हुआ है। जो निष्काम-कर्म करने वाले हैं, उन्हें महः तपः जनः और सत्यलोक रूप ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। पहले यह सारा विश्व भगवान् की माया से लीन होकर ब्रह्मरूप से स्थित था, उसी को अव्यक्तमूर्ति काल के द्वारा भगवान् ने पुनः पृथक रूप से प्रकट किया है। यह जगत जैसा अब है, वैसा ही पहले था और भविष्य में भी वैसा ही रहेगा। इसकी सृष्टि नौ प्रकार की होती है तथा प्राकृत-वैकृत भेद से एक दसवीं सृष्टि और भी है, और इस का प्रलयकाल, द्रव्य तथा गुणों के द्वारा तीन प्रकार से होता है।

1. पहली सृष्टि महत्तत्व की है। भगवान् की प्रेरणा से सत्व आदि गुणों में विषमता होना ही इसका स्वरूप है।
2. दूसरी सृष्टि अहंकार की है, जिससे पृथ्वी आदि पंचभूत एवं ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है।
3. तीसरी सृष्टि भूतसर्ग की है जिसमें पंचमहाभूतों को उत्पन्न करने वाला तन्मात्र वर्ग रहता है।
4. चौथी सृष्टि इंन्द्रियों की है, यह ज्ञान और क्रियाशक्ति में संपन्न होती है।
5. पाँचवी सृष्टि सात्विक अहंकार उत्पन्न हुए इंद्रिय स्वामी देवताओं की है। मन भी इसी सृष्टि के अन्तर्गत है।
6. छठी सृष्टि अविद्या की है, इसमें तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह और महामोह- ये पाँच गाँठें हैं। यह जीवों की बुद्धि का आवरण और विक्षेप करने वाली है।

ये छः प्राकृत सृष्टियाँ हैं-

7. सातवीं प्रधान वैकृत सृष्टि छः प्रकार के स्थावर वृक्षों की होती है। वनस्पति, औषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुम। इनका संचार नीचे (जड़) से ऊपर की ओर होता है।

8. आठवीं सृष्टि तिर्यग् योनियों (पशु-पक्षियों) की है। यह अठ्ठाईस प्रकार की मानी जाती है।

9. नौवीं सृष्टि मनुष्यों की है। यह एक ही प्रकार की है।

ये तीनों प्रकार की सृष्टि वैकृत सृष्टि है-

10. इनके अतिरिक्त सनत्कुमार आदि ऋषियों का जो कौमार सर्ग है, वह प्राकृत -वैकृत दोनों प्रकार का है।

उपरोक्त नौ प्रकार की सृष्टि ही नौ प्रकार के सर्ग कहलाते हैं।

सृष्टि का विस्तार-

सबसे पहले ब्रह्मा ने अविद्या (अज्ञान) की पाँच वृत्तियाँ रचीं। उसके बाद सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार- ये चार निवृत्ति परायण ऊर्ध्वरेता मुनि उत्पन्न किये। इनके बाद उनके क्रोध से रुद्र उत्पन्न हुए। इसके बाद उनके दस पुत्र उत्पन्न हुए- मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद। इनसे लोक की बहुत वृद्धि हुई। फिर उनसे धर्म, अधर्म, मृत्यु, काम, क्रोध, लोभ, देवी सरस्वती, समुद्र, निऋति तथा कर्दम की उत्पत्ति हुई। इस तरह यह सारा जगत सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी के शरीर और मन से उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजी के चारों मुखों से चार वेद प्रकट हुए। इनके सिवाय उपवेद, न्यायशास्त्र, होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा- इन चार ऋत्विजों के कर्म, यज्ञों का विस्तार, धर्म के चार चरण और चारों आश्रम और उनकी वृत्तियाँ- ये सब भी ब्रह्माजी के मुखों से ही उत्पन्न हुए। चारों विद्याऐं, व्याहृतियाँ, ॐकार, सातों छंद, सातों स्वर तथा सभी क, ख, ग, घ वर्गादि वर्ण उत्पन्न हुए।

अनेक प्रकार की सृष्टि करने के बाद भी सृष्टि का विस्तार नहीं हो पा रहा था। ब्रह्माजी इस प्रकार विधाता के विषय में विचार कर रहे थे, उसी समय अकस्मात् उनके शरीर के दो भाग हो गये। उन दोनों भागों से स्त्री-पुरुष का जोड़ा प्रकट हुआ। उनमें जो पुरुष या वह सार्वभौम सम्राट स्वायम्भुव मनु हुए और जो स्त्री थी, वह उनकी महारानी शतरूपा हुई। तब से मिथुन धर्म (स्त्री-

पुरुष-संभोग) से प्रजा की वृद्धि होने लगी। महाराज स्वायम्भुव मनु ने शतरूपा से पाँच सन्तानें उत्पन्न कीं, उनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र थे तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति तीन कन्याएँ थीं। मनु ने आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से किया, मझली कन्या देवहूति कर्दम जी को दी और प्रसूति दक्ष प्रजापति को दी। इन तीनों कन्याओं की संतान से सारा संसार भर गया। उत्तानपाद से ध्रुव जैसे भगवद्भक्त प्रकट हुए और इनकी देवहूति नामक कन्या से स्वयं भगवान् ने कपिल रूप में अवतार ग्रहण किया।

महाभारत तथा हरिवंश पुराण के अनुसार ब्रह्माजी के मानस पुत्र सप्तर्षि हुए। सप्तर्षियों के द्वारा ही सृष्टि का विस्तार हुआ। मरीचि के पुत्र कश्यप थे और कश्यप से ही यह सारी प्रजा उत्पन्न हुई है। अंगिरा के तीन पुत्र हुए- बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त। अत्रि के बहुत से पुत्र हुए। पुलस्त्य के राक्षस, वानर, किन्नर और यक्ष हुए। पुलह के शलभ, सिंह, किंपुरुष, व्याघ्र और ईहामृग (भेडिया) जाति के पुत्र हुए। क्रतु के बालखिल्य हुए। सातवें पुत्र स्थाणु के परम तेजस्वी ग्यारह रुद्र हुए। ब्रह्माजी के दायें अंगूठे से दक्ष और बायें से उनकी पत्नी का जन्म हुआ।

टिप्पणी- अन्य स्थान पर चन्द्रमा के अंश से दस प्रचेताओं के द्वारा मारिषा के गर्भ से महातेजस्वी दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए।

दक्ष ने पहले ऋषि, देवता, गंधर्व, असुर, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच, पशु-पक्षी और सर्पों की मानसी सृष्टि रची अर्थात् इनको अपने संकल्पमात्र से ही उत्पन्न कर दिया लेकिन सृष्टि में वृद्धि नहीं हुई। तब उसने वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी से विवाह किया तथा उसने मैथुन सृष्टि द्वारा हजारों पुत्र उत्पन्न किये। उन पुत्रों को नारद ने आत्मज्ञानी बना दिया। अपने पुत्रों को नष्ट हुआ जानकर दक्ष प्रजापति ने अपनी पत्नी से साठ कन्याओं को जन्म दिया। उन कन्याओं को सृष्टि करने के उद्देश्य से धर्म को दस, कश्यप को तेरह, चन्द्रमा को सत्ताईस (27 नक्षत्र कहते हैं), अरिष्टेनमि को चार, भृगुपुत्र को दो, अंगिरा को दो और विद्वान कृशाश्व ऋषि को दो कन्याएँ दी। बृहस्पति की बहिन का नाम ब्रह्मचारिणी था, वह प्रभास नाम वाले आठवें वसु की पत्नी बन गयी। उसके गर्भ से विश्वकर्मा प्रजापति उत्पन्न हुए। इसी प्रकार सृष्टि का क्रम आगे बढ़ता रहा।

सप्तर्षि-

प्रत्येक मन्वन्तर में धर्म की व्यवस्था तथा लोकरक्षा के लिए जो सात ऋषि आविर्भूत होते हैं उन्हें ही सप्तर्षि कहते हैं। उन्हीं की तपस्या, शक्ति और ज्ञान के प्रभाव से संसार सुख और शांति में रहता है। मन्वन्तर बीतने के बाद उनमें चार महर्षि अपना कार्य पूरा करके रोग-शोक से रहित ब्रह्मलोक में चले जाते हैं। तत्पश्चात् दूसरे चार तपस्वी आकर उनके स्थान की पूर्ति करते हैं। भूत और वर्तमान काल के सप्तर्षिगण इसी क्रम में होते आये हैं। विभिन्न पुराणों के अनुसार स्वायम्भुव मन्वन्तर में और कईयों के मत से वैवस्वत मन्वन्तर में भी निम्नलिखित सात ऋषि (सप्तर्षि) होते हैं। ये सर्वदा ध्रुव की परिक्रमा करते हुए जगत का धारण-पोषण करते हैं- मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ। लेकिन वर्तमान में वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षि- अत्रि, कश्यप, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, भरद्वाज, जमदग्नि अधिक प्रामाणित हैं। बाद में अगस्त्य का नाम इनमें और जुड़ गया है।

अब तक हुए प्रजापतियों के नाम-

1. कर्दम, 2. विकृत, 3. शेष, 4. संश्रय, 5. बहुपुत्र, 6. स्थाणु, 7. मरीचि, 8. अत्रि, 9. क्रतु, 10. पुलस्त्य, 11. अंगिरा, 12. प्रचेता (वरुण), 13. पुलह, 14. दक्ष, 15. विवस्वान, 16. अरिष्टनेमि, 17. कश्यप (अन्तिम)।

नौ ब्रह्मा-

प्रजापति ब्रह्मा की पूर्व उत्पन्न प्रजा पुत्र-पौत्रादि क्रम से आगे नहीं बढी तब उन्होंने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि, वशिष्ठ- इन नौ अपने ही समान अन्य मानस-पुत्रों की सृष्टि की। पुराण में ये नौ ब्रह्मा माने गये हैं। फिर क्रमशः ख्याति, भूति, सम्भूति, क्षमा, प्रीति, सन्नति, ऊर्जा, अनसूया तथा प्रसूति इन नौ कन्याओं को उत्पन्न कर उन्हें क्रमशः इन महात्माओं को सौंप दिया।

बारह आदित्य-

(श्रीमद्भागवत)- विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इंद्र, वामन।

(महाभारत)- धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान, पूषा, सविता, अंशु, भग, त्वष्टा, विष्णु।

आठ वसु-

द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वस, विश्वावसु

अट्ठाईस व्यास-

इस समय वैवस्वत मन्वन्तर की अट्ठाईसवीं चतुर्युगी चल रही है। प्रत्येक चतुर्युगी के द्वापर युग में श्रीनारायण भगवान् व्यास रूप में प्रकट होते हैं जो वेद का विभाजन करते हैं। अब तक अट्ठाईस व्यास हो चुके हैं जिनके नाम ये हैं- 1. स्वयं ब्रह्माजी, 2. प्रजापति, 3. शुक्राचार्य, 4. वृहस्पति, 5. सूर्य, 6. मृत्यु, 7. इन्द्र, 8. वशिष्ठ, 9. सारस्वत, 10. त्रिधामा, 11. त्रिशिख, 12. भरद्वाज, 13. अन्तरिक्ष, 14. वर्णी, 15. त्रय्यारुण, 16. धनंजय, 17. क्रतुंजय, 18. जय, 19. भरद्वाज, 20. गौतम, 21. हर्यात्मा, 22. वाजश्रवा मुनि, 23. तुणाबिन्दु, 24. ऋक्ष (वाल्मीकि), 25. शक्ति, 26. पराशर, 27. जातुकर्ण, 28. कृष्णद्वैपायन।

- विष्णुपुराण

श्रीमद्भागवत के अनुसार- 1. इस वर्तमान मन्वन्तर के प्रारम्भिक द्वापर में स्वायम्भुव मनु को व्यास माना गया है। 2. दूसरे द्वापर में प्रजापति वेदव्यास हुए। 3. तीसरे में शुक्राचार्य। 4. चौथे में वृहस्पति व्यास हुए। 5. पाँचवे में सूर्य। 6. छठे में मृत्यु, 7. सातवें में इन्द्र। 8. आठवें में वशिष्ठ। 9. नौवे में सारस्वत। 10. दसवें में त्रिधामा। 11. ग्यारहवें में त्रिविष। 12. बारहवें में शततेजा। 13. तेरहवें में धर्म। 14. चौछहवें में तरक्षु। 15. पन्द्रहवें में त्रारुणि। 16. सोलहवें में धनंजय। 17. सत्रहवें में कृतंजय। 18. अठारहवें में ऋतंजय। 19. उन्नीसवें में भरद्वाज। 20. बीसवें में गौतम। 21. इक्कीसवें में राजश्रवा। 22. बाईसवें में श्रेष्ठ शुष्मायण। 23. तेईसवें में तृणाबिन्दु। 24. चौबीसवें में वाल्मीकि। 25. पच्चीसवें में शक्ति। 26. छब्बीसवें में पराशर। 27. सत्ताइसवें में महामुनि जातुकर्ण। 28. इस अट्ठाईसवे द्वापर में पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास हुए। वे ही सभी वेदों और पुराणों के प्रदर्शक हैं।

चौबीस अवतार-

भगवान् अनन्त हैं। वे सर्वशक्तिमान् करुणामय परमात्मा अपना कोई प्रयोजन न रहने पर भी साधु रक्षा, धर्म संरक्षण एवं जीवों पर अनुग्रह करने के लिए शरीर-धारण कर लिया करते हैं। उनके अवतरण और उनके अवतार चरित्र भी अनन्त हैं। श्रीमद्भागवत आदि पुराण ग्रंथों में मुख्यतया चौबीस

अवतारों का विशेष वर्णन है, परन्तु उनमें भी क्रम भेद है। अवतारों के अवान्तर भेद निम्न है- 1. पुरुषावतार, 2. गुणावतार, 3. कल्पावतार, 4. युगावतार, 5. पूर्णावतार, 6. अंशावतार, 7. कलावतार, 8. आवेशावतार।

दशावतार-

1. मत्स्य, 2. कूर्म (कच्छप), 3. वराह, 4. नृसिंह, 5. वामन, 6. परशुराम, 7. श्रीराम, 8. बलराम, 9. भगवान् बुद्ध, 10. कल्कि।

24 अवतार-

1. श्रीसनकादि, 2. भगवान वराह, 3. देवर्षि नारद, 4. भगवान नर-नारायण, 5. भगवान् कपिलमुनि, 6. भगवान् दत्तात्रेय, 7. भगवान् यज्ञ, 8. भगवान् ऋषभदेव, 9. आदिराज पृथु, 10. भगवान् मत्स्य, 11. कूर्म, 12. धन्वन्तरि, 13. श्रीमोहिनी, 14. नृसिंह, 15. वामन, 16. हयग्रीव, 17. श्रीहरि (क- भक्त ध्रुव पर कृपा) ख- श्रीहरि (गजेन्द्र उद्धार), 18. परशुराम, 19. हंस, 20. व्यास, 21. श्रीराम, 22. क- बलराम, ख- श्रीकृष्ण, 23. बुद्ध, 24. कल्कि।

श्रीमद्भागवत में भगवान् के अवतारों का वर्णन इस प्रकार है- प्रथम- कौमार सर्ग में सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, द्वितीय- वाराह (शूकर), तृतीय- देवर्षि नारद (सात्वत तंत्र अथवा नारद पांचरात्र का उपदेश), चतुर्थ- नर-नारायण, पाँचवाँ- कपिल (सिद्धों के स्वामी, सांख्य शास्त्र प्रणेता), छठा- दत्तात्रेय, सातवाँ- यज्ञ भगवान्, आठवाँ- ऋषभदेव, नौवां- राजा पृथु, दसवाँ- मत्स्य (चाक्षुष मन्वन्तर में), ग्यारहवाँ- कच्छप (समुद्र मंथन के समय), बारहवाँ- धन्वन्तरि, तेरहवाँ- मोहिनी (समुद्र मंथन के समय), चौदहवाँ- नृसिंह, पन्द्रहवाँ- वामन, सोलहवाँ- परशुराम, सत्रहवाँ- व्यास, अठारहवाँ- श्रीराम, उन्नीस और बीसवाँ- बलराम और श्रीकृष्ण, इक्कीसवाँ- बुद्ध (कलियुग आने पर), बाईसवाँ- कल्कि (भविष्य में) इनक अतिरिक्त कुछ विद्वानों के अनुसार दो अवतार- हंस और हयग्रीव हैं।

टिप्पणी- बुद्ध अवतार के सम्बन्ध में धर्म कीर्ति महाराज का कहना है कि "बुद्ध महामानव थे, विष्णु के अवतार नहीं"। लेखक भी इस बात से पूर्णतः सहमत है। अवतारवाद के इस सिद्धान्त का आश्रय लेकर कुछ लोग बुद्ध को विष्णु का नौवाँ अवतार बताते हैं। जब भारत में बौद्ध धर्म का बोलवाला था, उस समय पुराणों की रचना करने वाले (श्रीकृष्ण के बाद से बौद्धकाल तक देश में घोर-अराजकता रही, जिसमें भारत का प्राचीन साहित्य भी अधिकांश लुप्त हो

गया था, उस काल में ब्राह्मण-ग्रंथों की रचना अधिक हुई थी) बुद्ध की उपेक्षा नहीं कर सके। उस समय के धार्मिक एवं सामाजिक वातावरण ने पुराणों के निर्माताओं को बुद्ध को विष्णु का नौवाँ अवतार मानने के लिए बाध्य कर दिया।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि कुछ ही पुराण बुद्ध को विष्णु अवतार मानते हैं, बाकी सब दत्तात्रेय को नौवां अवतार स्वीकार करते हैं। विष्णु के नौवें अवतार की अनसुलझी मान्यता एक विरोधाभास उत्पन्न करती है। स्वामी विवेकानंद बुद्ध के प्रति अपार श्रद्धा रखते थे, इसलिए उन्होंने बुद्ध को अवतार ही नहीं बल्कि ईश्वर तक कह डाला, जबकि ईश्वर और अवतार में जमीन-आसमान का अन्तर होता है। स्वामी विवेकानंद का बुद्ध को ईश्वर कहना इतिहास एवं बौद्ध धर्म की मान्यताओं के विरुद्ध है।

महर्षि दयानंद ने ईश्वर की सटीक परिभाषा की है- "ईश्वर सच्चिदानंद-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, अजन्मा, न्यायकारी, दयालु, अनंत, निर्विकार, अनादि, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है।" बुद्ध मनुष्य होने के कारण पांच भौतिक तत्वों- पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, वायु से बने थे। ईश्वर के लिए बताये गये गुणों में से बुद्ध पर केवल न्यायकारी, दयालु, निर्विकार, अभय व पवित्र जैसे विशेषण ही लागू होते हैं लेकिन वे निराकार, अजन्मा, अनादि, अनन्त, अजर, अमर, नित्य एवं सृष्टिकर्ता नहीं थे। अतः बुद्ध को ईश्वर कहना युक्तिसंगत नहीं होगा।

जिस प्रकार कृष्ण ने अर्जुन को अपना विराट् स्वरूप दिखाया था, वैसा कोई करिश्मा बुद्ध ने कभी भी अपने शिष्यों को नहीं दिखाया था। उन्होंने कभी खुद को ईश्वर का पैगाम लाने वाला पैगम्बर या खुदा का बेटा नहीं बताया। इतना ही नहीं बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को भी करिश्मे व जादू-टोने दिखाकर लोगों को भ्रमित करने से मना किया था। बुद्ध के उपदेश प्रज्ञा, शील, समाधि पर निर्भर करते हैं, जिनका आधार विशुद्ध वैज्ञानिक है। बुद्ध ने अपने 'धम्म-शासन' में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कभी ईश्वरीय होने का दावा नहीं किया था। उनका धर्म ईश्वरीय उपदेश नहीं, बल्कि मनुष्यों के हित व सुख के लिए मनुष्य द्वारा आविष्कृत धर्म था। यह अपौरुषेय नहीं है। जो धर्म अवतारवाद के सिद्धान्त को मानते हैं, वे परा प्रकृति (ब्रह्म आदि) में विश्वास करते हैं। लेकिन बुद्ध अवतारवाद पर विश्वास नहीं करते थे, इसलिए उन्होंने परा-प्रकृति में विश्वास को अधर्म कहा था। उदाहरण के लिए जगत में जब कोई घटना घटती है, तो परा-प्रकृति पर विश्वास करने वाले उसे हरि-इच्छा कहते हैं, लेकिन बुद्ध

के अनुसार इन घटनाओं के समुचित प्राकृतिक कारण होते हैं। ये सभी घटनाएँ कारण–कार्य के नियम से घटती रहती है। आज विश्व के जितने भी प्रसिद्ध वैज्ञानिक व महान दार्शनिक हैं, वे बुद्ध को विष्णु का अवतार नहीं, बल्कि महामानव मानते हैं। चूँकि वे मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ, पुरुषोत्तम एवं महानतम प्रज्ञावान, शीलवान, मैत्रीवान एवं करुणा के सागर थे। इसलिए उन्हें महामानव कहा जाता है। श्रीलंका, म्यामार, थाईलैंड, कंबोडिया, जापान, कोरिया, वियतनाम, मंगोलिया, चीन, ताइवान, तिब्बत व भूटान आदि बौद्ध देशों के लोग बुद्ध को ईश्वर एवं विष्णु का अवतार नहीं मानते।

तेतीस कोटि देवता–

(तेतीस मुख्य देवता – कोटि का अर्थ प्रकार से है, करोड़ से नहीं) 8 वसु+11 रुद्र+12 आदित्य+1 इन्द्र+1 प्रजापति = 33।

ग्यारह रुद्र–

1. मृगव्याध, 2. सर्प, 3. निऋति, 4. अजैकपाद, 5. अहिर्बुध्न्य, 6. पिनाकी, 7. दहन, 8. ईश्वर, 9. कपाली, 10. स्थाणु, 11. भव. –(महाभारत)

1. प्राण, 2. अपान, 3. व्यान, 4. समान, 5. उदान, 6. नाग, 7. कूर्म, 8. कृकल, 9. देवदत्त, 10. धनंजय, 11. आत्मा।

श्रीमद्भागवत के अनुसार– 1. मन्यु, 2. मनु, 3. महिनस, 4. महान, 5. शिव, 6. उग्ररेता, 7. ऋतध्वज, 8. भव, 9. काल, 10. वामदेव, 11. धृतवृत।

ग्यारह रुद्राणी– धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत्, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा, दीक्षा।

सत्ताईस नक्षत्र (चन्द्रमा की पत्नियाँ)– 1. अश्विनी, 2. भरिणी, 3. कृतिका, 4. रोहिणी, 5. मृगशिरा, 6. आर्द्रा, 7. पुनर्वसु, 8. पुष्य, 9. अश्लेषा, 10. मघा, 11. पूर्वा फाल्गुनी, 12. उत्तराफाल्गुनी, 13. हस्त, 14. चित्रा, 15. स्वाति, 16. विशाखा, 17. अनुराधा, 18. ज्येष्ठा, 19. मूल, 20. पूर्वाषाढा, 21. उत्तराषाढा, 22. श्रवण, 23. धनिष्ठा, 24. शतभिषा, 25. पूर्वा भाद्रपद, 26. उत्तराभाद्रपद, 27. रेवती।

पाँच महाभूत–

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश।

पाँच तन्मात्राएँ-

शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध।

(सृष्टि के आदि में) भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक। ये सातों लोक अण्ड से उत्पन्न है।

बारह ब्रह्मवादी मुनि-

पुलस्त्य, पुलह, अत्रि, वशिष्ठ, अंगिरा, भृगु, भारद्वाज, गौतम, कश्यप, क्रतु, जमदग्नि, कौशिक (विश्वामित्र)।

बारह ग्रामणी (अग्रणी) नेता-

रथकृत, रथौजा, रथचित्र, सुबाहुक, रथस्वन, वरुण, सुषेण, सेनजित, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, रथजित् और सत्यजित।

12 श्रेष्ठ राक्षस-

हेति, प्रहेति, पौरुषेय, वघ, सर्प, व्याघ्र, आप, वात, विद्युत, दिवाकर, ब्रह्मोपेत, यज्ञोपेत।

12 श्रेष्ठ गन्धर्व-

वासुकी, कङ्कवीर, तक्षक, सर्पपुङ्गव, एलापत्र, कर्कोटक, शंखपाल, ऐरावत, धनंजय, महापद्म, कम्बल, अश्वतर।

12 श्रेष्ठ नाग-

तुम्बरू, नारद, हाहा, हूहू, विश्वावसु, उग्रसेन, वसुरुचि, अर्वावसु, चित्रसेन, उर्णायु, धृतराष्ट्र और सूर्यवर्चा।

12 प्रमुख अप्सरा-

क्रतुस्थला, पुंजिकस्थला, मेनका, सहजन्या, प्रम्लोचा, घृताची, अनुम्लोचा, विश्वाची, उर्वशी, पूर्वचित्ति, अन्या, तिलोत्तमा।

सात पाताल (महालोक)-

महातल, रसातल, तलातल, सुतल, नितल (अतल), वितल, तल (पाताल)।

सात महासागर-

सातों महाद्वीप सात समुद्रों से घिरे हैं- क्षारोदक, इक्षुरसोदक, सुरोदक, घृतोदक, दध्योदक, क्षीरोदक, स्वादूदक।

12 अरण्य-

दण्डकारण्य, विन्ध्यारण्य, पुष्करारण्य, नेमिषारण्य, कुरुजांगल, उत्पलावर्तकारण्य, जम्बुकारण्य, अर्बुदारण्य, हिमबदरण्य, धर्मारण्य, वेदारण्य, सैन्धवारण्य।

गायत्री के 24 देव-

1. गणेश, 2. नरसिंह, 3. विष्णु, 4. शिव, 5. श्रीकृष्ण, 6. राधा, 7. लक्ष्मी, 8. अग्नि, 9. इन्द्र, 10. सरस्वती, 11. दुर्गा, 12. हनुमान, 13. पृथ्वी, 14. सूर्य, 15. श्रीराम, 16. सीता, 17. चन्द्र, 18. यम, 19. ब्रह्मा, 20. वरुण, 21. नारायण, 22. हयग्रीव, 23. हंस, 24. तुलसी।

24 शक्तियाँ-

1. वामदेव, 2. सत्या, 3. प्रभा, 4. विश्वा, 5. भद्रविलासिनी, 6. प्रभावती, 7. शांता, 8. कांता, 9. दुर्गा, 10. सरस्वती, 11. विद्रुमा, 12. विशालशा, 13. व्यापिनी, 14. विमला, 15. तमोपहारिणी, 16. सूक्ष्मा, 17. विश्वयोनि, 18. जया, 19. वसा, 20. पद्मालया, 21. परा, 22. शोभा, 23. मुद्रा, 24. त्रिपदा।

24 मात्रिकाएँ-

1. चन्द्रकेश्वरि, 2. अजतबला, 3. दुरितारि, 4. कालिका, 5. महाकाली, 6. श्यामा, 7. शांता, 8. ज्वाला, 9. तारिका, 10. असोका, 11. श्रीवत्सा, 12. चंडी, 13. विजया, 14. अंकुशा, 15. पन्नगा, 16. निर्वाच्छी, 17. बेला, 18. धारिणी, 19. प्रिया, 20. नरदत्ता, 21. गंधारी, 22. अंबिका, 23. पद्मावती, 24. सिद्धायिका।

24 सिद्धियाँ-

1. आरोग्य, 2. आयुष्य, 3. तुष्टि, 4. पुष्टि, 5. शान्ति, 6. वैभव, 7. ऐश्वर्य, 8. कीर्ति, 9. अनुग्रह, 10. श्रेय, 11. सौभाग्य, 12. ओजस्व, 13. तेजस्व, 14. गृहलक्ष्मी, 15. सुसंतति, 16. विजय, 17. विद्या, 18. बुद्धि, 19. प्रतिभा, 20. सिद्धि, 21. रिद्धि, 22. संगति, 23. स्वर्ग, 24. मुक्ति।

24 कलाएँ-

1. तापिनी, 2. सफला, 3. विश्वा, 4. तुष्टा, 5. वरदा, 6. रेवती, 7. सूक्ष्मा, 8. ज्ञाना, 9. भर्गा, 10. गोमती, 11. दर्विका, 12. धरा, 13. सिंहिका, 14. ध्येया, 15. मर्यादा, 16. स्फुरा, 17. बुद्धि, 18. योगमाया, 19. योगात्तरा, 20. धरित्री, 21. प्रभवा, 22. कुला, 23. दृश्या, 24. ब्राह्मी।

24 देवता-

1. अग्नि, 2. प्रजापति, 3. चन्द्रमा, 4. ईशान, 5. सावित्री, 6. आदित्य, 7. वृहस्पति, 8. मित्रावरुण, 9. भग, 10. ईश्वर, 11. गणेश, 12. त्वष्टा, 13. पूषा, 14. इन्द्राग्नि, 15. वायु, 16. वामदेव, 17. मैत्रावरुण, 18. विश्वदेव, 19. मातृक, 20. विष्णु, 21. वसुगण, 22. रुद्रगण, 23. अश्विनीकुमार, 24. कुबेर।

10 अनिष्ट-धर्म या अवस्थाएँ-

मद, प्रमाद, उन्माद, श्रम, क्रोध, भूख, उतावली, भय, लोभ और काम (वासना) - इन दस दशाओं में पड़े हुए मनुष्य पाप कर बैठते हैं।

पच्चीस तत्व- (कपिल के सांख्य मतानुसार 25 तत्त्व)-

नौ तत्व- 1. पुरुष, 2. प्रकृति, 3. महत्तत्व, 4. अहंकार, 5. (पाँच महाभूत) आकाश, 6. वायु, 7. तेज (अग्नि), 8. जल, 9. पृथ्वी।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ- 1. श्रोत (कर्ण), 2. त्वचा, 3. चक्षु (नेत्र), 4. नासिका, 5. रसना (जिह्वा)।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ- 1. वाक् (मुख), 2. पाणि (हाथ), 3. पाद (पैर), 4. वायु (गुदा), 5. उपस्थ (जननेन्द्रिय)।

मन- मन कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रिय दोनों है। इसलिए इन्द्रियों की संख्या ग्यारह मानी गयी है।

पाँच तन्मात्राएँ- 1. शब्द, 2. स्पर्श, 3. रूप, 4. गंध, 5. रस।

तीन गुण-

1. सत्, 2. रज, 3. तम।

पच्चीस तत्व (कपिल के सांख्यमतानुसार)-

नौ तत्व- 1. पुरुष, 2. प्रकृति, 3. महत्तत्व, 4. अहंकार, 5. (पाँच महाभत) आकाश, 6. वायु, 7. तेज, अग्नि, 8. जल, 9. पृथ्वी।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ- 1. श्रोत (कर्ण), 2. त्वचा, 3. चक्षु (नेत्र), 4. नासिका, 5. रसना (जिह्वा)।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ- 1. वाक् (मुख), 2. पाणि (हाथ), 3. पाद (पैर), 4. पायु (गुदा), 5. उपस्थ (जननेन्द्रिय)

मन- मन कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रिय दोनों है। इसलिए इन्द्रियों की संख्या ग्यारह मानी गयी है।

पाँच तन्मात्राएँ- 1. शब्द, 2. स्पर्श, 3. रूप, 4. गन्ध, 5. रस।

तीन गुण- 1. सत्, 2. रज, 3. तम

तीन शरीर या लिंग-

1. स्थूल, 2. सूक्ष्म, 3. कारण।

पंचकोश- (पातंजल योग प्रदीप)-

1. अन्नमयकोश, 2. प्राणमयकोश, 3. मनोमयकोश, 4. विज्ञानमय कोश, 5. आनंदमयकोश।

दस प्राण-

पंच प्राण- 1. प्राण, 2. अपान, 3. समान, 4. उदान, 5. व्यान।

पंच लघुप्राण- 1. नाग, 2. कूर्म, 3. कृकल, 4. देवदत्त, 5. घनंजय।

पंच-चक्र-

1. मूलाधार, 2. स्वाधिष्ठान, 3. मणिपुर, 4. अनाहत, 5. विशुद्ध।

30 कल्प-

1. श्वेतकल्प, 2. नीललोहित, 3. वामदेव, 4. रथन्तर, 5. रौरव, 6. प्राणदेव, 7. बृहतकल्प, 8. कन्दर्प, 9. सद्यःकल्प, 10. ईशान, 11. तम, 12. सारस्वत, 13. उदान, 14. गारुड, 15. कौर्म, 16. नरसिंह, 17. समान, 18. आग्नेय, 19. सोम, 20. मानव, 21. पुभान, 22. वैकुण्ठ, 23. लक्ष्मी, 24.

सावित्री, 25. घोर, 26. वाराह, 27. वैराज, 28. गौरी, 29. माहेश्वर, 30. पितृकल्प।

टिप्पणी- इस त्रिलोकी में भूपिण्ड से सूर्यपिण्ड तक फैले हुए मण्डल की आयु 72 हजार कल्प है।

जीवों की चौदह श्रेणियाँ (जातियाँ) योगवाशिष्ट-

1. इदम्प्रथमता, 2. गुण-पीवरी, 3. अधमसत्वा, 4. अत्यन्त-तामसी, 5. राजसी, 6. राजस-सात्विकी, 7. राजस-राजसी, 8. राजस तामसी, 9. राजसात्यन्ततामसी, 10. तामसी, 11. तामससत्वा, 12. तमोराजसरूपिणी, 13. तामस-तामसी, 14. अत्यन्त तामसी।

जम्बूद्वीप के नौ खण्ड (नौ वर्ष)-

(कूर्मपुराण तथा मार्कण्डेयपुराण)- आग्नीध्र के नौ पुत्रों के राज्य- 1. नाभि को हिमवर्ष, 2. किंपुरुष को हेमकूट वर्ष, 3. हरि को नैषधवर्ष, 4. इलावृत को इलावृत वर्ष, 5. रम्य को नीलांचल वर्ष, 6. हिरण्यवान् को श्वेतवर्ष, 7. कुरु को उत्तर कुरुवर्ष, 8. भद्राश्व को भद्राश्व वर्ष, 9. केतुमाल को गन्धमादनवर्ष।

13 लोकमाताएँ-

(श्रीमद्भागवत)-(कश्यप पत्नियाँ-इन्हीं से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है)- 1. अदिति, 2. दिति, 3. दनु, 4. काष्ठा, 5. अरिष्टा, 6. सुरसा, 7. इला, 8. मुनि, 9. ताम्रा, 10. क्रोधवशा, 11. सुरभि, 12. सरमा, 13. तिमि।

अज्ञान की सात भूमिकाएँ-

1. बीज-जाग्रत, 2. जाग्रत, 3. महाजाग्रत, 4. जाग्रत-स्वप्न, 5. स्वप्न, 6. स्वप्नजाग्रत, 7. सुषुप्ति।

ज्ञान की सात भूमिकाएँ-

1. शुभेच्छा, 2. विचारणा, 3. तनुमानसा, 4. सत्वापत्ति, 5. असंसक्ति, 6. पदार्थाभावना, 7. तुर्यगा।

तीन मुख्य तत्व-

(पातंजलयोग प्रदीप)- चेतनतत्व-आत्मा, पुरुष (जीव), 2. जड़तत्व-प्रकृति, 3. चेतनतत्व-पुरुष विशेष (ईश्वर-ब्रह्म)।

चार वेद-

1. ऋग्वेद, 2. यजुर्वेद, 3. सामवेद, 4. अथर्ववेद।

चार उपवेद-

1. ऋग्वेद-अर्थवेद, 2. यजुर्वेद-धनुर्वेद, 3. सामवेद-गान्धर्ववेद, 4. अथर्ववेद-आयुर्वेद।

षड्दर्शन-

1. मीमांसा, 2. वेदान्त, 3. न्याय, 4. वैशेषिक, 5. सांख्य, 6. योग।

वेदों के छः अंग-

1. शिक्षा, 2. कल्प, 3. व्याकरण, 4. निरुक्त, 5. छन्द, 6. ज्योतिष।

परमात्मा के तीन रूप-

1. विराट (चेतन तत्व+स्थूल जगत) 2. हिरण्यगर्भ (चेतनतत्व+सूक्ष्म जगत) 3. ईश्वर (चेतनतत्व+कारण जगत)।

नौ द्रव्य-

पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु, काल, दिशा, आत्मा और मन।

24 गुण- (कणाद के अनुसार)-

1. रूप, 2. रस, 3. गन्ध, 4. स्पर्श, 5. संख्या, 6. परिमाण, 7. पृथकत्व, 8. संयोग, 9. विभाग, 10. परत्व, 11. अपरत्व, 12. गुरुत्व, 13. द्रवत्व, 14. स्नेह, 15. शब्द, 16. बुद्धि, 17. सुख, 18. दुख, 19. इच्छा, 20. द्वेष, 21. प्रयत्न, 22. धर्म, 23. अधर्म, 24. संस्कार।

सृष्टि के तीन अवान्तर भेद-

1. अध्यात्म, 2 अधिभूत, 3. अधिदैव।

बुद्धि की पाँच-वृत्तियाँ-

1. प्रमाण, 2. विपर्यय, 3. विकल्प, 4. निद्रा, 5. स्मृति।

पाँच अविद्या-

1. अविद्या, 2. अस्मिता, 3. राग, 4. द्वेष, 5. अभिनिवेश।

आठ सिद्धियाँ-

1. ऊह सिद्धि, 2. शब्द सिद्धि, 3. अध्ययन सिद्धि, 4. सुहृत्प्राप्ति, 5. दान सिद्धि, 6. आध्यात्मिक दु:ख-हान, 7. आधिभौतिक दु:ख-हान, 8. आधिदैविक दु:ख-हान।

दस मूल-धर्म-

1. अस्तित्व, 2. संयोग, 3. वियोग, 4. शेषवृत्तित्व, 5. एकत्व, 6. अर्थवत्व, 7. परार्थ्य, 8. अन्यता, 9. अकर्तत्व, 10. बहुत्व।

चौदह प्रकार की प्राणि-सृष्टि-

ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, दैव, गान्धर्व, पित्र्य, विदेह और प्रकृतिलय- यह आठ प्रकार की दैवी सृष्टि (दैव सर्ग) है, जो भिन्न-भिन्न कर्मोपासना का फल है। इसके बाद नौंवा मानुष- सर्ग अर्थात् मानुषी-सृष्टि है और अन्त में मनुष्य से नीचे पशु, पक्षी, सरीसृप अर्थात् रेंगने वाले जन्तु, कीट और स्थावर- इन पाँच का तिर्यग-सर्ग है।

तीन प्रकार का बन्धन तथा मोक्ष-

1. वैकृतिक (वैकारिक), 2. दाक्षिणिक, 3. प्राकृतिक

योग के आठ अंग-

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

चित्त की नौ अवस्थाएँ-

1. जाग्रत, 2. स्वप्नावस्था, 3. सुषुप्ति, 4. प्रलयावस्था, 5. समाधि-प्रारम्भ अवस्था, 6. सम्प्रज्ञात समाधि (एकाग्रता), 7. विवेकख्याति, 8. असम्प्रज्ञात-समाधि (स्वरूपावस्थिति), 9. प्रतिप्रसव।

छः पदार्थ-

कणाद के अनुसार भावरूप पदार्थ छः हैं- 1. द्रव्य, 2. गुण, 3. कर्म, 4. सामान्य (जाति), 5. विशेष, 6. समवाय।

चौदह विद्याएँ-

(विष्णुपुराण)- छः वेदाङ्ग, चार वेद, मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र।

स्वर्ग के सात द्वार-

(महाभारत)- दान, तप, शम, दम, लज्जा, सरलता, सब पर दया।

पाँच कर्म-

1. उत्क्षेपण (उछालना), 2. अवक्षेपण (फेंकना), 3. आकुंचन (सिकोडना), 4. प्रसारण (फैलाना), 5. गमन (चलना)।

चार प्रकार का अभाव-

1. प्रागभाव, 2. प्रध्वंसाभाव, 3. अन्योन्याभाव, 4. अत्यन्ताभाव।

पाँच यम-

1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अस्तेय, 4. ब्रह्मचर्य, 5. अपरिग्रह।

पाँच नियम-

1. शौच, 2. संतोष, 3. तपस्या, 4. स्वाध्याय, 5. ईश्वर-प्रणिधान।

आठ प्रकार के व्याकरण-

ब्राह्म, ऐन्द्र, याम्य, रौद्र, वायव्य, वारुण, सावित्र्य, वैष्णव।

धर्मशास्त्र-

मनु, विष्णु, यम, अंगिरा, वशिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शंख, लिखित, हारीत तथा अत्रि आदि ऋषियों द्वारा रचित मन्वादि बहुत से धर्मशास्त्र हैं।

सात मोक्षदायिनी पुरियाँ-

1. अयोध्या, 2. मथुरा-वृन्दावन, 3. मायापुरी (हरिद्वार), 4. काशी या वाराणसी, 5. कांची, 6. अवन्तिका (उज्जैन), 7. द्वारका।

चार धाम-

1. बदरीनाथ, 2. जगन्नाथपुरी, 3. रामेश्वरम्, 4. द्वारका।

सात बदरी (बद्री)-

1. आदिबदरी (ब्रजक्षेत्र), 2. ध्यानबदरी, 3. वृद्धबदरी, 4. भविष्यबदरी, 5. योगबदरी, 6. नृसिंहबदरी, 7. प्रधानबदरी (बद्रीनाथ)।

पंच केदार-

1. श्रीकेदारनाथ, 2. श्रीमध्वेश्वर, 3. श्रीतुंगनाथ, 4. श्रीरुद्रनाथ, 5. श्रीकल्पेश्वर।

पंच सरोवर-

1. मानसरोवर (तिब्बत), 2. बिन्दु सरोवर (सिद्धपुर), 3. नारायण सरोवर (कच्छ), 4. पम्पा सरोवर (कर्नाटक), 5. पुष्कर सरोवर (राजस्थान)।

सप्त क्षेत्र-

1. कुरुक्षेत्र (हरियाना), 2. हरिहर क्षेत्र (सोनपुर), 3. प्रभास क्षेत्र (वेरावल गुजरात), 4. भृगु क्षेत्र (भडौच), 5. पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी), 6. नैमिषक्षेत्र (पूर्वी उ.प्र.), 7. गया क्षेत्र (बिहार)।

टिप्पणी- अन्य ग्रन्थ में 6 और 7 के स्थान पर रेणुका क्षेत्र (मथुरा के पास) तथा सूकर क्षेत्र (सोरों) का उल्लेख मिलता है।

चतुर्दश प्रयाग-

	नाम	सरिता-संगम
1.	प्रयागराज	गंगा-यमुना-सरस्वती
2.	देवप्रयाग	अलकनंदा-भागीरथी
3.	रुद्रप्रयाग	अलकनंदा-मंदाकिनी
4.	कर्णप्रयाग	पिण्डरगंगा-अलकनंदा
5.	नंदप्रयाग	अलकनंदा-नंदा
6.	विष्णुप्रयाग	विष्णुगंगा-अलकनंदा

7.	सूर्यप्रयाग	अलसतरंगिणी–मंदाकिनी
8.	इन्द्रप्रयाग	भागीरथी–व्यासगंगा
9.	सोमप्रयाग	सोमनदी–मंदाकिनी
10.	भास्कर प्रयाग	भास्वती–भागीरथी गंगा
11.	हरि प्रयाग	हरि गंगा–भागीरथी
12.	गुप्त प्रयाग	नील गंगा–भागीरथी
13.	श्याम प्रयाग	श्याम गंगा–भागीरथी
14.	केशव प्रयाग	अलकनंदा–सरस्वती

बारह ज्योतिर्लिंग (शिवपुराण)-

1. श्री सोमनाथ- सौराष्ट्र प्रदेश (काठियावाड़-गुजरात) - प्रभास क्षेत्र में।
2. श्री मल्लिकार्जुन- श्री शैल पर (तमिलनाडु में कृष्णा जिले में कृष्णा नदी के तट पर)
3. श्री महाकालेश्वर- उज्जयिनी (उज्जैन)- मालवा प्रदेश में शिप्रा नदी के तट पर (म.प्र.)
4. श्री ओंकारेश्वर अथवा अमलेश्वर- नर्मदा के बीच- मालवा प्रदेश में (म. प्र.)
5. श्री केदारनाथ- हिमाच्छादित केदारखंड में (उत्तराखंड में)
6. श्री भीमशंकर- डाकिनी नामक स्थान में (महाराष्ट्र में पूना के पास भीमा नदी पर)
7. श्री विश्वनाथ (विश्वेश्वर)- वाराणसी-बनारस-काशी में।
8. श्री त्र्यम्बकेश्वर- गौतमी (गोदावरी) के तट पर नासिक जिले में (महाराष्ट्र)
9. श्री वैद्यनाथ- चिताभूमि में (संथाल परगना में जसीडीह के पास, बिहार)
10. श्री नागेश्वर- दारुकावन में (द्वारका के पास गुजरात में)
11. श्री रामेश्वर- सेतुबन्ध पर (तमिलनाडु में)
12. श्री घुश्मेश्वर- शिवालय में (महाराष्ट्र में दौलताबाद के पास)

इक्यावन शक्तिपीठ (तंत्रचूड़ामणि)-

निर्दिष्ट स्थान	अंग या आभूषण	शक्ति	भैरव	वर्तमान स्थान
1. हिंगुला	ब्रह्मरन्ध्र	कोटरी (भैरवी)	भीमलोचन	पाकिस्तान
2. किरीट	किरीट	विमला (भुवनेशी)	संवर्त	पश्चिम बंगाल
3. वृन्दावन	केश कलाप	उमा	भूतेश	वृन्दावन
4. करवीर	तीनों नेत्र	महिषमर्दिनी	क्रोधीश	कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
5. सुगन्धा	नासिका	सुनंदा	त्र्यम्बक	बाँगलादेश
6. करतोया-तट	वामतल्प	अपर्णा	वामन	बाँगलादेश
7. श्रीपर्वत	दक्षिणतल्प	श्रीसुन्दरी	सुंदरानंद	लद्दाख (कश्मीर)
8. वाराणसी	कर्ण कुण्डल	विशालाक्षी	कालभैरव	काशी (बनारस)
9. गोदावरी तट	वामगण्ड (कपोल)	विश्वेशी (विश्वमातृका)	दण्डपाणि (वत्सनाभ)	गोदावरी
10. गण्डकी	दक्षिणगण्ड (कपोल)	गंडकी	चक्रपाणि	नेपाल
11. शुचि	ऊर्ध्व दंत पंक्ति	नारायणी	संहार	कन्याकुमारी
12. ज्वालामुखी	जिह्वा	सिद्धिदा (अंबिका)	उन्मत्त	पंजाब
13. पंच सागर	अधो दंत पंक्ति	वाराही	महारुद्र	–
14. भैरव पर्वत	ऊर्ध्व ओष्ठ	अवंती	लंबकर्ण	उज्जैन
15. अट्टहास	अधरोष्ठ	फुल्लरा	विश्वेश	महाराष्ट्र
16. जनस्थान	चिबुक (ठोड़ी)	भ्रामरी	विकृताक्ष	नासिक
17. कश्मीर	कंठ	महामाया	त्रिसंध्येश्वर	अमरनाथ गुफा

18. नन्दीपुर	कंठहार	नंदिनी	नंदिकेश्वर	हावड़ा (बंगला)
19. श्रीशैल	ग्रीवा	महालक्ष्मी	संबरानंद	तमिलनाडु
20. नलहाटी	नला (उदरनली)	कालिका	योगीश	हावड़ा
21. मिथिला	वामस्कंध	उमा (महादेवी)	महोदर	जनकपुर (विहार)
22. रत्नावली	दक्षिण स्कंध	कुमारी	शिव	मद्रास
23. प्रभास	उदर	चन्द्रभागा	वक्रकुण्ड	गिरनार पर्वत (गुजरात)
24. जालंधर	वामस्तन	त्रिपुरमालिनी	भीषण	जालंधर (पंजाब)
25. रामगिरि	दक्षिण स्तन	शिवानी	चण्ड	चित्रकूट
26. वैद्यनाथ	हृदय	जयदुर्गा	वैद्यनाथ	विहार
27. वक्त्रेश्वर	मन	महिषमर्दिनी	वक्त्रनाथ	बंगाल
28. कन्यकाश्रम	पृष्ठ	शर्वाणी	निमिष	कन्याकुमारी
29. बहुला	वामबाहु	बहुला (चण्डिका)	भीरुक	बंगाल
30. चट्टल	दक्षिण बाहु	भवानी	चन्द्रशेखर	बंगलादेश
31. उज्जयिनी	कूर्पर (कोहनी)	मांगल्य चण्डिका	कपिलाम्बर	उज्जैन
32. मणिवैदिक	दोनों मणिबन्ध (कलाई)	गायत्री	शर्वानन्द	पुष्कर के पास
33. मानस	दक्षिण हाथ (हथेली)	दाक्षायणी	अमर	मानसरोवर (तिब्बत)
34. यशोर	बाम हाथ (हथेली)	यशोरेश्वरी	चण्ड	बंगलादेश
35. प्रयाग	हाथ की उँगली	ललिता	भव	अलोपी
36. विरजा क्षेत्र (उत्कल में)	नाभि	विमला	जगन्नाथ	पुरी (उड़ीसा)

37. कांची	अस्थि (कंकाल)	देवगर्भा	रूरू	तमिलनाडु
38. कालमाधव	वाम नितम्ब	काली	असितांग	–
39. शोण	दक्षिण नितम्ब	नर्मदा (शोणाक्षी)	भद्रसेन	अमरकंटक
40. कामगिरि	योनि	कामाख्या	उमानाथ	गौहाटी (आसाम)
41. नेपाल	दोनों घुटने	महामाया	कपाल	नेपाल
42. जयन्ती	वाम जंघा	जयन्ती	क्रमदीश्वर	आसाम
43. मगध	दक्षिण जंघा	सर्वानंदकरी	व्योमकेश	पटना (विहार)
44. त्रिस्रोता	वाम पैर	भ्रामरी	ईश्वर	पश्चिम बंगाल
45. त्रिपुरा	दक्षिण पैर	त्रिपुरसुंदरी	त्रिपुरेश	त्रिपुरा
46. विभाष	वाम टखना	कपालिनी (भीमरूपा)	सर्वानंद (कपाली)	पश्चिम बंगाल
47. कुरुक्षेत्र	दक्षिण टखना	सावित्री	स्थाणु	कुरुक्षेत्र
48. लंका	नूपुर	इन्द्राक्षी	राक्षसेश्वर	लंका
49. युगाद्या	दक्षिण पैर का अंगूठा	भूतधात्री	क्षीरकंटक	पश्चिम बंगाल
50. विराट	दाहिने पैर की उँगलिया	अम्बिका	अमृत	जयपुर (वैराट)
51. कालीपीठ	शेष पैर की उँगली	कालिका	नकुलीश	कलकत्ता
52. कर्णाट	दोनों कर्ण	जयदुर्गा	अभीरु	कर्नाटक

टिप्पणी– अन्य ग्रन्थों में इक्यावन पीठ ही गिनाये हैं।

शिव की अष्टमूर्तियाँ-

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान।

पंचनाथ-

1. उत्तर - श्रीबद्रीनाथ (उत्तराखंड)
2. दक्षिण - श्री रंगनाथ (तमिलनाडु)
3. पूर्व - श्री जगन्नाथ (पुरी-उडीसा)
4. पश्चिम - श्री द्वारकानाथ (द्वारका-गुजरात)
5. मध्य - श्री गोवर्धन नाथ (नाथद्वारा-राज०)

पंचकाशी-

1. वाराणसी (काशी), 2. गुप्तकाशी (उत्तर), 3. गुप्तकाशी (पश्चिम), 4. दक्षिण काशी, 5. शिवकाशी।

सप्त-सरस्वती-

1. सुप्रभा (पुष्कर), 2. कांचनाक्षी (नैमिष), 3. विशाला (गया), 4. मनोरमा (उत्तर कोसल), 5. ओघवती (कुरुक्षेत्र), 6. सुरेणु (हरिद्वार), 7. विमलोदका (हरिद्वार)।

सप्त-गंगा-

1. भागीरथी, 2. वृद्धगंगा, 3. कालिन्दी, 4. सरस्वती, 5. कावेरी, 6. नर्मदा, 7 वेणी।

नदी-रूप-तीर्थ-

1. देवनदी गंगा, 2. यमुना, 3. सरस्वती, 4. नर्मदा, 5. गोदावरी, 6. सरयू, 7. गोमती, 8. बागमती, 9. शिप्रा, 10. इक्षुमती (काली नदी), 11. पयोष्णी (पैनगंगा), 12. गण्डकी, 13. तमसा, 14. सिन्धु, 15. कावेरी, 16. कृतमाला (वेगई या बैगा), 17. साबरमती (साभ्रमती, चन्दना, वन्दना), 18. चन्द्रभागा (चिनाव)

भारत के पवित्र कुल-पर्वत-

1. हिमालय, 2. विन्ध्याचल, 3. पारिजात, 4. मलयगिरि, 5. महेन्द्रगिरि, 6. शुक्तिमान (शक्ति पर्वत), 7. चित्रकूट (कामदगिरि), 8. ऋक्षवान्, 9. सह्यगिरि, 10. माल्यवान् एवं ऋष्यमूक पर्वत, 11. श्री शैल या मल्लिकार्जुन, 12. अरुणाचल, 13. रैवतकगिरि, 14. कामगिरि या कामाख्या, 15. रामगिरि या रामटेक, 16. गोवर्धन पर्वत।

भूलोक के विभाग (महाद्वीप) (कूर्मपुराण, ब्रह्मपुराण)-

भूलोक के सात भागों को सप्तद्वीप कहते हैं, इसीलिए भूलोक के भूखण्ड को सप्तद्वीपा वसुमती कहते हैं। 1. जम्बूद्वीप (एशिया), 2. प्लक्षद्वीप (यूरोप), 3. शाल्मलीद्वीप (अफ्रीका), 4. कुशद्वीप (आस्ट्रेलिया), 5. क्रौंचद्वीप (उत्तरी अमेरिका), 6. शाकद्वीप (दक्षिणी अमेरिका), 7. पुष्करद्वीप (अंटार्कटिका)।

(नौ वर्ष) भारतवर्ष के नौ विभाग (ब्रह्मपुराण, मार्कण्डेय पुराण)-

1. इन्द्रद्वीप, 2. केसेरु (कसेरुमान), 3. तामपर्णी (ताम्रवर्ण), 4. गभस्तिमान, 5. नागद्वीप, 6. सौम्यद्वीप, 7. गान्धर्वद्वीप, 8. वारुण द्वीप, 9. भारतवर्ष।

दस दिक्पाल-

1. कुबेर, 2. यमराज, 3. इन्द्र, 4. वरुण, 5. रुद्र, 6. अग्नि, 7. नैऋत, 8. पवन, 9. ब्रह्मा, 10. विष्णु।

बत्तीस विद्याएँ-

श्री शुक्राचार्य ने 'नीतिसार' के चतुर्थ अध्याय के तीसरे प्रकरण में कहा है कि वैसे तो विद्या के अनन्त-भेद हैं, परन्तु उनमें बत्तीस विद्याएँ मुख्य हैं। हिन्दू संस्कृति की आधारभूत उक्त बत्तीस विद्याओं में- 4 वेद- (ऋक्, यजुः, साम और अथर्व), 4 उपवेद- (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और तंत्र), 6 वेदाङ्ग- (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष), 6 दर्शन- (मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, वेदान्त और योग), इतिहास, पुराण, स्मृति, नास्तिकमत, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, काव्य, देशभाषा, अवसरोक्ति, यवनमत और देशादि-धर्म हैं।

चौसठ कलाएँ-

'**शिवरत्नाकर**' में मुख्य 64 कलाएँ निम्नलिखित हैं-

1. इतिहास, 2. आगम, 3. काव्य, 4. अलंकार, 5. नाटक, 6. गायकत्व, 7. कवित्व, 8. कामशास्त्र, 9. दुरोदर (जूआ), 10. देशभाषालिपिज्ञान, 11. लिपिकर्म, 12. वाचन, 13. गणक, 14. व्यवहार, 15. स्वरशास्त्र, 16. शकुन, 17. सामुद्रिक, 18. रत्नशास्त्र, 19. गज-अश्व-रथ कौशल, 20. मल्लशास्त्र, 21. सूपकर्म (रसोई पकाना), 22. भूरुहदोहद (बागबानी), 23 गंधवाद, 24. धातुवाद, 25. रस सम्बन्धी खनिवाद, 26. बिलवाद, 27. अग्निसंस्तम्भ, 28. जलसंस्तम्भ, 29. वाच:स्तंभन, 30. वय: स्तम्भन, 31. वशीकरण, 32. आकर्षण, 33. मोहन, 34. विद्वेषण, 35. उच्चाटन, 36. मारण, 37. कालवंचन, 38. परकायप्रवेश, 39. पादुका सिद्धि, 40. वाक्सिद्धि, 41. गुटिका सिद्धि, 42. ऐन्द्रजालिक, 43. अंजन, 44. परदृष्टिवंचन, 45. स्वरवंचन, 46. मणि-मंत्र-औषधादि की सिद्धि, 47. चोर कर्म, 48. चित्रक्रिया, 49. लोह क्रिया, 50. अश्मक्रिया, 51. मृत्क्रिया, 52. दारुक्रिया, 53. वेणुक्रिया, 54. चर्मक्रिया, 55. अम्बर क्रिया, 56. अदृश्यकरण, 57. दन्तिकरण, 58. मृगयाविधि, 59. वाणिज्य, 60. पाशुपाल्य, 61. कृषि, 62. आसव कर्म, 63. लाव कुक्कट, 64. मेषादि युद्धकारक कौशल।

18 पुराण (श्रीमद्भागवत में)-

1. ब्रह्मपुराण, 2. पद्मपुराण, 3. विष्णुपुराण, 4. शिवपुराण, 5. श्रीमद्भागवत महापुराण, 6. नारदपुराण, 7. मार्कण्डेय पुराण, 8. अग्निपुराण, 9. भविष्यपुराण, 10. ब्रह्मवैवर्तपुराण, 11. लिंगपुराण, 12. वाराहपुराण, 13. स्कन्दपुराण, 14. वामनपुराण, 15. कूर्मपुराण, 16. मत्स्यपुराण, 17. गरुड़पुराण, 18. ब्रह्माण्डपुराण।

18 उपपुराण-

1. सनतकुमार, 2. नरसिंह पुराण, 3. परानन्द, 4. शिवधर्मोत्तर, 5. दुर्वासस, 6. वृहन्नारदीय, 7. कपिल, 8. वामन, 9. उशनस्, 10. मानव, 11. वारुण, 12. कल्कि, 13. माहेश्वर, 14. साम्ब, 15. सौर, 16. पाराशर, 17. मारीच और 18. भार्गव।

पुराण अठारह माने जाते हैं, वे महापुराण हैं। इनके अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी है। किसी कल्प में कोई पुराण महापुराण समझा जाता था और

किसी में वह उपपुराण माना गया। इस कारण पुराणों में महापुराण और उपपुराणों का निर्णय करने में भेद पड़ता है। विभिन्न पुराणों में इनके अलावा अन्य उपपुराणों का भी विवरण मिलता है जैसे- आदित्य पुराण, अंगिरापुराण, आखेटक पुराण, आत्मपुराण, आदिपुराण, आदित्यपुराण, एक पाद पुराण, एकाम्रपुराण, कालिकापुराण, क्रियायोगसारपुराण, गणेशपुराण, जालंधर पुराण, दत्तात्रेयपुराण, देवीपुराण, धर्मपुराण, नन्दीश्वरपुराण, पाशुपतपुराण, बृहद्धर्मपुराण, बृहद्धर्मोत्तर पुराण, बृहन्नन्दीश्वरपुराण, भविष्योन्तरपुराण, वशिष्ठपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, शिवधर्मोत्तर पुराण, सनत्कुमार पुराण, सौरपुराण, हंसपुराण, हरिवंशपुराण आदि।

12 प्रमुख उपनिषद्-

वैसे तो उपनिषदों की संख्या बहुत अधिक है, लेकिन प्रमुख उपनिषद निम्न हैं- 1. छान्दोग्योपनिषद, 2. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3. कौषीतकि-उपनिषद्, 4. ऐतरेयोपनिषद्, 5. केनोपनिषद्, 6. तैत्तिरीयोपनिषद्, 7. कठोपनिषद्, 8. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 9. ईशावास्योपनिषद्, 10. प्रश्नोपनिषद्, 11. मुण्डकोपनिषद्, 12. माण्डूक्योपनिषद्।

दशावतारों की उद्भव तिथियाँ-

नाम	तिथि	समय	अवतरण स्थल
1. श्रीमत्स्य जयन्ती	चैत्र शुक्ल तृतीया	मध्याह्नोत्तर	कृतमाला तट
2. श्रीकूर्म जयन्ती	वैशाख शुक्ल पूर्णिमा (मवान्तर से वैशाख अमावस्या)	सायंकाल	समुद्र
3. श्रीवाराह जयन्ती	भाद्रपद शुक्ल पंचमी	मध्याह्नोत्तर	हरिद्वार या वाराह क्षेत्र
4. श्रीनृसिंह जयन्ती	वैशाख शुक्ल चतुर्दशी	सायंकाल	मूलस्थान या मुल्तान
5. श्रीवामन जयन्ती	भाद्रपद शुक्ल द्वादशी	मध्याह्न	प्रयाग
6. श्रीपरशुराम जयन्ती	वैशाख शुक्ल तृतीया	मध्याह्न (मतान्तर से सायंकाल)	जमनिया गाँव
7. श्रीराम जयन्ती	चैत्र शुक्ल नवमी	मध्याह्न	अयोध्या
8. श्रीकृष्ण जयन्ती	भाद्रपद कृष्ण अष्टमी	मध्यरात्रि	मथुरा
9. श्रीबुद्ध जयन्ती	पौष शुक्ल सप्तमी	सायंकाल	गया
10. श्रीकल्कि जयन्ती	भाद्रपद शुक्ल तृतीया	सायंकाल	सम्भलगाँव

भारतीय-संवतों का काल-निर्धारण-
(संवत् 2075 के अनुसार)-

	संवत् का नाम	समय वर्षों में
1.	सृष्टि संवत्	1,95,58,85,119
2.	कल्प संवत्	1,97,29,49,119
3.	श्रीराम संवत् (राम रावण युद्ध)	8,80,160
4.	श्रीकृष्ण संवत् (कृष्णवतार)	5244
5.	युधिष्ठिर संवत् (महाभारत युद्ध)	5155
6.	कलियुग संवत्	5119
7.	जैन संवत् (श्री महावीर निर्वाण)	2544
8.	विक्रम संवत्	2075
9.	ईस्वी सन्	2018
10.	शक संवत्	1940
11.	पारसी संवत्	1987
12.	हिजरी सन्	1439-40
13.	बँगला संवत्	1425
14.	फसली संवत्	1425

चक्रवर्ती राजा के 14 रत्न-

चक्र, रथ, मणि, खड्ग, चर्म (ढ़ाल), ध्वजा और निधि (खजाना) ये सात प्राणहीन तथा स्त्री, पुरोहित, सेनापति, रथी, पदाति, अश्वारोही और गजारोही- ये सात प्राणयुक्त, इस प्रकार कुल चौदह रत्न सब चक्रवर्तियों के यहाँ रहते थे- (धर्मसंहिता)।

(अन्य स्थान में) - हाथी, घोड़ा, रथ, स्त्री, बाण, खजाना, माला, वस्त्र, वृक्ष, शक्ति, पाश, मणि, छत्र और विमान। (कल्याण- संत-अङ्क)

पौराणिक-काल
सूर्यवंश

वैवस्वत मनु-

वर्तमान में ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध का प्रथम श्वेतवाराह कल्प का सातवें वैवस्वत मन्वन्तर की अट्ठाईवीं चतुर्युगी का अट्ठाईसवाँ कलियुग चल रहा है। इस समय वर्तमान महातेज एवं वैवस्वत मनु की सृष्टि का काल है। श्वेतवाराह कल्प में ब्रह्मा के वर्ष के तीसरे दिन सातवें मुहूर्त के प्रारम्भ होने पर महाराज वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए।

ब्रह्मा के दाहिने अगूँठे से उत्पन्न दक्ष प्रजापति ही प्राचेतस दक्ष हुए। उन्हीं से सारी प्रजा उत्पन्न हुई। इनकी पत्नी का नाम वीरणी था। महर्षि कश्यप से उनकी पत्नी दक्ष कन्या अदिति के गर्भ से विवस्वान (सूर्य), इन्द्र आदि का जन्म हुआ। सूर्य पत्नी विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा के गर्भ से दो पुत्र तथा एक कन्या हुई। सबसे पहले प्रजापति श्राद्धदेव, जिन्हें वैवस्वत मनु कहते हैं, पैदा हुए उसके बाद यम और यमुना-जुडवाँ सन्तानें हुईं। सूर्य देव के तेजस्वी स्वरुप को देखकर संज्ञा उसे सह न सकी। उसने अपने ही समान वर्ण वाली अपनी छाया प्रकट की। वह छाया संज्ञा अथवा सवर्णा नाम से प्रसिद्ध हुई। उसको भी संज्ञा ही समझकर सूर्य ने उसके गर्भ से अपने ही समान तेजस्वी सावर्णि मनु पुत्र उत्पन्न किया। दूसरा पुत्र शनैश्चर नाम से प्रसिद्ध हुआ। यम धर्मराज के पद पर प्रतिष्ठित हुए तथा उन्हें पितरों का स्वामी और लोकपाल का पद प्राप्त हुआ। सावर्णि मनु-प्रजापति हुए जो आगे आने वाले सावर्णिक मन्वन्तर के वे ही स्वामी होंगे। उनके भाई शनैश्चर ने ग्रह की पदवी पायी।

वैदिक सभ्यता के प्रवर्तक वैवस्वत मनु-

प्रत्येक कल्प के अन्त में नैमित्तिक प्रलय हुआ करता है। गत कल्प के अन्त में भी इस प्रकार का प्रलय होने से एक सप्ताह पूर्व द्रविड़ देश के महाराज सत्यव्रत केवल जल पीकर शरीर-यात्रा का निर्वाह करते हुए श्रीभगवान् की आराधना कर रहे थे, एक दिन कृतमाला नदी के तट पर उनकी आराधना से प्रसन्न होकर श्री भगवान् ने उसने कहा- 'हे राजर्षे! आज से सातवें दिन जब सम्पूर्ण त्रिलोकी प्रलय-जल में विलीन होने लगेगी, तब तुम्हारे पास एक बहुत

बड़ी नौका उपस्थित होगी। तुम सप्तर्षियों की सहायता से वनस्पतियों के बीजों का उसमें संग्रह कर लेना। जब तक प्रलय-निशा रहेगी, तब तक तुम उस नौका में रहकर मत्स्यरूपधारी मेरे साथ प्रश्नोत्तर का आनन्द लेना।' राजा ने ऐसा ही किया। तदन्तर ब्राह्मी निशा के अवसान में ब्राह्म दिन का प्रारम्भ हुआ। वर्तमान दिन का नाम श्वेतवाराह कल्प है। इसमें आजकल जिन सातवें मनु का समय चल रहा है, उनका नाम है श्राद्धदेव है। ये श्राद्धदेव पूर्वकल्प वाले महाराज सत्यव्रत हैं। श्राद्धदेव के नौ पुत्र हुए, उनके नाम इस प्रकार हैं- इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, अरिष्ट, करुष तथा पृषध्र (कहीं दस पुत्रों का उल्लेख है) इनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था, जो भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध वंश प्रवर्तक हुए। महाभारत के समय अर्जुन से श्रीकृष्ण ने कहा था कि प्राचीनकाल में मैंने इस गीता-योग का उपदेश सूर्य को दिया था। इसे ही सूर्य ने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को दिया था। इस प्रकरण में गीता में जिन मनु महाराज का स्मरण किया है, ये वे ही श्राद्धदेव हैं।- (महाभारत-वन पर्व में इसका विस्तार है)

ये अपने समय के बहुत बड़े समाज व्यवस्थापक हुए हैं- इतने बड़े कि आज तक लाखों वर्ष बीत जाने पर भी इनकी बनाई व्यवस्था वेदानुयायी हिन्दू मात्र के लिए सम्मान्य है। इनकी व्यवस्था में यों तो सैकड़ों मानवी विषय हैं, तथापि वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था अद्वितीय है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- चारों पुरुषार्थों को इनकी व्यवस्था में समुचित स्थान मिला है। मानव-जीवन को परिष्कृत करने के उद्देश्य से उन्होंने सोलह संस्कारों का विधान किया और गृहस्थ के लिए पंचमहायज्ञों (स्वाध्याय, पितृतर्पण, हवन, प्राणिसेवा और अतिथिसेवा)- का विधान तो विश्व में सर्वत्र शक्ति प्रसार का मूलमंत्र है।

भारतीय समाज को आदर्श रूप देने के लिए मनु ने एक शास्त्र (धर्मशास्त्र) उन दिनों की सूत्रशैली में बनाया जिसका एक संस्करण 'मानव धर्मसूत्र' के नाम से अब भी प्रचलित है। उसी सूत्र-राशि के उपदेश को भृगु ने (नारद-स्मृति के अनुसार सुमति भार्गव ने) लगभग ढाई हजार अनुष्टुप छंदों का रूप देकर बारह अध्यायों में विभक्त कर दिया था, जो कि आजकल 'मनुस्मृति' के नाम से विख्यात है। मनु आचार (सदाचार) पर बहुत जोर देते हैं-

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च। (मनुस्मृति 1/108)

यही 'आचार' वाल्मीकि के महाकाव्य रामायण का 'चरित्र' है और व्यास के इतिहास महाभारत का 'धर्म' है। मनु की शासन व्यवस्था के बारे में जर्मनी

के दार्शनिक नीत्से ने ठीक ही कहा है- "मनु का धर्मशास्त्र बाइबिल से भी कहीं ऊँचे दर्जे का है, मनु ने जो कुछ कहा, वह वेद के आधार पर कहा जो विश्व में शान्ति-व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है।" इस प्रकार विश्व में वैदिक-सभ्यता का विस्तार करने वालों में मनु का स्थान महत्वपूर्ण है। इस मनु से ही मानव जाति की सृष्टि हुई और सूर्यवंश मनुवंश के नाम से कहलाया।

चन्द्रवंश का सूर्यवंश से संबंध स्थापित होने के कारण संक्षेप में सूर्यवंश का वर्णन करना आवश्यक है। राज्य-संस्था का उद्‌भव हो जाने के बाद मनु आर्यों का पहला राजा बना। उसके नौ पुत्र और एक कन्या थी। मनु ने अपने राज्य को अपने पुत्रों में बाँट दिया। उसके सबसे बड़े पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था। वह मध्य देश का राजा बना, जिसकी राजधानी अयोध्या थी। इक्ष्वाकु द्वारा उस राजवंश का प्रारंभ हुआ, जो भारतीय इतिहास में ऐक्ष्वाकव, मानव या सूर्यवंश के नाम से विख्यात है। इसी वंश में आगे चलकर राजा दिलीप, रघु, दशरथ और राम हुए। मनु के एक दूसरे पुत्र नेदिष्ट को पूर्व की ओर तिरहुत का राज्य मिला। इस वंश में आगे चलकर राजा विशाल हुआ, जिसने वैशाली नाम की नगरी बसाई। बौद्ध युग में इस वैशाली की बहुत प्रसिद्धि हुई और यह लिच्छवि नाम के प्रसिद्ध क्षत्रियों की राजधानी बनी। इस नगरी के अवशेष उत्तरी बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के बासड़ नामक ग्राम में पाये गये हैं। मनु के एक पुत्र का नाम करुष था। उसके नाम से कारुष राज्य की स्थापना हुई, जो इस समय के बघेलखण्ड के क्षेत्र में विद्यमान था। मनु के एक अन्य पुत्र शर्याति ने दक्षिण में आधुनिक गुजरात की ओर अपने राज्य की स्थापना की। शर्याति के पुत्र का नाम आनर्त था। वह बहुत प्रतापी राजा था, इसी के नाम से उस देश का नाम आनर्त पड़ गया। आनर्त देश की राजधानी कुश स्थली या द्वारका थी। (कृष्णकाल में द्वारका नाम पड़ा)। मनु के ये चारों पुत्र बड़े और शक्तिशाली राज्यों के संस्थापक हुए। अन्य पुत्रों ने भी अपने पृथक् राज्य स्थापित किये किन्तु वे अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं।

सूर्यवंश के संस्थापक इक्ष्वाकु के भी अनेक पुत्र थे और उन्होंने भी अपने अलग राज्य स्थापित किये। उसका बड़ा लड़का विकुक्षि अयोध्या की राजगद्‌दी पर बैठा। इक्ष्वाकु के छोटे पुत्र निमि ने अयोध्या और वैशाली के बीच में एक अन्य राज्य की स्थापना की, जिसकी राजधानी मिथिला थी। इस नगरी का मिथिला नाम निमि के वंशज मिथि के नाम पर पड़ा। आगे चलकर मिथिला के इसी वंश के राजा 'जनक' कहाने लगे थे। विदेह और तीरभुक्ति या तिरहुत

मिथिला के ही दूसरे नाम हैं। राजा इक्ष्वाकु की उन्नीस पीढ़ी बाद उसके वंश में एक अत्यन्त प्रतापी राजा हुआ। जिसका नाम मान्धाता था। उसे पुराणों में 'चक्रवर्ती और सम्राट' कहा गया है। उसने पडौस के अन्य राज्यों को जीतकर दिग्विजय किया। उसके संबंध में पौराणिक अनुश्रुति में कहा गया है, कि सूर्य जहाँ से उगता है और जहाँ अस्त होता है, वह संपूर्ण प्रदेश मान्धाता के शासन में था। जिन आर्य राज्यों को जीतकर मान्धाता ने अपने अधीन किया, उनमें पौरव, आनव, द्रुह्यु और हैहय राज्यों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। राजा मान्धाता का बसाया हुआ ओंकार मान्धाता नगर आज भी प्रसिद्ध है। मान्धाता के बारह पीढ़ी बाद राजा हरिश्चन्द्र अयोध्या की राजगद्दी पर बैठा। उसकी कथा भारत में बहुत प्रसिद्ध है। अपने सत्य की रक्षा हेतु अपना सर्वस्व दान करके वह एक चाण्डाल के घर पर दास बनकर रहा था। अयोध्या के इक्ष्वाकुवंश में आगे चलकर राजा दिलीप और भगीरथ हुए। वे भी मान्धाता के समान चक्रवर्ती सम्राट् थे। गंगा नदी को हिमालय से उतार कर मैदान में लाने का श्रेय राजा भगीरथ को ही दिया जाता है। इसी के नाम पर गंगा की एक शाखा भागीरथी कहाती है। दिलीप का पोता रघु और भी अधिक प्रतापी हुआ। उसकी दिग्विजय का विशद वर्णन महाकवि कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रघुवंश' में किया है। रघु के नाम से प्राचीन इक्ष्वाकु वंश रघुवंश कहलाने लगा। रघु का पुत्र अज था और अज का पुत्र दशरथ। दशरथ के पुत्र श्रीराम थे, जिनकी कथा भारत के बच्चे-बच्चे को ज्ञात है। श्रीराम इक्ष्वाकु वंश की 65 वीं पीढी में हुए।

इक्ष्वाकुवंशी श्रावस्त ने श्रावस्ती नाम का नगर बसाया जो बौद्धों के समय में कोशल की राजधानी हो गया। हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व ने रोहतक नाम का नगर स्थापित किया था। श्रीराम के वंशजों ने भी अनेक नगर बसाये। कुश ने विन्ध्य पर्वत पर कुशावती और लव ने उत्तर की ओर शरावती बसाई। वर्तमान लाहौर को भी लव द्वारा बसाया हुआ कहते हैं। भरत के ज्येष्ठ पुत्र तक्ष ने आधुनिक रावलपिंडी जिले में तक्षशिला और छोटे पुत्र पुष्कल ने उसी के निकट पुष्कलावती नगरी बसाई। लक्ष्मण के पुत्र अंगद ने अंगदीय और चन्द्रकेतु ने मल्लभूमि नामक पुरी बसाई। इन नगरों का आज कोई अस्तित्व प्रतीत नहीं होता परन्तु बौद्ध ग्रंथों में वर्णित चेदि और मल्लवंशों के नगर ये ही प्रतीत होते हैं। शत्रुघ्न के पुत्रों में सुबाहु मथुरा का अधिपति था। मथुरा पीछे यदुवंशियों के अधिकार में चली गई। शत्रुघ्न के दूसरे पुत्र शत्रुघाती ने विदिशा को अपनी राजधानी बनाया। यह विदिशा वर्तमान भेलसा है जो मध्यप्रदेश (मध्यभारत) का एक जनपद है। विदिशा प्राचीन इतिहास में एक महान राजनीतिक एवं

सांस्कृतिक केन्द्र रही है। इक्ष्वाकु के पुत्र निमि के वंशजों का तो सदैव मिथिला में ही राज्य रहा। राजा सीरध्वज जनक मिथिला के प्रसिद्ध राजा हुए। मिथिला के राजाओं का सांकाश्य के राजाओं से संघर्ष रहता था परन्तु सीरध्वज जनक के काल में शत्रु राजा सुधन्वा परास्त हुआ और मारा गया। इक्ष्वाकु के तीसरे पुत्र दण्डक ने मध्य भारत में अपना राज्य स्थापित किया था किन्तु वह निःसंतान ही मर गया और उसके राज्य में उन्नति नहीं हुई। दण्डक वन उसके राज्य की अवनति का मूक प्रमाण आज भी दे रहा है।

मनु के पुत्र सुधन्वा के तीन पुत्रों ने उत्कल (उड़ीसा), गय (गया) और पश्चिम में गोमती के किनारे विनत नाम का नगर बसाया।

इस प्रकार सूर्यवंश और चन्द्रवंश प्राचीन भारतीय इतिहास के मुख्य राजघराने थे। इनकी शाखा प्रशाखाऐं ही समस्त देश में फैल गयी थीं। पुराणों में तो यहाँ तक उल्लेख है कि इनकी शाखाओं का विस्तार वर्तमान एशिया, यूरोप, अफ्रीका के अनेक देशों तक हो गया था।

चन्द्रवंश-

बुध- सम्पूर्ण जगत के रचयिता भगवान् नारायण के नाभि-कमल से उत्पन्न हुए ब्रह्माजी के मानस पुत्र अत्रि प्रजापति थे। इन अत्रि के नेत्रों से उत्पन्न पुत्र चन्द्रमा हुए। ब्रह्माजी ने उन्हें सम्पूर्ण औषधि, ब्राह्मण और नक्षत्रगण के आधिपत्य पर प्रतिष्ठित कर दिया था। चन्द्रमा ने राजसूय-यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस यज्ञ में सिनी, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति तथा लक्ष्मी-इन नौ देवियों ने चन्द्रमा का सेवन किया। दक्ष प्रजापति की सत्ताईस कन्याएँ (27 नक्षत्र) भी चन्द्रमा की पत्नियाँ हैं। अपने प्रभाव और अति उच्च पद के अधिकारी होने से चन्द्रमा पर राजमद सवार हो गया। तब मद में उन्मत्त हो जाने के कारण उसने समस्त देवताओं के गुरु बृहस्पति जी की पत्नी तारा का हरण कर लिया तथा बृहस्पति की प्रेरणा से ब्रह्माजी के बहुत कुछ कहने-सुनने और देवर्षियों के माँगने पर भी उसे न छोड़ा। गुरु बृहस्पति से द्वेष करने के कारण दैत्यगुरु शुक्राचार्य भी चन्द्रमा के सहायक हो गये और अंगिरा से विद्या-लाभ करने के कारण भगवान् रुद्र ने बृहस्पति की सहायता की (क्यों कि बृहस्पति अंगिरा के पुत्र है)। चन्द्रमा के पक्ष में शुक्राचार्य थे इस कारण सारे दैत्य-दानव चन्द्रमा की ओर से तथा इन्द्र सहित देवतागण बृहस्पति की ओर से संघर्ष में शामिल हुए। इस प्रकार तारा के लिए उनमें तारकामय नामक अत्यन्त घोर युद्ध

छिड़ गया। संसार के विनाशकारी युद्ध को देखकर ब्रह्माजी ने शुक्र, रुद्र, दानव और देवगण को युद्ध से रोककर बृहस्पति को तारा दिलवा दी। तारा उस समय गर्भवती थी। बृहस्पति जी के कहने पर तारा ने वह गर्भ सींक की झाड़ी में छोड़ दिया। उस छोड़े हुए गर्भ ने अपने तेज से समस्त देवताओं के तेज को मलिन कर दिया। तब ब्रह्मा द्वारा यह पूछे जाने पर कि यह किसका पुत्र है? तो तारा ने बताया कि चन्द्रमा का। यह सुनकर चन्द्रमा ने उसे ग्रहण किया तथा उसका नाम बुध रखा! यह बुध जब आकाश में उदय होता है, तब प्रतिकूल चेष्टा (उत्पात) किया करता है (हरिवंश पुराण)

सूर्यवंश-चन्द्रवंश सम्बन्ध-

एक समय की बात है, जब पूर्व वर्णित वैवस्वत मनु ने पुत्र की इच्छा से मित्रावरुण-यज्ञ किया। उस समय तक उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई थी। उस यज्ञ में मनु ने मित्रावरुण के अंश की आहुति डाली। होता के विपरीत संकल्प से यज्ञ में उलटी आहुति होने से उसमें से दिव्यरूपवाली इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई और वह मित्रावरण के पास चली गई। मित्रावरुण ने प्रसन्न होकर कहा- तुम हम दोनों की कन्या के रूप में प्रसिद्ध होगी तथा तुम्हीं मनु के वंश का विस्तार करने वाला पुत्र हो जाओगी। उस समय तीनों लोकों में सुद्युम्न के नाम से तुम्हारी ख्याति होगी। यह सुनकर वह मनु के पास लौट पड़ी। मार्ग में उसकी बुध (चन्द्रवंश का प्रथम पुरुष) से भेंट हो गई। बुध ने उसे सहवास के लिए आमंत्रित किया। सहवास द्वारा उसने पुरुरवा को जन्म दिया। तत्पश्चात् वह मित्रावरुण की कृपा से सुद्युम्न के रूप में परिणत हो गई। सुद्युम्न के सूर्यवंश में तीन बड़े धर्मात्मा पुत्र हुए- उत्कल, गय और विनताश्व। सुद्युम्न कन्या के रूप में उत्पन्न हुए थे, इसलिए उन्हें राज्य का भाग नहीं मिला फिर वशिष्ठ जी के कहने से प्रतिष्ठानपुर (झूसी-प्रयाग) में उनकी स्थिति हुई (बाद में उत्पन्न पूर्व-वर्णित ग्यारह पुत्रों को ही राज्याधिकार मिला था) प्रतिष्ठानपुर का राज्य पाकर सुद्युम्न ने उसे पुरुरवा को दे दिया। मनुपुत्र सुद्युम्न क्रमशः स्त्री और पुरुष दोनों के लक्षणों से युक्त हुए, इसलिए इला और सुद्युम्न दोनों नामों से उनकी प्रसिद्धि हुई। वैवस्वत मनु के पुत्रों से सूर्यवंश चला तथा चन्द्रवंश के प्रथम पुरुष बुध से सूर्यवंशी कन्या इला के संयोग से चन्द्रवंश चला। पुरुरवा की सन्तान सम्पूर्ण दिशाओं में फैले हुए क्षत्रियगण हुए। बुध तथा इला की कथा वाल्मीकीय रामायण- उत्तरकाण्ड में भी प्राप्त होती है।

महर्षि अत्रि-

आगे वर्णन से पूर्व हम चन्द्रवंश के प्रवर्तक महर्षि अत्रि तथा चन्द्रमा के बारे में जानना चाहेंगे। 'त्रि' शब्द त्रिगुणमयी प्रकृति के अर्थ में आता है और 'अ' विष्णु के अर्थ में। जिसकी उन दोनों के प्रति समान भक्ति है, उस बालक को अत्रि कहा गया। (ब्रह्मवैवर्तपुराण-ब्रह्मखण्ड)

महाभारत-अनुशासन पर्व में कथा आती है कि एक बार देवता और दानवों में घोर युद्ध हुआ। उसमें राहु ने सूर्य और चन्द्रमा को बाणों से मारकर घायल कर दिया, इससे उनका तेज शान्त पड़ गया और वहाँ घोर अन्धकार छा गया। फिर तो अन्धेरे में सूझ न पड़ने के कारण देवता लोग दानवों के हाथ से मारे जाने लगे। उन महाबली असुरों के प्रहार से आहत होने के कारण देवताओं की प्राणशक्ति क्षीण हो चली और वे भाग कर तपस्या में लीन हुए महर्षि अत्रि मुनि के पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले उन महर्षि से कहा- प्रभो! असुरों ने चन्द्रमा और सूर्य को अपने बाणों से बींध डाला है और अब घोर अंधकार छा जाने के कारण हम भी शत्रुओं के हाथ से मारे जा रहे हैं। आप कृपा करके हमारे इस भय को दूर कीजिये। अत्रि ने कहा- मैं किस तरह आप लोगों की रक्षा करूँ? देवता बोले- आप अंधकार को नष्ट करने वाले चन्द्रमा और सूर्य का स्वरूप धारण कीजिये और हमारे शत्रुओं का नाश कर डालिये, उनके ऐसा कहने पर अत्रि ने अंधकार को दूर करने वाले चन्द्रमा का रूप धारण किया और देवताओं की ओर शान्तभाव से देखा। उस समय चन्द्रमा और सूर्य की प्रभामन्द देखकर अत्रि ने अपनी तपस्या से प्रकाश फैलाया और सम्पूर्ण जगत को अंधकार शून्य एवं आलोकित कर दिया। उन्होंने अपने तेज से ही देवताओं के शत्रुओं को परास्त कर दिया। उन महाअसुरों को अत्रि के तेज से जलते देख देवताओं ने भी पराक्रम करके उन्हें मार डाला। इस प्रकार महर्षि अत्रि ने सूर्य को तेजस्वी बनाया, देवताओं का उद्धार किया और असुरों को नष्ट कर दिया। तब से महर्षियों ने अत्रि का एक नाम **'प्रभाकर'** रख दिया। अत्रि मुनि गायत्री का जप करने वाले, मृगछाला पहनने वाले और फलाहार करके रहने वाले तेजस्वी ऋषि थे!

महर्षि अत्रि की चर्चा वेदों में भी आती है। धर्मशास्त्रों में **'अत्रि-संहिता'** एक प्रधान स्मृति है और हमारे कर्तव्याकर्तव्य (क्या करना चाहिए क्या नहीं) का निर्णय करने के लिए वह एक अमूल्य ग्रन्थ है। इनके विस्तृत और पवित्र जीवन की चर्चा प्रायः समस्त आर्ष ग्रन्थों में आयी है।

एकबार जब ये समाधि मग्न थे, दैत्यों ने इन्हें उठाकर शतद्वार यंत्र (मायावी जाल) में डाल कर अग्नि जला दी और इन्हें नष्ट करने की चेष्टा की, किन्तु इन्हें इस बात का पता तक न था। उस समय भगवत्प्रेरणा से अश्विनीकुमारों ने वहाँ पहुँचकर इन्हें बचाया। इनकी दृष्टि इतनी शीतल, इतनी अमृतमयी और इतनी लोक कल्याणकारिणी थी कि वहीं मूर्तिमान् होकर आज भी चन्द्रमा के रूप में जगत को शीतलता, अमृत और शान्ति का दान कर रही है।

अत्रि परिवार-

ब्रह्मा के दस मानस पुत्र ऋषियों को सृष्टि के समय अपनी तपस्या के द्वारा वेद की ऋचाओं का दर्शन हुआ। ऋचाओं का दर्शन होने के कारण ही ये 'मन्त्र- दृष्टा' कहलाये। इससे यह स्पष्ट है कि वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषियों ने मंत्रों की रचना नहीं की बल्कि भगवत्कृपा से उन्होंने तप:पूत अपने अन्त:करण में मंत्र शक्ति के स्वरूप का दर्शन किया और श्रुतिमान (आपसी सम्वाद) के द्वारा अपने शिष्य-प्रशिष्यों में उसे प्रसारित किया, इस प्रकार आगे फिर वेदों का विस्तार होता गया। श्रुति-परम्परा से अध्यापति होने से ही वेदों को 'श्रुति' कहा जाता है।

अपनी तपस्या रूप ज्ञानात्मिका शक्ति के द्वारा वैदिक मंत्र शक्ति का जिन्होंने दर्शन किया वे 'ऋषि' कहलाये। वेदों के अनुसार ये ऋषि सत्यवक्ता, धर्मात्मा तथा ज्ञानी थे और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, सदाचार एवं अपरिग्रह के मूर्तिमान स्वरूप, ब्रह्मतेज से सम्पन्न तथा दीर्घकालीन समाधि द्वारा तप का अनुष्ठान करते थे। यज्ञों द्वारा देवताओं का आवाहन तथा नित्य स्वाध्याय इनकी मुख्य चर्या थी। गृहस्थ होते हुए भी ये मुनिवृत्ति से रहा करते थे। इस प्रकार यदि ये ऋषि न होते तो हमें वेद प्राप्त ही न होते और न सृष्टि का वर्धन ही होता। इन्हीं ऋषियों की सप्तर्षियों में परिणति है। स्वायम्भुव आदि प्रत्येक मन्वन्तर में अलग-अलग सप्तर्षि वेदों की ऋचाओं का दर्शन करते हैं और हमें वेद प्राप्त कराकर जगत का कल्याण करते हैं। इस प्रकार हम इन्हीं मंत्र दृष्टा ऋषियों की सन्तान हैं। सभी ऋषियों के परम्परानुसार परिवार चले आ रहे हैं। ऋग्वेद के पंचम मण्डल में अत्रि के वसूयु, सप्तवध्रि नामक अनेक पुत्रों का वृत्तान्त आया है जो अनेक मंत्रों के दृष्टा ऋषि रहे हैं। इसी प्रकार अत्रि के गोत्रज आत्रेयगण ऋग्वेद के बहुत से मंत्रों के दृष्टा हैं।

अत्रि परिवार स्वतंत्र है। इनका वंश परिचय यह है- अत्रि, भौम, अर्चनाना, श्यावाश्व तथा अन्धीगुश्यावाश्वि। ये सभी पारिवारिक ऋषि 42 परिवारों में विभक्त हुए जिनका विवरण मत्स्य पुराण तथा अत्रि स्मृति में दिया है।

ऋग्वेदीय मंत्रदृष्टा गृहस्थ थे- प्राय: सबके गोत्र और वंश चले हैं तो भी वे जल में कमल-पत्र के समान गृहस्थ के प्रपंच से निर्लिप्त थे। वे चेतन तत्त्व के चिन्तक थे, जीवन्मुक्त थे। मंत्र दृष्टा ऋषि सिद्धयोगी थे, वे त्रिकालदर्शी थे। वे 'वर्तमान' और 'भविष्य' की अद्‌भुत घटनाओं को भी देखते थे, वे महान तपस्थी थे।

सती अनसूया-

स्वायम्भुव मनु की दौहित्री (धेवती), भगवान् ब्रह्मा की पौत्री (नातिनी), प्रजापति कर्दम की पुत्री (देवहुति माता) तथा सांख्यशास्त्र के प्रवर्तक भगवान् विष्णु के अवतार सिद्धेश्वर कपिल की बड़ी बहिन अनसूया जी महर्षि अत्रि की पत्नी हैं। अनसूया के पातिव्रत्य की महिमा अपार है। असूया नाम है परदोष दर्शन का- गुणों में भी दोष बुद्धि का, और जो इन विकारों से रहित हो, वही 'अनसूया' है। देवी अनसूया पतिव्रताधर्म एवं शील की मूर्तिमती विग्रह हैं। संसार में इनके समान आज तक कोई भी पतिव्रता नारी का उदाहरण नहीं मिलता। अनसूया के पातिव्रतधर्म से सम्बन्धित अनेककथाएँ अनेक धार्मिक ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं।

एक बार चित्रकूट के उस प्रदेश में, जहाँ महर्षि अत्रि ने आश्रम बनाया था, दीर्घकालीन अकाल पड़ा। अत्रि महर्षि दीर्घकाल से समाधि में थे और अनसूया उनकी सेवा में। महर्षि की समाधि टूटी और पत्नी से जल लाने को कहा। अनसूया को ध्यान आया कि इतने दिनों तक स्वयं उन्हें अपने लिए आहार तथा जल की आवश्यकता सूझी ही नहीं। पतिदेव के समीप का स्थान स्वच्छ कर देना, उनकी गार्हपत्य अग्नि को प्रज्वलित रखना और उनका ध्यान करना, इसके अतिरिक्त अपने शरीर का तो उन्हें स्मरण ही नहीं आया। उन्होंने कमण्डलु उठाया और वे गुफा से बाहर निकलीं। वन के वृक्षों में पत्ते तक नहीं थे, भूमि पर तिनके का नाम तक नहीं था। वन में सूखे ठूँठ खड़े थे और कोई पशु-पक्षी तो क्या छोटा कीट भी दृष्टि नहीं पड़ता था। बारह वर्षीय सूखे ने नमी का चिह्न तक मिटा दिया था। ऐसे समय में जल कहाँ? लेकिन पति ने जल माँगा है तो पतिव्रता क्या यह उत्तर दे कि जल कहीं है ही नहीं। किन्तु जो धर्म पर स्थिर है उसका पोषण करने का दायित्व धर्म पर है। उसे प्रकृति की अवस्था कहाँ

आबद्ध करती है? अनसूया ने गंगाजी का आवाहन किया- हे सुरसरि! इस बच्ची को अपने आराध्य की अर्चा के लिए जल दो। देवी अनसूया ने क्षणभर को नेत्र बन्द किये। उन्होंने नेत्र खोलकर देखा कि वे जहाँ खड़ी हैं वहाँ उनके पैरों के तल के समीप से और आसपास से सहस्रों धाराओं में निर्मल गंगाजल की धारा फूट निकली हैं। आज तक चित्रकूट के अत्रि आश्रम में दूर तक सैंकड़ों धाराओं में गंगा का जल झर रहा है जो एकत्र मिलकर मंदाकिनी का प्रवाह बनता है। अनसूया ने जल लाकर दिया, महर्षि अत्रि ने आचमन किया। लेकिन जब वे गुफा से बाहर आये, अपने चारों ओर की अवस्था देखकर चकित रह गये। पत्नी से उन्होंने जल का उद्‌गम जानना चाहा। अनसूया जी ने मस्तक झुकाकर कहा- आपके श्री-चरण ही इस जल का उद्‌गम स्थान हैं। इन चरणों के प्रभाव को देखते त्रिलोकी में कुछ भी अप्राप्य और अकल्पनीय नहीं है।

इसी प्रकार देवलोक तक ही नहीं, कैलाश, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ तक देवी अनसूया की यशोगाथा गूंजने लगी। उनके पातिव्रत्य की प्रशंसा सुनकर उमा, रमा तथा ब्रह्माणी को भी ईर्ष्या होने लगी। पत्नियों के आग्रह से शिव, विष्णु तथा ब्रह्माजी विवश होकर अनसूया की धर्म-परीक्षा लेने गये। तीनों ने छद्‌मवेश बना लिए। महर्षि अत्रि वन में फल-समिधा आदि लेने गये थे। तीन तेजस्वी अतिथि एक साथ ही उनके आश्रम पर पहुँचे। तीनों ने कहा-माता। हम बहुत भूखे हैं। अनसूया जी ने उनका सत्कार किया, उन्हें आसन दिया, जल दिया। लेकिन अतिथियों ने एक अद्‌भुत बात कही- जब तक आप निरावरण (वस्त्रहीन) होकर आहार नहीं देंगी, हम उसका उपभोग नहीं करेंगे। अनसूया यह सुनकर गम्भीर हो गयी। विचार किया कि स्त्री केवल अपने पति अथवा अपने उदर से उत्पन्न के समक्ष निरावरण होती है। अन्य पुरुष के समक्ष सती निरावरण नहीं हो सकती। कुछ क्षण के लिए सती शिरोमणि ने अपने नेत्र बन्द किये, वास्तविकता क्या है, उन्हें तत्काल पता लग गया। उनके सतीत्व के सम्मुख तो त्रिदेवों की माया भी आवरण नहीं बन सकती थी। 'तुम तीनों नवजात शिशु बन जाओ' अनसूया ने हाथ में जल लेकर तीनों के ऊपर छिड़क दिया। त्रिदेव नन्हें शिशु बने किलकने लगे। अब माता उन्हें कैसे रखती है? इसका प्रश्न ही नहीं रहा। 'ऐसे खायेंगे और ऐसे नहीं', यह अब कहने वाला वहाँ कौन रहा। महर्षि आयें और पत्नी ने उन्हें तीन पुत्र पाने का मंगल समाचार दिया। अत्रि आश्रम तीन बालकों की क्रीड़ा से मुखरित हो गया, किन्तु कैलाश, वैकुण्ठ और ब्रह्मलोक में खलबली मच गयी। जब प्रतीक्षा सहन नहीं हुई तो तीनों देवियाँ अत्रि आश्रम पर आ गयीं। वहाँ उन्हें पता लगा कि उनके पति तो शिशु बनकर क्रीड़ा कर रहे हैं।

तब उन्होंने 'हम आपकी पुत्रवधुएँ है, हमारे अपराध क्षमा करें' यह कहकर तीनों देवियों ने अनसूया जी के चरणों में अपना मस्तक रखा। अब हमारे स्वामी हमें प्राप्त हों, ऐसी कृपा करें। अनसूया जी ने त्रिदेवों को उनका वास्तविक रूप दे दिया और वे अपने-अपने लोकों को लौट गये।

एक बार इस दम्पत्ति को जब ब्रह्मा ने आज्ञा की कि सृष्टि करो तब इन्होंने सृष्टि करने के पहले बड़ी घोर तपस्या की। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों ही देवता प्रत्यक्ष उपस्थित हुए तथा वरदान मांगने को कहा। इन दम्पत्ति के मन में अब संसारी सुख की इच्छा तो थी ही नहीं परन्तु ब्रह्मा की आज्ञा सृष्टि करने की थी और वे इस समय सामने ही उपस्थित थे। तब इन्होंने और कोई दूसरा वरदान न मांगकर उन्हीं तीनों को पुत्ररूप में मांगा और भक्ति-परवश भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके 'एवमस्तु' कह दिया। समय पर तीनों ही ने इनके पुत्ररूप से अवतार ग्रहण किया। विष्णु के अंश से योगी दत्तात्रेय, ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा और शिवजी के अंश से दुर्वासा का जन्म हुआ। जिनकी चरणधूलि के लिए बड़े-बड़े योगी और ज्ञानी तरसते रहते हैं वे ही भगवान् अत्रि के आश्रम में माता अनसूया के आंगन में बालक बनकर खेलने लगे और दोनों दम्पती उनके दर्शन और वात्सल्य-स्नेह के द्वारा अपना जीवन सफल करने लगे।

इन्हीं अनसूया के पातिव्रत्य, सतीत्व से प्रसन्न होकर वनगमन के समय स्वयं भगवान् श्रीराम सीता और लक्ष्मण के साथ इनके आश्रम पर पधारे और इन्हें जगज्जनी माँ सीता को पतिव्रत-धर्म का उपदेश करने का गौरव प्रदान किया।

वैदिक-साहित्य में चन्द्रमा-

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता 10/21 में कहा है- 'नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूँ।' कुछ भारतीय विद्वानों ने श्रीकृष्ण के इस कथन के आधार पर नक्षत्रों का सम्बन्ध चन्द्रमा से जोड़ लिया। नक्षत्रों को स्त्रियाँ मानकर चन्द्रमा को उनका पति स्वीकार कर लिया गया। सूर्य ग्रहों के राजा माने गये। सूर्य और चन्द्रमा की प्रधानता उनके 'प्रकाश' के आधार पर ही स्थापित हुई।

वैदिक साहित्य में चन्द्रमा का जो वर्णन है, उसमें चन्द्रमा को एक लोक ही माना गया है। संसार की संरचना में उस विराट पुरुष ने अन्यान्य जितनी रचनाएँ की हैं, उनमें सूर्य और चन्द्रलोक की गणना सर्वप्रथम है। इसका स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद-संहिता (10/190/3) में दिया है तैत्तरीय संहिता में उल्लेख है कि-

द्युलोक में सूर्य की और नक्षत्रलोक में चन्द्रमा की प्रधानता है। आधुनिक वैज्ञानिक चन्द्रमा को नक्षत्रों से बहुत दूर मानते हैं, किन्तु चन्द्रमा का सम्बन्ध नक्षत्रों से अलग नहीं किया जा सकता। नक्षत्रों से चन्द्रमा का विशेष सम्बन्ध दर्शाने का यही तात्पर्य है कि रात में चन्द्रमा और नक्षत्रों के दर्शन स्पष्ट होते हैं, दिन में नहीं, क्यों कि दिन में सूर्य का तीव्र प्रकाश बाधक बनता है।

श्री सायणाचार्य ने ऋग्वेद की व्याख्या में एक स्थल पर लिखा है- 'चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है।' आधुनिक वैज्ञानिक भी इसे स्वीकारते हैं। सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा के प्रकाशित होने की बात ऋग्वेद में पहले ही कही गयी है।

चन्द्रमा पृथ्वी का ही एक उपग्रह माना जाता है। चन्द्रमा का पृथ्वी से सीधा और संनिकट का सम्बन्ध माना गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में हजारों वर्ष पूर्व यह स्वीकार कर लिया गया था कि चन्द्रमा में जो 'दृश्य भाग' धब्बे (कृष्ण) के रूप में दीख पड़ते हैं, वह पृथ्वी का हृदय है। चन्द्रमा के जिस काले धब्बे को ब्राह्मण ग्रन्थ में पृथ्वी का हृदय बताया गया है, वह पृथ्वी और चन्द्रमा के अटूट सम्बन्ध का द्योतक है- बोधक है। अथर्ववेद के एक सूक्त से अवगत होता है कि चन्द्रमा अपने सत्ताईस नक्षत्रों सहित अत्यन्त दीर्घ आयु वाला ग्रह है। 'वह दीर्घायु वाला ग्रह हमें दीर्घायु प्रदान करे।' इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है। कि जिन नक्षत्रों को आधुनिक वैज्ञानिक स्थिर और अत्यन्त प्राचीन मानते हैं उसे अथर्ववेद में बहुत पहले ही लिख दिया गया है। वेदों के अतिरिक्त उपनिषदों में भी चन्द्रमा को वैज्ञानिकों ने स्वीकारा है कि चन्द्रमा से औषधियों और पौधों की वृद्धि होती है। चन्द्रमा औषधियों का पोषक माना गया है।

श्रीमद्भागवत में महर्षि व्यास जी ने चन्द्रमा के विषय में विस्तार से लिखा है। चन्द्रमा सोलह कलाओं से युक्त मनोमय, अन्नमय, अमृतमय (प्राणमय) परम पुरुष परमात्मा का स्वरूप है। चन्द्रमा अपने तत्त्वों से देव, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप, वृक्ष और लता आदि समस्त प्राणियों का पोषक है। अतः चन्द्रमा को 'सर्वमय' कहा जाता है।

चन्द्रमा की उत्पत्ति भगवान् के मन से मानी गयी है- '**चन्द्रमा मनसो जातः।**' चन्द्रमा भगवान् का मन माना गया है। ज्योतिष-फलित-विचार से चन्द्रमा जीव के मन का '**कारक**' माना जाता है। वेदों में अनेक आख्यान तथा प्राचीन राजाओं की उपदेशक कथाएँ प्राप्त होती हैं। ऋग्वेद- 10/85 में पुरुरवा-उर्वशी सम्वाद वर्णित है। पुरुरवा एवं उर्वशी की कथा रोमांचक प्रेम का

प्राचीनकालिक निदर्शन है, जिसमें स्वर्ग की अप्सरा पृथ्वी के मानव से विवाह करती है। सशर्त किया हुआ यह विवाह शर्तभंग के बाद वियोग में परिणत होता है। स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी वापस चली जाती है।

पुरुरवा-

पुरुरवा समुद्र के तेरह द्वीपों के शासक थे। उन्होंने गंगा के उत्तर तट पर बसे हुए महर्षियों से प्रशंसित परम पवित्र प्रतिष्ठान (झूसी-प्रयाग) में राज्य किया था। तीनों लोकों में उनके समान यशस्वी दूसरा कोई न था। पुरुरवा बड़े विद्वान्, तेजस्वी, दानशील, यज्ञकर्ता, ब्रह्मवादी, पराक्रमी, शान्त, धर्मज्ञ, सत्यवादी तथा शत्रुओं के लिए दुर्धर्ष थे। वे निरन्तर अग्निहोत्र करते और यज्ञों के अनुष्ठान में संलग्न रहते थे। त्रेता के पूर्व सत्ययुग में एकमात्र प्रणव (ॐकार) ही वेद थे। सारे वेदशास्त्र उसी के अन्तर्भूत थे। नारायण एकमात्र देवता थे। अग्नि भी केवल एक थी और वर्ण भी केवल एक 'हंस' ही था। त्रेता के आरम्भ में पुरुरवा से ही वेदत्रयी (तीन वेद) और अग्नित्रयी (तीन अग्नि) का आविर्भाव हुआ। राजा पुरुरवा ने अग्नि को संतानरूप से स्वीकार करके गंधर्वलोक की प्राप्ति की।

पुरुरवा के यश को सुनकर ही इन्द्रलोक की प्रसिद्ध उर्वशी अप्सरा ने मान छोड़कर उसका वरण किया था। राजा द्वारा प्रेमदान मांगने पर उर्वशी ने अपनी तीन प्रतिज्ञाओं का पालन करने की बात कही। उसकी ये तीन प्रतिज्ञाएँ थीं- पहली, मेरे पुत्र रूप इन दो मेषों (भेड़ों) को आप कभी मेरी शय्या से दूर न कर सकेंगे। दूसरी, मैं कभी आपको नग्न न देख पाऊँ। तीसरी, केवल घृत (घी) का ही मेरा आहार होगा। यही मेरी तीन प्रतिज्ञाएँ हैं। तब राजा ने तीनों शर्तों को स्वीकार कर लिया।

तदनन्तर राजा पुरुरवा ने उर्वशी के साथ दिनों दिन बढ़ते आनन्द सहित कभी अलकापुरी के अन्तर्गत चैत्ररथ आदि वनों में और कभी सुन्दर कमलों से युक्त अति रमणीय मानस आदि सरोवरों में विहार करते हुए उनसठ वर्ष बिता दिये। उसके उपभोग सुख से प्रतिदिन अनुराग के बढ़ते रहने से उर्वशी को भी देवलोक में रहने की इच्छा नहीं रही।

इधर उर्वशी के बिना अप्सराओं, सिद्धों और गन्धर्वों को स्वर्गलोक रमणीय नहीं लगता था। अत: उर्वशी और पुरुरवा की प्रतिज्ञा के जानने वाले विश्वावसु ने एक दिन रात्रि के समय गन्धर्वों के साथ जाकर उनके शयनागार के पास से

एक मेष का हरण कर लिया। मेष का हरण होने पर शब्द सुनकर उर्वशी ने राजा से मेष लाने को कहा, लेकिन राजा नंगा देखने के भय से नहीं उठे। तब गन्धर्व दूसरा मेष भी लेकर चल दिये। तब उर्वशी ने रोना आरम्भ कर दिया। राजा अंधकार का समय जानकर तलवार लेकर नग्नरूप में गन्धर्वों के पीछे हो लिये, तभी गन्धर्वों ने अति उज्ज्वल बिजली उत्पन्न कर दी। उसके प्रकाश में राजा को वस्त्रहीन देखकर प्रतिज्ञा टूट जाने से उर्वशी तुरन्त ही वहाँ से चली गयी। उर्वशी के बिना राजा पागलों की भाँति घूमने लगे। उनकी भोग-इच्छा पूरी नहीं हुई थी। वह उर्वशी को पुनः प्राप्त करना चाहते थे। तब गन्धर्वों ने उन्हें उपाय बताया तथा एक अग्नि स्थाली (अग्नियुक्त-पात्र) देकर कहा कि- इस अग्नि के वैदिक विधि से गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि रूप तीन भाग करके इसमें उर्वशी के सहवास की कामना से यजन करो तो अवश्य अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी। राजा ने ऐसा ही किया। इस प्रकार जब त्रेतायुग का प्रारम्भ हुआ, तब उनके हृदय में तीनों वेद प्रकट हुए। एक अश्वत्थ (पीपल) को लेकर अरणि बनाई और गायत्री मंत्र का पाठ किया। उनके मंथन से तीनों प्रकार की अग्नियों को उत्पन्न कर उनमें वैदिक विधि से हवन किया तथा उर्वशी के सहवासरूप फल की इच्छा की। तदनन्तर उसी अग्नि से अनेक प्रकार के यज्ञों का यजन करते हुए उन्होंने गन्धर्व लोक प्राप्त किया और फिर उर्वशी से उनका कभी वियोग न हुआ। पूर्वकाल में एक ही अग्नि था, उस एक ही से इस मन्वन्तर में तीन प्रकार की अग्नियों का प्रचार हुआ। राजा पुरुरवा के उर्वशी द्वारा परम बुद्धिमान आयु, अमावसु, विश्वावसु, श्रुतायु, शतायु और अयुतायु नामक छः पुत्र हुए (महाभारत में- आयु, धीमान, अमावसु, दृढ़ायु, वनायु और शतायु मिलते हैं)। आयु इन सबमें ज्येष्ठ और श्रेष्ठ थे। आयु के वंशजों का राज्य बहुत काल तक प्रतिष्ठान में चलता रहा। अमावसु की वंश परम्परा में कुशाम्ब नाम के राजा हुए जिन्होंने कौशाम्बी नगरी बसाई। पुरुरवा के पुत्रों में आयु और अमावसु के वंश ही गौरवशाली हुए, शेष पुत्रों का विशेष वर्णन उपलब्ध नहीं होता है।

महर्षि विश्वामित्र-

राजा पुरुरवा के द्वितीय पुत्र अमावसु के वंश में पुरुरवा की पन्द्रहवीं पीढ़ी में धर्मात्मा विश्वामित्र उत्पन्न हुए। विश्वामित्र का दूसरा नाम विश्वरथ था। महर्षि विश्वामित्र के समान लगन के पुरुषार्थी ऋषि शायद ही कोई और हों। इन्होंने अपने पुरुषार्थ से क्षत्रियत्व से ब्रह्मत्व प्राप्त किया। राजर्षि से ब्रह्मर्षि बने,

सप्तर्षियों में अग्रगण्य हुए और देवमाता गायत्री के दृष्टा ऋषि हुए। ये तपस्या के धनी हैं। इन्हें गायत्री माता सिद्ध थी और उनकी पूर्ण कृपा इन्हें प्राप्त थी।

कुशिक वंश में महाराज गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए। वंश के नाम पर इन्हें कौशिक कहा जाता है। एक बार ये महर्षि वशिष्ठ के आश्रम पर सेना सहित पहुँचे। अपनी कामधेनु की शक्ति से वशिष्ठ ने इनका यथोचित सत्कार किया। उस गौ का प्रभाव देखकर राजा विश्वामित्र ने उसे लेना चाहा। जब वशिष्ठ ने स्वेच्छा से देना अस्वीकार कर दिया, तब वे बलपूर्वक उसे ले जाने लगे, किन्तु वशिष्ठ जी की अनुमति से कामधेनु ने अपने शरीर से लाखों सैनिक प्रकट करके इनकी सेना को पराजित कर दिया। अब ये तप करके वशिष्ठ को पराजित करने में लग गये। जब तपस्या करके शंकर जी द्वारा प्राप्त दिव्यास्त्र भी ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के ब्रह्मदण्ड में लीन हो गये, तब विश्वामित्र ने स्वयं ब्राह्मणत्व प्राप्त करने का निश्चय किया। विश्वामित्र जैसा महान तप कदाचित ही किसी ने किया हो, किन्तु अनेक बार काम, क्रोध या लोभ ने उनके बड़े कष्ट से उपार्जित तप का नाश कर दिया। एक बार इन्द्र की भेजी मेनका अप्सरा ने इन्हें खण्डित कर दिया जिसके द्वारा शकुन्तला कन्या उत्पन्न हुई। कण्व ऋषि ने उसका पालन किया तथा पुरुवंशी राजा दुष्यन्त के साथ उसका गान्धर्व विवाह हुआ। दोनों के संयोग से चक्रवर्ती भरत का जन्म हुआ जिसके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। दूसरी बार राजा त्रिशंकु वशिष्ठ जी का शाप होने पर भी इनके पास सशरीर स्वर्ग जाने के लिए आया। विश्वामित्र ने उसे यज्ञ कराना स्वीकार कर लिया। उस यज्ञ में दूसरे सब ऋषि आये, किन्तु वशिष्ठ जी के सौ पुत्रों में से कोई न आया। रोष में आकर विश्वामित्र ने वशिष्ठ के सभी पुत्रों को मार डाला तथा अपने तपोबल से त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग भेज दिया, और जब देवताओं ने उसे नीचे ढकेल दिया तब मध्य में ही वह रुका रहे, यह व्यवस्था विश्वामित्र ने तपोबल से कर दी। इस प्रकार बार-बार तप के नाश से भी वे निराश नहीं हुए। तपस्या के प्रभाव से वे इतने समर्थ हो गये कि दूसरी सृष्टि करने लगे। अनेकों नवीन प्राणी शरीर, जो ब्रह्मा की सृष्टि में नहीं थे, उन्होंने बनाये। ब्रह्मा ने उनको इस सृष्टि के कार्य से रोका और ब्राह्मणत्व प्रदान किया। वशिष्ठ ने उन्हें 'ब्रह्मर्षि' स्वीकार किया। काम, क्रोध और लोभ के कारण अनेक बार विघ्न पड़ने से विश्वामित्र ने इन विकारों को हमेशा के लिए छोड़ दिया। उनके आश्रम में रावण के अनुचर अनेक प्रकार के उत्पात करते थे। उनका नाश करने के लिए अयोध्या जाकर राजा दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण को मांगकर लाये। उन्होंने राक्षसों का संहार कर दिया। अनेक प्रकार के दिव्यास्त्र

तथा विद्याऐं इन्होंने दोनों भाईयों को प्रदान कीं। जनकपुर ले जाकर उनका विवाह कराया। महर्षि विश्वामित्र की परीक्षा रूपी कृपा प्रसाद से ही हरिश्चन्द्र राजा से राजर्षि हो गये और सबके लिए आदर्श सत्यवादी हरिश्चन्द्र बन गये। विश्वामित्र पिजवन के पुत्र सुदास राजा के पुरोहित थे। इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र का पूरा जीवन ही तप एवं परोपकार में व्यतीत हुआ। वे ब्रह्मर्षि की समता पाकर सप्तर्षियों में प्रतिष्ठित हुए हैं।

इन्हें अपनी समाधि से उत्पन्न प्रज्ञा से अनेक मंत्र-स्वरूपों का दर्शन हुआ, इसलिए ये 'मंत्र दृष्टा ऋषि' कहलाते हैं। ऋग्वेद के दस-मण्डलों में तृतीय मण्डल, जिसमें 62 सूक्त हैं, इन सभी सूक्तों (मंत्रों का समूह)- के दृष्टा ऋषि विश्वामित्र ही हैं। इसीलिए तृतीय मण्डल 'वैश्वामित्र मण्डल' कहलाता है। इस मण्डल में इन्द्र, अदिति, अग्नि पूजा, उषा, अश्विनी तथा ऋभु आदि देवताओं की स्तुतियाँ हैं और अनेक ज्ञान-विज्ञान, अध्यात्म आदि की बातें वर्णित हैं।

वैसे तो वेद की महिमा अनन्त है ही, किन्तु महर्षि विश्वामित्र द्वारा दृष्ट यह तृतीय मण्डल विशेष महत्व का है, क्यों कि इसी तृतीय मण्डल में ब्रह्म गायत्री का जो मूलमंत्र है, वह उपलब्ध होता है। इस ब्रह्म गायत्री मंत्र के मुख दृष्टा तथा उपदेशक आचार्य महर्षि विश्वामित्र हैं। यदि महर्षि विश्वामित्र न होते तो यह मंत्र हमें प्राप्त न होता। यह मंत्र सभी वेद मंत्रों का मूल है- बीज है, इसी से सभी मंत्रों का प्रादुर्भाव हुआ। इसीलिए गायत्री को '**वेदमाता**' कहा जाता है।

हरिवंश पुराण में इनके वंश- परिवार गोत्र आदि का विस्तार से वर्णन है। विश्वामित्र के देवरात आदि बहुत से पुत्र कहे गये हैं जो तीनों लोकों में विख्यात थे। देवश्रवा, कात्यायन गोत्र के प्रवर्तक कति और हिरण्याक्ष- ये तीनों शालावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। उनकी दूसरी स्त्री रेणु से रेणुमान्, सांकृति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जय तथा देवल उत्पन्न हुए। अष्टक (दृषद्वती या माधवी का पुत्र था), कच्छप, और हारित भी विश्वामित्र के पुत्र थे। इनके सौ पुत्रों का उल्लेख मिलता है जिनके नाम से कौशिक वंशी गोत्र चले हैं। वे अन्य ऋषियों के कुल में विवाह सम्बन्ध स्थापित करते रहे हैं। राजर्षि पौरव तथा ब्रह्मर्षि कौशिक के कुल में सम्बन्ध हुआ है। इस प्रकार इस वंश में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का परस्पर सम्बन्ध विख्यात है।

आयु वंश-

पुरुरवा का ज्येष्ठ पुत्र आयु था। आयु ने राहु की कन्या प्रभा (स्वर्भानुकुमारी) के गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न किये। वे सभी वीर और महारथी थे। उनके नाम क्रमशः नहुष, क्षत्रवृद्ध, रम्भ, रजि, और अनेना थे। ये तीनों लोकों में विख्यात थे। दूसरे पुत्र क्षत्रवृद्ध के वंश में बड़े प्रतापी महापुरुष उत्पन्न हुए- सुहोत्र, शौनक मुनि, काशीराज, राष्ट्र, दीर्घतपा, धन्वन्तरि, केतुमान्, भीमरथ, दिवोदास, प्रतर्दन, शत्रुजित, वत्स, ऋतध्वज, अलर्क, कुवलयाश्व, भार्ग और वीतिहोत्र आदि। यह वंश 'काश्यवंश' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों के लोग हैं। काशी में अपना राज्य स्थापित किया।

आयु पुत्र रजि ने पाँच सौ पुत्रों को उत्पन्न किया। वे सभी क्षत्रिय 'राजेय' नाम से विख्यात हुए। उनसे इन्द्र भी डरते थे। सोमवंश की वृद्धि करने वाले राजा रजि बड़े तेजस्वी थे। मन को वश में रखने वाले परम कान्तिमान एवं शक्तिशाली राजा रजि ने देवासुर संग्राम में समस्त दानवों का संहार करके देवताओं की खोयी हुई सम्पत्ति को फिर वापिस ला दिया। उन देव समान भूपाल रजि के ब्रह्मलोकवासी हो जाने पर उनके पुत्रों ने इन्द्र त्रिविष्टप नाम से प्रसिद्ध स्वर्गलोक पर बारम्बार आक्रमण करके उसे ले लिया। बहुत समय बीत जाने पर राज्य और यज्ञभाग से वंचित हो जाने पर अत्यन्त दुर्बल हुए इन्द्र ने गुरु बृहस्पति की शरण ली। बृहस्पति जी ने रजि के पुत्रों की बुद्धि में मोह उत्पन्न करने के लिए ऐसे शास्त्र का निर्माण किया, जो नास्तिकवाद (वर्तमान जैनमत) से परिपूर्ण तथा धर्म के प्रति अत्यन्त द्वेष उत्पन्न करने वाला था, जिसमें केवल तर्क के आधार पर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है। बृहस्पति के उस शास्त्र को सुनकर वे रजि के पुत्र जब नास्तिकवाद का आश्रय ले विवेकशून्य, रागोन्मत्त, धर्म के विपरीत चलने वाले, ब्रह्मद्रोही, शक्तिहीन और पराक्रम-शून्य हो गये, तब इन्द्र ने उन समस्त रजिपुत्रों को मारकर देवताओं का ऐश्वर्य और उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया।

आयु पुत्र अनेना के वंश में केवल ग्यारह पीढ़ी तक राजाओं के नाम- प्रतिक्षय, सृंजय, हर्यश्व, संकृति, क्षत्रधर्मा आदि मिलते हैं।

आयु पुत्र रम्भ के कोई सन्तान नहीं हुई। (श्रीमद्भागवत- 9.17) में कुछ विवरण मिलता है। रम्भ के पुत्र का नाम रभस, उससे गम्भीर और उससे अक्रिय का जन्म हुआ। अक्रिय की पत्नी से ब्राह्मण वंश चला।

आयु पुत्र नहुष-

आयु पुत्रों में नहुष सबसे ज्येष्ठ पुत्र था तथा सबसे प्रसिद्ध राजा हुआ। नहुष ने अपनी पत्नी पितृकन्या विरजा के गर्भ से छः महाबली पुत्र उत्पन्न किए जो इन्द्र के समान तेजस्वी थे। उनके नाम हैं- यति, ययाति, संयाति, आयाति, भव और सुयाति। श्रीमद्भागवत- 9.18 में- यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियति और कृति हैं। परम धर्मात्मा यति मोक्षधर्म का आश्रय ले ब्रह्मस्वरूप मुनि हो गये। शेष पाँच भाइयों में ययाति ने इस पृथ्वी को जीतकर दैत्यगुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी तथा असुरराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा को पत्नी रूप में स्वीकार किया। शेष चार पुत्रों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

एक बार की बात है जब इन्द्र ब्रह्महत्या से पीड़ित होकर स्वर्ग छोड़कर चले गये तब सब देवता और ऋषियों ने तेजस्वी, यशस्वी, धार्मिक, प्रतापी राजा नहुष का स्वर्गलोक में राज्याभिषेक कर दिया। इस प्रकार वह सम्पूर्ण लोकों का स्वामी हो गया। दुर्लभ स्वर्ग के राज्य को पाकर पहले निरन्तर धर्मपरायण रहने पर भी वह भोगी हो गया। उसके मन में अहंकार आ गया। एक दिन उसकी दृष्टि इन्द्रपत्नी पतिव्रता इन्द्राणी पर पड़ गयी। नहुष ने इन्द्राणी को प्राप्त करने का अनुचित प्रस्ताव किया। इन्द्राणी बहुत दिनों तक टालती रही। जब नहुष के अत्याचार की हद हो गयी, तब उसने देवगुरु बृहस्पति से सलाह ली और उनकी सलाह से कहला भेजा कि तुम सप्तर्षियों की सवारी पर चढ़कर आओ तो मैं वरण कर लूँगी। ऐश्वर्य एवं काम के मद में उन्मत्त होने के कारण नहुष ने सप्तर्षियों को बुलाकर उन्हें पालकी में लगा दिया। ऋषियों ने कभी पालकी ढोयी नहीं थी, चलने में किसी जीव जन्तु की हत्या न हो जाय इसलिए वे धीरे-धीरे चल रहे थे। नहुष उन्हें बार-बार डाँट रहा था- सर्प-सर्प अर्थात् चल-चल। कई बार कहने पर महर्षि अगस्त ने क्रोधित होकर कहा- तू बार-बार सर्प-सर्प कहता है, जा तू सर्प हो जा। नहुष उसी क्षण सर्प होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। ऋषियों ने इन्द्र से प्रायश्चित्त करवाकर उसकी ब्रह्महत्या छुड़ा दी और उसके पद पर बैठा दिया। शाप के पश्चात् नहुष दस हजार वर्ष तक अजगर बना रहा। फिर वह महर्षि अगस्त्य की शरणागत हुआ। तब महर्षि ने कहा कि जो व्यक्ति तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा, उसी के द्वारा तुम्हारी मृत्यु होगी। द्वापरयुग में पाण्डव वनवास के समय सर्परूपी नहुष ने भीम को पकड़ लिया, तब युधिष्ठिर ने नहुष के प्रश्नों के उत्तर देकर भीम और नहुष दोनों को मुक्त किया। (महाभारत- उद्योग पर्व) महाराज नहुष उच्चकोटि के शासनकर्ता थे।

राजा ययाति- राजा ययाति ब्रह्मा से दसवें पुरुष थे। (सूर्यवंश के अनुसार) ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति, दक्ष से अदिति (कश्यप को ब्याही), अदिति से सूर्य, सूर्य से वैवस्वत मनु, मनु से इला नामक कन्या, इला से पुरुरवा, पुरुरवा से आयु, आयु से नहुष और नहुष से ययाति- इस प्रकार ये प्रजापति से दसवें थे। चन्द्रवंशानुसार आठवें पुरुष थे- ब्रह्मा से अत्रि, अत्रि से चन्द्रमा, चन्द्रमा से बुध, बुध से पुरुरवा, पुरुरवा से आयु, आयु से नहुष तथा नहुष से ययाति। ये राजा नहुष के दूसरे पुत्र थे। नहुष पुत्र ययाति ने इस पृथ्वी को जीतकर शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी तथा असुरराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा को पत्नी रूप में स्वीकार किया। देवयानी ने यदु और तुर्वसु को जन्म दिया तथा शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु, अनु तथा पुरु- ये तीन पुत्र उत्पन्न किये। ययाति पर प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें एक अत्यन्त प्रकाशमान रथ प्रदान किया, जिसमें मन के समान वेगशाली, दिव्य, उत्तम एवं श्वेतकर्ण के अश्व जुते हुए थे। वह दिव्य रथ सोने का बना हुआ था। उसकी गति कहीं भी अवरुद्ध नहीं होती थी। उसी रथ के द्वारा वे अपनी भार्या को ब्याहकर लाये थे। उस श्रेष्ठ रथ के द्वारा दुर्धर्ष राजा ययाति ने छः रातों में ही सम्पूर्ण पृथ्वी तथा देवताओं और दानवों को भी जीत लिया था। राजा ययाति चक्रवर्ती सम्राट् था। ययाति-चरित्र का विस्तृत वर्णन महाभारत- आदि पर्व तथा उद्योग पर्व में मिलता है। कथा इस प्रकार है- राजा जनमेजय ने वैशम्पायन जी से पूछा कि- क्षत्रिय राजा ययाति ने शुक्राचार्य की कन्या, जो ब्राह्मणी थी, कैसे प्रतिलोम विवाह किया? यह अनहोनी घटना कैसे घटित हुई? तब वैशम्पायन ने कहा- राजन उन दिनों त्रिलोकी पर अधिकार करने के लिए देवता और असुर आपस में लड़-भिड़ रहे थे। देवताओं ने अपनी विजय के लिए अंगिरा पुत्र वृहस्पति को और असुरों ने भार्गव शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाया। ये दोनों ब्राह्मण भी आपस में बड़ी होड़ रखते थे। जब देवताओं ने असुरों को मार डाला, तब शुक्राचार्य ने उन्हें अपनी संजीवनी-विद्या (जो उन्हें भगवान् शिवजी से प्राप्त हुई थी) के बल से जीवित कर दिया। परन्तु असुरों ने जिन देवताओं को मारा था उन्हें बृहस्पति जीवित न कर सके। शुक्राचार्य संजीवनी-विद्या जानते थे, लेकिन बृहस्पति नहीं। इससे देवताओं को बड़ा दुःख हुआ। वे घबराकर बृहस्पति के बड़े पुत्र बुद्धिमान कच के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि आप हमारी सहायता कीजिये। शुक्राचार्य के पास जो संजीवनी-विद्या है, उसे आप प्राप्त कर लीजिये। हम लोग आपको यज्ञ में भागीदार बना लेंगे। शुक्राचार्य आजकल असुरराज वृषपर्वा के यहाँ रहते हैं। देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर कच शुक्राचार्य के पास गया और उनसे

निवेदन किया कि- 'मैं महर्षि अंगिरा का पौत्र और देवगुरु बृहस्पति का पुत्र हूँ। मेरा नाम कच है। आप मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार कीजिये, मैं एक हजार वर्ष तक आपके पास रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करुँगा। शुक्राचार्य ने गुरु बृहस्पति का सम्मान रखते हुए उसे अपने पास रहने की स्वीकृति दे दी। कच ने शुक्राचार्य की आज्ञानुसार-व्रत ग्रहण किया। वह अपने गुरुदेव को तो खुश रखता ही, गुरुपुत्री देवयानी को भी सन्तुष्ट रखता। पाँच सौ वर्ष बीत जाने पर दानवों को यह बात मालूम हुई कि कच का क्या अभिप्राय है। उन्होंने चिढ़कर गाय चराते समय बृहस्पति जी से द्वेष होने के कारण और संजीवनी विद्या की रक्षा के लिए कच को मार डाला और उसके टुकड़े-टुकड़े करके भेड़ियों को खिला दिया। गायें बिना रक्षक के ही अपने स्थान पर लौट आयीं। देवयानी ने देखा कि गौऐं तो आ गयी, पर कच नहीं आया। तब उसने शुक्राचार्य को यह बात बतायी तथा कच के विषय में बहुत चिन्तित होने लगी। तब पिता ने पुत्री को धैर्य बंधाया तथा संजीवनी विद्या का प्रयोग करके कच को पुकारा। विद्या के प्रभाव से कच भेड़ियों के शरीर को फाड़कर निकल आया और जीवित होकर शुक्राचार्य और देवयानी के पास आ गया। देवयानी के पूछने पर उसने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इसी प्रकार असुरों के मारने पर दूसरी बार भी शुक्राचार्य ने कच को जिला दिया।

तीसरी बार असुरों ने नयी युक्ति की। उन्होंने कच को काटकर आग में जलाया और उसके शरीर की राख वारुणी (देव-शराब) में मिलाकर शुक्राचार्य को पिला दी। देवयानी ने पिता से पूछा कि- कच फूल लेने के लिए गया था, लौटा नहीं। कहीं वह फिर तो नहीं मर गया। मैं उसके बिना जी नहीं सकती। शुक्राचार्य ने कहा, बेटी! मैं क्या करुँ? असुर उसे बार-बार मार डालते हैं। देवयानी के हठ करने पर उन्होंने फिर संजीवनी विद्या का प्रयोग किया और कच को बुलाया। कच ने भयभीत होकर उनके पेट के भीतर से अपनी स्थिति बतलायी। शुक्राचार्य ने कहा- बेटा! तुम सिद्ध हो। देवयानी तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न है। यदि तुम इन्द्र नहीं हो तो लो, मैं तुम्हें संजीवनी विद्या सिखाता हूँ। तुम इन्द्र नहीं ब्राह्मण हो, तभी तो मेरे पेट में अभी तक जी रहे हो। लो, यह विद्या और मेरा पेट फाड़कर निकल आओ। तुम मेरे पेट में रह चुके हो, इसलिए सुयोग्य पुत्र के समान मुझे फिर जीवित कर देना। कच ने वैसा ही किया और शुक्राचार्य का पेट फाड़कर बाहर निकला तथा मरे हुए शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या द्वारा जीवित कर दिया।

शुक्राचार्य को यह जानकर बड़ा क्रोध हुआ कि धोखे में शराब पीने के कारण मेरे विवेक का नाश हो गया और मैं ब्राह्मणकुमार कच को ही पी गया। उन्होंने उस समय यह घोषणा की कि- 'आज से यदि जगत् का कोई भी ब्राह्मण शराब पियेगा तो वह धर्म-भ्रष्ट हो जायेगा और उसे ब्रह्महत्या लगेगी। इस लोक में तो वह कलंकित होगा ही, उसका परलोक भी बिगड़ जायेगा। ब्राह्मणो! और मनु की सन्तानों! सावधानी के साथ सुन लो! आज से मैंने ब्राह्मण के लिए यह धर्ममर्यादा सुनिश्चित कर दी है।' कच संजीवनी विद्या प्राप्त करके एक हजार वर्ष पूरे होने तक उन्हीं के पास रहा। समय पूरा होने पर शुक्राचार्य ने उसे स्वर्ग जाने की आज्ञा दे दी।

जब कच वहाँ से चलने लगा तब देवयानी ने कहा ऋषिकुमार! तुम सदाचार, कुलीनता, विद्या, तपस्या और जितेन्द्रियता के उज्ज्वल आदर्श हो। अब तुम स्नातक हो चुके हो, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ, अब विधिपूर्वक तुम मेरा पाणिग्रहण करो। कच ने कहा- बहिन! शुक्राचार्य जैसे तुम्हारे पिता है, वैसे मेरे भी। तुम मेरे लिए पूजनीय हो। जिस गुरुदेव के शरीर में तुम निवास कर चुकी हो, उसी में मैं भी रह चुका हूँ। तुम धर्म के अनुसार मेरी बहिन हो। मैं तुम्हारे स्नेहपूर्ण वात्सल्य की छत्रछाया में बड़े स्नेह से रहा। मुझे घर लौट जाने की अनुमति और आशीर्वाद दो। देवयानी ने कहा- 'मैंने तुमसे प्रेम की भिक्षा मांगी है। यदि तुम धर्म और काम की सिद्धि के लिए मुझे अस्वीकार कर दोगे तो तुम्हारी संजीवनी विद्या सिद्ध नहीं होगी।' कच ने कहा- 'बहिन! मैंने गुरु पुत्री समझकर ही अस्वीकार किया है। मैंने तुमसे ऋषि धर्म की बात कही थी। तुमने मुझे धर्म के अनुसार नहीं, काम के वश होकर शाप दिया है, जाओ तुम्हारी कामना कभी पूरी नहीं होगी। कोई भी ब्राह्मणकुमार तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं करेगा। मेरी विद्या सिद्ध नहीं होगी, इससे क्या, मैं जिसे सिखाऊँगा, उसकी विद्या सफल होगी।' ऐसा कहकर कच स्वर्ग में चला गया। देवताओं ने अपने गुरु बृहस्पति और कच का अभिनन्दन किया, कच को यज्ञ का भागीदार बनाया और यशस्वी होने का वरदान दिया। इस प्रकार कच और देवयानी एक दूसरे द्वारा शापित हुए।

संसार में जो भी घटना घटित होती है उसका एक निश्चित कारण ईश्वरीय विधान के अनुसार पूर्व-निर्धारित होता है। आगे की कथा का विस्तार से श्रीमद्भागवत्- 9.18 में वर्णन किया गया है। यहाँ पर भी राजा परीक्षित् ने व्यास-पुत्र शुकदेव जी से यही प्रश्न किया कि- 'मुनिवर! महर्षि शुक्राचार्य तो ब्राह्मण थे और राजा ययाति क्षत्रिय। फिर ब्राह्मण कन्या और क्षत्रिय-वर का

प्रतिलोम (उलटा) विवाह कैसे हुआ? (शास्त्रानुसार उच्च-वर्ण की कन्या तथा निम्न-वर्ण का वर -यह विवाह प्रतिलोम विवाह कहलाता है, तथा उच्च-वर्ण का वर तथा निम्न-वर्ण की कन्या अनुलोम-विवाह कहलाता है एवं श्रेष्ठ माना जाता है) तब शुकदेव जी ने कहा- राजन्! दानवराज वृषपर्वा की शर्मिष्ठा नाम की एक बड़ी मानिनी कन्या थी। वह एक दिन अपनी गुरुपुत्री देवयानी और सखियों के साथ अपनी राजधानी के श्रेष्ठ उद्यान में एक सुन्दर सरोवर पर पहुँची और अपने वस्त्र उतारकर जल क्रीड़ा करने लगी। उसी समय उधर से पार्वती जी के साथ बैल पर चढ़े हुए शंकर जी आ निकले। उन्हें देखकर सभी कन्याएँ शरमा गयीं और उन्होंने सरोवर से निकलकर झटपट अपने वस्त्र पहन लिए। जल्दबाजी के कारण शर्मिष्ठा ने अनजान में देवयानी के वस्त्र पहन लिए। इस पर देवयानी क्रोधित हो गयी तथा शर्मिष्ठा के लिए अपमानित शब्द बोलने लगी। जब देवयानी उसे गाली देने लगी तो शर्मिष्ठा ने भी उसको अपमान भरी गालियों से अपमानित किया और क्रोध वश उसके वस्त्र छीनकर कुएँ में ढकेल दिया।

शर्मिष्ठा के चले जाने के बाद संयोगवश शिकार खेलते हुए राजा ययाति उधर आ निकले। उन्हें प्यास लगी थी, इसलिए कुएँ में पड़ी हुई देवयानी को उन्होंने देख लिया। उस समय वह वस्त्रहीन थी, इसलिए राजा ने अपना दुपट्टा उसे दे दिया और दयाभाव से अपने हाथ से उसका हाथ पकड़कर उसे बाहर निकाल लिया। तब देवयानी ने प्रेमभरी वाणी में ययाति से कहा- हे राजन्! आज आपने मेरा हाथ पकड़ा, अब कोई दूसरा इसे न पकड़े। यह भगवान् का ही किया हुआ सम्बन्ध समझना चाहिए। पूर्व में मैंने बृहस्पति-पुत्र कच को शाप दे दिया था, इस पर उसने भी मुझे शाप दे दिया। इसी कारण ब्राह्मण मेरा पाणिग्रहण नहीं कर सकता। ययाति ने देवयानी को समझाया कि यह सम्बन्ध प्रतिकूल है, लेकिन देवयानी ने जिद पकड़ ली। राजा ने प्रारब्ध समझकर उसकी बात मान ली और कहा कि यदि तुम्हारे पिता इसकी सहमति दें तो मैं यह विवाह कर सकता हूँ।

राजा ययाति जब चले गये तब देवयानी रोती पीटती अपने पिता शुक्राचार्य के पास पहुँची और सारी घटना को कह सुनाया। शर्मिष्ठा के व्यवहार से शुक्राचार्य का मन बड़ा दु:खी हुआ, अत: अपनी कन्या देवयानी को लेकर वे नगर से निकल पड़े। जब वृषपर्वा को यह बात मालूम हुई तो वह शुक्राचार्य के पास पहुँचकर उनके चरणों में गिर गया। तब शुक्राचार्य ने वृषपर्वा से कहा कि अपनी पुत्री का अपमान सहन नहीं कर सकता, इसलिए इसकी जो इच्छा हो,

तुम पूरी कर दो, फिर मुझे लौट चलने में कोई आपत्ति न होगी। वृषपर्वा राजा शुक्राचार्य जी के तेज, शक्ति और प्रभाव को जानता था। तदनन्तर देवयानी से उसके मन की बात पूछी गयी तो उसने कहा- 'पिताजी मुझे जिस किसी को दे दें और मैं जहाँ कहीं जाऊँ, शर्मिष्ठा अपनी सहेलियों के साथ दासी के समान आजीवन मेरी सेवा के लिए चले।' शर्मिष्ठा ने अपने परिवार का संकट और उनके कार्य का गौरव देखकर देवयानी की बात स्वीकार कर ली। वह अपनी सहेलियों के साथ दासी के समान उसकी सेवा करने लगी। शुक्राचार्य ने देवयानी की इच्छानुसार उसका विवाह राजा ययाति के साथ कर दिया और शर्मिष्ठा को दासी के रूप में देकर उससे कह दिया कि- 'राजन्! इसको अपनी शय्या पर कभी न आने देना।' इसके बाद राजा ययाति देवयानी और सखियों सहित शर्मिष्ठा को लेकर अपनी राजधानी आ गये। इन्द्र द्वारा दिये गये दिव्यरथ के द्वारा वे अपनी भार्या को ब्याहकर लाये थे।

कुछ ही दिनों बाद देवयानी पुत्रवती हो गयी। उसको पुत्रवती देखकर शर्मिष्ठा ने भी अपने ऋतुकाल में ययाति से एकान्त में सहवास की याचना की। शर्मिष्ठा की याचना को धर्म संगत मानकर राजा ने उसे ऋतुदान दिया। इस प्रकार देवयानी के दो पुत्र हुए- यदु और तुर्वसु तथा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के तीन पुत्र हुए- द्रुह्यु, अनु और पुरु। जब मानिनी देवयानी को यह मालूम हुआ कि शर्मिष्ठा को भी मेरे पति द्वारा ही गर्भ रहा था, तब वह क्रोध से बेसुध होकर अपने पिता के घर चली गयी। ययाति ने देवयानी को काफी मनाने की चेष्टा की और उसके पीछे-पीछे वहाँ तक गये भी, परन्तु मना नहीं सके। शुक्राचार्य ने ययाति को शाप दिया कि- 'तू स्त्री लम्पट और झूठा है, जा, तेरे शरीर में वह बुढ़ापा आ जाय जो मनुष्यों को कुरूप कर देता है।' ययाति ने कहा- 'ब्रह्मन! आपकी पुत्री के साथ विषय-भोग करते-करते मेरी तृप्ति नहीं हुई है और इस शाप से तो आपकी पुत्री का भी अनिष्ट ही है।' इस पर शुक्राचार्य ने कहा- 'अच्छा जाओ, जो प्रसन्नता से तुम्हें अपनी जवानी दे दे, उससे अपना बुढ़ापा बदल लो।' शुक्राचार्य ने जब ऐसी व्यवस्था दे दी, तब अपनी राजधानी में आकर ययाति ने अपने बड़े पुत्र यदु से अपना बुढ़ापा लेकर जवानी देने को कहा। यदु ने पिता के जवानी देने से मना कर दिया। इसी प्रकार तुर्वसु, द्रुह्यु, और अनु ने भी पिता की आज्ञा अस्वीकार कर दी। सच पूछो तो उन पुत्रों को धर्म का तत्त्व मालूम नहीं था। वे इस अनित्य शरीर को ही नित्य माने बैठे थे। अब ययाति ने अवस्था में सबसे छोटे किन्तु गुणों में बड़े अपने पुत्र पुरु से जवानी की याचना की। पुरु ने अपना पुत्र-धर्म समझकर पिता को अपनी

जवानी देकर उसका बुढ़ापा ले लिया। राजा ययाति उसकी जवानी लेकर पूर्ववत विषयों का सेवन करने लगे। वे सातों द्वीपों के एक छत्र सम्राट् थे। पिता के समान भलीभाँति प्रजा का पालन करते थे। उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों के साथ दीर्घकाल तक विहार करके चैत्ररथ वन में जाकर विश्वाची अप्सरा के साथ रमण किया। राजा ययाति ने समस्त वेदों के प्रतिपाद्य सर्वदेव स्वरूप यज्ञ पुरुष भगवान् श्रीहरि का बहुत से बड़ी-बड़ी दक्षिणा वाले यज्ञों से यजन किया। राजा ययाति ने सौ राजसूय, सौ अश्वमेध, हजार पुण्डरीक याग, सौ वाजसेय यज्ञ, हजार अतिरात्र याग तथा चातुर्मास्य और अग्निष्टोम आदि नाना प्रकार के यज्ञ किये थे और ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा दी थी। अनेक प्रकार के यज्ञों से परमात्मा का पूजन करके उन्होंने पृथ्वी के चार भाग किये और उन्हें ऋत्विज, अध्वर्यु, होता तथा उद्गाता- इन चारों को बांट दिया।

- महाभारत- द्रोण पर्व

इस प्रकार एक हजार वर्ष तक उन्होंने स्वच्छन्द इन्द्रियों के साथ मन को जोड़कर उसके प्रिय विषयों को भोगा, परन्तु इतने पर भी चक्रवर्ती सम्राट् ययाति की भोगों से तृप्ति न हो सकी। एक दिन जब अपने अध:पतन पर दृष्टि गयी तब उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ। ययाति ने अपनी पत्नी देवयानी को समझाकर पुरु की जवानी उसे लौटा दी और उससे अपना बुढ़ापा ले लिया। यह इसलिए कि अब राजा को ज्ञान हो गया था कि भोगों को भोगने की इच्छा आग में घी डालने के समान होती है, जैसे आग में घी डालने से अग्नि और अधिक प्रज्ज्वलित होती है, वैसे ही विषयों को भोगने से उनकी इच्छा अधिक बलवती होती है। इसके बाद उन्होंने दक्षिण-पश्चिम में यदु, दक्षिण-पूर्व में द्रुह्यु, पश्चिम में तुर्वसु, और उत्तर में अनु को सीमान्त प्रदेशों का राज्य दे दिया। सारे भूमण्डल की समस्त सम्पत्ति के योग्यतम पात्र पुरु को अपने मध्य भाग (गंगा-यमुना के बीच के देश का राज्य) पर बिठाकर वे वन में चले गये। उन्होंने माया-मल से रहित परब्रह्म परमात्मा वासुदेव में मिलकर वह भागवती गति प्राप्त की, जो बड़े-बड़े भगवान् के प्रेमी भक्तों को मिलती है। देवयानी ने भी सब पदार्थों की आसक्ति त्याग दी और अपने मन को भगवान् श्रीकृष्ण में तन्मय करके बन्धन के हेतु लिंग शरीर का परित्याग कर दिया- वह भगवान् को प्राप्त हो गयी।

राजा ययाति पूर्ववर्ती राजाओं के सदाचार का पालन करते हुए अनेक हजार वर्षों की आयु पूरी करके मृत्यु को प्राप्त हुए। उनके पुत्रों में से दो पुत्र नरश्रेष्ठ यदु और पुरु उस कुल में वंश प्रवर्तक हुए।

टिप्पणी– कानपुर से लगभग तीन मील दूर पर एक जाजपुर नामक स्थान है। लोग इसे ही ययाति का स्मारक बताते हैं। ऐसे ही राजपूतानें में सांभर झील के पास एक कुआँ है, जिसका नाम देवदानी है। लोग कहते हैं कि ये वहीं कुआँ है जिसमें शर्मिष्ठा ने देवयानी को ढकेल दिया था।

राजा ययाति के बारे में एक कथा महाभारत– उद्योग पर्व में भी मिलती है। इस वृत्तान्त के अनुसार राजा ययाति की पुत्री माधवी द्वारा चार कुलों की स्थापना का उल्लेख है। यद्यपि अन्य कहीं भी ययाति पुत्री माधवी का उल्लेख नहीं मिलता।

टिप्पणी– 1. पुराणों में कहीं–कहीं उल्लेख मिलता है कि राजा ययाति ने अपने बड़े पुत्र यदु को शाप दिया था कि तेरी सन्तान सदा राज्य से वंचित रहेगी (हरिवंश पुराण)। प्रायः लोग इसका अर्थ यह लगाते है कि यदु और उसकी सन्तान भविष्य में कभी राजा न बन सकेगी। जब कि यह एक भ्रम है और श्रीमद्भागवत में ऐसा कोई विवरण प्राप्त नहीं है। अधिकांश स्थानों में मिलता है कि पिता ययाति के द्वारा यदु से जवानी मांगने पर यदु द्वारा अस्वीकार करने पर ययाति ने उसे अपने मूल साम्राज्य प्रतिष्ठानपुर के राज्याधिकार से वंचित कर उसे दक्षिण–पश्चिम का भाग दिया था। यद्यपि यदु से लेकर आजतक यदुवंश में अनेक चक्रवर्ती सम्राटों तथा राजाओं का इतिहास प्राप्त होता है।

2. यदुवंश में उत्पन्न सन्तानोत्पत्ति का द्विजाति–संस्कार होता है, क्यों कि माता (देवयानी) ब्राह्मणी तथा पिता (ययाति) क्षत्रिय था। उदाहरणार्थ– श्रीकृष्ण तथा बलराम का कुलगुरु गर्गाचार्य द्वारा द्विजाति संस्कार किया गया था।

3. सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के आपसी सम्बन्ध आदिकाल से ही चले आ रहे हैं।

4. महर्षि अत्रि से लेकर राजा ययाति तक चन्द्रवंश कहलाता है। उसके आगे चन्द्रवंश ययाति पुत्र यदु तथा छोटे पुत्र पुरु–दो प्रमुख शाखाओं में विभाजित हो गया (शाखाएँ–यदुवंश तथा पुरुवंश)। भविष्य में यदुवंश की अनेक शाखाएँ चली तथा पुरुवंश ही कुरुवंश (कौरव–पाण्डव) कहलाया तथा कई शाखाएँ चलीं।

5. चन्द्रवंश की उत्पत्ति सूर्यवंश के योग से हुई है तथा कई पीढ़ी बाद हुई है।

ऋग्वेद में राजाओं का वर्णन-

ऋग्वेद में सुदास, दिवोदास, पृथुश्रवा, शार्यात, सुश्रवा, मान्धाता, स्वनय, तृत्सु, भरतगण, शान्तनु, इक्ष्वाकु, नहुष, ययाति, दुष्यन्त, भरत, पक्थ, पुरुरवा, यदु, तुर्वसु, ऋजिस्वान, तुग्र, भुज्यु, पुरुकुत्स, पुरुमित्र, अन्तक, त्रसदस्यु, जाहुष, पृथु, पृथि आयु, श्रुतरथ, मनु, अनु, द्रुह्यु, पेदु, सोमक, अभ्यवर्ती, असंग, कशु, वेन, वरु, राम आदि राजाओं का उल्लेख मिलता है। इनका संक्षिप्त विवरण जो उपलब्ध है, उससे ज्ञात होता है कि ये विजेता, प्रतापी, प्रजावत्सल, दानी और धर्मनिष्ठ थे। बड़े-बड़े राज्यों के अधिपति थे। इन्हीं ऋग्वेदीय राजाओं के संक्षिप्त विवरणों का विशद व्याख्यान रामायण, महाभारत, पुराणों और संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों में किया गया है। परन्तु जो लोग वेदों को नित्य मानते है, वे वेदों में आये नामों को ऐतिहासिक और भौगोलिक न मानकर योगिक अर्थ में लेते हैं। आश्चर्य है कि साम्प्रदायिक आग्रह के कारण संसार की महान आर्यजाति का महान इतिहास उसके आदि ग्रन्थों से ही उड़ा दिया जाता है। निष्पक्ष होकर कोई स्वाध्याय करे तो उसको संहिता मंत्रों, ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में दर्पण की तरह सैंकड़ों इतिहास मिलेंगे।

सातवें मण्डल का 32 तथा 33 वाँ सूक्त महत्वपूर्ण है जिसमें भरतों (सूर्य-वंशी) तथा त्रत्सुओं (चन्द्रवंशी दस राजा) के युद्ध का वर्णन है। दासराज युद्ध-परुष्णी नदी के तट पर पंजाब में हुआ था। भरतों के सुदास राजा से दस राजा लड़ने को आये थे। दस राजाओं में पांच आर्य तथा पांच अनार्य थे। आर्य राजाओं में पांचों ययाति पुत्र- यदु, तुर्वसु, अनु, द्रुह्यु, तथा पुरु थे और अनार्यों में पक्थ, भलान, भनन्तलिन, विपाणि और शिव के नाम आते हैं। ये दोनों समूह पंचजन कहलाते हैं।

दशम मण्डल के 133वें सूक्त में सर्वाधिक उल्लेख सुदास का है। ये सूर्यवंशी राजा दिवोदास या पिजवन का पुत्र था। दासराज युद्ध के विजयी दल के नायक ये ही थे। सुदास एक शक्तिशाली राजा था। 'यदु' और 'तुर्वसु' (चन्द्रवंशी) दिवोदास के शत्रु थे। ऋग्वेद में तुर्वसु के स्थान पर कहीं-कहीं तुर्वश नाम भी आया है इन दोनों ने ययाति का कहना नहीं माना, इसलिए ययाति ने इनको अभिषिक्त नहीं किया। परन्तु मंत्र में कहा गया है कि ययाति के शाप से अनाभिषिक्त प्रसिद्ध राजा यदु और तुर्वश को शचीपति विद्वान् इन्द्र ने अभिषेक योग्य बनाया था। ययाति के पुत्र यदु और तुर्वश पर इन्द्र प्रसन्न रहते थे (1/54/6)। इन्द्र इनका कल्याण और पालन करते थे (1/174/9)। सूक्तों

से ज्ञात होता है कि उस समय सूर्यवंशियों और चन्द्रवंशियों में शत्रुता थी। इतिहासकार कहते हैं कि दासराज युद्ध में सुदास के विरुद्ध दस चन्द्रवंशी राजा थे। इन्द्र, सुदास, वशिष्ठ और तृत्सु-भरत आदि तथा इनके अनुगामियों द्वारा इन दसों राजाओं और उनके सम्बन्धियों का विनाश हुआ था। ये सभी ऐतिहासिक राजा हैं जिनका पुराणादि में उल्लेख पाया जाता है। ऋग्वेद में इन राजाओं का आपसी युद्ध 'दाशराज युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है।

टिप्पणी- यदु और तुर्वसु तो महाराज ययाति के ही पुत्र हैं। उनके पाँच पुत्र थे जिनमें से द्रुह्यु सुदासों द्वारा मारा गया। यदु के यदुवंशी यादव हुए, जिनके वंश में भगवान् श्रीकृष्ण ने जन्म लिया। तुर्वसु इन्हीं दासों के भय से भारत से बाहर तुर्क देशों में चला गया। वहाँ के वातावरण से प्रभावित हुआ और उसी का सारा विस्तार मध्यपूर्व का राजवंश एवं प्रजा है। वातावरण के प्रभाव से उनका धर्मान्तरण भी हो गया, फिर भी चन्द्रवंश के मूल पुरुष चन्द्र के प्रति उनकी निष्ठा बनी रही, जो आज भी ईद आदि के अवसर पर चन्द्रदर्शन की उनकी विशेष उत्सुकता से स्पष्ट है। अनजान में अपने वंश के इस मूलपुरुष (चन्द्र) को उन्होंने अपने ध्वज पर भी सम्मान्य स्थान दिया है।

ऋग्वैदिक सभ्यता के राजनीतिक संगठन के रूप में पांच जनों के नाम अक्सर मिलते हैं- यदु, अनु, द्रुह्य, पुरु, तुर्वस (ययाति पुत्र)। इन्हें 'पंचजन' कहा गया है। जन के अधिपति को राजा कहा जाता था।

- (कल्याण- 'मानवताङ्क', वर्ष-33, 'ऋग्वेद और राजन्य'

- पं. श्रीराम- गोविन्द त्रिपाठी, पृष्ठ-552-559 लेख से उद्धृत)

यदुवंश

महाराज यदु-

यह वंश चन्द्रवंश की उच्चकोटि का है। यदुवंश संसार का सबसे महान वंश है। यदुवंश का इतिहास भी सबसे महान तथा विस्तृत है। इसी वंश में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ने श्रीकृष्ण के रूप में जन्म लेकर जगत के कल्याणार्थ आसुरी वृत्तियों का नाशकर जगत को कल्याण मार्ग का शास्वत ज्ञान प्रदान किया। वेद पुराणों में इसकी महिमा गायी जाती है, साथ ही इतिहासकारों ने भी इस वंश की महिमा का वर्णन किया है। ययाति चन्द्रवंश के विख्यात महापुरुष थे। उन्हें भारत का प्रथम सम्राट् माना जाता है। उनका शासन देश के विशाल भू-भाग पर था। उनकी राजधानी प्रतिष्ठान थी। विद्वानों के मतानुसार प्रयाग (इलाहाबाद) के निकट वर्तमान झूसी और पोहन गाँव का क्षेत्र प्रतिष्ठान था। ययाति के पाँच पुत्र थे- यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु। ययाति का ज्येष्ठ पुत्र यदु था, किन्तु राजा अपने सबसे छोटे पुत्र पुरु से अधिक स्नेह करता था। उसके फलस्वरूप उसने यदु को राज्याधिकार (मूल गद्दी) से वंचित कर पुरु को अपना उत्तराधिकारी बनाया था। जब ययाति ने वृद्ध होने पर अवकाश ग्रहण किया, तब उसने अपने राज्य का प्रधान भाग, जो गंगा-यमुना के दो आब में था और जिसकी राजधानी प्रतिष्ठान थी, पुरु को अर्पित कर दिया। पुरु के वंशज पुरुवंशी, कुरुवंशी (कौरव) कहलाये। यदु को दक्षिण-पश्चिम का भाग मिला। यदु ही यदुवंश का मूलपुरुष था, जिसके नाम पर इस वंश और जाति के लोग यदुवंशी, यादव अथवा जादौं कहे जाते हैं। इनकी एक प्रमुख शाखा हैहय वंशियों के नाम से प्रसिद्ध हुई। द्रुह्यु को उत्तर-पश्चिम का भाग मिला। उसके वंशज भोज कहलाये। तुर्वसु और अनु को राज्य के वे भाग दिये गये जहाँ अनार्यों का निवास था, अत: वे दोनों क्रमश: यवनों और म्लेच्छों के अधिपति हुए थे। भारत का दक्षिण-पश्चिमी भाग यदु को प्राप्त हुआ था, इस प्रकार यदुवंशियों का आरम्भिक निवास-स्थल भारत का वह भाग था, जहाँ उन्होंने दशार्ण, माहिष्मती, अवन्ती और चेदि के प्रसिद्ध राज्य स्थापित किये थे। द्रुह्यु का अधिकार यमुना तट के उस प्रदेश पर भी था, जो बाद में शूरसेन के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। इस प्रकार भोजगण शूरसेन के प्रथम ज्ञात शासक कहे जा सकते हैं। यदु के वंश में शशबिन्दु नामक एक प्रतापी राजा हुआ। उसने द्रुह्यु-वंशी भोजों को पराजित कर उनके राज्य पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार शूरसेन प्रदेश भी यदुवंशियों के शासन में

आ गया। उपरोक्त विवरण से राजा ययाति तथा यदु के राज्य विस्तार का अनुमान किया जा सकता है।

टिप्पणी– 1. यदु के इतिहास की एक प्रमुख घटना सूर्यवंश के राजाओं के साथ परम्परागत संघर्ष है। यदु की सन्तानों ने शक, पह्लव, पारद, यवन, कम्बोज तथा बर्बर आदि जातियों के साथ मिलकर एक राज्य संघ की स्थापना करके अपने अधिक सांस्कृतिक एवं परम्परावादी शत्रु राजा सगर (सूर्यवंशी) के पिता को अपदस्थ करने का प्रयास किया था। राजा सगर ने समस्त हैहय यादवों का नाश कर दिया और उसने उनकी म्लेच्छ मित्र जातियों का भी संहार कर दिया होता, किन्तु ऋषि वशिष्ठ के हस्तक्षेप के कारण ऐसा न हो सका। इसी समय यदु की राजनीतिक शक्ति तथा सामाजिक उत्कर्ष का पराभव प्रारम्भ हुआ था।

2. सूर्यवंशी राजा दिलीप ने पुनः एक राज्य की स्थापना की। इस समय अयोध्या राज्य का नाम बदलकर कौशल हो गया था। दिलीप के उत्तराधिकारियों– रघु, अज, दशरथ और राम– के समय में इसका विशेष उत्कर्ष हुआ। उनके पश्चात् इतिहास में अयोध्या का कोई महत्वपूर्ण भाग नहीं रहा। इसी समय यादव शक्तिशाली हुए। बहुत दिनों तक उनका प्रदेश अनेक छोटे–छोटे राज्यों में बँटा हुआ था, किन्तु सुप्रसिद्ध राजा मधु ने उन्हें एक सूत्र में बांधा। कहा जाता है कि उसका राज्य गुजरात से यमुना तक फैला हुआ था। उसके वंशज मधु अथवा माधव कहलाये। किन्तु यह विशाल यादव राज्य पुनः सात्वत् के चार बेटों में बंट गया। उनमें से अन्धक और वृष्णि ने प्रमुख राजवंशों की स्थापना की। अंधक यादवों की प्रमुख राजधानी मथुरा में राज्य करता था और वृष्णि संभवतः द्वारका (गुजरात) में। तत्पश्चात् शूरसेन प्रदेश में स्थापित हुए।

– प्राचीन भारत– डा० रमेशचन्द्र मजूमदार, पृ. 54

3. यादवों की सर्वाधिक आकर्षक तथा प्रभावशाली विशेषता उनका लोकतंत्रात्मक–राज्य–संघ था। जो जातीय भावना के साथ प्रतिबद्ध भी था। यद्यपि यादव अनेक दूर के वंशों तथा जातियों में विभाजित थे फिर भी एक दूसरे के साथ वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना भी होती थी, और वे एक ही पिता की सन्तान के रूप में दुःख तथा व्यथा को समान रूप से भोगते थे, और एक शरीर के समान रहते तथा कार्य करते थे। जब उनको उनके भाग्य पर छोड़ा गया तो बहुत मामूली ईर्ष्या के पारिवारिक संघर्ष उनके जीवन के अंग बन गये।

विवेचना– प्राचीनकाल के इतिहास को विवेचनात्मक दृष्टि से दो खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। प्राचीन भारत के इतिहास में महाभारत का युद्ध एक महान और युग प्रवर्तक घटना मानी जाती है। उस घटना का भारतीय इतिहास पर जितना प्रभाव पड़ा, उतना किसी अन्य घटना का नहीं। अत: प्राचीन भारत के समस्त इतिहास को– 1. पूर्व महाभारत काल और 2. उत्तर महाभारत काल के नाम से दो खण्डों में विभाजित करना उचित होगा।

पूर्व महाभारत काल–

पूर्व महाभारत काल के इतिहास में सूर्यवंश और चन्द्रवंश के राज्यों की प्रधानता थी। इन वंशों में काल और क्रम के सम्बन्ध में पौराणिक साक्षों में विभिन्न मत पाये जाते हैं। पुराणों में उल्लेख है कि मनु की पुत्री इला का विवाह चन्द्रमा के पुत्र बुध से हुआ। इससे सिद्ध होता है कि बुध मनु के जामाता थे और लगभग उनके समकालीन थे। यदि इस समकालीनता को सत्य माना जाता है तो सूर्यवंश का लगभग समानान्तर चलना प्रतीत होता है। परन्तु वंशावलियों को देखने से पता चलता है कि सूर्यवंशी मनु से 92वीं पीढ़ीं पर राजा ब्रहद्वल चन्द्रवंशी 50वीं पीढ़ी पर महाराज युधिष्ठिर का समकालीन था। राजा ब्रहद्वल का महाभारत के युद्ध में चक्रव्यूह के अन्तर्गत अभिमन्यु द्वारा वध हुआ था। दूसरे सूर्यवंशी महाराज राम मनु से 63वीं पीढ़ी पर है जबकि युधिष्ठिर 50वीं पीढ़ी पर, और जब कि श्रीराम युधिष्ठिर से लगभग 29 पीढ़ी पूर्व हुए थे। राम 7वें अवतार थे और युधिष्ठिर के समकालीन कृष्ण आठवें, राम त्रेतायुग में थे और कृष्ण द्वापर में, और राम की कथा महाभारत के वनपर्व में युधिष्ठिर को सुनाई गई थी। तीसरे, परशुराम ने सहस्त्रार्जुन का वध किया था। सहस्त्रार्जुन चन्द्रवंश की 19वीं पीढ़ी में है। उस समय सूर्यवंशी राजा अश्मक 53वीं पीढ़ी पर था। यह राजा परशुराम के भय से स्त्रियों में जाकर छिप गया था जिससे उसका नाम नारी कवच पड़ा। इससे सिद्ध होता है कि चन्द्रवंश की 19वीं पीढ़ी के महाराज सहस्त्रार्जुन सूर्यवंशी 53वीं पीढ़ी पर राजा अश्मक के समकालीन थे। चौथे, विश्वामित्र चन्द्रवंश की 15वीं पीढ़ी पर थे। सूर्यवंश की 52वीं पीढ़ी के राजा कल्माषपाद द्वारा विश्वामित्र के पुत्र का वध करा दिया गया था। अत: चन्द्रवंश की 15वीं पीढ़ी और सूर्यवंश की 52वीं समकालीन ठहरती है। पाँचवें, ऋग्वेद में दाशराज युद्ध का विस्तृत वर्णन है। यह युद्ध सूर्यवंशी 51वीं पीढ़ी के राजा सुदास का अनेक राजाओं से हुआ था। जिनमें चन्द्रवंशी ब्रह्मा से आठवीं पीढ़ी के राजा ययाति के पाँचों पुत्र सम्मिलित थे। एक युद्ध में तो ययाति के पुत्र

द्रुह्यु के ही सुदास के पिता दिवोदास द्वारा मारे जाने का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि चन्द्रवंशी 8 से 9 पीढ़ी तक के राजागण सूर्यवंशी 50 से 51वीं पीढ़ी के राजा दिवोदास और सुदास के समकालीन थे। जो भी हो, अनेक समकालीनताओं को देखते हुए यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि सूर्य और चन्द्र इन दोनों वंशों का आरम्भकाल एक ही था। स्पष्ट है कि चन्द्रवंश की स्थापना सूर्य वंश के बाद में हुई तथा सूर्यवंश के द्वारा हुई।

पुराणों के साक्ष्य से विदित होता है कि आर्यों की सभ्यता के विकास क्रम में भारतवर्ष बहुत से छोटे-छोटे राज्यों में अति प्राचीनकाल से बंटा चला आता है। बीच-बीच में चक्रवर्ती सम्राट् भी हुए जिनके राज्य में छोटे राजाओं को सम्राट् की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। सामान्यतया प्रायः छोटे-छोटे राजा स्वतंत्र रूप से अपने-अपने राज्य में शासन करते और कभी-कभी परस्पर युद्धरत भी हो जाते। श्री सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक में लिखा है- "इस सुविस्तृत भूखण्ड पर आर्यों के बहुत से छोटे-बड़े राज्य विद्यमान थे, जो प्रायः आपस में युद्ध भी करते रहते थे।

पुरुवंश-

जिस प्रकार मनु के अनेक पुत्रों में से इक्ष्वाकु ने अयोध्या के राजसिंहासन पर बैठकर ऐक्ष्वाकव, मानव अथवा सूर्यवंश की स्थापना की उसी प्रकार मनु की पुत्री इला से उत्पन्न राजा पुरुरवा ने प्रतिष्ठान में 'एक' दूसरे राजवंश की स्थापना की। इस वंश को एल अथवा चन्द्रवंश कहते हैं। पुरुरवा के बाद उसका पुत्र आयु प्रतिष्ठान के राजसिंहासन का स्वामी हुआ। आयु का पुत्र नहुष और नहुष का पुत्र ययाति हुआ। ययाति भारतीय इतिहास के सम्राटों की परम्परा में प्रथम हैं। वह एक महान विजेता, पराक्रमी और तेजस्वी सम्राट् था। उसके पाँच पुत्र हुए जिनके नाम हैं- यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनुऔर पुरु। ययाति ने अपने सबसे बड़े पुत्र यदु की प्रतिष्ठान के राजसिंहासन का राजतिलक न करके अपने सबसे छोटे पुत्र पुरु को ही उत्तराधिकारी बनाया था, जिसके बारे में पीछे वर्णन किया जा चुका है। यहाँ से आगे चन्द्रवंश दो प्रमुख शाखाओं में विभाजित हो गया जो यदुवंश तथा पुरुवंश के नाम से विख्यात हुए। ययाति के अन्य तीन पुत्रों के वंश कुछ पीढ़ियों तक चलकर इन्हीं में विलीन हो गये। पुरुवंश ही बाद में कुरुवंश हुआ, इसी वंश में बहुत से राजर्षि और ब्रह्मर्षि हुए। कौरव-पाण्डवों का यही वंश है जिसमें परीक्षित् हुए।

पुरु के बाद इस वंश में कई पीढ़ियों के बाद अप्रतिरथ नाम का बड़ा प्रतापी राजा हुआ। पुरु से अप्रतिरथ चौदहवीं पीढ़ी पर था। पुरु के बाद अप्रतिरथ तक पुरु वंश में वंशक्रमानुगत निम्नलिखित तेरह राजागण हुए। 1. जन्मेजय, 2. प्रचिन्वान्, 3. प्रवीर, 4. मनस्यु, 5. अभ्यद, 6. सुद्यु, 7. बहुगत, 8. संघाति, 9. अहंयाति, 10. रौद्राश्व, 11. ऋतेयु, 12. अन्तिनार, 13. अप्रतिरथ। अप्रतिरथ के कण्व और एलीन नामक दो पुत्र हुए। कण्व के मेघातिथि हुआ जिसकी सन्तान काण्वायन ब्राह्मण हुए। एलीन के दुष्यन्त आदि चार पुत्र हुए। पुरु के वंश में दसवीं पीढ़ी पर रौद्राश्व राजा बड़ा प्रतापी हुआ। उसके दस पुत्र तथा दस पुत्रियाँ थीं। रौद्राश्व की दसों पुत्रियाँ अत्रिकुल में उत्पन्न महर्षि प्रभाकर को ब्याहीं। इन्होंने दस पुत्र पैदा किये जो सभी वेदों के पारंगत विद्वान् तथा गोत्र प्रवर्तक हुए।

पुरुवंश में दुष्यन्त महाप्रतापी राजा हुआ है। उसने शिकार करते समय सुदूर वन में कण्व ऋषि के आश्रम में प्रवेश किया। ऋषि की अनुपस्थिति में उनकी पाल्य कन्या (जो विश्वामित्र और मेनका के संयोग से उत्पन्न थी) शकुन्तला से गान्धर्व विवाह रचाया। गान्धर्व विधि से विवाह करने के बाद राजा दुष्यन्त अपने नगर को वापिस चला गया और वहाँ जाकर दुर्वासा के शाप के कारण वह शकुन्तला के प्रसंग को पूरी तरह से भूल गया। कण्व जब यात्रा से आश्रम में वापिस आये तो उन्हें शकुन्तला के विषय में जानकारी हुई। तब कण्व ऋषि ने शकुन्तला को दुष्यन्त के घर भेजना उचित समझा। फलस्वरूप दो मुनिकुमारों के साथ उसे दुष्यन्त के पास भेजा गया। दुष्यन्त तो भूल ही चुके थे, उन्होंने शकुन्तला को स्वीकार नहीं किया। निदान गर्भावस्था पूर्ण होने पर शकुन्तला के गर्भ से पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम भरत हुआ। भरत बाल्यावस्था ही से बड़ा वीर था। वह शेर के शिशुओं के साथ ऐसे खेलता था जैसे साधारण मनुष्यों के बालकों से। थोड़े समय बाद दुष्यन्त को खोई हुई मुद्रिका (अंगूठी) के देखने से राजा को शकुन्तला की स्मृति लौट आई और उसने अपनी पत्नी और पुत्र को स्वीकार लिया। इस कथा का विस्तृत वर्णन महाभारत-आदि पर्व तथा कालिदास द्वारा रचित 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में दिया है।

दुष्यन्त से पूर्व पुरुवंश के लोग वास्तव में प्रतिष्ठान राज्य खो चुके थे। सूर्यवंशी राजा सगर की विजयों ने सूर्यवंश के गौरव को पुनः प्रतिष्ठित कर दिया था। सगर की विजयों के प्रभाव ने हैहय-तालजंघीय राजाओं तथा पौरवों की प्रतिष्ठा को मंद कर दिया था। सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया था तथा उसके बहुसंख्यक पुत्रों ने समस्त भारत में विजय काडंका बजा दिया था।

दुष्यन्त के बाद उसका पुत्र भरत चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। उसका राज्य वैदिक परम्पराओं और आदर्शों के अनुकूल था। उस काल में अनेक विद्याओं और कलाओं का महान उद्‌भव हुआ और इस पुनरुत्थान से जिस संस्कृति का उदय हुआ, वह भारती कहलाई और उसी आधार पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। भरतवंश की कई शाखाएँ उत्तर भारत में शताब्दियों तक राज्य करती रही। इस काल में वैदिक सभ्यता और संस्कृति का प्रचार हुआ।

टिप्पणी- भारतीय प्राचीन साहित्य में 'भरत' नाम से विभिन्न कालों में तीन व्यक्तियों का वर्णन मिलता है- 1. जड़भरत (विरक्त), 2. राम के भाई भरत, 3. दुष्यन्त पुत्र भरत। इनमें से कौन से भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा, इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। वैदिक तथा पौराणिक साक्ष्यों के आधार पर अधिकांश विद्वानों के समर्थन से दुष्यन्त पुत्र भरत की पुष्टि होती है तथा इसी भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

भरत के कई पुत्र बाल्यावस्था में ही मर गये। अतः उसने अपने उत्तराधिकारी के रूप में बृहस्पति के वंशज भारद्वाजों में से वितथ भारद्वाज को चुना। उसने उसे दीर्घतमा ऋषि के परामर्श से यज्ञ के विधान द्वारा पुत्र रूप में स्वीकार किया। भरत की कई पीढ़ियों में वितथ भारद्वाज, मन्यु, वृहत्क्षत्र, सुहोत्र और हस्ति राजा हुए। हस्ति बड़ा प्रतापी राजा हुआ तथा इसी ने अपने नाम पर हस्तिनापुर नामक नगर बसाया था। बृहत्क्षत्र के तीन भाई और थे- महावीर्य, नर और गर्ग। महावीर्य का दुरक्षय नाम का पुत्र हुआ। उसके त्रय्यारुणि, पुष्करिण्य और कपि नामक पुत्र हुए जो पीछे तीनों ब्राह्मण हो गये। नर के संकृति नामक पुत्र हुआ संकृति के गुरुप्रीति और रन्तिदेव नामक पुत्र हुए। रन्तिदेव प्रसिद्ध दानी हुए। गर्ग के शिनि नामक पुत्र हुआ। शिनि के गार्ग्य और शैन्य नामक पुत्र हुए जो क्षत्रोपेत ब्राह्मण हुए।

हस्ति का विवाह त्रिगर्त देश की राजकुमारी यशोधरा के साथ हुआ था। हस्ति के तीन पुत्र हुए- 1. अजमीढ़ 2. द्विजमीढ़ 3. पुरुमीढ़। अजमीढ़ के वंशजों ने गंगा-यमुना के दोआब में पांचाल प्रदेश की स्थापना की। उत्तरी भाग उत्तर पांचाल और दक्षिणी भाग दक्षिण-पांचाल कहलाया और इन दोनों की क्रमशः अहिच्छत्र तथा काम्पिल्य राजधानी थी। अजमीढ़ के बाद पुरुवंश के बीस राजाओं का वंश क्रमानुगत नामोल्लेख उपलब्ध होता है, वह इस प्रकार है- 1. अजमीढ़ 2. बृहदिषु 3. वृहद्धनु 4. वृहत्कर्मा 5. जयद्रथ 6. विश्वजित 7. सेनजित 8. रुचिराश्व 9. पृथसेन 10. पार 11. नील 12. समर 13. सुपार

(इसके दो भाई पार और सदश्व और थे) 14. पृथु 15. सुकृति 16. विभ्राज 17. अणुह 18. ब्रह्मदत्त 19. विष्वकसेन 20. उद्कसेन 21. भल्लाभ। अजमीढ़ के पुत्र वृहदिषु के उपरोक्त ये वंशज दक्षिणी पांचाल प्रदेश पर शासन करते थे जिसकी राजधानी काम्पिल्य थी।

अजमीढ़ की नलिनी नाम की एक पत्नी और थी जिससे एक और वंश क्रम चला। अजमीढ़ के ये वंशज उत्तरी पांचाल पर राज्य करते थे। अजमीढ़ का नलिनी से जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम नील था। नील के शान्ति, शान्ति के सुशान्ति, सुशान्ति के पुरंजय, पुरंजय के ऋक्ष, ऋक्ष के हर्यश्व नामक पुत्र हुआ। हर्यश्व के पाँच पुत्र हुए- मुद्गल, संजय, वृहदिषु, यवीन और काम्पिल्य। इसके ये पाँचों पुत्र पांचाल कहलाये। मुद्गल से मौद्गल्य नामक क्षत्रोपेत ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई मुद्गल से वृहदश्व और वृहदश्व से दिवोदास की उत्पत्ति हुई। दिवोदास का पुत्र मित्रायु था। उत्तर पांचाल के दिवोदास, मित्रायु, सृंजय, च्यवन, और सुदास आदि महापराक्रमी राजा हुए। पौरवों की अन्य शाखाओं उत्तरी पांचाल का राज्य इन राजाओं के काल में विशेष महत्वपूर्ण था।

अजमीढ़ का ऋक्ष नामक एक और पुत्र था, जिससे भी उसकी सन्तति चली। ऋक्ष के वंशजों की परम्पराओं में संवरण नाम का राजा बड़ा प्रतापी हुआ है। संवरण से पांचालराज सुदास का युद्ध हुआ जिसका वर्णन ऋग्वेद तथा महाभारत में मिलता है। यह सुदास बड़ा प्रतापी और विजेता था। यह अयोध्या के अड़सठवीं पीढ़ी पर सूर्यवंशी राजा अतिथि का समकालीन था। इसके राज्यकाल में पांचाल राज्य की शक्ति उत्तर भारत में सर्वाधिक एवं सर्वोच्च थी। इसने हस्तिनापुर के राजा संवरण को युद्ध में परास्त किया और यमुना के पश्चिमी तट तक अपने राज्य का विस्तार किया। इस घटना से पश्चिमोत्तर भारत के राज्यों ने भयभीत होकर अपना एक संघ बनाया जिसमें पौरव, संवरण, मत्स्य, तुर्वसु, यदु, द्रुह्यु, शिवि, पक्थ, अलिन, भलान, विपाणी, आदि राज्य और जातियाँ सम्मिलित हुई। सुदास ने पंजाब में प्रवेशकर संघ से युद्ध किया। परुष्णी (चिनाब) के किनारे जो युद्ध हुआ उसमें सुदास की विजय हुई। पराजय से संघ ध्वस्त हो गया। इसे 'दाशराज युद्ध' कहा गया है।

पांचाल राज्य का यह उत्थान सुदास के जीवन काल तक ही सीमित रहा। सुदास के बाद उसके पुत्र सहदेव और सोमक उसके समान वीर नहीं थे, फल-स्वरूप हस्तिनापुर के राजा संवरण ने सुदास के पुत्र सहदेव से न केवल अपना राज्य छीन लिया बल्कि उत्तर पांचाल को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया।

संवरण का पुत्र कुरु हुआ। संवरण की रानी तपती से कुरु का जन्म हुआ। कुरु के नाम पर ही कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। कुरु ने उस स्थान पर तपस्या की थी। इसी कुरुक्षेत्र में बाद में कौरवों और पाण्डवों के मध्य महाभारत का युद्ध हुआ था। कुरु का विवाह यदुवंश की राजकुमारी शुभांगी से हुआ था। उससे सुधनु, जन्हु, परीक्षित् और निषध नाम के पुत्र हुए। सुधनु और परीक्षित् की सन्तानों के विषय में कुछ ज्ञात नहीं। जन्हु की सन्तान का राज्य हस्तिनापुर में चलता रहा। निषध ने अपने नाम पर ही एक नया राज्य स्थापित किया। इसी निषध के वंश में राजा वीरसेन हुए थे जिनके पुत्र नल बड़े प्रतापी राजा हुए। राजा नल का विवाह विदर्भ राज भीम की कन्या दमयन्ती से हुआ था। राजा नल की कथा महाभारत-वनपर्व में विस्तार से मिलती है। अपने पिता के समान कुरु भी वीर और प्रतापी था। उत्तर-पांचाल पहले ही विजय हो चुका था, अब कुरु ने दक्षिण पांचाल को भी जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। राजा कुरु के राज्य में सरस्वती नदी से प्रयाग तक विशाल प्रदेश शामिल था। कुरु के नाम पर ही हस्तिनापुर का प्राचीन भारत-वंश अब कुरुवंश (कौरव वंश) कहलाने लगा। कुरु के वंश में आगे चलकर राजा वसु हुआ। वह बड़ा प्रतापी और वंशकर राजा था। उसने चेदि देश को जीतकर अपने अधीन किया तथा आगे मगध तक को विजय किया। शुक्तिमती (केन) नदी के तट पर स्थित शुक्तिमती नगर को अपनी राजधानी बनाया। कुरुदेश से मगध तक उसका अबाधित शासन था, इसी कारण वह चक्रवर्ती सम्राट् कहाता था। इसे 'उपरिचरिवसु' भी कहते हैं। इसके अनेक पुत्रों में वृहद्रथ ने मगध में और मत्स्य ने मत्स्य देश में अपना राज्य स्थापित किया। मत्स्य ग्वालियर से बरार तक फैला हुआ था। इसके एक पुत्र ने मगध से आगे प्रागज्योतिषपुर (आसाम) में भी अपने राज्य की स्थापना की। उपरिचरिवसु की कन्या का नाम सत्यवती था, जिसका पालन-पोषण एक मछुआरे के यहाँ हुआ था। उसकी अविवाहित अवस्था में पराशर से कृष्णद्वैपायन व्यास का जन्म हुआ तथा बाद में सत्यवती का विवाह हस्तिनापुर के राजा शान्तनु से हुआ था। इसी वसु की सन्तान-परम्परा में राजा विराट् थे जिनके यहाँ एकवर्ष तक पाण्डवों ने गुप्तवास किया था और जिनकी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से हुआ था। वसु ने अपने साम्राज्य के पाँच भागों-मगध, कौशाम्बी, कारुष, चेदि और मत्स्य को अपने पाँचों पुत्रों बांट दिया। वृहद्रथ राजाओं की राजधानी गिरिव्रज थी जो बाद में उसी के स्थान पर पाटलिपुत्र और राजगृह में परिवर्तित हुई। वृहद्रथ वंश में कौरवों और पाण्डवों का समकालीन मगध का राजा जरासन्ध था। उस समय मगध साम्राज्य बहुत शक्तिशाली था।

महाभारत के अनुसार जरासंध ने भारत के प्रमुख राजाओं को अपने वश में कर लिया था। चेदिराज शिशुपाल, कारूष का राजा वक्रदन्त, करभ का राजा मेघवाहन, प्राग्ज्योतिषपुर का राजा भगदत्त, युधिष्ठिर का मामा पुरुजित्, वंग–पुण्ड्र– और किरात का राजा वासुदेव आदि अनेक राजा उसके अधीन थे।

कुरु के पुत्र जन्हु से बारहवीं पीढ़ी में प्रतीप नामक राजा हुए। इनके तीन पुत्र थे– देवापि, शान्तनु, तथा वाल्हीक। देवापि तपस्या करने चले गये, वाल्हीक ने दूसरा राज्य बसाया। शान्तनु हस्तिनापुर के राजा हुए। इनकी प्रथम रानी का नाम गंगा था, जिससे देवव्रत (भीष्म) नामक पुत्र हुआ। दूसरी पत्नी वसुकन्या सत्यवती थी जिसके दो पुत्र हुए– चित्रांगद और विचित्रवीर्य। चित्रांगद युवावस्था में ही गंधर्वों से युद्ध में मारा गया। विचित्रवीर्य का विवाह काशिराज की कन्याएँ अम्बिका और अम्बालिका से हुआ। कुछ दिनों बाद वह भी बीमारी से मर गया। महाभारत के अनुसार व्यासजी से नियोग क्रिया द्वारा अम्बिका से अंधा धृतराष्ट्र तथा अम्बालिका से पाण्डु का जन्म हुआ। धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार देश के राजा सुबल की कन्या गान्धारी से हुआ जिसके दुर्योधन आदि सौ पुत्र तथा दुश्शला नामक कन्या हुई। पाण्डु की प्रथम पत्नी वसुदेव की बहिन तथा कुन्ति भोज की कन्या कुन्ती थी जिससे युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन तीन पुत्र हुए। दूसरी पत्नी मद्रदेश के राजा शाल्व की कन्या (शल्य की बहिन) माद्री थी जिससे नकुल तथा सहदेव दो पुत्र हुए। अपने उत्तराधिकार के लिए कौरव तथा पाण्डु पुत्र पाण्डवों में महाविनाशकारी महाभारत का युद्ध हुआ था।

यदुवंश–

भारतीय इतिहास में यदुवंश अपना बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस वंश का महत्व इसलिए भी अधिक है कि इसी वंश में श्रीकृष्ण का आविर्भाव हुआ था जिन्हें भगवान् विष्णु का अवतार माना जाता है। यदुवंश की उत्पत्ति चन्द्रवंश के एक वंश कर राजा ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु से हुई।

ययाति के दूसरे पुत्र तुर्वसु को पश्चिम सीमान्त प्रदेश का राज्य मिला था। यह वंश अधिक काल तक नहीं चला। ब्रह्मपुराण में कुछ पीढ़ियों का उल्लेख मिलता है– तुर्वसु–वन्हि–गोभानु–त्रैशानु–करंधम–मरुत्त (दूसरा)। अन्तिम राजा को कोई पुत्र न हुआ, उसकी संयता नामक एक पुत्री थी जो कुरु पांचाल देश के राजा को ब्याही थी। इसी पुत्री से महाराज दुष्यन्त का जन्म हुआ था और वे अपने नाना के राज्य के भी उत्तराधिकारी बने। इस प्रकार पिता ययाति के

वचनानुसार तुर्वसु का वंश नहीं चला, तब उसमें पौरववंश का प्रवेश हुआ। पश्चिम-सीमान्त से लेकर यूनान तक के निवासी यवन कहलाये।

राजा ययाति के तीसरे पुत्र द्रुह्यु को दक्षिण पूर्व का क्षेत्र मिला। इसको भी पिता द्वारा वंशवृद्धि न होने का शाप मिला था। द्रुह्यु के वंशजों ने उत्तर की ओर भी कदम बढ़ाये। द्रुह्यु-बभुसेतु-अंगारसेतु-गान्धार तक की पीढ़ियों का ब्रह्मपुराण में वर्णन मिलता है। मत्स्यपुराण में- द्रुह्यु-बभु-शरद्वान-गान्धार-धर्म-धृत-विदुष-प्रचेता आदि सौ पुत्र हुए जो सभी उत्तर दिशा में स्थित म्लेच्छ देशों के राजा हुए। इस वंश में एक अरुद्ध (अंगारसेतु) नाम का प्रतापी राजा हुआ था जो महाराज मान्धाता से युद्ध में मारा गया था। अरुद्ध के पुत्र गन्धार ने मान्धाता के भय से सुदूर पश्चिम में अपने नाम पर गान्धार राज्य की स्थापना की। गन्धार के वंश में ही राजा सुबल हुए जिनकी पुत्री गान्धारी हस्तिनापुर के राजा धृतराष्ट्र को ब्याही थी। सुबल के पुत्र का नाम शकुनि था। शकुनि दुर्योधन का मामा था। वह अधिकतर दुर्योधन के पास ही रहता था और पाण्डवों के विरुद्ध भड़काता रहता था। एक प्रकार से यह शकुनि ही महाभारत के युद्ध की जड़ था। महाभारत के युद्ध में सहदेव के हाथ से शकुनि की मृत्यु हुई।

ययाति के चौथे पुत्र अनु को उत्तर की ओर का राज्य मिला। इसको भी पिता द्वारा वंशवृद्धि न होने का शाप मिला था। मत्स्यपुराण में इसकी वंशावली इस प्रकार दी है- **शाखा अंगवंश**- दधिवाहन-दिविरथ-धर्मरथ-चित्ररथ-सत्यरथ-दशरथ (लोमपाद)- चतुरंग-पृथुलाक्ष (ऋष्यश्रृंग की कृपा से हुआ)-चम्प (राजधानी का नाम चम्पा (भागलपुर-बिहार) था जो पहले मालिनी नाम से प्रसिद्ध थी)- हर्यंग-भद्ररथ-बृहत्कर्मा-बृहत्भानु (तीन पुत्र)- जयद्रथ-ब्रहद्रथ-जनमेजय-अंग-कर्ण-वृषसेन-पृथुसेन। बृहत्भानु के पुत्र बृहत्मना के विजय-वृहत्पुत्र-बृहद्रथ-सत्यकर्मा-अधिरथ (सूत)-कर्ण (इसी कारण कर्ण सूतपुत्र कहलाया)।

अनु के वंशजों ने पूर्व और पश्चिम की ओर बढ़कर भी अपना राज्य फैलाया। अनु की वंश परम्परा में सृंजय नाम का एक पराक्रमी राजा हुआ है जिसके नाम पर एक प्रसिद्ध वंश चला। महामना नाम के एक प्रसिद्ध राजा हुए जिसके उशीनर और तितिक्षु नाम के दो पुत्र हुए। उशीनर ने पश्चिम की ओर अपने राज्य का विस्तार किया और अटक या पश्चिम काशी को अपनी राजधानी बनाया। उशीनर के पुत्र शिबि भी इतिहास प्रसिद्ध राजा हुए हैं।

इन्होंने इसी नाम का एक प्रदेश बसाया जो वर्तमान सिंध में सक्खर के पास है। शरणागत की शरण देने के विषय में शिबि की बड़ी ख्याति रही है। एक कबूतर की प्राण रक्षा हेतु इन्होंने अपने शरीर को ही अर्पित कर दिया था। इसके कई उपाख्यान भी इतिहास में प्रसिद्ध है।

शिवि के सुवीर, कैकय और मद्र नाम के तीन पुत्र थे। इनमें से प्रत्येक ने अपने नाम पर प्रदेश बसाकर राज्य स्थापित किया। सुवीर ने दक्षिण और पश्चिम की ओर सिंध में अपना राज्य स्थापित किया। कैकय ने कांगडा की घाटी और कश्मीर के कुछ भाग में अपना नया राज्य बनाया। कैकय के वंश में राजा अश्वपति एक प्रसिद्ध राजा हुए हैं। इनकी कन्या कैकेयी का विवाह महाराज दशरथ से हुआ था। कैकेयी भरत की माता थी। इसी की कलह के कारण श्रीराम का राज्याभिषेक न हो पाया और उन्हें चौदह वर्ष के लिए वन में निवास करना पड़ा।

अश्वपति के बाद कैकय वंश में युधाजित भी प्रसिद्ध राजा हुआ। इनका गंधर्व जाति के लोगों से इतना भीषण युद्ध हुआ कि उसमें इनकी मृत्यु हो गई। कैकय वंश का श्रीकृष्ण से भी सम्बन्ध था। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव की बहिन (श्रीकृष्ण की बुआ) श्रुतकीर्ति कैकय देश के राजा धृष्टकेतु को विवाही थी। श्रुतकीर्ति के पुत्र सन्तर्दन आदि राजकुमार महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की ओर से लड़े और मारे गये। प्राचीन कैकय जाति के लोग ही आजकल कश्मीर और सिंधु में घक्कर जाति के नाम से प्रसिद्ध हैं।

शिबि के तृतीय पुत्र मद्र ने इरावती और चन्द्रभागा नाम की नदियों के प्रदेश पर अपना राज्य बसाया। इन दोनों नदियों को आजकल क्रमशः रावी और चिनाब कहते हैं। इस प्रदेश का नाम उसके संस्थापक के नाम पर मद्र ही पड़ा। हस्तिनापुर के महाराज पाण्डु को इसी देश की राजकुमारी माद्री विवाही थी। माद्री से पाण्डु के नकुल और सहदेव नाम के दो पुत्र हुए। माद्री के भाई का नाम शल्य था जो महाभारत के युद्ध में कौरवों की ओर से लड़ा था और युधिष्ठिर के हाथों मारा गया।

तितिक्षु का पुत्र उषदृथ हुआ। उसके वंश में बलिनाम का एक राजा हुआ जिसके छः पुत्र- अंग, बंग, कलिंग, सुह्म, पौण्ड्र, और उड्र नाम के हुए। उन्होंने दक्षिण पूर्व में अपने नाम के अनुरूप अनेक नये राज्य बसाये। अंग का बसाया हुआ वह देश है जो आजकल भागलपुर जिला (बिहार) या उसके आस-पास का इलाका है। बंग द्वारा स्थापित किये हुए राज्य को आजकल बंगाल कहते हैं।

पौण्ड्र ने जो देश बसाया वह आजकल बंगाल के पश्चिम में है (झारखण्ड) कलिंग ने उड़ीसा के दक्षिण की ओर समुद्र के किनारे अपना अधिकार किया। इस प्रदेश का नाम ही कलिंग पड़ गया। यह देश गोदावरी और कृष्णा नदियों के कारण तीन भागों में बंट गया था, इसी से इसका नाम त्रिकलिंग और बाद में तिलंगाना पड़ा। कलिंग की राजधानी राजमहेन्द्री थी। श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के विवाह में कलिंग के राजा ने रुक्म से जुआ खेलते समय बलराम जी की हंसी उड़ाई थी जिस पर उन्होंने उस राजा के दांत तोड़ दिये थे।

सुहत्र ने बंगाल के दक्षिणी भाग ताम्रलिप्ति या दामलिप्ति नामक देश बसाया जिसको आजकल तामलुक कहते हैं। अंग के एक वंशज रोमपाद के विषय में एक बड़ी मनोरंजक घटना वर्णित है। रोमपाद के देश में कई वर्ष तक वर्षा न होने के कारण अकाल पड़ा। रोमपाद अयोध्या के राजा दशरथ का समकालीन था। उसने महाराज दशरथ की पुत्री शान्ता को अपनी दत्तक पुत्री के रूप में ग्रहण किया और उसका विभाण्ड ऋषि के पुत्र ऋष्यशृंग से विवाह कर दिया। जब ऋष्यशृंग रोमपाद के राज्य में आये तब वर्षा हुई और वहाँ की जनता को अकाल से मुक्ति मिली।

रोमपाद का एक वंशज चम्प था। उसने चम्पापुरी बसाई। चम्प के वंश में एक जयद्रथ नाम का राजा हुआ। उसने ब्राह्मणी माता और क्षत्रिय पिता से उत्पन्न एक कन्या से विवाह किया अतः उसकी वंश-परम्परा सूत या शंकर जाति के क्षत्रियों के नाम से विख्यात हुई। इसी जयद्रथ का एक वंशज अधिरथ था जिसने कुन्तीपुत्र कर्ण को अपने पोष्यपुत्र (पाल्य) के रूप में ग्रहण किया था। महाभारत के युद्ध में कर्ण अर्जुन के द्वारा मारा गया। उसका पुत्र वृषसेन भी रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ।

उड्र ने प्राचीन उत्कल देश में अपना राज्य स्थापित किया। उससे पहिले वहाँ घना जंगल था। इस प्रदेश को आजकल उड़ीसा कहते हैं।

हैहय वंश- ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के सहस्त्रजित्, क्रोष्टु, अनल और रिपु नामक चार पुत्र हुए। सहस्त्रजित् और क्रोष्टु की वंश-परम्परा में अनेक प्रतापी राजा हुए। सहस्त्रजित् के शतजित् हुआ तथा शतजित् के महाहय, वेणुहय और हैहय नामक तीन पुत्र हुए। हैहय वंश वृद्धि करने वाला राजा हुआ। उसने और उसके वंशजों ने यादवों की कीर्ति को बढ़ाया। उनसे पूर्व इक्ष्वाकुवंशी राजा मान्धाता की विजयों ने यादवों को निर्बल बना दिया था। अनेक यादववंशीय राजा लोग मान्धाता से पराजित होकर उत्तर, पश्चिम और दक्षिण दिशाओं में बढ़े

और उन्होंने वहाँ अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किये। कुछ यादव राजा जो अपने ही प्रदेश में रहे उन्हें महाराज मान्धाता का करद सामन्त के रूप में अधीनस्थ होकर रहना पड़ा। हैहयवंशीय राजाओं ने अपनी खोई हुई कीर्ति को पुनः प्राप्त किया। उन्होंने उत्तरी भारत पर अनेक सफल सैन्य अभियान किये और काशी आदि प्रदेशों को अपने अधीन किया। उनके काल में अयोध्या की शक्ति कुछ निर्बल पड़ गई थी। सहस्त्रजित् का पौत्र हैहय था जिससे प्रसिद्ध हैहयवंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई। हैहय से यदुवंश का विस्तार इस प्रकार हुआ। हैहय का पुत्र धर्म, धर्म का धर्मनेत्र, धर्मनेत्र का कुन्ति, कुन्ति का सहजित् (सोहंजि), और सहजित् का महिष्मान हुआ। सोहंजि ने साहंजनी नगरी बसाई। सोहंज का पुत्र महिष्मान बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने नर्मदा के दाहिने किनारे पर प्रसिद्ध माहिष्मती नामक पुरी बसाई थी जो बहुत काल तक उसके उत्तराधिकारी राजाओं की राजधानी रही। आजकल महेश्वर नाम का नगर ही पुरानी माहिष्मती है। हैहयवंशी क्षत्रियों के पाँच कुल हैं- भोज, अवन्ति, वीतिहोत्र, स्वयंजात, शौण्डिकेय

सहस्त्रार्जुन- महिष्मान का पुत्र भद्रसेन अनेक प्रदेशों पर विजय प्राप्त करता हुआ काशी जा पहुँचा और काशी राज्य पर विजय प्राप्त की। भद्रसेन का पुत्र दुर्दम तथा दुर्दम का पुत्र धनक था धनक के चार पुत्र हुए- कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा, (कृतधर्म) और कृतौजा। कृतवीर्य का पुत्र सहस्त्रार्जुन था जिसको कार्तवीर्य अर्जुन भी कहते हैं। कार्तवीर्य अर्जुन की इतिहास में अत्यन्त पराक्रमी, शूरवीर, न्याय परायण और प्रतापी राजाओं में गणना है। उसने अपने बाहुबल से अनेक राजाओं को पराजित करके अपने राज्य का विस्तार किया और अनेक यज्ञादि सम्पन्न करके तथा अतुल दान दक्षिणा देकर बड़ा यश प्राप्त किया। उसका शासन न्याय और धर्म के आदर्श सिद्धान्तों पर संचालित था और राजा स्वयं अपने प्रजा पालन और न्याय परायणता के लिए विख्यात था यद्यपि उसकी राजधानी माहिष्मती ही थी तथापि उसकी विजयों के फलस्वरूप उसके राज्य की सीमाऐं बहुत बढ़ गई थीं। उसने राक्षसराज रावण को परास्त कर बन्दी बना लिया था और कुछ काल तक बन्दीगृह में रखकर ही उसे मुक्त किया था। अपने जीवन के अन्तिम दौर में उसे कुछ अभिमान हो गया और वह ब्राह्मणों से वैर मानने लगा था।

यहाँ से आगे का वृत्तान्त परशुराम जी से सम्बन्धित है अतः संक्षेप में उसका वर्णन इस प्रकार है-

परशुराम– राजा पुरुरवा के छः पुत्रों में द्वितीय पुत्र अमावसु था। अमावसु के वंश में गाधि नामक राजा हुआ जो कौशिक कहलाया। उसकी पत्नी का नाम पौरा था। गाधि के एक परम सौभाग्यशालिनी कन्या हुई जिसका नाम सत्यवती था। इसे भृगु पुत्र ऋचीक ने वरण किया। एक बार महर्षि ऋचीक से उनकी पत्नी सत्यवती और उसकी सास पौरा दोनों ने ही पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना की। महर्षि ऋचीक ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके दोनों के लिए अलग–अलग मंत्रों से चरु (यज्ञीय खीर) पकाया और स्नान करने चले गये। सत्यवती की माँ ने यह समझकर कि ऋषि ने अपनी पत्नी के लिए श्रेष्ठ चरु पकाया होगा, उससे वह चरुभाग माँग लिया। इस पर सत्यवती ने अपना चरु तो माँ को दे दिया और माँ का चरुभाग वह स्वयं खा गयी। जब ऋचीक मुनि को इस बात का पता चला तो मुनि ने सत्यवती से कहा कि– 'तुमने बड़ा अनर्थ कर डाला। अब तुम्हारा पुत्र तो लोगों को दण्ड देने वाला घोर प्रकृति का होगा और तुम्हारा भाई होगा एक श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता।' सत्यवती ने ऋचीक मुनि को प्रसन्न किया और प्रार्थना की कि स्वामी! ऐसा नहीं होना चाहिए। तब ऋषि ने कहा– 'अच्छी बात है, पुत्र के बदले तुम्हारा पौत्र (नाती) वैसा (घोर प्रकृति का) होगा।' समय आने पर सत्यवती ने भृगुवंशी जमदग्नि को जन्म दिया और उसकी माता ने विश्वामित्र को उत्पन्न किया तथा सत्यवती लोकों को पवित्र करने वाली 'कौशिकी' नदी बन गयी।

इक्ष्वाकुवंशीय राजा रेणु की एक कन्या सत्या तो सहस्त्रार्जुन के लिए विवाही थी, और दूसरी रेणुका नाम की कन्या का विवाह जमदग्नि ऋषि के साथ हुआ था। उससे जगदग्नि के हैहयवंश का अन्त करने वाले परशुराम जी उत्पन्न हुए जो स्वयं भगवान् नारायण के अंशावतार थे। चौबीस अवतारों में भगवान् परशुराम का भी नाम आता है। कहते हैं कि हैहय वंश का अन्त करने के लिए अपने पिता के वध को निमित्त बनाकर इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर दिया और कुरुक्षेत्र के समंत पंचक में ऐसे–ऐसे पाँच तालाब बना दिये जो रक्त रूपी जल से भरे हुए थे।

इस प्रकार माता के गर्भ से जो पुत्र हुआ वह तो विश्वामित्र मुनि हुए जो क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण (ब्रह्मर्षि) हुए और सत्यवती के गर्भ से महर्षि जमदग्नि हुए, उनके पुत्र परशुराम जी ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय कर्म वाले हुए। यह अवतार चन्द्रवंश में राजा पुरुरवा से पन्द्रहवीं पीढ़ी पर हुआ।

परशुराम जी की कथा का वर्णन श्रीमद्भागवत, हरिवंशपुराण तथा महाभारत में विस्तार से मिलता है। कथा में आता है कि परशुराम ने पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से रहित किया था। इस आधार पर प्रश्न उठता है कि भगवान् के अंशावतार परशुराम के द्वारा जब पृथ्वी क्षत्रिय-विहीन हो गयी तो उसके बाद क्षत्रिय कहाँ से आये? इस शंका-समाधान के कई तथ्य प्राप्त होते हैं। प्रथम- महाभारत, शान्ति पर्व में स्वयं श्रीकृष्ण ने शंका का उत्तर इस प्रकार दिया है- कुरुक्षेत्र की ओर जाते हुए श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को परशुराम जी का पराक्रम सुनाते हुए कहा- "राजन्! ये जो पाँच सरोवर दिखायी देते हैं, 'रामह्रद्' के नाम से प्रसिद्ध हैं। परशुराम जी ने इक्कीस बार इस भू-मण्डल के क्षत्रियों का संहार करके इन कुण्डों को उनके खून से भरा था।"

युधिष्ठिर ने पूछा- यदुनाथ! जब परशुराम जी ने पूर्वकाल में इस पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से सूनी कर दिया तो फिर उनकी उत्पत्ति कैसे हुई? उन्होंने क्षत्रियों का संहार क्यों किया? श्रीकृष्ण कहते हैं- जमदग्नि ने जिस उग्र स्वभाव वाले पुत्र को उत्पन्न किया, वही परशुराम थे, वे सम्पूर्ण विद्याओं तथा धनुर्वेद के पारगामी विद्वान् हुए। वे ही क्षत्रिय कुल का संहार करने वाले तथा प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी परशु (फरसा हथियार) प्राप्त किया। उन्हीं दिनों की बात है, यदुवंशी राजा कृतवीर्य के एक अर्जुन नामक तेजस्वी पुत्र हुआ, जो हैहयवंशी क्षत्रियों का स्वामी था। उसने दत्तात्रेय की कृपा से हजार भुजाएँ प्राप्त कीं थीं। वह महान तेजस्वी चक्रवर्ती राजा था। उसने अश्वमेध यज्ञ में अपना सम्पूर्ण राज्य, जिसे अपने बाहुबल से जीता था, ब्राह्मणों को दान कर दिया। एक बार अग्निदेव ने उनसे भिक्षा माँगी तो सहस्त्रार्जुन ने अपने बाणों से चारों ओर आग लगा दी। उसी धुन में उन्होंने महर्षि आपव (वशिष्ठ) के आश्रम को भी जला डाला। इससे वशिष्ठ ने रोष में भरकर अर्जुन को शाप दिया- 'तुमने मेरे इस जंगल को भी जलाये बिना नहीं छोड़ा, इसलिए संग्राम में तुम्हारी इन भुजाओं को परशुराम जी काट डालेंगे।'

अर्जुन ने उस शाप पर ध्यान नहीं दिया। उसके सैंकड़ों पुत्र थे जो बहुत बलवान थे। वे घमण्डी और क्रूर भी थे। शाप वश वे ही अपने पिता की मृत्यु का कारण बने। एक दिन वे परशुराम के पिता जमदग्नि की गाय को चुरा ले गये। उस गाय के लिए घोर युद्ध हुआ, उस युद्ध में परशुराम जी ने रोष में भरकर अर्जुन की भुजाओं को काट डाला और उसे मार दिया। फिर गाय को लेकर वे अपने आश्रम पर चले आये। अर्जुन के पुत्र मिलकर जमदग्नि के आश्रम पर

गये। उस समय परशुराम समिधा और कुश लाने के लिए आश्रम से बाहर गये थे। अर्जुन के पुत्रों ने मौका पाकर जमदग्नि की हत्या कर दी। परशुराम जब आश्रम पर लौटकर आये तो पिता के वध से उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने क्रोध में भरकर पृथ्वी को क्षत्रियों से हीन कर देने की प्रतिज्ञा करके हथियार उठाया और सबसे पहले हैहयों पर ही धावा बोला। परशुराम ने कार्तवीर्य के समस्त पुत्रों और पौत्रों का अन्त कर दिया और हजारों हैहयवंशी क्षत्रियों का सफाया कर डाला। फिर पृथ्वी को सूनी करके उन्होंने इसे खून से गीला कर दिया। उस समय सैंकड़ों क्षत्रिय मरने से बच गये थे, वे ही धीरे-धीरे बढ़कर महापराक्रमी भूपाल हुए। तब परशुराम जी ने फिर से शस्त्र उठाया और क्षत्रियों के बालकों तक को मार डाला। अब क्षत्राणियों के गर्भ में ही बच्चे रह गये थे, पर उनमें से भी जो जन्म लेता, उसका पता लगाकर वे वध कर डालते थे। उस समय कुछ ही क्षत्रिय-नारियाँ अपने गर्भ को बचा सकीं। इस प्रकार इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार करके उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया और यह पृथ्वी कश्यप जी को दान में दे दी। तब शेष क्षत्रियों की जीवन रक्षा के लिए कश्यप जी ने परशुराम से कहा- परशुराम! तुम दक्षिण समुद्र के किनारे चले जाओ, अब मेरे राज्य में कभी निवास न करना। यह सुनकर परशुराम जी चले गये। समुद्र ने उनके लिए जगह खाली कर दी, जो सूर्पारक देश के नाम से प्रसिद्ध हुआ, उसे अपरान्त भूमि भी कहते हैं।

कश्यप जी ने परशुराम की दी हुई पृथ्वी को स्वीकार करके उसे ब्राह्मणों के सुपुर्द कर दिया और स्वयं भी वन में चले गये। उस समय कोई बलवान रक्षक न होने के कारण सब ओर अराजकता फैल गयी। बलवान दुर्बलों को सताने लगे। ब्राह्मणों में से किसी की प्रभुता कायम न रही। कालक्रम से पापियों का प्रभाव बढ़ा और पृथ्वी कष्ट पाने लगी। तब इस पृथ्वी ने अपनी रक्षा के लिए कश्यप जी से कहा- "ब्रह्मन! मैंने बहुत से हैहयवंशी क्षत्रियों को स्त्रियों में छिपा रक्खा है, वे मेरी रक्षा करें। उनके अलावा पुरुवंशी विदूरथ का भी एक पुत्र जीवित है जिसे ऋक्षवान् पर्वत पर रीछों ने पालकर बड़ा किया है। इसी प्रकार महर्षि पराशर ने दयावश राजा सौदास के पुत्रों की जान बचायी है। राजा शिबि का एक तेजस्वी पुत्र है, जिसका नाम गोपति है, उसे वन में गौओं ने पाल-पोसकर बड़ा किया है। राजा प्रतर्दन का पुत्र वत्स भी जीवित है, जिसे गौशाला में बछड़ों ने पाला है। दिविरथ के पुत्र को महर्षि गौतम ने गंगातट पर छिपा रक्खा है। महान तेजस्वी बृहद्रथ भी जीवित है, जिन्हें गृध्रकूट पर्वत पर लंगूरों ने बचाया है तथा मरुत्त के वंश में उत्पन्न हुए बहुत से क्षत्रिय बालकों की समुद्र ने

रक्षा की है। ये क्षत्रिय-बालक भिन्न-भिन्न स्थानों पर मौजूद हैं, यदि ये मेरी रक्षा करें तो मैं स्थिर रह सकती हूँ। इन बेचारों के बाप-दादे परशुराम के द्वारा युद्ध में मारे गये हैं। मैं धर्म की मर्यादा को लाँघने वाले क्षत्रियों द्वारा अपनी रक्षा नहीं चाहती, मैं धार्मिक पुरुष के संरक्षण में ही रहूँगी, आप शीघ्र इसका प्रबन्ध कीजिये। पृथ्वी की प्रार्थना सुनकर कश्यप जी ने ऊपर बताये हुए राजकुमारों को भिन्न-भिन्न स्थानों से एकत्रित किया और उन्हें पृथ्वी के विभिन्न देशों के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। आज जिनके वंश कायम हैं, ये उन्हीं के पुत्र-पौत्रों में से हैं।

परशुराम के रूप में ब्राह्मणों का महान प्रतिशोध-मूलक-संघर्ष उत्पन्न हुआ, जिसने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन किया था। कुछ थोड़े लोग, जो उसके युद्धप्रिय कुठार की धार से बच गये थे, वे या तो पहाड़ों में छिप गये अथवा छोटी जातियों में मिलकर रहने लगे। कुछ को दयालु स्वभाव के ब्राह्मणों ने ही बचा लिया था। शिक्षा तथा अभिषेक के अभाव में वे शूद्रों की भाँति विकसित होते रहते। ऋषि कश्यप ने उनको सन्मार्ग पर स्थापित किया और क्षत्रिय के रूप में उनको पुनः प्रतिष्ठापित किया। सूर्यवंश से सम्बन्ध स्थापित करने वाली मिश्रित रक्त की सम्भवतः यह पहली जाति थी जो नव-क्षत्रिय के रूप में उत्पन्न हुई थी।- (प्राचीन भारत- सत्यकेतु विद्यालंकार, डी.लिट्)

द्वितीय- अलंकार शास्त्र की कालजयी रचना 'रस गंगाधर' पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा रचित है। बहु विद्याव्यसनी जगन्नाथ सब शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे, परन्तु दर्शन एवं साहित्यशास्त्र के विशेषज्ञ थे। एक बार जयपुर नरेश मिर्जा जयसिंह उन्हें काशी से जयपुर ले आये। इसका मूल कारण था कि दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के दरबारी मुल्ला जयपुर नरेश पर आक्षेप करते हुए छींटाकशी करते थे कि आप लोग वास्तविक क्षत्रिय नहीं हैं। वे प्रश्न करते थे कि परशुराम जी ने जब इक्कीस बार इस पृथ्वी को निःक्षत्रिय कर डाला तब आपके पूर्वज कैसे बचे ? राजा जयसिंह उन्हें दिल्ली के शाही दरबार में ले गये। वहाँ जाकर पण्डितराज ने इस आक्षेप का उत्तर इस प्रकार दिया- 'परशुराम जी ने इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय किया, इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि एक भी क्षत्रिय नहीं बचा, क्यों कि यदि यही अर्थ माना जाये तो इक्कीस बार की बात मूलरूप से मिथ्या हो जायेगी अर्थात् प्रथम बार में ही जब सभी क्षत्रिय मारे जा चुके थे, तब फिर क्षत्रिय आये कहाँ से, कि जो पुनः-पुनः उन्होंने पृथ्वी को निःक्षत्रिय किया। तो क्या वे रावण के सिरों की तरह उगते रहे अथवा रक्तबीज

की तरह हजारों संख्या में होकर एक साथ पैदा होते रहे। अत: यह दलील माननी ही होगी कि अधिकतर क्षत्रिय बच रहे तो इक्कीसवीं बार भी कुछ अवश्य बच गये होंगे और वे ही इन क्षत्रिय राजाओं के पूर्वज थे।

तीसरे- सहस्त्रार्जुन हैहयवंशी क्षत्रिय राजा था और उसने तथा उसके पुत्र-पौत्रों ने शक्ति के मद में परशुराम जी का अनेक बार अनिष्ट किया। इस कारण परशुराम जी के मन में हैहयवंशियों के प्रति प्रतिशोध की तीव्र भावना जाग्रत हो गयी थी। परिणामत: उन्होंने हैहयवंशियों के समूल नष्ट करने की बार-बार कोशिश की थी, सभी क्षत्रियों को नहीं। वह अलग बात है कि उस समय परशुराम जी की क्रोध की ज्वाला में कुछ निर्दोष हैहयों से सम्बन्धित राजा तथा अन्य लोग मारे गये हों। परशुराम की शक्ति से हैहयों की उन्नति रुक गई और वे कुछ समय के लिए दब से गये।

कार्तवीर्य अर्जुन के सहस्त्रों पुत्र-पौत्रों में से पाँच-शूर, शूरसेन, वृषसेन, मधु और जयध्वज प्रमुख थे। जयध्वज का पुत्र तालजंघ हुआ। तालजंघ के सौ पुत्र थे जो तालजंघ क्षत्रिय कहलाये। इनका सूर्यवंशी राजा सगर ने संहार कर डाला। तालजंघ के अनेक पुत्रों में वीतिहोत्र सबसे बड़ा था और उनमें से एक का नाम भरत था जो बड़ा प्रतापी था। भरत के वृष, वृष के मधु और मधु के वृष्णि आदि अनेक पुत्र हुए। कुछ इतिहासकारों के अनुसार वृष्णि के कारण यह वंश वृष्णि वंश कहलाया। मधु के कारण इस वंश की संज्ञा मधु भी हुई। यदु के नाम पर इस वंश को यादव वंश तो पहले ही कहा जाता है। इस वंश का यादव नाम अधिक व्यापक और सामान्य है। इस वंश की अनेक शाखा-प्रशाखाऐं चलीं। सहस्त्रार्जुन के वंशज हैहय और तालजंघ के नाम से प्रसिद्ध हुए और उनका राज्य बहुत काल तक माहिष्मती में चलता रहा। महाभारत के युद्ध के समय माहिष्मती में नील नाम का राजा राज्य करता था। वह युद्ध में कौरवों की ओर से लड़कर वीरगति को प्राप्त हुआ था। यही हैहयवंशी क्षत्रिय पीछे और पूर्व की ओर बढ़े और चेदि के कलचुरियों के नाम से मध्यभारत में बहुत काल तक राज्य करते रहे। कलचुरियों ने वि.सं. 306 में चेदि या कलचुरि नाम का नया सम्वत् भी चलाया था।

बाबू वृन्दावनदास ने अपनी पुस्तक- 'प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य' में लिखा है कि- यादववंशीय राजाओं के वंशक्रम वर्णन के अलावा इस वंश के इतिहास की कुछ उन घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है जिनका सम्बन्ध समसामयिक इक्ष्वाकु-सूर्यवंशी राजाओं से है। परशुराम और महाराज रामचन्द्र

समकालीन थे। इसी प्रकार सहस्त्रार्जुन और परशुराम युद्ध का उल्लेख इस बात का परिचायक है कि हैहयवंशीय कार्तवीर्य अर्जुन और महाराज रामचन्द्र लगभग समकालीन थे। सम्भव है एक-दो पीढ़ी का अन्तर रहा हो। सहस्त्रार्जुन का एक पुत्र मधु भी था जो सम्भवत: वही यदुवंशी मधु था जो मधुबन पर राज्य करता था। इसी मधु का पुत्र लवण था जिसके अत्याचारों से तत्कालीन जनता उत्पीड़ित थी। श्रीराम ने अपने भाई शत्रुघ्न को लवण से युद्ध करने और उसे राज्य से हटाने के लिए भेजा था। लवण उस युद्ध में मारा गया। शत्रुघ्न ने बारह वर्ष मथुरा पर स्वयं राज्य करके अपने पुत्र शूरसेन को वहाँ का राजा बना दिया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि उसी शूरसेन के नाम पर मथुरा प्रदेश का नाम शूरसेन प्रदेश पड़ा। लिंग पुराण- अध्याय 68 के अनुसार यह सिद्ध होता है कि इस प्रदेश का नाम सहस्त्रार्जुन के पुत्र शूरसेन के नाम पर पड़ा। मधुवन का राजा मधु एक धर्मात्मा राजा था। उसको रामायण में असुर लिखा है, परन्तु प्राचीनकाल में राक्षसों की संस्कृति भी बड़ी उन्नति पर थी, उनमें भी अनेक धर्मात्मा और सत्यपरायण लोग हुए हैं। प्रह्लाद और बलि आदि पवित्र चरित्र वाले व्यक्तियों की उत्पत्ति असुरवंश में हुई थी। मधु भले ही असुर संस्कृति का मानने वाला हो' वह था यादव ही। उक्त मधु के वंश में उत्पन्न होने के कारण ही श्रीकृष्ण को 'माधव' कहा जाता है।

उक्त कथन की पुष्टि हरिवंश पुराण- विष्णु पर्व अ. 37-38 से होती है। उसके अनुसार अयोध्या के सूर्यवंशी राजा हर्यश्व का विवाह मधु की पुत्री मधुमती से हुआ था। हर्यश्व के बड़े भाई ने उसे किसी कारणवश अयोध्या से निकाल दिया था। वह अपनी पत्नी की सलाह से अपने ससुर के पास मधुवन चला गया। मधु का राज्य मधुवन से आनर्त (उत्तरी गुजरात) तक फैला था। मधु ने अपने राज्य को दो भागों में विभाजित कर मधुवन का निकटवर्ती प्रदेश अपने पुत्र लवण को दिया और हर्यश्व को आनर्त और सुराष्ट्र का शासक बना दिया। हर्यश्व ने गिरिवर (रैवतक) पर अपनी राजधानी बसायी और वह पश्चिम तटवर्ती समुद्र तक के प्रदेश पर शासन करने लगा। इस प्रकार सूर्यवंशी हर्यश्व की सन्तान सूर्यवंश से बदलकर चन्द्रवंश के अन्तर्गत मानी गई। हर्यश्व का मधुमती से यदु नामक पुत्र हुआ जो अपने पूर्वज ययाति-पुत्र यदु का नाम राशी था। इस यदु को ययाति पुत्र यदु से भिन्न व्यक्ति समझना होगा, क्योंकि ययाति पुत्र तो इस यदु से कई पीढ़ी ऊपर पूर्वज था।

टिप्पणी- इस सम्बन्ध में हरिवंश पुराण में टिप्पणी दी है- "कहते हैं जैसे ब्रह्माजी के मानस पुत्र वशिष्ठ किसी कारणवश मित्रावरुण के अंश से नूतन

शरीर धारण करके प्रकट हुए, फिर भी वशिष्ठ ही बने रहे उसी प्रकार ययाति पुत्र महाराज यदु ही योगबल से हर्यश्व के पुत्ररूप में प्रकट हुए थे और उसी पूर्व नाम से प्रख्यात हुए।"

हरिवंश पुराण की इस कथा से ऐसा लगता है कि यह कथा एक क्षेपक-मात्र है। जब कि ययाति पुत्र यदु कई पीढ़ी पूर्व हो चुका था तथा उसकी सन्तति भी उत्पन्न हो चुकी थी।

यदु के वंशजों के सात कुल प्रसिद्ध हुए - भीम, कुकुर, भोज, अंधक, यादव, दाशार्ह और वृष्णि। आनर्त प्रदेश पर जो यादवी शाखा राज्य कर रही थी उसके अन्तर्गत सत्वत पुत्र भीम श्रीराम का समकालीन था। शत्रुघ्न के बाद उनका पुत्र शूरसेन मथुरा प्रदेश पर अपना अधिकार अधिक समय तक स्थिर न रख सका और सात्वत भीम ने महाराज रामचन्द्र के बाद उसे शीघ्र ही अपदस्थकर मथुरा पर पुनः यादवी शासन स्थापित कर दिया। जब अयोध्या में श्रीराम के पुत्र कुश का राज्य था तब मथुरा में यादववंशीय भीम का पुत्र अन्धक राज्य करता था। मथुरा में अंधक वंशीय राजाओं का राज्य कई पीढ़ी तक चलता रहा। उग्रसेन और उसका पुत्र कंस अंधकवंशीय थे। शूरसेन जो वसुदेव के पिता थे वृष्णि वंश में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपने नाम पर शौरपुर (वर्तमान बटेश्वर) बसाकर अपना अलग राज्य स्थापित किया था।

क्रोष्टु वंश-

यदु के द्वितीय पुत्र का नाम क्रोष्टु था। इसके वंशजों ने मध्यभारत के अनेक प्रदेशों पर राज्य किया और जो नगर बसाये उनमें चेदि, मथुरा, द्वारका, विदर्भ, भोजकूट आदि प्रसिद्ध हैं। इसी वंश में आगे चलकर श्रीकृष्ण ने जन्म लिया था।

क्रोष्टु से छठी पीढ़ी में राजा शशबिन्दु एक बहुत ही शक्तिशाली चक्रवर्ती सम्राट् हुए हैं। ये चौदह रत्नों के स्वामी थे। पुराणानुसार इनकी दस हजार पत्नी तथा दस लाख पुत्र हुए। ये इक्ष्वाकुवंशी महाराज मान्धाता के समकालीन थे। इनकी पुत्री बिन्दुमती महाराज मान्धाता को विवाही थी। मान्धाता के बिन्दुमती से पुरुकुत्स, अम्बरीष, मुचकुन्द आदि बड़े वैभवशाली पुत्र हुए।

शशबिन्दु के पौत्र शिनेयु तथा शिनेयु के पौत्र रुक्मकवच (रुचक) भी मध्य भारत के एक पराक्रमी राजा हुए जिनकी वीरता के आगे कोई वीर न ठहर सकता था। रुक्मकवच का पुत्र पराजित् हुआ जिसके पाँच परम बलिष्ठ और

प्रतापी पुत्र हुए। सबसे बड़ा पुत्र रुक्मेषु था जो गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ। दूसरा पुत्र उसी के आश्रित होकर रहा। तीसरे पुत्र ज्यामघ को देश त्यागकर दक्षिण-पूर्व की ओर जाना पड़ा। नर्मदा के किनारे उसने ऋक्षवान पर्वत पर मार्तिकावती नाम की नगरी बसाई और वहाँ ही राज्य करने लगा। शुक्तिमती नगरी में) राजा ज्यामघ ने काशीराज की कन्या शैव्या से विवाह किया और अपनी वीरता के कारण बड़ी ख्याति पाई। वे अपनी स्त्री से बहुत प्रेम करते थे और उसको कभी अप्रसन्न नहीं देख सकते थे। एक बार वे युद्ध से लौटते समय शत्रुओं द्वारा छोड़ी हुई एक सुन्दरी युवती को कन्या को अपने रथ में बैठाकर ले आये। जब उनका रथ नगर के समीप पहुँचा तो शैव्या दूर से ही रथ में बैठी स्त्री को देखकर चिल्ला उठी कि आप यह किस स्त्री को रथ में बैठाकर लाये हो? भय के मारे हठात् राजा के मुँह से निकल पड़ा- "यह तुम्हारी पुत्रवधू है।" इससे शैव्या के मन को सन्तोष हुआ। उस युवती का विवाह युवराज विदर्भ के साथ कर दिया गया। इसी विदर्भ ने अपने नाम पर विदर्भ देश की स्थापना की।

विदर्भ की पत्नी भोज्या से क्रथ, कौशिक (कुश) और रोमपाद नामक तीन पुत्र हुए। रोमपाद के वंशज चिदि नाम के एक राजा ने चिदि नाम की एक नगरी बसाई जिसका नाम चेदि पड़ा। चिदि का पुत्र चैद्य था जिसको दमघोष भी कहते थे। इसी दमघोष का पुत्र शिशुपाल था जिसने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण के प्रति अपशब्द कहे थे और श्रीकृष्ण ने दण्डस्वरूप उसका सुदर्शन चक्र से शिर काट दिया था।

क्रथ के वंशजों का राज्य विदर्भ में रहा। इसी वंश में महाराज भीम हुए जिनकी कन्या दमयन्ती का विवाह निषध देश के राजा वीरसेन के पुत्र महाराज नल के साथ हुआ। (राजा नल और दमयन्ती की कथा महाभारत वनपर्व में विस्तार से दी गई है)। राजा भीम अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के समकालीन थे। क्रथ के ही वंश में कुण्डिनपुर के राजा भोज थे जिनकी छोटी बहिन इन्दुमती ने स्वयंवर में रघु के पुत्र अज को अपना पति चुना। यही इन्दुमती महाराज दशरथ की माता थी। इसी क्रथ के वंश में कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक हुए जिनकी कन्या रुक्मिणी का हरण करके श्रीकृष्ण द्वारकापुरी लाये और वहाँ उसके साथ विवाह किया। रुक्मिणी के भाई रुक्म ने भोजकट नाम का नगर बसाया।

क्रथ से बाईसवीं पीढ़ी पर सत्वात् (आयु) नाम के राजा हुए जिनका पुत्र सात्वत् दक्षिण छोड़कर उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़ा। सात्वत् ने मथुरापुरी को अपनी राजधानी बनाया। मथुरा को महाराज रामचन्द्र के भाई शत्रुघ्न ने बसाया

था। पीछे मथुरा प्रदेश का नाम शूरसेन पड़ गया और मथुरा सात्वतवंशी यादवों की राजधानी हो गई।

टिप्पणी– अन्य पुराणों में उल्लेख मिलता है कि क्रोष्टु की बारहवीं पीढ़ी पर ज्यामघ नामक राजा हुआ तथा सत्रहवीं पीढ़ी पर कौशिक नाम के राजा का चेदि नामक पुत्र हुआ जिससे चैद्य राजाओं की शृंखला का जन्म हुआ। ज्यामघ के पुत्र विदर्भ से इक्कीसवीं पीढ़ी पर अंशु नामक राजा हुआ जिसका सात्वत् नामक पुत्र हुआ। सत्वत् से सात्वत्–वंश का क्रम चला।

सात्वत् के भजिन, भजमान, दिव्य, अन्धक, देवावृध, महाभोज तथा वृष्णि नामक सात पुत्र हुए जिनसे भिन्न–भिन्न कुलों की उत्पत्ति हुई। सात्वत् की पत्नी इक्ष्वाकुवंशी कौशल्या थी। सात्वत् वंश में ही अन्धक, अनमित्र, महाभोज, प्रसेन और सत्राजित आदि हुए हैं। सत्राजित को कैकयराज की दस कन्याऐं ब्याही थीं। उसके भंगकार आदि सौ पुत्र थे। तीन कन्याऐं– सत्यभामा, व्रतिनी तथा पद्मावती थीं जो श्रीकृष्ण को प्रदान कर दीं। सत्राजित के भाई प्रसेन को जामवंत ने मारकर स्यमंतक मणि– ले ली। सत्राजित ने सूर्य से स्यमंतक मणि प्राप्त की थी। अनमित्र के अंश में ही पृश्नि का जन्म हुआ और पृश्नि से श्वफल्क उत्पन्न हुआ। श्वफल्क के गान्दिनी पत्नी से अक्रूर का जन्म हुआ। अक्रूर के उग्रसेना पत्नी से देववान, उपदेव के अलावा बारह पुत्र तथा सुचीरा नामक कन्या उत्पन्न हुई। हरिवंश–पुराण में इनके परिवार का वर्णन इस प्रकार है– अक्रूर के अन्य भाई– उपासंग, मदु, मृदुर, अरिमेजय, अविक्षिप, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक, यतिधर्मा, गृध्र, भोज, अन्धक, आवाह, प्रतिवाह तथा वरांगना कन्या (जो श्रीकृष्ण को ब्याही)। अक्रूर की तीन पत्नियाँ थीं जो शिबि नरेश की कन्या थीं।

अक्रूर के चाचा चित्ररथ (चित्रक) जिनकी श्रविष्ठा और श्रवणा दो पत्नियाँ थीं उनसे पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधमी, धर्मभृत, सुबाहु, बहुबाहु आदि पुत्र थे।

अन्धक के कुकुर, भजमान, शुचिकम्बल और बर्हिष चार पुत्र हुए। कुकुर से आठवीं पीढ़ी पर पुनर्वसु हुआ। उसके आहुक नामक पुत्र तथा आहुकी कन्या हुई। आहुकी कन्या अवन्ति नरेश को ब्याही थी। आहुक पत्नी काश्यकन्या से देवक और उग्रसेन हुए। देवक के चार पुत्र– सुदेव (सहदेव), देववर्धन (देवरक्षित), देववान् और उपदेव तथा सात पुत्रियाँ– धृतदेवा, शान्ति देवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा, और देवकी उत्पन्न हुईं। देवक की सातों

कन्याऐं वसुदेव को ब्याही थीं। उग्रसेन के पद्मावती पत्नी से कंस आदि नौ पुत्र- कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंक, शंकु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि, तुष्टिमान् हुए। इनके पाँच कन्याऐं- कंसा, कंसवती, कंका, शुरभू और राष्ट्रपालिका थीं, इनका विवाह वसुदेव के छोटे भाईयों देवभाग आदि से हुआ। अग्निपुराण में इस वंश का वर्णन सात्वत पुत्र देवावृध के वंश के अन्तर्गत किया गया है।

अन्धक पुत्र भजमान की आठवीं पीढ़ी पर हृदीक हुआ जिसके कृतवर्मा, शतधन्वा, भिषग आदि अनेक पुत्र हुए। कृतवर्मा तथा शतधन्वा महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से लड़े थे।

सात्वत् पुत्र महाभोज के भोजवंशी यादव हुए। युयुधान (सात्यकि) आदि इसी वंश में उत्पन्न हुए।

श्रीमद्भागवत के अनुसार सात्वत् के सातवें छोटे पुत्र वृष्णि से वृष्णि वंश चला। वृष्णि के दो पत्नी गान्धारी तथा माद्री थीं जिनके कई पुत्र हुए। वृष्णि पुत्र सुमित्र के चौथी पीढ़ी पर प्रसेन और सत्राजित् हुए। वृष्णि के दूसरे पुत्र युधाजित के दो पुत्र हुए, शिनि और अनमित्र। अनमित्र के तीन पुत्र सत्यक, निम्न और पृश्नि हुए। सत्यक के सात्यकि आदि हुए। पृश्नि के पुत्र श्वफल्क के अक्रूर आदि हुए। मत्स्य पुराण में अक्रूर की तीन पत्नियों का उल्लेख है- पत्नी रत्ना से 11 पुत्र, उग्रसेना से 2 पुत्र तथा अश्विनी से 13 पुत्र थे। पृश्नि के दूसरे पुत्र चित्ररथ (चित्रक) के दो पुत्र पृथु और विदूरथ थे। विदूरथ के छठी पीढ़ी पर हृदीक हुए जिनके देवबाहु, शतधन्वा तथा कृतवर्मा थे। वृष्णि के तीसरे पुत्र देवमीढुष (देवमीढ़) थे जिनके शूरसेन हुए। यह वृष्णि पत्नी माद्री से उत्पन्न थे। देवमीढ़ की पत्नी भोजा (अश्मकी) से शूरसेन का जन्म हुआ। शूरसेन काल से द्वापरयुग का का प्रारम्भ होता है। शूरसेन के भोजराज कुमारी मारिषा से दस पुत्र तथा पाँच पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। उनके नाम इस प्रकार हैं-

दस पुत्रों के नाम- उग्रसेन की पाँच कन्या विवाही

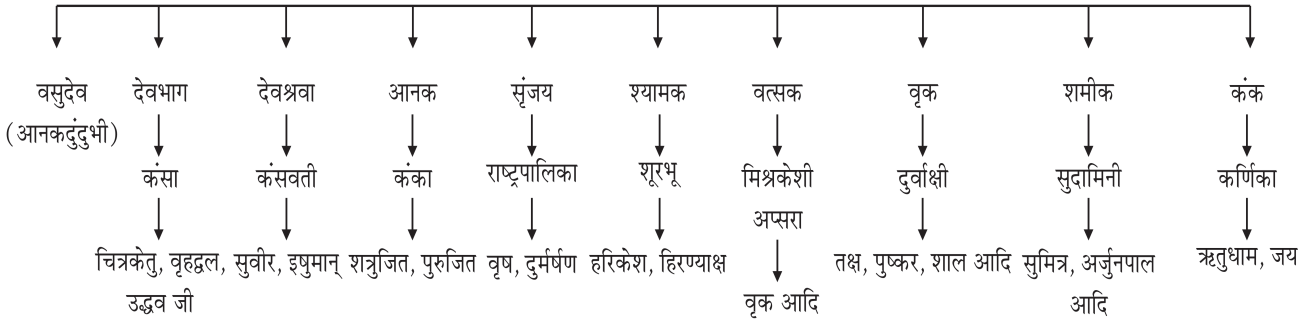

शूरसेन की पाँच पुत्रियाँ-

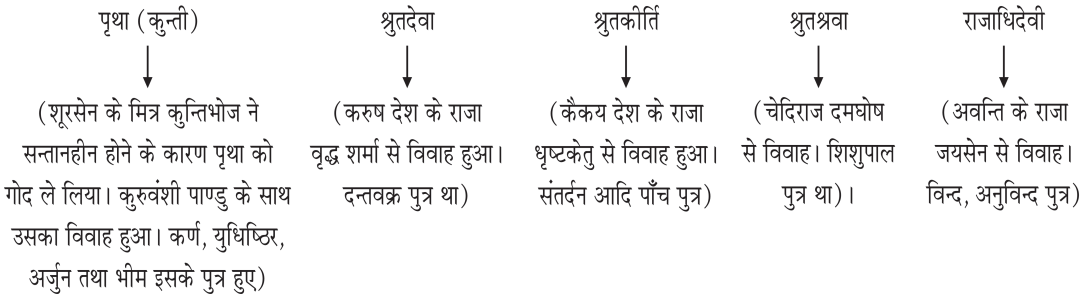

शूरसेन पुत्र वसुदेव परिवार- मत्स्य पुराणानुसार वसुदेव की 24 कहीं 18 पत्नियों का उल्लेख मिलता है)।

(पुरुवंशी शांतनु के भाई वाल्हीक- की पुत्री)

रोहिणी	मदिरा	भद्रा	रोचना	इला	कौशल्या	पौरवी
↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓
बलराम, गद, सारण, कृत, दुर्मद, विपुल, ध्रुव आदि।	नन्द, उपनंद, कृतक सूर आदि।	कई पुत्र।	हस्त, हेमांगद आदि।	उरुवल्क आदि।	केशी	भूत, सुभद्र, भद्रवाह भद्र, दुर्मद आदि 12 पुत्र।

(उग्रसेन के भाई देवक की सात कन्याऐं वसुदेव पत्नी)-

धृतदेवा	शान्तिदेवा	उपदेवा	श्रीदेवा	देवरक्षिता	सहदेवा	देवकी
↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓
विपृष्ट	श्रम, प्रतिश्रुत आदि।	कल्पवर्ष आदि 10 पुत्र।	वसु, हंस, सुवंश आदि छः पुत्र।	गद, आदि नौ पुत्र	पुरुविश्रुत आदि आठ पुत्र	कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, संमर्दन, भद्र, बलराम, श्रीकृष्ण, सुभद्रा कन्या (अर्जुन को विवाही)

अन्य पत्नियाँ– सुनामा, वृकदेवी, वैशाखी आदि। कंस के अधर्म और अत्याचारी स्वभाव के कारण ऐसा राज्य निरापद नहीं था, ऐसा जानकर वसुदेव जी ने अपनी पत्नियों को उनके पुत्रों के साथ गिरिकन्दराओं में तथा अपने मित्रों के समीप सुरक्षित रूप से भेज दिया। मथुरा में वे देवकी के साथ रहे। इन्हीं में से रोहिणी गोकुल में नन्दगोप के भवन में रहने लगी।

श्रीकृष्ण परिवार–

विभिन्न पुराणों के अनुसार श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ थीं जिनमें आठ प्रमुख थीं। प्रमुख रानियाँ– रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवन्ती, नाग्नजिती (सत्या), कालिन्दी, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा तथा भद्रा थीं। प्रत्येक रानी से दस–दस पुत्र हुए। रुक्मिणी से एक चारुमती नामक कन्या भी पैदा हुई जिसका विवाह कृतवर्मा के पुत्र बली के साथ हुआ। कृष्ण पुत्र–पौत्रों की संख्या करोड़ों तक पहुँचती है। भिन्न–भिन्न पुराणों में भिन्न–भिन्न संख्या दी है। अग्निपुराण–कृष्ण पुत्रों की संख्या– एक करोड़ अस्सी हजार। यादवों की संख्या– तीन करोड़।

विष्णुपुराण– कृष्ण पुत्रों की संख्या– एक लाख अस्सी हजार। यादव कुमारों को धनुर्विद्या की शिक्षा देने वाले गृहाचार्यों की संख्या तीन करोड़ अठासी लाख थी। यदुवंश में एक सौ एक कुल थे।

मत्स्यपुराण– यादवों की संख्या तीन करोड़ थी, उनमें साठ लाख तो महाबली थे। इन महाभाग यादवों के एक सौ कुल हैं। ये सभी कुल विष्णु सम्बन्धित कुल के अन्दर ही विद्यमान थे।

पुराणों के आंकड़ों से स्पष्ट है कि उस समय यादव वंश की अपरिमित संख्या थी। भले ही विभिन्न पुराणों में संख्या भिन्न–भिन्न है, लेकिन कुलों की संख्या सभी में समान है। कुलों के हिसाब से भी आंकड़े पुराणों के अनुसार सही बैठते हैं। स्पष्ट है कि उस समय यदुवंश बहुसंख्यक और विश्व का सबसे अधिक शक्तिशाली वंश था।

श्रीकृष्ण के कारण यदुवंश गौरवशाली हुआ। श्रीकृष्ण के समय में अन्धक–वृष्णि–संघ बना हुआ था। यह संघ अंधक और वृष्णि गोत्रों से उत्पन्न क्षत्रियों का था। उग्रसेन उनके राज प्रमुख थे, और श्रीकृष्ण मुख्य। उग्रसेन की पत्नी का नाम रुचिमती था, जिससे कंस आदि उत्पन्न हुए।

श्रीकृष्ण का बहुआयामी स्वरूप-

भारतीय जनमानस में श्रीकृष्ण का बहुआयामी स्वरूप परिलक्षित होता है। उनके व्यक्तित्व में लोकरंजनकारी बाल-लीलाओं के आकर्षण के साथ-साथ भारत को एक प्रतिभा सम्पन्न राजनीतिज्ञ ही नहीं, एक महान कर्मयोगी और दार्शनिक प्राप्त हुआ, जिसका गीता-ज्ञान समस्त मानव-जाति एवं सभी देश के लिए पथ-प्रदर्शक है। ब्रज या शूरसेन जनपद के इतिहास में श्रीकृष्ण का समय विशेष महत्व का है। इसी समय प्रजातंत्र और राजतंत्र के बीच कठोर संघर्ष हुए और भारत का महाभीषण संग्राम हुआ जिसे महाभारत कहते हैं, मगध राज्य की शक्ति का विस्तार हुआ। इन राजनैतिक हलचलों के अलावा इस काल का सांस्कृतिक महत्व भी है। श्रीकृष्ण साधारण व्यक्ति न होकर युग पुरुष थे। पुराणों के अनुसार श्रीकृष्ण परमब्रह्म परमात्मा के साक्षात् पूर्णावतार हैं, पूर्णब्रह्म हैं। मथुरा नगरी इस महान अवतार का जन्म स्थान होने के कारण महत्वशाली हो गयी। मथुरा ही नहीं, सारा ब्रज या शूरसेन जनपद आनन्दकन्द श्रीकृष्ण की मनोहारी लीलाओं की क्रीड़ाभूमि होने के कारण गौरवान्वित हो गया। श्रीकृष्ण भागवत-धर्म के स्रोत हुए। भागवत-धर्म ने करोड़ों भारतीय-जनों को आह्लादित तो किया ही उसके द्वारा कितने ही विदेशी भी प्रभावित हुए। प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का विपुल भण्डार कृष्ण की मनोहर लीलाओं से भरा पड़ा है। उनके लोकरंजक रूप ने भारतीय-जन-मानस पर जो छाप छोड़ी है, वह अमिट है। श्रीकृष्ण ही ब्रज के धर्म-सम्प्रदायों के उपास्यदेव हैं, वही ब्रज-संस्कृति के प्रवर्तक हैं, और वही ब्रज-साहित्य के प्रेरणास्रोत हैं। ब्रज का जो अलौकिक महत्व है, उसके आधार श्रीकृष्ण ही हैं। भारत की सनातन-संस्कृति के समग्ररूप का दर्शन यदि हम किसी एक व्यक्ति में करना चाहें तो वह निश्चय ही श्रीकृष्ण होंगे। इस 'सत्य-शिव-सुन्दर' संस्कृति के प्रादुर्भाव और इसके आरम्भिक विकास के कारण इस काल का महत्व स्वयंसिद्ध है।

ईश्वर और अवतार के रहस्य को दृष्टि में रखकर यदि भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्रों की आलोचना करें तो स्पष्ट रूप से भासित हो जायेगा कि वे पूर्णावतार हैं। दुराग्रह छोड़ दिया जाय तो विवश होकर कहना ही पड़ेगा- 'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' अर्थात् श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान्-परब्रह्म परमेश्वर हैं। बुद्धि के चारों ऐश्वर्य रूपों (धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य तथा वैराग्य) को देखने से इनकी पूर्णता श्रीकृष्ण में स्पष्ट प्रतीत होती है। इस सन्दर्भ में श्रीगिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी का लेख- 'श्रीकृष्णावतार पर वैज्ञानिक दृष्टि' पर दृष्टिपात करना चाहूँगा।

धर्म की स्थापना के लिए ही भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार है, उनका प्रत्येक कार्य धर्म की कसौटी है, उनके सब चरित्र शुद्ध सात्विक हैं, रज और तम का वहाँ स्पर्श भी नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥

4/7,8

साथ ही अमानिता (मान रहित), अदंभ (अहंकार रहित) आदि बुद्धि के धार्मिक गुणों को पूर्ण मात्रा में वहाँ मिला लीजिए। महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में आगंतुकों के चरण-धोने का काम आपने लिया था, महाभारत युद्ध में अर्जुन के सारथि बने थे। इन बातों से उनकी निरभिमानता का पता चलता है। भगवान् श्रीरामचन्द्र इसलिए धार्मिक-शिरोमणि-मर्यादा-पुरुषोत्तम कहाते हैं कि पिता की आज्ञा से उन्होंने राज्य छोड़ दिया था। अब विचार करें- वहाँ साक्षात् पिता की प्रत्यक्ष आज्ञा थी, किन्तु कंस के मारने के बाद जब श्रीकृष्ण से मथुरा का राज्य ग्रहण करने का सभी ने अनुरोध किया तो आपने अपने पूर्व-पुरुष यदु महाराज के राज्याधिकार का बहाना लेकर राज्य ग्रहण करने से मनाकर दिया था। आपने बहुत प्राचीन पूर्व पुरुष की अप्रत्यक्ष आज्ञा का सम्मान कर राज्य लेना स्वीकार नहीं किया, इससे आपका धार्मिक आदर्श कितना ऊँचा सिद्ध होता है। धर्म के प्रधान अंग सत्य में आप इतने सुदृढ़ थे कि शिशुपाल की माता को जो इनकी बुआ थी, शिशुपाल के सौ अपराध सहन करने का वचन दे दिया था। युधिष्ठिर की यज्ञ सभा में शिशुपाल के कटुभाषण पर उपस्थित तटस्थ लोगों को क्रोध आ गया, किन्तु श्रीकृष्ण सौ गालियों की पूर्ति तक चुपचाप रहे, सौ पूर्ण होने पर ही उसे मारा। इसके अलावा धर्म के नाम पर जो लोग उलटे मार्ग में फँसते हैं, दो धर्मों का परस्पर विरोध दिखायी देने पर उस ग्रन्थि को सुलझाने में जो बड़े-बड़े विद्वानों की भी बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है और भ्रमवश अधर्म को धर्म मान लेती है, उन ग्रन्थियों को अपने आचरण और उपदेश दोनों से भगवान् श्रीकृष्ण ने खूब सुलझाया है। धर्म के सब अंगों को पूरा निभाया है। धर्म का स्वरूप सदा देश, काल, पात्र सापेक्ष होता है। एक समय एक के लिए जो धर्म है, भिन्न अवसर में अथवा भिन्न अधिकारी के लिए वही अधर्म हो जाता है। इस अधिकार- भेद- 'श्रेयान् स्वधर्मः' के आप पूर्ण ज्ञाता थे। धर्म का बलाबल आप खूब देखते थे। दुष्टों का किसी भी प्रकार दमन आप धर्मानुकूल

मानते थे। कर्ण-अर्जुन युद्ध में रथ का पहिया पृथ्वी में चले जाने पर, धर्म की दुहाई देकर अर्जुन से शस्त्र चलाना बन्द करने का अनुरोध करते हुए कर्ण को आपने यही कहकर फटकारा था कि "जिसने अपने जीवन के आचरणों में धर्म का कभी आदर नहीं किया, उसे दूसरे से अपने लिए धर्माचरण की आशा करने का क्या हक है? पाण्डवों का लाक्षागृह में जलाना, द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित करना, पाण्डवों को छलपूर्वक द्यूत-क्रीड़ा द्वारा तेरह वर्ष का वनवास देना, अभिमन्यु जैसे अकेले महारथी को सात महारथियों द्वारा घेरकर मारना, ऐसे अनेक उदाहरणों से अधर्म और अमानवीय कृत्यों की याद दिलाकर कर्ण को धर्म-अधर्म की परिभाषा को समझाया। अधार्मिकों के साथ भी यदि पूर्ण धर्म का पालन किया जाय, तो अधार्मिकों का हौसला बढ़ता है और धर्म की हानि होती है। इसलिए समाज-व्यवस्थापक को इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए। रथचक्र लेकर भीष्म के सामने दौड़ते हुए आपने जब भीष्म पर आक्षेप किया कि- तुमने धार्मिक होकर भी अधर्मी दुर्योधन का साथ क्यों दिया? तब भीष्म के- "राजा परमदैवतम्" अर्थात् राजा बड़ा देवता है, राजधर्म के अनुसार उसकी आज्ञा माननी चाहिए, यह उत्तर देने पर आपने स्पष्ट कहा कि- "दुष्ट राजा कभी माननीय नहीं होता, तभी तो मैंने कंस का वध किया था।" इस प्रकार सामाजिक नेता के धर्मों की आपने खूब शिक्षा दी है, और धर्म के साथ नीति का क्या स्थान है, कहाँ-कहाँ नीति को प्रधानता देनी चाहिए और कहाँ-कहाँ धर्म को- इसे खूब स्पष्ट किया है। नीति का उपयोग जहाँ धर्मरक्षा में होता हो- वहाँ आप नीति को प्रधानता देते हैं। इस व्यवस्था को भूल जाने से ही भारतवर्ष विदेशियों के पैरों कुचला गया है और परिणाम में इसे धर्म की दुर्दशा देखनी पड़ी है। कर्ण पर्व में महाराज युधिष्ठिर के गांडीव-धनुष की निन्दा करने पर सत्य-प्रतिज्ञा-निर्वाह के उद्देश्य से युधिष्ठिर पर शस्त्र चलाने के लिए तैयार अर्जुन को ऐसे अवसर पर सत्यपालन का अनौचित्य बताते हुए आपने रोका था और- "बड़ों की निन्दा ही उनका हनन है" इस नीति विकल्प से सत्यरक्षा करवायी थी। सौप्तिक पर्व में अश्वत्थामा ने जब सोते हुए द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को मार दिया और अर्जुन द्वारा उसके वध की प्रतिज्ञा से, बिलखती द्रौपदी को सांत्वना देकर युद्ध में जीतकर उसे पकड़ लिया गया तब युधिष्ठिर और द्रौपदी कह रहे थे कि- 'ब्रह्महत्या मत करो, इसे छोड़ दो', भीमसेन कह रहे थे कि ऐसे दुष्ट को अवश्य मार दो', अर्जुन की प्रतिज्ञा भी उसे मारने के पक्ष में थी- उस समय भी आपने "धन हरण मारने के ही समान होता है, इसके मस्तक की मणि निकाल लो' यह विधि बताकर अर्जुन से दोनों गुरुजनों की आज्ञा का पालन कराया था और उसे

ब्रह्महत्या से बचाकर विकल्परूप से सत्यरक्षा कराई थी। ऐसे प्रसंग 'धर्मग्रन्थि' सुलझाने में आदर्श धार्मिक के विचार प्रतीत होते हैं, किन्तु आपने 'स्वधर्म' विरुद्ध कहकर- 'प्रज्ञावादांश्चभाषसे' के द्वारा उन विचारों को बिलकुल अनुचित ठहराया और उसे युद्ध में प्रवृत्त किया, जो कि गीता का स्वाध्याय करने पर बिलकुल ठीक मालूम होता है। बचपन में ही गोपों द्वारा इन्द्र की पूजा हटाकर आपने जो गोवर्धन-पूजा चालू की उसमें भी यही अधिकार-भेद का रहस्य काम कर रहा है। आपका यही अभिप्राय है कि ईश्वर जब सर्वव्यापक है, तो गोवर्धन जो हमारे समीप है और जिससे हमारी सब प्रकार पालना होती है, उसे ही ईश्वर की मूर्ति मानकर क्यों न पूजा जाय? क्या वह ईश्वर की विभूति नहीं है? 'इन्द्र की पूजा करने से इन्द्र वर्षा करेगा' इस कामनायुक्त धर्म के आप सदा से विरोधी रहे हैं, इसे आपने स्थान-स्थान पर 'दुकानदारी' बताया है और धर्म सीमा से बाहर माना है। अपना कर्तव्य समझ धर्म का पालन करना- यही श्रीकृष्ण की शिक्षा है। अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं, सर्वांगपूर्ण, बलाबल-विवेचना-सहित, आदर्श धर्म का आपके कर्म और उपदेशों में पूर्ण निर्वाह है। इसीलिए उस काल के धार्मिक नेता वेदव्यास जी, बाल ब्रह्मचारी भीष्म तथा धर्मावतार युधिष्ठिर आदि आपको साक्षात् ईश्वर मानते थे और धर्मग्रन्थि सुलझाने में आपको प्रमाणित मानते थे। महाराज परीक्षित् का जन्म मृत बालक की दशा में हुआ, तो उसको जीवित करते समय श्रीकृष्ण का कथन है कि- "यदि मैंने आजन्म कभी धर्म का तथा सत्य का उलंघन न किया हो तो यह बालक जी उठे।" इससे अपनी धर्मपरायणता का आदर्श और धर्म की अलौकिक शक्ति भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं प्रकट की है।

दूसरी बुद्धि का रूप '**ज्ञान**' भी श्रीकृष्ण में सर्वांगपूर्ण था। व्यावहारिक, राजनैतिक, धार्मिक, दार्शनिक ज्ञान- सबकी आप में पूर्णता थी। आप सर्वज्ञान निधि थे, इसके लिए आपका एक 'भगवद्गीता' का उपदेश ही पर्याप्त प्रमाण है- जिसके ज्ञान की थाह आज पाँच हजार से भी अधिक सालों तक न मिल सकी। नित्य नये विचार और नये-नये विज्ञान उस सात सौ श्लोकों के छोटे से ग्रन्थ से प्रस्फुटित हो रहे हैं, श्रीमद्भागवत-एकादश स्कन्ध आदि में आपके और भी कई उपदेश हैं, जो ज्ञान में आपकी पूर्णता के प्रबल प्रमाण है।

इनके अतिरिक्त व्यवहार में भी आपका पूर्णज्ञान विकसित है। व्यावहारिक ज्ञान कार्य-कारण-भाव-ज्ञान का नाम है, किस उपाय से कौन-सा कार्य सिद्ध हो सकता है, यह ज्ञान लेना ही व्यावहारिक होता है, इसका चिह्न है सफलता। जितना व्यावहारिक ज्ञान जिसमें होगा, उतनी ही सफलता उसे होगी। जीव-कोटि

के बड़े-बड़े विद्वान् और महान नेता भी खास अवसरों पर धोखा खा जाते हैं और सफलता से हाथ धो बैठते हैं, इतिहासों में इसके सैंकड़ों उदाहरण हैं। श्रीकृष्ण का व्यावहारिक मार्ग बाल्यकाल से ही कितना काँटों से भरा था, यह उनके चरित्र के स्वाध्याय करने वालों से छिपा नहीं है। चारों ओर आसुरी-प्रवृत्ति वाले राजाओं का दबदबा था, उन सबका दमन करना था, किन्तु इस दशा में भी उन्हें वहाँ सफलता ही मिली। इतना ही नहीं, किसी दशा में चिन्तित होकर सोचना भी नहीं पड़ा, प्रत्येक स्थान में सफलता ही प्राप्त हुई। क्या यह विज्ञान की पूर्णता का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है? क्या इससे भगवान् श्रीकृष्ण का पूर्ण ईश्वरत्व प्रकट नहीं होता? मगध का सम्राट् जरासंध और उसका मित्र कालयवन अपने अतुल सैन्यशक्ति से मथुरा का घेरा दिये पड़े हैं, उस दशा में सब यादवों को अपने अक्षत सामान सहित सुदूर काठियावाड़ के द्वारका स्थान में ले जाकर बसा देना और समुद्र के मध्य में एक आदर्श नगर बना उसे भारत के सब नगरों से प्रधान कर देना, वास्तव में व्यावहारिक ज्ञान की मनुष्य-सीमातीत पराकाष्ठा है। एक छोटे से यादवों के राज्य का इतना दबदबा जमा देना कि सम्पूर्ण भारत के महाराजाओं को उनकी आज्ञा माननी पड़े, यह राजनैतिक ज्ञान की सीमा है। महाभारत में भी आपका राजनैतिक ज्ञान स्थान-स्थान पर अपनी छटा दिखा रहा है और वर्तमान युग के राजनीतिज्ञ भी आपके राजनैतिक ज्ञान का लोहा मानते हैं। श्रीकृष्ण के ज्ञान की सर्वांगपूर्णता में किसी विचारक को सन्देह नहीं हो सकता।

बुद्धि का तीसरा रूप **'ऐश्वर्य'** है। बुद्धि के विकास का नाम ऐश्वर्य है, उसके प्रतिफल आध्यात्मिक अणिमा, महिमा आदि सिद्धि और बाह्य अलौकिक सम्पत्ति आदि होते हैं। द्वारका की समृद्धि का वर्णन इसी अलौकिक सम्पत्ति का उदाहरण है। बाल-चरित्रों में- कालिय-दमन, गोवर्धन-धारण आदि तथा आगे के चरित्रों में विश्वरूप प्रदर्शन, अनेक रूप प्रदर्शन आदि आध्यात्मिक शक्तियों की विभूतियों के रूप में ही उनके अलौकिक कार्य हुए हैं। कालवश, भारत के दुर्भाग्य से योग विद्या आज नष्ट हो गयी, आध्यात्मिक शक्तियों का, जिनके कारण भारत जगद्गुरु था, आज परिचय ही नहीं रहा है, इससे आध्यात्मिक शक्तियों के कार्यों को आज असम्भव समझा जाय तो आश्चर्य नहीं, किन्तु किसी बात को असम्भव बता देना कोई बुद्धिमत्ता का लक्षण नहीं है। कार्य-कारण-भावपूर्वक उपपत्ति सोचना बुद्धिमत्ता का लक्षण है।

बुद्धि का चौथा रूप '**वैराग्य**' है जो राग-द्वेष का विरोधी है। इसकी पूर्णता की पहचान यह है कि सब काम करता हुआ भी, पूर्णरूप से संसार में रहता हुआ भी, सब में अनासक्त रहे, किसी बन्धन में न आवे। कमल-पत्र की तरह निर्लिप्त बना रहे। संसार छोड़कर अलग हो जाना अभ्यासवश जीवों में असम्भव है, किन्तु संसार में रहकर सर्वथा निर्लिप्त रहना शुद्ध ऐश्वर्य धर्म है। भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्रों में आदि से अन्त तक वैराग्य का- राग-द्वेष शून्यता का पूर्ण विकास है। कहाँ बाल्यकाल का गोप-गोपियों के साथ, नन्द-यशोदा के साथ वह प्रेम कि जिसमें बँधकर एक क्षण वे बिना श्रीकृष्ण के न रह सकते थे और कहाँ यह आदर्श निष्ठुरता कि अक्रूर के साथ मथुरा जाने के बाद आप एक बार भी वृन्दावन नहीं गये। उद्धव को भेजा, बलराम को भेजा, उन्हें सांत्वना दी, किन्तु अपना 'बेलागपन' दिखाने को एक बार भी किसी को मिलने को स्वयं उधर मुख नहीं किया। पहले गोपियों के साथ रासलीला करते समय ही मध्य में अन्तर्धान होकर अपनी निरपेक्षता आपने दिखा दी थी, प्रकट होने पर जब गोपियों ने व्यंग से प्रश्न किया कि अपने साथ प्रेम करने वालों से भी जो प्रेम नहीं करते, उनका क्या स्थान है? तब आपने कहा था कि वे चार ही हो सकते हैं-

"आत्माराम ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः"

(श्रीमद्भागवत- 10,32,19)

अर्थात् या तो पूर्णज्ञानी या कृतघ्न। साथ ही अपना स्वभाव भी आपने बताया था कि-

"नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये।"

- (श्रीमद्भागवत- 10,32,20)

अर्थात् गोपियों! मैं तो प्रेम करने वालों से भी प्रेम का वैसा व्यवहार नहीं करता, जैसा करना चाहिए। मैं ऐसा केवल इसलिए करता हूँ कि उनकी चित्तवृत्ति और भी मुझमें लगे, निरन्तर लगी ही रहे। आपने अपने इस स्वभाव का पूर्ण निर्वाह किया। यादवों के राज्य का सब काम आप चलाते थे, किन्तु बन्धनरूप कोई अधिकार आपने नहीं ले रक्खा था, वहाँ भी अनासक्त रहे। महाभारत युद्ध अपनी नीति से ही चलाया किन्तु बने रहे '**पार्थ-सारथी**'। बहुत से दुष्ट राजाओं को मारा, किन्तु उनके पुत्रों को ही उनके राज्य का अधिकार दे दिया, राज्य लोलुपता कहीं भी नहीं दिखायी। अपने कुटुम्बी यादवों को भी जब उद्दण्ड होते देखा, उनके द्वारा जगत में अशान्ति की सम्भावना हुई, तो उनका भी अपने सामने ही सर्वनाश करा दिया। वैराग्य का-रागद्वेष शून्यता का ही लक्षण '**समता**'

है, सो आपके आचरणों में ओत-प्रोत है। हर एक यही समझता था कि श्रीकृष्ण मेरे हैं, किन्तु वे थे किसी के नहीं, सबके और सबसे स्वतंत्र। पटरानियों में भी यही दशा थी, रुक्मिणी अपने को पटरानी समझती थी, सत्यभामा अपने को अतिप्रिय मानती थी, सब ऐसा ही समझती थीं। यह भगवान् श्रीकृष्ण की समता का प्रदर्शन है। नारद ने परीक्षा करते समय इसी '**समता**' पर आश्चर्य प्रकट किया था। आप सत्यभामा का हठ रखने के लिए पारिजात हरण करते हैं, तो जाम्बवती को पुत्र प्राप्त होने के लिए शिव की आराधना करते हैं। किसी भी प्रकार '**समता**' को नहीं जाने देते। महाभारत युद्ध के उपस्थित होने पर दुर्योधन और अर्जुन दोनों ही सहायता मांगने आते हैं और दोनों का मनोरथ पूर्ण होता है। अर्जुन से पूर्ण सौहार्द है किन्तु गर्व-भंजन के लिए स्थान-स्थान पर उसका भी शासन किया जाता है। ये सब समता **(वैराग्य)** के प्रबल प्रमाण हैं। ये बुद्धि सात्विक रूप जिसमें हों, वही भगवान् कहा जाता है- भगवद्गीता में इन चारों सात्विक बुद्धिरूपों का विशद् निरूपण है।

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥"

यश और श्री इन दो बाह्य लक्षणों को '**भग**' शब्दार्थ में और अन्तर्गत किया गया है, सो इन दोनों का भगवान् श्रीकृष्ण में पूर्णमात्रा में विकास सर्वप्रसिद्ध है। बुद्धियोग ही गीता का मुख्य विषय है, उसमें-वैराग्य योग, ज्ञानयोग, ऐश्वर्य योग और धर्मयोग, यह क्रम रक्खा गया है, इनको क्रम से राजर्षिविद्या, सिद्धविद्या, राजविद्या, और आर्षविद्या-नाम से भी कहते हैं। इन सभी विद्याओं का श्रीकृष्ण में समावेश है, इसीलिए उन्हें भगवान् कहा जाता है।

श्रीकृष्ण के जीवन चरित का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि उनका जीवन कठिनाईयों और विसंगतियों से भरा रहा है। दूसरे, उनके जीवन की प्रत्येक क्रिया तथा उपदेशों में लोक कल्याण की भावना निहित रही है जिनका महत्व सर्वकालिक तथा सर्वदेशीय प्राणिमात्र के लिए कल्याण करने वाला है।

जोधपुर से प्रकाशित '**ग्रहों का खेल**' मासिक पत्रिका- सित. 2015 में विद्वान् लेखक ने भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन-चरित की व्याख्या इस प्रकार की है- श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन वृत्त में विरोधाभासों को देखे जाने और श्रीकृष्ण के रूप और उनके जीवन की व्याख्या करें- तो एक ओर माखन-चोर हैं, तो अर्जुन के रथ के ऐसे कुशल सारथी भी हैं जो महाभारत के भीषण युद्ध के बीच न केवल रथ, बल्कि अश्वों के साथ अर्जुन को भी सुरक्षित रखते हैं। हाथों में

कंकरिया से मटकी फोड़ते हैं, तो हाथों में चक्र भी धारण करते हैं। कुंज की गलियों में हैं तो, कुरुक्षेत्र की रणभूमि में भी हैं। होली के गुलाल में हैं तो युद्ध के शंखनाद में भी हैं। राधा की बगल में हैं, तो द्रौपदी की लाज में भी हैं। होठों पर मुरली को सजाते हैं तो अंगुली पर पर्वत को भी उठाते हैं। गोपियों के संग रास रचाते हैं तो कहीं काल समान कालिय नाग पर नृत्य करते हैं। कभी गालों पर चोरी का माखन मिलता है तो कभी अपने मुख में ब्रह्माण्ड के दर्शन करा देते हैं। राधा के आग्रह पर कभी घाघरा-चोली पहनते हैं तो कभी कंस वध तथा अन्य जिम्मेदारियों को निभाने के लिए अपने गोप-गोपियों को रोते-बिलखते ब्रज में छोड़ जाते हैं। एक ओर सबको मोह में बाँधते हैं तो दूसरी ओर मोह-माया से परे रहने का उपदेश भी देते हैं। वे योद्धा भी हैं तो कुशल राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ भी हैं। वे नायक-महानायक, अधर्मी-खलनायकों के विनाशक भी हैं। किसी का वध करने में भी उनकी विशेषता है कि उसका भी उद्धार निश्चित समझिये, फिर वह चाहे पूतना का वध करें या बकासुर का, कंस का वध करें या यमलार्जुन का, उनके लिए संहार भी खेल जैसा है। यों जानें कि संहार, वध तो श्रीकृष्ण के लिए जीव को मुक्त करने का बहाना मात्र है। कृष्ण भले ही सर्वेश्वर हो या योगेश्वर, लीला पुरुषोत्तम हों या विश्वम्भर, अखिल ब्रह्माण्ड के नायक हों या सौ पंखुड़ियों के कमल, इनके लिए कोई कुछ भी कहें, अलंकृत करें, ऋषि-मुनि, योगी भले ही इन्हें परमात्मा मानें, पर सबसे अलग एक सत्य यह भी है कि कृष्ण राधा के बिना अधूरे हैं, अपूर्ण हैं, उनका सौन्दर्य तभी खिलता है जब राधा साथ में हों, पार्श्व में खड़ी मुस्करा रही हों। विश्व के लाखों मन्दिरों में मूर्त्तरूप कृष्ण के साथ उनकी राधा को मुस्कराते, तिरछी चितवन से उन्हें निहारते देखा जा सकता है, अन्य किसी रानी के साथ नजर नहीं आते। कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति जो ठहरीं।

दूसरा सच यह भी है कि श्रीकृष्ण आज भी अज्ञात रूप में वृन्दावन के निधिवन (स्वामी हरिदास जी की भजनस्थली) में प्रतिदिन रास रचाते हैं। बाँसुरी की कर्णप्रिय धुन सुनाई देती है, घुँघरूओं के छनकने, चूड़ियों के खनकने, साथ ही हवा के झोंकों के साथ नृत्य करती गोपियों के गीत भी सुने जा सकते हैं। यही नहीं, सेवाकुंज में स्थित टेढ़े खम्भों वाले मन्दिर के पास निधिवन में प्रतिदिन रात्रि में श्रीकृष्ण राधा तथा गोपियों के साथ आकर रास रचाते हैं, अपनी उपस्थिति- यहाँ आने का सांकेतिक साक्ष्य भी छोड़ जाते हैं। लेकिन इस अलौकिक दृश्य को भौतिकीय नेत्रों से न तो पशु-पक्षी, न कोई मनुष्य देख सकता है, फिर भी यदि किसी ने देखने का दुस्साहस किया तो वह निधिवन से

लौट नहीं पाता है। दिन में भले ही पशु पक्षी घूमते हों, लोग आते-जाते हों, पर सूर्यास्त होते ही सन्नाटा पसरने लगता है, पूरे क्षेत्र में खामोशी छा जाती है। रासस्थली स्थित प्राचीन मन्दिर में पुजारी संध्या के समय पूजा-आरती के बाद वहाँ श्रीकृष्ण के विश्राम की भावना से पलंग पर साफ सुथरा बिस्तर, रेशमी चादर बिछाकर मन्दिर को खुला छोड़कर चले जाते हैं। प्रातः मन्दिर में छितरा सामान, पलंग पर बिछी चादर पर सलवटें, बिखरें फूल आदि देखकर विश्वास किया जाता है कि श्रीकृष्ण रास रचाने, विश्राम करने आये थे, क्योंकि यहाँ रात्रि में पशु-पक्षी, बन्दर आदि नहीं रहते। किसी का भी प्रवेश वर्जित है। निधिवन वही स्थली है जहाँ सत्रहवीं शताब्दी में महान संगीतज्ञ तथा श्रीकृष्ण के परम भक्त स्वामी हरिदास ने अपने संगीत के द्वारा श्रीबिहारी जी को प्रकट किया था जो मूल मूर्ति आज भी बिहारी जी मन्दिर में स्थापित है और सारा विश्व उनके दर्शन के लिए हमेशा उमड़ता रहता है। अकबर कालीन प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन स्वामी हरिदास जी के शिष्य थे।

यदि आगे और भी कहें तो वे न केवल राधा के गोपियों के, ग्वालों के कृष्ण है, बल्कि मीरा के '**आराध्य-प्रेमी**' हैं, सूरदास के '**बालगोपाल**' हैं, सुदामा के प्रिय सखा हैं, अर्जुन के भी मार्गदर्शक हैं, वल्लभाचार्य-पुष्टिमार्गीयों के वन्दनीय '**श्रीनाथ**' हैं, भीष्म पितामह के लिए '**महाज्ञानी**', योगियों के लिए '**महायोगी**' हैं। वे सिद्धेश्वर हैं, '**राजराजेश्वर**' हैं। वे अनूठे-अद्‌भुत हैं। उन्हें किसी एक रूप में नहीं बाँधा जा सकता। उनकी हर अवस्था, हर रूप, हर क्रिया निराली है। कृष्ण का जन्म ही निरन्तर कुछ न कुछ करते रहने के लिए हुआ है। '**कृष्ण**' शब्द '**कृ**' धातु से बना है जिसका अर्थ है कर्म करना, सम्पादन, निष्पादन, हर समस्या, हर बाधा का निदान करना। श्रीकृष्ण ने जन्म से लेकर देहावसान तक यही किया है। श्रीकृष्ण के जीवन के कई रंग, कई प्रसंग, कई रूप, कई छटाएँ हैं जिन्हें एक साथ नहीं समझा जा सकता। कृष्ण पूर्ण हैं, सब कुछ उनमें है, तथा सब में वो हैं। वह जल हैं तो आग भी हैं, बूंद हैं तो महासागर भी हैं, राई हैं तो पर्वत भी हैं। आकाश हैं तो पाताल भी हैं। कृष्ण में सब सम्भावनाएँ हैं। उनमें हर चीज का अनुलोम भी है और विलोम भी है। कृष्ण को किसी एक बिन्दु पर परिभाषित नहीं किया जा सकता है। वह चोर भी खुद है तो दरोगा भी खुद है। वह निर्मोही भी है तो मोहन भी है। रसेश्वर भी है, जीवन में इतना रस है कि उससे भीगना निश्चित है, फिर कोई सूर बनकर उभरे या कोई मीरा बनकर उमड़े, कोई रसखान बनकर बरसे तो कोई बिहारी बनकर उतरे,

क्या फर्क पड़ता है? हैं सब उसी कृष्ण के दीवाने। जादू तो सब पर उसी एक का ही है।

अब यदि हम श्रीकृष्ण के चरित्र को लोक कल्याण के रूप में देखें तो श्रीकृष्ण जैसा अद्‌भुत चरित्र सम्पूर्ण विश्व में कोई दूसरा नहीं मिलता। इनका चरित्र इतनी विविधता से भरा है कि दुनियाँ में ऐसा कुछ नहीं बचता जो उसमें न मिले। श्रीकृष्ण को एक विशेष दृष्टिबोध से जानें तो वह सामाजिक चेतना के प्रतीक थे, जाग्रति के पथदर्शक थे। उस वक्त में ही उन्होंने आन्दोलन चलाया कि गाँव के उत्पादन सबके सब शहर न चले जाएं, जहाँ उनके परिश्रम का शोषण होता है। इसके लिए शहर जा रहीं दूध-दही की मटुकियाँ फोड़ी जाने लगीं। नदी-सरोवर जैसे सार्वजनिक स्थान में नारियों के निर्वस्त्र होकर स्नान करने की कुप्रथा समाप्त करने के लिए उनके वस्त्र छिपाये गये जिससे एक भारतीय नारी की अस्मिता सुरक्षित रह सके। उनकी बाल-लीलाएँ निरर्थक शरारतें नहीं थीं, उनके गूढ़ार्थ गहरे सामाजिक सन्दर्भों से जुड़े थे। गोवर्धन के कार्य को आगे बढ़ाने में उन्होंने इतनी शक्ति लगायी कि उसे पर्वत उठाने की उपमा दी गई। मानव के विकास का रथ उस समय पशुपालन की स्थिति से आगे बढ़कर कृषि के युग में आ गया था। इस परिवर्तन में गोवंश के उपेक्षित होने जाने का खतरा था। श्रीकृष्ण जानते थे कि गोपालन आर्थिक, शारीरिक सुदृढ़ता का आधार है। कृषि तथा यातायात-परिवहन के लिए भी गोवंश का सम्पुष्ट होना आवश्यक था। इसके अलावा अतिवृष्टि या अनावृष्टि के कारण कृषि कार्य में बाधा आये या फसल मारी जाये तो पशु-पालन के सहारे संकट का समय पार किया जा सकता है। मथुरा छोड़कर द्वारका में जा बसने का कदम उन्होंने जरासंध से ब्रजक्षेत्र को विनाश से बचाने के लिए किया था। उस समय ब्रजक्षेत्र में कालयवन की सेनाओं की घुसपैठ भी होने लगी थी। यह विदेशी-आक्रमण था। कालयवन यवनराज का पुत्र था। इस स्थिति में राजधानी किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाना आवश्यक हो गया था। विकल्प के रूप में श्रीकृष्ण ने द्वारका को इसलिए चुना कि वह समुद्रतट पर थी तथा वहाँ से विदेश व्यापार बढ़ाकर आर्थिक समृद्धि प्राप्त की जा सकती थी। द्वारका के श्रीकृष्ण के समय के बन्दरगाह की खोज अभी कुछ समय पहले ही हुई है। नाना उग्रसेन को मथुरा का राज्य श्रीकृष्ण ने कंस को मारकर पुनः राजा बनाया। द्वारका में भी उग्रसेन ही राजा थे, वे स्वयं नहीं बने। निर्धन सुदामा की सहायता इस बात की प्रतीक है कि कृष्ण को दरिद्रों की चिन्ता थी, वे साधनहीनों के कल्याण के प्रति सजग थे। उनका हृदय प्रेम से परिपूर्ण था। मित्रता का कर्तव्य निभाना भलीभाँति

जानते थे। श्रीकृष्ण शान्ति के प्रबल समर्थक थे, परन्तु स्वतंत्रता या सम्मान की रक्षा के लिए वे युद्ध से भी कभी पीछे नहीं हटे। महाभारत टालने के लिए वे उसके सूत्रधार बने। उन्होंने स्वयं शस्त्रास्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की, लेकिन पाण्डव अपनी पराजय तथा विनाश से कृष्ण की नीतियों और युक्तियों के कारण ही बचे थे। कृष्ण की हर लीला, हर कार्य के पीछे कोई उद्देश्यपूर्ण रहस्य रहता है।

श्रीकृष्ण की नीतियाँ तथा गीता के उपदेशों की प्रासंगिकता सर्वव्यापी, सर्वकालीन है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं सम्पूर्ण विश्व का कल्याण-मार्ग उनमें मिलता है। उन्हें अपने आचरण में अपनाने वाले शान्ति, सुख, समृद्धि पाते हैं। धर्म, साहित्य, वास्तुकला, मूर्तिकला, नृत्य, संगीत के तो वे प्राण-पुरुष है, क्योंकि वे चौंसठ कलाओं के विशेषज्ञ थे। वे प्रेरणा के चिरंतन स्रोत हैं। सगुण ब्रह्म को अपना मूर्तिमान विग्रह प्राप्त हुआ है, उनके श्यामसुन्दर स्वरूप में। भारत में कृष्ण-भक्ति की धारा हजारों साल से बह रही है। उनकी पूजा-अर्चना तो विभिन्न अवसरों पर होती है, विशेष रूप से भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अष्टमी श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर। श्रीकृष्ण की मान्यता अब दुनियाँ के दूसरे देशों में भी बहुत तेजी से बढ़ रही है। काल की गति को अर्थवत्ता प्रदान करता है उनके रथ का पहिया, सारी भव-बाधाओं को काटता है उनका सुदर्शन चक्र, प्राणीमात्र की मुक्ति या मोक्ष के स्तोत्र हैं विश्वरूप श्रीकृष्ण। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि श्रीकृष्ण जैसा अन्य कोई अवतार नहीं हुआ, और आगे होगा भी नहीं।

श्रीकृष्ण वंश-

अब हम पुनः श्रीकृष्ण वंश के वर्णन पर लौटते हैं। जैसा कि पीछे वर्णन कर आये हैं कि- प्राचीनकाल में यदुवंशी राजा शूरसेन हुए। श्रीमद्भागवत-दशम स्कन्ध, अध्याय- 1, श्लोक 27, 28 में-

"शूरसेनो यदुपतिर्मथुराभावसन् पुरीम्।
माथुराञ्छूर सेनाश्च विषयान् बुभुजे पुरा॥27॥
राजधानी ततः साभूत् सर्वयादव भूभुजाम्।
मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहतो हरिः॥28॥

अर्थात् प्राचीनकाल में यदुवंशी राजा शूरसेन थे। वे मथुरापुरी में रहकर माथुरमण्डल और शूरसेन-मण्डल का राज्यशासन करते थे॥ 27॥ उसी समय से मथुरा ही समस्त यदुवंशी नरपतियों की राजधानी हो गयी। भगवान् श्रीहरि सर्वदा वहाँ विराजमान रहते हैं॥28॥

यदुवंश का शूरसेन प्रदेश (जनपद) तथा मथुरा का घनिष्ठ सम्बन्ध प्राचीन काल से ही रहा है इसलिए यहाँ इसका वर्णन करना आवश्यक हो जाता है। इस श्लोक से स्पष्ट है कि दोनों मण्डल अलग-अलग नाम से एक ही थे और इनका शासक भी एक ही था, और यह भी स्पष्ट है कि शूरसेन जनपद शूरसेन राजा से पूर्व बसा था। प्रश्न उठता है कि शूरसेन प्रदेश के प्राचीन शासक कौन थे? ययाति पुत्र द्रुह्यु को राज्याधिकार बतौर राज्य का उत्तर-पश्चिम का भाग मिला था। उस समय द्रुह्यु का अधिकार यमुना तट के उस प्रदेश पर भी था, जो बाद में शूरसेन के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। इस प्रकार भोजगण शूरसेन के प्रथम ज्ञात शासक कहे जा सकते हैं। यदुवंशियों ने दक्षिण में बड़ी उन्नति की थी। उनके शासन में दशार्ण, अवन्ती, विदर्भ और माहिष्मती के प्रसिद्ध राज्य थे। यदु के वंश में शशबिन्दु नामक प्रतापी राजा हुआ। उसने द्रुह्युवंशी भोजों को पराजित कर उनके राज्य पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार शूरसेन प्रदेश भी यदुवंशियों के शासन में आ गया। शशबिन्दु के बाद यादवों का विख्यात राजा मधु था। वह अत्यन्त प्रतापी, प्रजापालक और धार्मिक नरेश था। पुराणों के अनुसार उसका शासन शूरसेन से आनर्त्त (उत्तरी गुजरात) तक के विशाल भू-भाग पर था। शशबिन्दु से मधु तक यादवों के जितने भी राजा हुए (लगभग 22 पीढ़ी) उनमें से किन-किन का शूरसेन पर अधिकार रहा और उनके शासन में इस प्रदेश की सांस्कृतिक स्थिति कैसी थी, इसका व्यवस्थित विवरण पुराणों में नहीं मिलता है।

असुरवंशी मधु के पुत्र महाबली लवण का वध करने के बाद राम के भाई शत्रुघ्न ने मधुवन के एक भाग को साफ कराया और वहाँ यमुना नदी के तट पर एक नगरी की स्थापना की जिसका नाम 'मधुरा' रखा गया। इसका उल्लेख विष्णुपुराण (6-12-4) में हुआ है। उक्त 'मधुरा' ही बाद में अपने पालिरूप 'मथुरा' के नाम से प्रसिद्ध हुई थी। वाल्मीकीय रामायण (उत्तरकाण्ड- 70.8) से ज्ञात होता है कि शत्रुघ्न जी ने इस नगरी की स्थापना श्रावण महीने में की थी और उसे यमुना के तट पर अर्द्धचन्द्राकार बसाया था। मथुरा की स्थापना श्रावण में होने से ही सम्भवत: इस महीने में विशेष उत्सवादि करने की परम्परा रही है। वह आदि मथुरा अथवा मथुरा की प्रथम बस्ती थी जो विद्वानों के मतानुसार मथुरा तहसील के वर्तमान महोली गाँव के निकट बसी हुई थीं। उस प्रागैतिहासिक काल में यमुना की मुख्य धारा अथवा उसकी कोई शाखा वहाँ प्रवाहित होती थी, जबकि वर्तमान काल में यमुना वहाँ से बहुत दूर हो गयी है।

शूरसेन का नामकरण-

प्राचीन मथुरा के आस-पास जो राज्य कायम हुआ उसका पुराना नाम 'शूरसेन' मिलता है। इसके नामकरण के सम्बन्ध में श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी (ब्रज का इतिहास-प्रथम खण्ड, पृ. 14,15) का मत है कि वह शत्रुघ्न के छोटे पुत्र उस शूरसेन के नाम पर पड़ा है जो कदाचित् अपने बड़े भाई सुबाहु के बाद यहाँ का राजा हुआ था। लेकिन इस विषय में वाजपेयी जी का कथन सही नहीं है। वाल्मीकीय रामायण (किष्किन्धाकाण्ड, अ. 43, श्लोक 11) में लिखा है कि सीता जी की खोज करते हुए वानर शूरसेन प्रदेश में भी गये थे। इससे स्पष्ट है कि इस प्रदेश का शूरसेन नाम शत्रुघ्न तथा उनके पुत्रों का इससे सम्बन्ध होने से पहले ही प्रसिद्ध हो चुका था। शत्रुघ्न के छोटे पुत्र का नाम रामायण में शत्रुघाती लिखा गया है न कि शूरसेन। शत्रुघ्न ने उसे वैदिश का राज्य दिया था। कालिदास कृत रघुवंश में शत्रुघाती को मथुरा और सुबाहु को विदिशा का राज्य दिये जाने का उल्लेख मिलता है। किन्तु उसमें शूरसेन को मथुरा का राजा नहीं बताया है। वाल्मीकीय रामायण (उत्तरकाण्ड, अ. 7, श्लोक 9) में शूरसेन जनपद का उल्लेख है तथा शत्रुघ्न द्वारा बसाया गया लिखा है। सम्भव है कि लवण के द्वारा विनष्ट हुई मथुरा नगरी का शत्रुघ्न द्वारा पुनर्निमाण किया गया हो। जबकि इस प्रदेश का शूरसेन नाम उनसे पहले ही पड़ चुका था। यह नाम किस शूरसेन राजा के नाम पर प्रसिद्ध हुआ यह विचारणीय है। यदुवंशियों के एक प्राचीन राजा का नाम कार्तवीर्य अर्जुन या सहस्त्रार्जुन था। उसके राज्य का विस्तार नर्मदा से हिमालय तक था, जिसमें यमुना तट का प्रदेश भी सम्मिलित था। सहस्त्रार्जुन के सौ पुत्रों में से एक का नाम शूरसेन भी था। लिंगपुराण के अनुसार इसी शूरसेन के नाम पर इस प्रदेश का नाम 'शूरसेन' प्रसिद्ध हुआ था।

शूरसेन या मथुरा जनपद की सीमाएँ-

श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी द्वारा लिखित- 'ब्रज का इतिहास', प्रथम भाग में वर्णन इस प्रकार है- वर्तमान मथुरा तथा उसके आस-पास का प्रदेश जिसे 'ब्रज' कहा जाता है, (प्राचीन काल में 'शूरसेन' जनपद के नाम से प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी मधुरा या मथुरा नगरी थी। शूरसेन जनपद की सीमाएँ समय-समय पर बदलती रहीं। कालान्तर में मथुरा नाम से ही यह जनपद विख्यात हुआ)। ईस्वी सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री ह्वेनसांग (हुएन-सांग) मथुरा आया तब उसने लिखा है कि मथुरा राज्य का विस्तार 5000 ली (लगभग 833 मील)

था। इस वर्णन से पता चलता है कि सातवीं शती में मथुरा राज्य के अन्तर्गत वर्तमान मथुरा-आगरा जिलों के अतिरिक्त आधुनिक भरतपुर तथा धौलपुर जिले और ऊपर के मध्य भारत का उत्तरी लगभग आधा भाग रहा होगा। दक्षिण-पूर्व में मथुरा राज्य की सीमा जेजाकभुक्ति (जिझौती) की पश्चिमी सीमा से तथा दक्षिण-पश्चिम में मालव राज्य की उत्तरी सीमा से मिलती रही होगी। सातवीं शती के बाद से मथुरा राज्य की सीमाएँ घटती गईं। इसका प्रधान कारण समीप के कन्नौज राज्य की उन्नति थी, जिसमें मथुरा तथा अन्य पड़ौसी राज्यों के बड़े भू-भाग सम्मिलित हो गये।

प्राचीन शूरसेन या मथुरा जनपद का प्रारम्भ में जितना विस्तार था उसमें 'ह्वेनसांग के समय तक क्या हेर-फेर होते गये, इसके सम्बन्ध में हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते, क्योंकि हमें प्राचीन साहित्य आदि में ऐसे प्रमाण नहीं मिलते जिनके आधार पर विभिन्न कालों में इस जनपद की लम्बाई-चौड़ाई का ठीक-ठीक पता लग सके। प्राचीन साहित्यिक उल्लेखों से जो कुछ पता चलता है वह यह कि शूरसेन या मथुरा प्रदेश के उत्तर में कुरुदेश (आधुनिक दिल्ली और उसके आस-पास का प्रदेश) था, जिसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ तथा हस्तिनापुर थी। दक्षिण में चेदि राज्य (आधुनिक बुन्देलखण्ड तथा उसके समीप का कुछ भाग) था जिसकी राजधानी का नाम शुक्तिमती नगर था। पूर्व में पांचाल राज्य (आधुनिक रुहेलखण्ड) था, जो दो भागों में बँटा हुआ था- उत्तर पांचाल तथा दक्षिण पांचाल। उत्तर पांचाल राज्य की राजधानी अहिच्छत्र (बरेली जिले में वर्तमान रामनगर) और दक्षिण पांचाल राज्य की राजधानी काम्पिल्य (आधुनिक कंपिल, जिला-फर्रुखाबाद) थी। शूरसेन के पश्चिम वाला जनपद मत्स्य (आधुनिक अलवर रियासत तथा जयपुर का पूर्वीभाग) था। इसकी राजधानी विराट् नगर (आधुनिक वैराट, जयपुर में) थी।

आजकल मथुरा नगर सहित वह भू-भाग जो श्रीकृष्ण के जन्म और उनकी विशेष लीलाओं से सम्बन्धित है, ब्रज कहलाता है। इस प्रकार 'ब्रज' वर्तमान मथुरा मण्डल और प्राचीन शूरसेन प्रदेश का अपर नाम और उसका एक छोटा रूप है। इसमें मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, गोकुल, महावन, बलदेव, नन्दगांव, बरसाना, डीग और कामवन आदि श्रीकृष्ण के सभी लीलास्थल सम्मिलित हैं। इस ब्रज को चौरासी कोस माना जाता है।'

'ब्रज' अत्यन्त प्राचीन जनपद है। यह सदा से एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में प्रसिद्ध रहा है। यद्यपि यह समय-समय पर विभिन्न नामों से बोला एवं

लिखा जाता रहा है जैसे- 1. मध्य देश 2. ब्रह्मर्षि प्रदेश 3. शूरसेन प्रदेश 4. मथुरा मण्डल 5. ब्रज, ब्रज जनपद अथवा ब्रजमण्डल।

इसकी सीमाओं के सम्बन्ध में एफ.एस. ग्राउस ने 'मथुरा-ए डिस्ट्रिक मेमोयर' में एक दोहा का उल्लेख किया है। श्रीनारायणभट्ट जी (सन् 1560 के लगभग) ने भी अपने ग्रन्थ 'ब्रजभक्ति विलास' में इसी दोहे का उल्लेख किया था-

'इत 'वर' हद, उत 'सोन' हद इत 'शूरसेन' को गाँम।
ब्रज चौरासी कोस में, मथुरा मंडल धाम॥

वर्तमान शौरीपुर-बटेश्वर-

किसी लेखक के एक शोधपरक लेख के अनुसार साररूप वर्णन इस प्रकार है- शौरीपुर-बटेश्वर पौराणिक तथा धार्मिक स्थल है। ज्ञान, योग, कर्म के अधिष्ठाता भगवान् श्रीकृष्ण जी के पितामह (बाबा) महाराज शूरसेन की राजधानी शौरीपुर-बटेश्वर भदावर क्षेत्र का सर्वाधिक चर्चित पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक सिद्ध क्षेत्र और तीर्थस्थल है। यह कभी विशाल नगरी थी। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में यहाँ की जनसंख्या अत्यधिक थी। यह नगर यमुना के उत्तरी तट पर रपड़ी से लेकर बटेश्वर तक फैला हुआ था जो कालान्तर में नष्ट हो तीन भागों शौरीपुर-बटेश्वर-रपड़ी में विभक्त हो गया। यमुना, चम्बल व उटंगन नदियों के मध्य ऊँची नीची कगारों पर बसे शौरीपुर-बटेश्वर को देख कौन कह सकता है यह शूरसेन साम्राज्य की वैभवपूर्ण राजधानी थी। यहाँ बड़े-बड़े मार्ग, जल कोलाहल से परिपूर्ण और विशाल प्रांगण, स्फटिक युक्त मन्दिर, कुसुम कानन और यमुना के जल में झाँकते मनमोहक प्रासाद थे। यहाँ कर्नल जेम्स टॉड़ के विवरण से ज्ञात होता है कि शौरीपुर नगर ईसा पूर्व तीसरी सदी में बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। शौरीपुर-बटेश्वर अब एक दूसरे से अलग तीन-चार कि.मी. की दूरी पर हैं। शौरीपुर-बटेश्वर रामायणकालीन भी हैं। देवाधिदेव महादेव ने सती का परित्याग कर यहीं तपस्या की थी, तभी से यह पावन शिवतीर्थ बन गया। सती अनसूया, दुर्वासा और शबरी तथा गोस्वामी तुलसीदास ने भी यहाँ पर भ्रमण किया था। भगवान् राम के भाई शत्रुघ्न के पुत्र का शासन भी यहाँ रहा। कालान्तर में शत्रुघ्न के पौत्र शूर और सुबीर में राज्य का बंटवारा हुआ तो सुबीर मथुरा के शासक हुए और शूर ने शौरीपुर को अपनी राजधानी बनाया। वसुदेव की बारात यहीं से मथुरा गयी थी। वसुदेव, बलभद्र, कुन्ती और कर्ण की जन्मस्थली यहीं थी। कृष्ण द्वारा कंस वध के उपरान्त जरासंध ने कुपित

हो इस नगर को नष्ट कर दिया। चारों ओर बहने वाली नदियाँ इसकी ऐसी मनोरम व सामारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सीमा का निर्धारण करती हैं। शौरीपुर में कंस के कारागार होने की जनश्रुतियाँ भी हैं। **शौरीपुर के मन्दिर**–1. आदि मन्दिर सबसे प्राचीन है जिसका जीर्णोद्धार 1667 ई. का है, यह दो मंजिला है। 2. बरुआमठ,– यह अतिभव्य है, इसकी प्राचीन प्रतिमाएँ चोरी हो गयी हैं, शेष मूर्तियाँ विराजमान हैं। 3. शंखध्वज मन्दिर– यह दूसरी मंजिल पर विद्यमान है। इसके सामने वाले गर्भगृह में चार वेदियाँ हैं। मध्य वेदी पर नेमिनाथ जी की प्रतिमा है। बाँई ओर वेदी पर एक पाषाण प्रतिमा है। इसी के पास एक शिलाफलक पर पाँच इंची मूर्ति उत्कीर्ण है। ये मूर्तियाँ 11वीं शताब्दी की है। शंखनाद के दायीं और बाईं ओर विमलनाथ, पार्श्वनाथ व चन्द्रप्रभु की प्रतिमायें हैं। इनके अलावा और भी कई मन्दिर हैं। बटेश्वर को पांचवाँ धाम भी कहा जाता है। इसका वर्तमान स्वरूप राजा बदनसिंह की देन है। प्राचीनकाल के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जातक दीपक' की भूमिका में भारत के नव–उखलों में बटेश्वर का नाम आता है– 'रेणुका शूकरः काशी काल कालो बटेश्वरः कालिंजरो महाकाल उखला नव कीर्तयः।' इसके अतिरिक्त व्यास ने मंगलाभिषेक में बटेश्वर का नाम निम्नांकित श्लोक में लिया है– 'ओम् त्वंग प्रभा पत्र करु चक्र पुष्करं, गया विभिक्तो बद्री बटेश्वरः। केदारं पंपापुर नीमसारकं, कुरुवन्तवद पूर्ण मनोरथ सदा!' बटेश्वर की गणना शिवजी के प्रमुख तीर्थों में की जाती है। गर्गसंहिता में बटेश्वर को पुण्य तीर्थ बताते हुए यहाँ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को यमुना स्नान करना अक्षय पुण्य प्राप्ति का भागी है। स्वयं शंकर जी ने अत्रि मुनि से कहा है कि– 'अधनाहं प्रवक्ष्या– मिलोकानां हित काम्यन्न कस्यचिदा ख्यातं ब्रह्मरीय गोपितम् उखलानां नवाह्वि मुख्ये सर्वामशश्वयम बटेश्वर इति प्रख्यातं ब्रजमण्डलमध्यम्।' अर्थात् उखल में श्रेष्ठ सम्पूर्ण देवताओं का आश्रय ब्रजमण्डल के मध्य बटेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ ब्रह्मलालजी के दर्शन व जल चढ़ाने का विशेष महत्व है। बटेश्वर का पशु मेला बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ का किला राव भावसिंह का बनवाया हुआ अति प्राचीन है। राजा बदन सिंह द्वारा बनवाया गया अर्धचन्द्राकार बांध अत्यन्त सुन्दर है एवं इसके तट पर बने भव्य मन्दिर इस जगह को मनोरम बनाते हैं। इस जगह से कुछ कि.मी. दूर 16 फीट चौड़ा प्राचीन कुँआ है, इसका जल बहुत उत्तम मधुर है। जनश्रुति है कि यहाँ कोई गुप्त तहखाना है जिसमें कुल्हादीन का विपुल कोष, जो राव भावसिंह को उसका वध करने के उपरान्त मिला था, एवं बहुमूल्य पुरावशेष रखे हैं। अंग्रेज कार्लायल ने इसे खुदवाया भी पर असफल रहा। यहाँ कुदाल काम नहीं देती, परकोटे में

बहुत पक्की चिनाई है। यमुना के तट पर क्रमशः एक पंक्ति में 101 मन्दिर स्थित हैं जिनको राजा बदनसिंह भदौरिया द्वारा बनवाया गया था। राजा बदनसिंह (भदावर के राजा) ने यमुना नदी के प्रवाह को जो कभी पश्चिम से पूर्व की ओर था, उसको बदलकर पूर्व से पश्चिम की ओर अर्थात् बटेश्वर की तरफ कर दिया था। इन मन्दिरों को यमुना नदी के प्रवाह से बचाने के लिए एक बांध का निर्माण भी राजा बदनसिंह भदौरिया द्वारा किया गया था। बटेश्वर नाथ मन्दिर का रामायण, महाभारत और मत्स्यपुराण में उल्लेख मिलता है। बटेश्वर में एक शिलालेख जनरल कनिंघम को मिला था, एपीग्राफिया इण्डिका- भाग-1 के 270-274 में इसका विस्तार से वर्णन है। यह शिलालेख सम्वत् 1212 आश्विन शुक्ल पंचमी दिन रविवार का है। इससे पता चला कि बटेश्वर में राजा परमार्दिदेव ने श्वेत प्रस्तर का भव्य मन्दिर बनवाया था। लेख के 25,26 और 34वें श्लोक में अंकित है कि परमार्दिदेव ने राजप्रसाद बनवाया जिसमें विष्णु-प्रतिमा थी। परमार्दिदेव ने एक उत्तम शिव मन्दिर भी बनवाया। इस मन्दिर में प्राणप्रतिष्ठा किए जाने से शिवजी ने कैलाश जाना स्थगित कर दिया था। यह शिलालेख लखनऊ के अजायबघर में रखा है। जनश्रुति है कि दुष्ट अलाउद्दीन खिलजी ने 1312 ई. में उक्त भव्य मन्दिर समूल नष्ट कर दिये तथा इनके मलवे से रपड़ी मस्जिद बनवायी। आर्कियोलोजीकल सर्वे रिपोर्ट जिल्द 4 पृष्ठ 200 से पता चलता है कि अलाउद्दीन ने भदावर के प्रमुख नगर बटेश्वर को ध्वस्त किया। बटेश्वर के सम्बन्ध में परमालरासो में भी लेख है, कवि चन्दवरदाई ने लिखा है कि जब पृथ्वीराज चौहान सिरसागढ़ के मलखान पर आक्रमण करने जा रहे थे तो बटेश्वर रुके थे और शिवपूजन किया था (परमाल रासो पृ. 256)। कवि जगनिक भी बटेश्वर आये थे, इसका कवि चन्द ने परमाल रासो पृष्ठ 260 पर उल्लेख किया है। बटेश्वर को तीर्थों का भानजा कहा गया है, क्योंकि कृष्ण मथुरा के शासक के भानजे थे। जब मथुरा प्रमुख तीर्थ बनी तो बटेश्वर इसका भानजा हो गया। आज भी इस भूभाग के वासी बटेश्वर स्नान किये बगैर तीर्थयात्रा सफल नहीं मानते। वर्तमान में यहाँ 101 मन्दिर हैं जिनमें प्रमुखतः गौरीशंकर एवं ब्रह्मलालजी तथा मनिआदेव और नारूशंकर व जैन मन्दिर हैं, इनका सविस्तार वर्णन पुरातत्व में हैं। आगरा से इनकी दूरी 70 कि.मी. एवं शिकोहाबाद से 26 कि.मी. और भिण्ड से 80 कि.मी. दूर है। बाह, आगरा तथा शिकोहाबाद से नियमित बसें चलती हैं। बटेश्वरनाथ मन्दिर बहुत प्राचीन मन्दिर है। बटेश्वर एक समृद्ध इतिहास के साथ सबसे पुराने गाँवों में से एक है। यह भारत के महत्वपूर्ण आध्यात्मिक और सांस्कृतिक केन्द्र में से एक है। बटेश्वर

स्थल यमुना और शौरीपुर के तट पर स्थित 108 शिव मन्दिरों के लिए जाना जाता है। 22वें तीर्थंकर प्रभु नेमिनाथ शौरीपुर में पैदा हुए थे, इसलिए यह जैन-धर्म का केन्द्र माना जाता है।

कुछ त्रुटियों के बाबजूद लेख महत्वपूर्ण है। इसका यदुवंश इतिहास से विशेष सम्बन्ध होने के कारण इसका ज्ञानपरक विशेष विवरण और भी अधिक महत्व का है।

श्रीकृष्ण का जीवन परिचय-

संक्षेप में श्रीकृष्ण का जीवन-चरित इस प्रकार है-

श्रीकृष्ण का प्रारम्भिक जीवन मथुरा से सम्बन्धित रहा है। प्राचीन पौराणिक वर्णनों से ज्ञात होता है कि पुरानी नगरी यमुना नदी के तट पर बसी हुई थी और उसका आकार अष्टमी के चन्द्रमा जैसा था। उसके चारों ओर नगर-दीवाल थी, जिसमें ऊँचे तोरण द्वार थे। दीवाल के बाहर खाई बनी हुई थी। नगरी धन-धान्य और समृद्धि से पूर्ण थी। उसमें अनेक उद्यान और वन थे। पुरी की स्थिति सब प्रकार से मनोहर थी। मकान अट्टालिकाओं और सुन्दर द्वारों से युक्त थे। उनमें विविध वस्त्राभूषणों से अलंकृत स्त्री-पुरुष निवास करते थे। ये लोग राग-द्वेष रहित और वीर थे। उनके पास बहुसंख्यक हाथी, घोड़े और रथ थे। नगर के बाजारों में सभी प्रकार का क्रय-विक्रय होता था और रत्नों के ढेर दिखाई पड़ते थे। मथुरा की भूमि बहुत उपजाऊ थी और समय पर वर्षा होती थी। मथुरा नगरी के रहने वाले सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्नचित्त दिखाई पड़ते थे।

यमुना नदी का प्रवाह प्राचीनकाल से बदलता आया है। मधु और शत्रुघ्न के समय में यमुना की धारा उस स्थान के पास से बहती रही होगी जिसे अब महोली कहते हैं। वर्तमान मथुरा नगरी और महोली के बीच में बहुत से पुराने टीले दिखाई पड़ते हैं। इन टीलों से प्राचीन बस्तियों के चिह्न बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं, जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि इधर पुरानी बस्ती थी।

वाराह पुराण से ज्ञात होता है कि किसी समय मथुरा नगरी गोवर्धन पर्वत और यमुना नदी के बीच बसी हुई थी और इनके बीच की दूरी अधिक नहीं थी। वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है, क्योंकि अब गोवर्धन यमुना से काफी दूर है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय गोवर्धन और यमुना के बीच इतनी दूरी न रही होगी, जितनी कि आज है।

वर्तमान ऐतिहासिक तथा ज्योतिषीय अनुसन्धानों के आधार पर श्रीकृष्ण का जन्म ईसा पूर्व लगभग 3226 वर्ष माना जाता है। वे 120 वर्ष (कहीं 125 वर्ष) की आयु तक जीवित रहे। आज कलियुग सम्वत् 5119 है अर्थात् श्रीकृष्ण कलियुग से पूर्व के महाप्रयाण के बाद आज से 5119 वर्ष पूर्व-कलियुग प्रारम्भ हुआ। श्रीकृष्ण 125 वर्ष जीवित रहे। अत: 125 वर्ष+5119 = 5244 वर्ष पूर्व कृष्ण की जन्म तिथि होती है। अब ईस्वी सन् के 2018 वर्ष बीत चुके हैं तो 5244 वर्ष- 2018 = 3226 वर्ष। अत: कृष्ण का जन्म 3226 वर्ष ईसा पूर्व हुआ था।- ब्रज के प्रसिद्ध लेखक गोपाल चतुर्वेदी के अनुसार- कृष्ण का जन्म मथुरा की श्रीकृष्ण जन्मभूमि में **सम्वत् 3138 की** भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र में रात्रि को 11 बजकर 45 मिनट पर हुआ था। अपने इस दीर्घ-जीवन में उन्हें अनेक प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहना पड़ा। उनका प्रारम्भिक जीवन तो ब्रज में कटा और शेष द्वारका में व्यतीत हुआ। बीच-बीच में उन्हें अन्य अनेक जनपदों में भी जाना पड़ा। जो अनेक घटनाएँ उनके समय में घटी उनकी विस्तृत चर्चा पुराणों तथा महाभारत में मिलती है। यहाँ हम उन मुख्य घटनाओं की चर्चा करेंगे जो श्रीकृष्ण के जीवन से विशेष रूप से सम्बन्धित रही है। प्रारम्भिक घटनाएँ, जिनका सम्बन्ध ब्रज से है, पुराणों में (मुख्यत: श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कन्ध में) विस्तार से दी हैं। महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण का कार्य तथा उनका द्वारका का जीवन महाभारत में विस्तार से वर्णित है।

कंस के समय मथुरा-

कंस के समय में मथुरा का क्या स्वरूप था, इसकी कुछ झलक पौराणिक वर्णनों में देखी जा सकती है। पुराणों से प्राप्त वर्णनों से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि तत्कालीन मथुरा एक समृद्ध पुरी थी, धन-धान्य से सम्पन्न नगरी थी। श्रीकृष्ण के जन्म से पहले शूरसेन जनपद का शासक कंस था, जो अंधकवंशी उग्रसेन का पुत्र था। बचपन से ही कंस स्वेच्छाचारी था। बड़ा होने पर वह जनता को अधिक कष्ट पहुँचाने लगा। उसे गणतंत्र की परम्परा पसन्द न थी और शूरसेन जनपद में वह स्वेच्छाचारी राजतंत्र स्थापित करना चाहता था। उसने अपनी शक्ति बढ़ाकर अपने पिता उग्रसेन (जो उस समय राजा थे) को सिंहासन से हटाकर जेल में कैद कर दिया और स्वयं मथुरा के यादवों का अधिपति बन गया। इससे जनता के एक बड़े भाग में रोष होना स्वाभाविक था। परन्तु कंस की अनीति यहीं तक सीमित नहीं रही, वह शीघ्र ही मथुरा का निरंकुश शासक

बन गया और प्रजा को अनेक प्रकार से पीड़ित करने लगा। इससे प्रजा में कंस के प्रति गहरा असंतोष फैल गया, पर कंस की शक्ति इतनी प्रबल थी और उसका आतंक इतना छाया हुआ था कि बहुत समय तक जनता उसके अत्याचारों को सहती रही और उसके विरुद्ध कुछ करने में असमर्थ थी।

कंस की इस शक्ति का मुख्य कारण यह था कि उसे आर्यावर्त के तत्कालीन सर्वप्रतापी राजा जरासंध का सहयोग प्राप्त था। वह जरासंध पौरववंश (पुरुवंश) का था और मगध के विशाल साम्राज्य का शासक था। उसने अनेक प्रदेश के राजाओं से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे, जिनके द्वारा उसे अपनी शक्ति बढ़ाने में बड़ी सहायता मिली। कंस को जरासंध ने अस्ति और प्राप्ति नामक अपनी दो लड़कियाँ ब्याह दी और इस प्रकार उससे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ लिया। चेदि के यादव वंशी राजा शिशुपाल को भी जरासंध ने अपना गहरा मित्र बना लिया। इधर उत्तर-पश्चिम में उसने कुरुराज दुर्योधन को अपना सहायक बनाया। पूर्वोत्तर की ओर आसाम (प्राग्ज्योतिष) के राजा भगदत्त से भी उसने मित्रता जोड़ी। कारुष देश का राजा दन्तवक्र भी उसका सहायक था, वह बड़ा प्रतापी राजा था और मायायुद्ध में बड़ा प्रवीण था। करंभ का राजा मेधवाहन, युधिष्ठिर का मामा पुरुजित्, अंग, बंग, पुण्ड्र, किरात का राजा वासुदेव भी उसके अधीन थे। इस प्रकार उत्तर भारत के प्रमुख राजाओं से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर जरासंध ने अपने पड़ौसी राज्यों-काशी, कौशल आदि पर अपना अधिकार जमा लिया। कुछ समय बाद कलिंग का राज्य भी उसके अधीन हो गया। अब जरासंध पंजाब से लेकर आसाम और उड़ीसा तक के प्रदेश का सबसे अधिक प्रभावशाली शासक बन गया। जरासंध ने बहुत से राजाओं को पकड़कर कारागार में डलवा दिया था।

कृष्ण-जनम-

कंस की चचेरी बहन देवकी शूरसेन पुत्र वसुदेव को ब्याही गई थी। पुराणों के अनुसार जब कंस को यह भविष्यवाणी ज्ञात हुई कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न आठवें बच्चे के हाथ से उसकी मृत्यु होगी तो वह बहुत चिन्तित हो गया। उसने वसुदेव-देवकी को कारागार में बन्द कर दिया। देवकी से उत्पन्न पहले छः बच्चों को कंस ने मार डाला। सातवें बच्चे (बलराम) का उसे कुछ पता ही नहीं चला। अब वह आठवीं सन्तान के लिए बहुत सतर्क हो गया। यथा समय देवकी की आठवीं सन्तान कृष्ण का जन्म कारागार में भादों कृष्ण अष्टमी की आधी रात को हुआ।

टिप्पणी– 1. पुराणों के अनुसार बलराम सर्वप्रथम देवकी के गर्भ में आये, किन्तु दैवी शक्ति द्वारा वे वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिये गये। इस घटना के कारण ही बलदेव (बलराम) का नाम 'संकर्षण' पड़ा। रोहिणी पहले से ही नन्दगोप के यहाँ संरक्षण में थी।

देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने के बाद नवजात शिशु कृष्ण को वसुदेवजी कंस के भय से गोकुल नन्दगोप के घर पहुँचा आये थे। नन्दगोप की पत्नी यशोदा के गर्भ से उत्पन्न बालिका को उसके घर से लाकर वसुदेव जी ने यह प्रकट कर दिया कि देवकी के गर्भ से कन्या उत्पन्न हुई है। कंस उस अबोध बालिका की हत्या करने वाला ही था कि वह कन्या उसके हाथ से छूटकर अदृश्य हो गयी और उसने घोषणा की कि कंस तुझे मारने वाला ब्रज में पैदा हो चुका है। कंस उस घोषणा को सुनकर घबरा गया और अपने काल उस बालक की तलाश में लग गया। इधर श्रीकृष्ण धीरे-धीरे बड़े होकर नन्दगोप के ग्राम गोकुल में अनेक आश्चर्यजनक साहसिक कार्य करने लगे। उन्होंने अनेक काम अदम्य साहस एवं शूरता के किये और अपने गोप ग्वालों को अनेक आपत्तियों से बचाया। उन्होंने जंगली बर्बर जाति के कुछ हिंसक दैत्यों जैसे धेनुकासुर, प्रलम्बासुर, केशी आदि का वध किया। इन्द्र के स्थान पर गोवर्धन पूजा का विधान बनाया। श्रीकृष्ण और उनके साथी गोपों को पर्वत का महत्व ज्ञात था अत: उन्होंने इन्द्र के स्थान पर पर्वत की उपासना उचित समझी। श्रीकृष्ण ने कालिय नाम के नागवंशी दैत्य का जो अपने अत्याचारों तथा हिंसक कृत्यों से स्थानीय जनता को त्रस्त किए हुए था, मर्दन किया और उसे वह भू-भाग त्यागने को बाध्य किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलराम के वीरतापूर्ण कृत्यों की चर्चा मथुराधिपति कंस के पास पहुँच गयी। उसने उन दोनों को किसी बहाने मथुरा बुलाकर मार डालना ही अपने हित में समझा। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने स्वफल्क के पुत्र अक्रूर को उन दोनों को मथुरा लिवा लाने के लिए कहा। अक्रूर नन्दगोप के पास पहुँचे, अक्रूर जी कंस के प्रधानमंत्रियों में से एक थे। ये वसुदेव जी के कुटुम्ब के नाते से भाई तथा कृष्ण के चाचा लगते थे। उन्होंने नन्दगोप से कृष्ण बलराम को मथुरा भेजने के लिए कहा। नन्दगोप का सारा क्षेत्र उनकी स्त्री, प्रजाजन, गोपजन और गोपियाँ श्रीकृष्ण के वीरोचित कार्यों और उनके अनुपम सौन्दर्य से इतने प्रभावित और प्रेमासक्त थे कि अक्रूर की बात सुनकर उनको घोर पीड़ा हुई। वे श्रीकृष्ण को ब्रज छोड़कर जाने की स्वीकृति देने के लिए बिलकुल तैयार न थे। अक्रूर के प्रस्ताव से समस्त गोकुल में कोहराम मच गया। निदान श्रीकृष्ण ने अनेक भाँति से ब्रजवासियों को समझा

बुझा कर शान्त किया, और अपने भाई बलराम को लेकर अक्रूर के साथ मथुरा चल दिये। कुछ अन्य गोप भी उनके साथ आये, दोनों भाईयों ने रात्रि को अक्रूर के घर विश्राम किया और प्रातः कुतूहलवश अपने साथियों सहित नगर का भ्रमण करने निकल पड़े। नगर निवासी दोनों भाईयों के अद्‌भुत सौन्दर्य और वीरता से अत्यन्त प्रभावित हुए और चारों ओर उनका सत्कार होने लगा। मार्ग में उनकी कुब्जा दासी से भेंट हुई जो कंस के यहाँ चन्दन लेपन के लिए जाया करती थी। उन्होंने कुब्जा के चन्दन से स्वयं लेपन किया और उसकी शारीरिक विकृति को सुधार दिया। इसके उपरान्त वे नगर भ्रमण करते हुए कंस के महलों के दरवाजे पर पहुँचे।

कंस ने द्वार पर एक मदोन्मत्त हाथी खड़ा कर रक्खा था। उसकी योजना उस हाथी के द्वारा उन दोनों भाईयों का वध कराने की थी। परन्तु बात की बात में दोनों भाईयों ने उस हाथी के दाँत उखाड़ कर फेंक दिये तथा उसका प्राणान्त कर दिया। फिर कंस के दो मल्लों ने जिनके नाम चाणूर तथा मुष्टिक थे, कृष्ण और बलराम को चुनौती दी, लेकिन उनको भी दोनों भाईयों ने मार दिया। इस पर कंस उत्तेजित हो गया और वह श्रीकृष्ण तथा बलराम को मारने के लिए अपने सैनिकों को आज्ञा देने वाला ही था कि श्रीकृष्ण ने उसको मंच से गिराकर भूमि पर डाल दिया और उस पर ऐसा मार्मिक प्रहार किया कि उसको प्राण-पखेरू उड़ गये। अपना कार्य पूरा करने के उपरान्त दोनों भाई सर्वप्रथम अपने माता-पिता से मिले। वसुदेव और देवकी इतने समय बाद अपने प्यारे बच्चों से मिलकर हर्ष से गद्‌गद् हो गये। उपरान्त श्रीकृष्ण ने उन्हें जेल से बन्धनमुक्त किया।

कंस के वध के बाद मथुरावासियों ने श्रीकृष्ण से राजकाज सम्हालने को कहा परन्तु श्रीकृष्ण ने कंस के स्वेच्छाचारी शासन का अन्त करके स्वयं राजा बनना स्वीकार न किया और अंधक-वृष्णियों के संघीय राज्य की पुनः स्थापना कर दी। उन्होंने कंस के पिता उग्रसेन को ही राज प्रमुख नियुक्त किया।

कंस वध तक कृष्ण का जीवन एक प्रकार से अज्ञातवास में व्यतीत हुआ। एक ओर कंस का आतंक था तो दूसरी ओर आकस्मिक आपत्तियों का कष्ट। अब कंस के अत्याचारों से तो सबको मुक्ति मिल चुकी थी लेकिन कंस वध से उत्पन्न संकटों से अभी जूझना था। कंस की मृत्यु का समाचार पाकर मगध नरेश जरासंध बहुत क्रुद्ध हो गया। वह कंस का श्वसुर था। जरासंध अपने समय का महान साम्राज्यवादी और क्रूर शासक था। उसने कितने ही छोटे-मोटे

राजाओं का राज्य हड़पकर उन राजाओं को बन्दी बना लिया था। जरासंध ने कंस को अपनी लड़कियाँ सम्भवत: इसलिए ब्याही थीं जिससे कि पश्चिमी प्रदेशों में भी उसकी धाक बनी रहे और उधर गणराज्यों की शक्ति कमजोर पड़ जाय। अपने जामाता और सहायक का इस प्रकार से वध होते देख जरासंध का क्रुद्ध होना स्वाभाविक ही था। अब उसने शूरसेन जनपद पर चढ़ाई करने का पक्का विचार कर लिया। शूरसेन और मगध के बीच युद्ध का विशेष महत्व है, इसीलिए हरिवंश आदि पुराणों में इसका वर्णन विस्तार से मिलता है।

जरासंध की मथुरा पर चढ़ाई-

जरासंध ने पूरे दल-बल के साथ शूरसेन जनपद पर चढ़ाई की। पौराणिक वर्णनों के अनुसार उसके सहायक कारूष का राजा दन्तवक्र, चेदिराज शिशुपाल, कलिंगपति पौण्ड्र, भीष्मक पुत्र रुक्मी, क्राथ अंशुमान तथा अंग, बंग, कौशल, दशार्ण, मद्र, त्रिगर्त आदि के राजा थे। इनके अतिरिक्त शाल्वराज, पवनदेश का राजा भगदत्त, सौवीरराज, गंधार का राजा सुबल नग्नजित, काश्मीर का राजा गोनर्द, दरद देश का राजा तथा कौरवराज दुर्योधन आदि भी उसके सहायक थे। मगध की विशाल सेना ने मथुरा पहुँचकर नगर के चारों द्वारों को घेर लिया (श्रीमद्भागवत के अनुसार जरासंध की सेना 23 अक्षौहिणी थी। हरिवंश पुराण 20 अक्षौहिणी तथा पद्मपुराण 100 अक्षौहिणी बताता है)। सत्ताईस दिनों तक जरासंध मथुरा नगर को घेरे पड़ा रहा, पर वह मथुरा का अभेद्य दुर्ग न जीत सका। सम्भवत: समय से पहले ही खाद्य सामग्री के समाप्त हो जाने के कारण उसे निराश होकर लौटना पड़ा।

दूसरी बार जरासंध पूरी तैयारी से शूरसेन पहुँचा। यादवों ने अपनी सेना इधर-उधर फैला दी। युवक बलराम ने जरासंध का अच्छा मुकाबला किया। लुका-छिपी के युद्ध द्वारा यादवों ने मगध सेना को बहुत छकाया। श्रीकृष्ण जानते थे कि यादव सेना की संख्या तथा शक्ति सीमित है और वह मगध की सेना का खुलकर सामना नहीं कर सकती। इसीलिए उन्होंने लुका-छिपी (गुरिल्ला युद्ध) वाला आक्रमण ही उचित समझा। इसका फल यह हुआ कि जरासंध परेशान हो गया और हताश होकर सेना सहित लौट पड़ा। इस युद्ध में सम्भवत: कारूषपति दमघोष तथा चेदि-सेना भी कुछ कारणों से जरासंध से अलग होकर यादवों से मिल गई थी।

पुराणों के अनुसार जरासंध ने अठारह बार मथुरा पर चढ़ाई की। सत्रह बार वह असफल रहा। अन्तिम चढ़ाई में उसने एक विदेशी शक्तिशाली शासक

कालयवन की सेनाओं सहित मथुरा पर आक्रमण करने की योजना बनाई। आने वाले इस महायुद्ध की सूचना जब अंधक-वृष्णि संघ के लोगों को मिली तब संघ के कुछ नेताओं ने कहा कि जरासंध के आक्रमणों की समस्या श्रीकृष्ण से जरासंध की व्यक्तिगत शत्रुता के कारण है अर्थात् श्रीकृष्ण के कारण संघ को जरासंध से टक्कर लेनी पड़ रही है। श्रीकृष्ण ने इस अपवाद पर बड़ा नीतिज्ञता पूर्ण कदम उठाया। उन्होंने सजातियों से विचारकर मथुरा छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाना ही उचित समझा।

महाभिनिष्क्रमण-

अब समस्या थी कि कहाँ जाया जाय? यदुवंशियों ने इस पर विचार कर निश्चय किया कि पुनर्वास के लिए द्वारकापुरी उपयुक्त रहेगी। यह स्थान पहले से ही यदुवंशियों का प्राचीन केन्द्र था और इसके आस-पास के भू-भाग में यदुवंशी बड़ी संख्या में निवास करते थे। दूसरे, वह स्थान व्यापारिक दृष्टि से उपयुक्त था, तीसरे, दूर होने के कारण जरासंध की पहुँच के बाहर था। हरिवंश पुराण में कृष्ण का कथन भी एक कारण था जो जनसंख्या घनत्व को कम करने के उद्देश्य से आवश्यक भी था- "हमलोग यहाँ संख्या में बहुत बढ़ गये हैं, इस कारण भी हमारा इधर-उधर फैलना आवश्यक है"- (हरिवंश, 114.389)

इस प्रकार पूर्व निश्चय के अनुसार उग्रसेन, कृष्ण, बलराम आदि के नेतृत्व में यदुवंशियों ने बहुत बड़ी संख्या में मथुरा से प्रस्थान किया और सौराष्ट्र की नगरी द्वारावती में जाकर बस गये। द्वारावती का जीर्णोद्धार किया गया और उसमें बड़ी संख्या में नये मकानों का निर्माण हुआ।

टिप्पणी- 1. हरिवंश पुराण तथा श्रीमद्भागवत के अनुसार जब कृष्ण ने यह सुना कि एक ओर से जरासंध और दूसरी ओर से कालयवन बड़ी सेनाएँ लेकर शूरसेन जनपद की ओर आ रहे हैं तो उन्होंने यदुवंशियों को मथुरा से द्वारका रवाना कर दिया और स्वयं बलराम के साथ गोमांतक पर्वत पर चढ़ गये। जरासंध पहाड़ पर आग लगाकर तथा यह समझकर कि दोनों जल मरे होंगे, वापिस लौट गया। दूसरी कथा के अनुसार कृष्ण सब लोगों को द्वारका भेज चुकने के बाद कालयवन को आता देख अकेले भागे। कालयवन ने उनका पीछा किया। कृष्ण उसे वहाँ तक ले गये जहाँ सूर्यवंशी मुचकुंद सो रहा था। मुचकुंद को यह वर मिला था कि जो कोई उन्हें सोते से जगायेगा वह उसकी दृष्टि पड़ते ही भस्म हो जायेगा। कृष्ण ने ऐसा किया कि कालयवन मुचकुंद

द्वारा भस्म करा दिया गया- (हरिवंश- 100.109। श्रीमद्भा० 50, 44-52) आदि।

2. हरिवंश (अ. 113) में आया है कि शिल्पियों द्वारा प्राचीन नगरी का जीर्णोद्धार किया गया। विश्वकर्मा ने सुधर्मा सभा का निर्माण किया (अ. 116)।

इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपनी सूझ-बूझ से मुचकुंद द्वारा कालयवन का अंत करा दिया और अपने साथियों सहित द्वारका पहुँच गये। इधर जरासंध ने आक्रमण कर मथुरा पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। वह जो कुकुर भोजवंशीय यदुवंशी शेष रह गये थे उन्होंने जरासंध से संधि कर ली। श्रीकृष्ण के द्वारकापुरी पहुँचने पर वहाँ बड़ी उन्नति हुई। द्वारकापुरी के माध्यम से देश के व्यापार का बड़ा विस्तार हुआ और विदेशों से व्यावसायिक सम्पर्क बहुत बढ़ गये। इस कारण द्वारकापुरी धन-धान्य से पूर्ण बड़ी वैभवशालिनी नगरी हो गई। श्रीकृष्ण के तत्वावधान में द्वारकापुरी में एक सुदृढ़ यदुवंशीगण राज्य की स्थापना हो गई जिसके वैभव और शक्ति सम्पन्नता की ख्याति सारे देश में फैल गई।

मथुरा के इतिहास में महाभिनिष्क्रमण की यह घटना बड़े महत्व की है। यद्यपि इसके पूर्व भी यह नगरी कम से कम से दो बार खाली की गई थी- पहली बार शत्रुघ्न विजय के उपरान्त लवण के अनुयायियों द्वारा और दूसरी बार कंस के अत्याचारों से ऊबे हुए यदुवंशियों द्वारा, पर जिस प्रकार बड़े रूप में मथुरा इस तीसरे अवसर पर खाली हुई वैसे वह पहले कभी नहीं हुई थी। इस निष्क्रमण के बाद मथुरा की आबादी बहुत कम रह गई होगी। कालयवन और जरासंध की सम्मिलित सेना ने नगरी को कितनी क्षति पहुँचाई, इसका ठीक पता नहीं चलता। और यह भी ज्ञात नहीं होता कि जरासंध ने अन्तिम आक्रमण के फलस्वरूप मथुरा पर अपना अधिकार कर लेने के बाद शूरसेन जनपद के शासनार्थ अपनी ओर से किसी यदुवंशी को नियुक्त किया अथवा किसी अन्य को।

द्वारका मगध से बहुत दूर थी। वहाँ जरासंध के आक्रमणों का कोई भय नहीं था, परन्तु श्रीकृष्ण अपने शत्रु मगध सम्राट् से बदला लेने के लिए उत्सुक थे। अकेला यादव संघ मगध का कुछ नहीं बिगाड़ सकता था, इसलिए उन्होंने पाण्डवों की सहायता लेना उचित समझा। कुछ समय बाद युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ की तैयारियाँ आरम्भ कर दी और आवश्यक परामर्श के लिए कृष्ण को बुलाया। कृष्ण इन्द्रप्रस्थ आये और उन्होंने राजसूय यज्ञ के विचार की पुष्टि

की। उन्होंने यह सुझाव दिया कि पहले अत्याचारी शासकों को नष्ट कर दिया जाय और उसके बाद यज्ञ का आयोजन किया जाय। कृष्ण ने युधिष्ठिर को सबसे पहले जरासंध पर चढ़ाई करने की सलाह दी, परन्तु उन्होंने सम्मुख युद्ध में जरासंध का मुकाबला करना उचित नहीं समझा। अर्जुन और भीम वेश बदलकर कृष्ण के साथ मगध की राजधानी गिरिव्रज में गये, और वहाँ जरासंध को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारा। जरासंध जैसा उद्‌भट वीर द्वन्द्व युद्ध से इनकार नहीं कर सकता था। कृष्ण की नीति सफल हुई, द्वन्द्व-युद्ध में भीम की विजय हुई और जरासंध मारा गया। जरासंध की मृत्यु के बाद कृष्ण ने उसके पुत्र सहदेव को मगध का राजा बनाया तथा कैद में पड़े हुए राजाओं को मुक्त कर दिया। इन सब राजाओं ने प्रसन्नतापूर्वक पाण्डवों की अधीनता स्वीकार की और ये सब युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए सहर्ष तैयार हो गये। मगध का साम्राज्य इन सब राजाओं को समूल नष्ट करने को तत्पर था, लेकिन युधिष्ठिर का साम्राज्यवाद प्राचीन आर्य-परम्परा के अनुकूल था। अन्य राजाओं से अधीनता स्वीकार कराना ही उसका उद्देश्य था। मूर्धाभिषिक्त राजाओं को कैद करना या मारना प्राचीन आर्य-परम्परा के सर्वथा विपरीत था। जरासंध के पश्चात् पाण्डवों ने भारत के अन्य अनेक राजाओं को जीता। जरासंध के मरते ही उसका शक्तिशाली साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इन्द्रप्रस्थ के राजा युधिष्ठिर की सहायता पाकर अनेक अधीनस्थ राजा फिर से स्वतंत्र हो गये। अनेक गणराज्य भी निर्भय होकर फिर से अपने जनपदों में वापिस लौट आये।

अब पाण्डवों का राजसूय-यज्ञ बड़ी धूमधाम से आरम्भ हुआ। उस यज्ञ में सभी प्रबुद्ध लोगों ने श्रीकृष्ण की 'अग्रपूजा' का समर्थन किया लेकिन चेदिनरेश शिशुपाल कृष्ण के इस सम्मान को सहन न कर सका तथा कृष्ण के प्रति अशिष्ट, असभ्य शब्दों का प्रयोग करने लगा। कृष्ण काफी समय तक उसकी गालियाँ सहन करते रहे, पर जब सौ गालियाँ पूरी हो गई तो कृष्ण ने उसका शिरोच्छेद कर दिया (शिशुपाल श्रीकृष्ण की बुआ का लड़का था और कृष्ण ने उसे सौ गाली देने तक न मारने का वचन दिया था)। अब पाण्डवों का राजसूय यज्ञ पूरा हुआ। परन्तु इस यज्ञ तथा पाण्डवों के उत्कर्ष को देख उनके प्रतिद्वन्द्वी कौरवों के मन में विद्वेष की अग्नि जलने लगी और वे पाण्डवों को नीचा दिखाने का उपाय सोचने लगे।

टिप्पणी- शिशुपाल दो कारणों से कृष्ण से विशेष द्वेष मानता था- प्रथम तो विदर्भ की राजकुमारी रुक्मिणी के कारण, जिसको कृष्ण हर लाये थे और

शिशुपाल का उनसे विवाह का मनोरथ अपूर्ण रह गया था। दूसरे जरासंध के वध के कारण, जो शिशुपाल का घनिष्ट मित्र था।

यज्ञ के समाप्त हो जाने पर कृष्ण युधिष्ठिर से आज्ञा ले द्वारका लौट गये। श्रीकृष्ण के समय में हस्तिनापुर में कुरुवंश का राज्य था। हस्तिनापुर के राजा पाण्डु के अकाल काल-कवलित हो जाने से वहाँ के राजकाज का भार उनके अंधे भाई धृतराष्ट्र के कंधों पर आ पड़ा। पाण्डु के पाँच पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव थे तथा धृतराष्ट्र के एक सौ एक पुत्र तथा दु:शला नामक एक कन्या थी जो सिंधुनरेश जयद्रथ के लिए ब्याही थी। धृतराष्ट्र के पुत्रों के नाम ये हैं- 1. दुर्योधन 2. युयुत्सु 3. दुश्शासन 4. दुस्सह 5. दुश्शल 6. जलसंध 7. सम 8. सह 9. विन्द 10. अनुविन्द 11. दुर्धर्ष 12. सुबाहु 13. दुष्प्रधर्षण 14. दुर्मर्षण 15. दुर्मुख 16. दुष्कर्ण 17. कर्ण 18. विविंशति 19. विकर्ण 20. शल 21. सत्य 22. सुलोचन 23. चित्र 24. उपचित्र 25. चित्राक्ष 26. चारुचित्रशरासन (चित्र-चाप) 27. दुर्मद 28. दुर्विगाह 29. विवित्सु 30. विकटानन (विकट) 31. ऊर्णनाभ 32. सुनाभ (पद्मनाभ) 33. नन्द 34. उपनंद 35. चित्रबाण (चित्रबाहु) 36. चित्रवर्मा 37. सुवर्मा 38. दुर्विरोचन 39. अयोबाहु 40. महाबाहु, चित्रांग (चित्रांगद) 41. चित्रकुंडल (सुकुण्डल) 42. भीमवेग 43. भीमबल 44. बलाकी 45. बलवर्धन (विक्रम) 46. उग्रायुध 47. सुषेण 48. कुण्डोदर 49. महोदर 50. चित्रायुध (दृढ़ायुध) 51. निषंगी 52. पाशी 53. वृन्दारक 54. दृढ़वर्मा 55. दृढ़क्षत्र 56. सोमकीर्ति 57. अनूदर 58. दृढ़संध 59. जरासंध 60. सत्यसंध 61. सद:सुवाक् (सहस्त्रवाक्) 62. उग्रश्रवा 63. उग्रसेन 64. सेनानी (सेनापति) 65. दुष्पराजय 66. अपराजित 67. पण्डितक 68. विशालाक्ष 69. दुराधर (दुराधन) 70. दृढ़हस्त 71. सुहस्त 72. वातवेग 73. सुवर्चा 74. आदित्यकेतु 75. बह्वाशी 76. नागदत्त 77. अग्रयायी (अनुयायी) 78. कवची 79. क्रथन 80. दण्डी 81. दण्डधार 82. धनुर्ग्रह 83. उग्र 84. भीमरथ 85. वीरबाहु 86. अलोलुप 87. अभय 88. रौद्रकर्मा 89. दृढ़रथाश्रय (दृढ़रथ) 90. अनाधृश्य 91. कुण्डभेदी 92. विरावी 93. विचित्र कुण्डलों से सुशोभित प्रमथ 94. प्रमाथी 95. वीर्यवान्, दीर्घरोमा (दीर्घलोचन) 96. दीर्घबाहु 97. महाबाहु, व्यूढोरू 98. कनकध्वज (कनकांगद) 99. कुण्डाशी (कुण्डज) तथा 100. विरजा। जिस क्रम से इनके नाम लिए गये हैं, उसी क्रम से इनका जन्म हुआ। ये सभी अतिरथी शूरवीर थे। सबने युद्धविद्या में निपुणता प्राप्त कर ली थी। सब के सब वेदों के विद्वान् तथा सम्पूर्ण अस्त्र विद्या के मर्मज्ञ थे। राजा

धृतराष्ट्र ने समय पर भलीभाँति जाँच-पड़ताल करके अपने सभी पुत्रों का उनके योग्य स्त्रियों के साथ विवाह कर दिया। (महाभारत- आदि पर्व, अ. 116)

टिप्पणी- आदि पर्व के अध्याय 67 में भी धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों के नाम दिये हैं। वहाँ जो नाम दिये गये हैं, उनमें से अधिकांश नाम इस अध्याय में भी ज्यों-के-त्यों हैं। कुछ नामों में साधारण अन्तर है, जिन्हें यहाँ कोष्ठक में दे दिया गया है। इस प्रकार यहाँ और वहाँ के नामों की एकता की गई है। थोड़े से नाम ऐसे भी हैं, जिनका मेल नहीं मिलता। नामों के क्रम में भी दोनों स्थानों में अन्तर है। सम्भव है उनके दो-दो नाम रहे हो और दोनों स्थानों में भिन्न-भिन्न नामों का उल्लेख हो।

पाण्डव परिवार-

पाण्डवों के परिवार का विवरण महाभारत- आदिपर्व, अ. 25 तथा विष्णु पुराण- चतुर्थ अंश, अ. 20 में मिलता है। द्रौपदी पाँचों भाईयों की पत्नी रूप में थी। द्रौपदी को पाँचों पाण्डवों से एक-एक पुत्र हुआ। द्रौपदी के अलावा इनकी अन्य पत्नियाँ तथा पुत्र थे।

पाण्डव	पत्नी	कन्याएँ	पुत्र
1. युधिष्ठिर	द्रौपदी-	(पांचाल नरेश द्रुपद की पुत्री)	प्रतिविन्ध्य
	देविका-	शिबि देश के राजा गोवासन की पुत्री	यौधेय
2. भीमसेन-	द्रौपदी-	-	श्रुतसेन (सुतसोम)
	हिडिम्बा-	राक्षसी	घटोत्कच (राक्षस जातीय)
	वलन्धरा-	काशिराज कन्या	सर्वग
3. अर्जुन-	द्रौपदी-	-	श्रुतकीर्ति
	सुभद्रा-	श्रीकृष्ण की बहन	अभिमन्यु
	उलूपी-	नागकन्या	इरावान्
	चित्रांगदा-	मणिपुर नरेशकन्या	बभ्रुवाहन
4. नकुल-	द्रौपदी-	-	शतानीक
	करेणुमती (रेणुमती)-	चेदिनरेश की पुत्री	निरमित्र
5. सहदेव	द्रौपदी-	-	श्रुतकर्मा
	विजया-	मद्रदेश नरेश द्युतिमान् की पुत्री	सुहोत्र

इस प्रकार ये पाण्डवों के 13 पुत्र हुए। इनमें से अभिमन्यु का ही वंश चला। अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा से परीक्षित् हुए (विराट पुत्री उत्तरा से)। परीक्षित् की पत्नी माद्रवती से जनमेजय उत्पन्न हुआ। जनमेजय की पत्नी वपुष्टमा से शतानीक हुआ। शतानीक की पत्नी विदेह राजकुमारी से अश्वमेधदत्त हुआ (ब्रह्मपुराण- अ. 6-8 में जनमेजय- चन्द्रापीड- सत्यकर्ण- श्वेतकर्ण का उल्लेख मिलता है। श्वेतकर्ण की पत्नी मालिनी यदुकुल में उत्पन्न वज्रनाभ की पाँचवीं पीढ़ी पर उत्पन्न सुचारु की पुत्री थी)।

कौरव-पाण्डवों के उपरोक्त वीरों की महाभारत युद्ध में अहम् भूमिका रही थी, इसीलिए इनका उल्लेख किया गया है।

महाभारत युद्ध- जरासंध की पराजय और मृत्यु के बाद मगध की राजनैतिक शक्ति निर्बल पड़ गयी थी। इस समय भारत के आर्य राज्यों में सबसे अधिक शक्तिशाली पाण्डवों का राज्य था जिसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। (इन्द्रप्रस्थ (वर्तमान दिल्ली) को पाण्डवों ने खाण्डव-वन को जलाकर तथा साफ करके नये सिरे से बसाया था, विस्तार-भय के कारण पूरा विवरण नहीं दिया गया है)। पाण्डवों से दुर्योधन बचपन से ही जलता था। अब पाण्डवों के इस उत्कर्ष से तो वह और भी अधिक चिढ़ गया। युद्ध द्वारा पाण्डवों को परास्त कर पाना आसान नहीं था, अत: दुर्योधन ने एक अन्य उपाय का आश्रय लिया। प्राचीन युग में आर्यों को द्यूत (जुआ) का बड़ा व्यसन था। जिस प्रकार युद्ध में पीठ दिखाना घृणित माना जाता था वैसे ही द्यूत के लिए आह्वान होने पर उसे स्वीकार न करना भी बहुत बुरा समझा जाता था। गान्धार देश का राजा शकुनि दुर्योधन का मामा था। वह द्यूत में अत्यन्त निपुण था। उसके भरोसे पर दुर्योधन ने पाण्डवों को द्यूत खेलने का निमंत्रण दिया। पाण्डव जुए में अपना सब कुछ हार गये। जुए की शर्त के अनुसार पाण्डवों को बारह वर्ष बनवास और तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करना पड़ा।

इस बीच में हस्तिनापुर के कौरवों ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली। जुए में हार जाने के कारण तेरह वर्ष के लिए इन्द्रप्रस्थ के राज्य को भी उन्होंने अपने अधिकार में ले लिया। वनवास और अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो जाने पर पाण्डवों ने दुर्योधन से अपना राज्यवापिस माँगा। जुए की शर्तों के अनुसार अब इन्द्रप्रस्थ का राज्य पाण्डवों को वापस मिल जाना चाहिए था, लेकिन दुर्योधन ने स्वीकार नहीं किया। अन्त में युधिष्ठिर ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा- "हम पाँच भाईयों को अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत और एक कोई

अन्य गाँव निर्वाह मात्र के लिए चाहिए। इतने पर ही हम मान जायेंगे, अन्यथा युद्ध के लिए प्रस्तुत होना पड़ेगा।" उनके इस कथन का समर्थन अन्य लोगों ने भी किया। कृष्ण संधि कराने को बहुत इच्छुक थे। उन्होंने दुर्योधन की सभा में जाकर उसे समझाया और कहा कि केवल पाँच गाँव पाण्डवों को देकर झगड़ा समाप्त कर दिया जाय। परन्तु अभिमानी दुर्योधन ने स्पष्ट कह दिया कि बिना युद्ध के वह पाण्डवों को सुई की नोक के बराबर भी जमीन न देगा। उसे भरोसा था कि असहाय पाण्डव कौरवों से अपना राज्य नहीं ले सकेंगे।

श्रीकृष्ण का मिशन विफल होने के उपरान्त समस्या का हल युद्ध के अतिरिक्त और कुछ न था। यद्यपि यह मामला दो राजगृहों का पारिवारिक झगड़ा था, तथापि इसके फलस्वरूप ऐसी आग फैली कि उसकी चिनगारियों से देश का कोई कोना न बचा। समस्त देश के अनेक भू-भागों तथा सीमान्त के भी राजागण दोनों पक्षों में से किसी एक न एक की तरफ होकर युद्ध क्षेत्र में आ डटे। महाभारत में उन राज्यों व राजाओं का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है, जो इस महायुद्ध में लड़े थे। इनकी सूची को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय का भारत बहुत से छोटे-बड़े राज्यों में विभक्त था, और इन राज्यों की संख्या सैंकड़ों में थी।

पाण्डव-पक्ष- पाण्डवों की ओर पश्चिमी मगध, मत्स्य, पंचाल, चेदि, कारूष, काशी, कोसल, सौराष्ट्र गुजरात के वृष्णि यादव, कैकय, दक्षिणी कश्मीर, पाण्ड्य, चोल, कांची, केरल तथा दशार्ण देशों के राजा थे। श्रीकृष्ण स्वयं पाण्डवों की ओर से तथा इनकी सेना कौरवों की ओर से लड़ी थी। कृष्ण, युयुधान और सात्यकि वृष्णि यादवों के प्रमुख नेता थे जो पाण्डवों के पक्ष में थे।

कौरव-पक्ष- विदेह, अंग, बंग, कलिंग, असम, कैकय, शिबि, सिन्धु-सौवीर, गान्धार, त्रिगर्त, मद्र, क्षुद्रक, मालव, अम्बष्ठ और काम्बोज अवन्ति, शूरसेन प्रदेश के यादव, माहिष्मती, विदर्भ, निषद, वत्स आदि देशों के राजा कौरवों के पक्ष में थे।

कौरवों और पाण्डवों के पक्षों में शामिल हुए राज्यों की सूची को ध्यान से देखने से ज्ञात होता है कि उत्तर-पश्चिमी भारत, पूर्वी भारत और पश्चिमी विन्ध्य के राज्य कौरवों के पक्ष में थे और मध्यभारत, आर्यावर्त्त और गुजरात के राज्य पाण्डवों के। पाण्डवों की कुल सेना सात अक्षौहिणी तथा कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी।

अक्षौहिणी सेना की गणना-

गर्गसंहिता, अग्निपुराण तथा महाभारत में अक्षौहिणी सेना की गणना का उल्लेख मिलता है। महाभारत तथा अग्निपुराण की गणना में प्राय: समानता है किन्तु गर्गसंहिता में भिन्नता है। गर्गसंहिता-विश्वजित खण्ड, अध्याय-7 में गणना इस प्रकार है- हाथी-100, रथी-1100, घोड़े-10 हजार, पैदल-एक लाख = सेना

इससे दुगुनी सेना को ..... = चतुरंगिणी हाथी-400, रथी-10 हजार, घोड़े-4 लाख, पैदल- एक करोड़ = वाहिनी

वाहिनी से दुगुनी सेना को ..... = ध्वजिनी

ध्वजिनी से दुगुनी सेना को ..... = पृतना

पृतना से दुगुनी सेना को ..... = अक्षौहिणी

अग्निपुराण, अ. 366 के अनुसार-

सेना	पत्ति	सेनामुख	गुल्म	गण	वाहिनी	पृतना	चमू	अनीकिनी	अक्षौहिणी
हाथी	1	3	9	27	81	243	729	2187	21870
रथ	1	3	9	27	81	243	729	2187	21870
घोड़े	3	9	27	81	243	729	2187	6561	65610
पैदल	5	15	45	135	405	1215	3645	10935	109350

जिस सेना में एक हाथी, एक रथ, तीन घोड़े, पांच पैदल हों, उसे 'पत्ति' कहते हैं। पत्ति के समस्त अंगों को लगातार सात बार तीन गुना करते जायें तो उत्तरोत्तर उसके ये नाम होंगे- सेना मुख, गुल्म, गण, वाहिनी, पृतना, चमू और अनीकिनी। हाथी आदि सभी अंगों से युक्त इस अनीकिनी सेना को अक्षौहिणी कहते हैं।

महाभारत की इस संख्या पर बहुत से इतिहासकार विश्वास नहीं कर सकते हैं पर यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि महाभारत की यह लड़ाई भारतीय इतिहास में अद्वितीय थी। इतनी बड़ी संख्या में विविध आर्य तथा अनार्य राजा इससे पहले कभी युद्ध में शामिल नहीं हुए थे।

पाण्डव पक्ष की सेनाएँ मत्स्य देश (अलवर व उसका समीपवर्ती प्रदेश) में कौरवों की सेनाएँ हस्तिनापुर से यमुना तक के प्रदेश में एकत्र हुई। यद्यपि पाण्डवों की ओर तुलनात्मक दृष्टि से सैन्य बल कौरवों की अपेक्षा कम था तथापि श्रीकृष्ण का साथ होने के कारण उनका पक्ष प्रबल हो गया। दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध के लिए तैयार हुई। कृष्ण, धृष्टद्युम्न तथा सात्यकि ने पाण्डव-सेना की व्यूह रचना की। कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध मैदान में दोनों सेनाएँ एक-दूसरे के सामने आ डटीं। अर्जुन के सारथी कृष्ण थे। युद्धस्थल में अपने परिजनों आदि को देखकर अर्जुन के चित्त में विषाद उत्पन्न हुआ और उसने युद्ध करने से इनकार कर दिया। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता के निष्काम कर्मयोग का उपदेश दिया और उसकी भ्रान्ति दूर की।

इस गृहकलह के कारण जो महायुद्ध हुआ वह अठारह दिन तक चलता रहा और उसका परिणाम बड़ा भयंकर हुआ। उस समय सामरिक-ज्ञान एवं अस्त्र-शस्त्रों की विद्या बहुत उन्नत अवस्था में थी। अनेक नये आविष्कार हो चुके थे। सेनाएँ बड़े धुरन्धर युद्ध शास्त्रियों द्वारा संचालित थीं। युद्ध में अनेक राजागण अगणित सेनाओं सहित खेत रहे। भारत के अनेक योद्धा और सेनापति इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। कौरव हारे ही नहीं, समूल नष्ट हो गये। पाण्डव जीते तो सही परन्तु उनके समस्त बन्धु-बान्धव युद्ध में ही स्वर्ग सिधार गये। इस युद्ध में इतना विनाश हुआ कि एक तरह से सारी सभ्यता ही नष्ट हो गई। इस युद्ध के बाद भारत अवनति के गहरे गर्त में जा गिरा जिसमें से वह शताब्दियों तक भी बाहर निकलने में समर्थ नहीं हुआ।

महाभारत में इस बात का बड़े मार्मिक शब्दों में वर्णन किया गया है कि जब विजयी पाण्डव कुरुदेश की राजधानी हस्तिनापुर में पहुँचे तो उन्हें अनाथों और विधवाओं के अलावा वहाँ कुछ नहीं मिला। अपने देश की इस दुर्दशा को देखकर उनके हृदय में अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न हुई और चित्त राज्य शासन में नहीं लगा। श्रीकृष्ण पाण्डवों का हस्तिनापुर में राज्याभिषेक सम्पन्न कराकर द्वारका लौट गये। पाण्डवों ने कुछ समय बाद एक अश्वमेध यज्ञ किया और इस प्रकार वे भारत के चक्रवर्ती सम्राट् घोषित हुए। श्रीकृष्ण भी इस यज्ञ में सम्मिलित हुए और फिर द्वारका वापस चले गये। यह कृष्ण की अन्तिम हस्तिनापुर यात्रा थी। इधर, पाण्डव भी 36 वर्ष शासन करने के उपरान्त हस्तिनापुर छोड़कर हिमालय की ओर तपस्या करने चले गये और वही उनका प्राणान्त हो गया। पाण्डवों के बाद अर्जुन का पोता अभिमन्यु पुत्र परीक्षित् हस्तिनापुर का राजा हुआ।

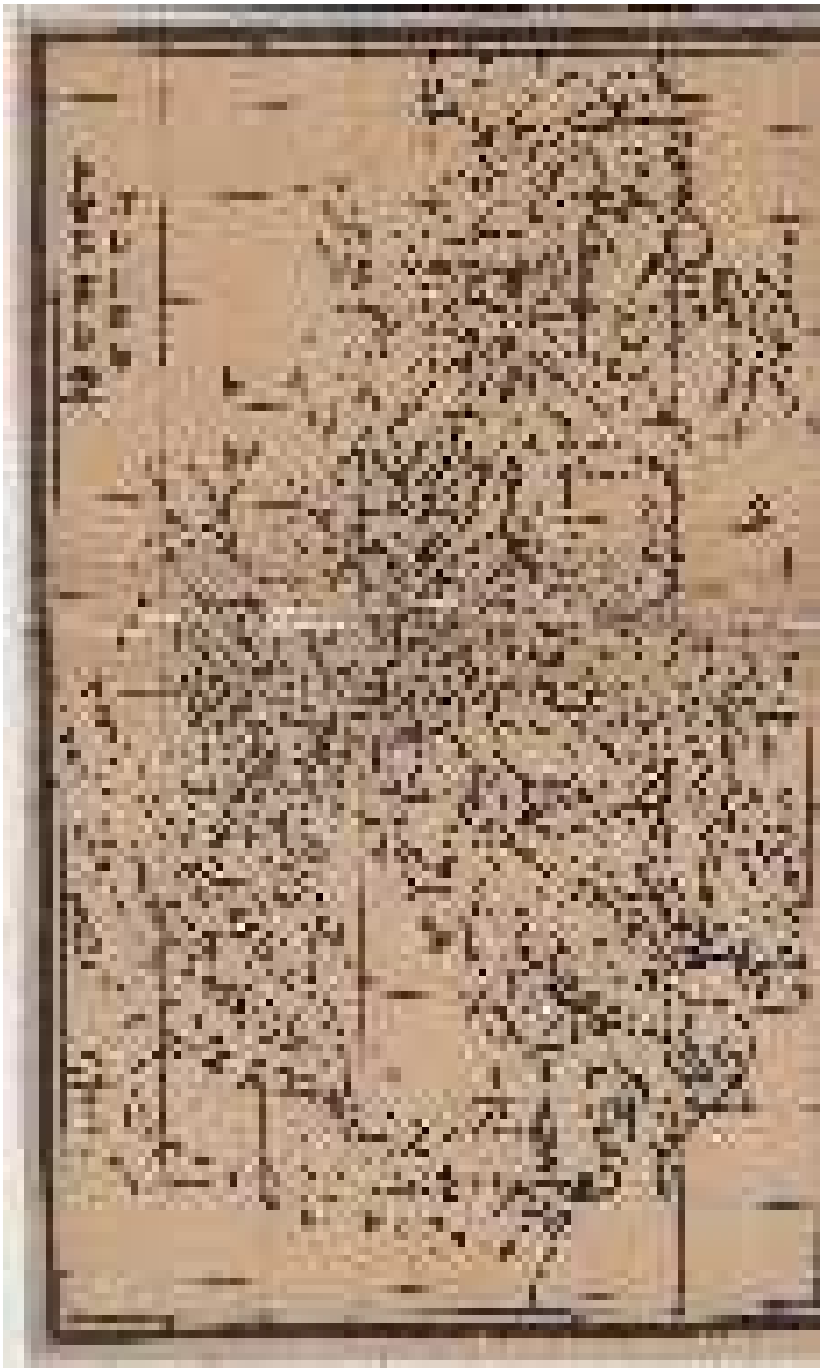

श्रीकृष्ण का द्वारका का जीवन-

द्वारका नगर बिलकुल नवीन नहीं था। वैवस्वत मनु के एक पुत्र शर्याति को शासन में पश्चिमी भारत का भाग मिला था। शर्याति के पुत्र आनर्त के नाम पर कठियावाड़ और समीप के कुछ प्रदेश का नाम 'आनर्त' प्रसिद्ध हुआ। उसकी राजधानी कुशस्थली के ध्वंसावशेषों पर कृष्णकालीन द्वारका की स्थापना हुई।

टिप्पणी- यह स्थान आजकल '**मूल द्वारका**' के नाम से जानी जाती है और प्रभास पट्टन के पूर्व कोडीनार के समीप स्थित है। ओखामण्डल वाली द्वारका बाद में बसाई हुई प्रतीत होती है। सौराष्ट्र में एक तीसरी द्वारका पोरबन्दर के पास है।

द्वारका में आकर कृष्ण ने उग्रसेन को '**अंधक-वृष्णिसंघ**' का प्रमुख बनाया। द्वारका में कृष्ण के वैयक्तिक जीवन की पहली मुख्य घटना थी- कुण्डिनपुर की सुन्दरी राजकुमारी रुक्मिणी के साथ विवाह। हरिवंशपुराण में यह कथा विस्तार से दी है। रुक्मिणी का भाई रुक्मी था। वह अपनी बहिन का विवाह चेदिराज शिशुपाल से करना चाहता था। मगधराज जरासंध भी यही चाहता था। किन्तु कुण्डिनपुर के राजाभीष्मक कृष्ण को ही अपनी कन्या देना चाहते थे। रुक्मिणी स्वयं भी कृष्ण को वरना चाहती थी। रुक्मिणी का स्वयंवर रचा गया और वहाँ से कृष्ण उसे हरण कर ले गये। जिन लोगों ने उनका विरोध किया वे पराजित हुए। इस घटना से शिशुपाल कृष्ण से द्वेष मानने लगा। कृष्ण ने द्वारका आकर रुक्मिणी से विधिवत् विवाह कर लिया।

टिप्पणी- यह कुण्डिनपुर विदर्भ देश (बरार) में था। एक जनश्रुति के अनुसार कुण्डिनपुर उत्तरप्रदेश के एटा जिले में वर्तमान नोहरखेड़ा के पास था। किंवदन्ती है कि श्रीकृष्ण यहीं से रुक्मिणी को ले गये थे। नोहरखेड़ा में आज भी रुक्मिणी की मढ़िया बनी है, जहाँ लगभग आठवीं सदी की एक अत्यन्त कलापूर्ण पाषाण-मूर्ति रुक्मिणी के नाम से पूजी जाती है। खेड़े से अन्य प्राचीन कलावशेष प्राप्त हुए हैं। यह स्थान एटा नगर से करीब 20 मील दक्षिण जलेसर तहसील में है।

हरिवंशपुराण के अनुसार बलराम का विवाह भी द्वारका जाकर हुआ। सम्भवत: पहले बलराम का विवाह हुआ फिर कृष्ण का। बलराम का विवाह आनर्त वंशी यादव रैवत की पुत्री रेवती से हुआ।- (अ. 116)

श्रीमद्भागवत पुराण, वायुपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, हरिवंशपुराण, गर्गसंहिता आदि पुराणों में श्रीकृष्ण के गृहस्थ-जीवन तथा उनकी दैनिक चर्या का हाल का विस्तृत वर्णन मिलता है। पीछे कृष्ण की आठ प्रमुख पटरानियों का उल्लेख कर चुके हैं। पुराणों में सोलह हजार एक सौ आठ कृष्ण पत्नियों का विवरण मिलता है। पुराणों में नरकासुर दैत्य का श्रीकृष्ण के द्वारा वध तथा उसके द्वारा बन्दी सोलह हजार एक सौ स्त्रियों को छुड़ाने का वर्णन मिलता है। और कहा गया है कि कृष्ण ने इन सबसे विवाह कर लिया था। आठ प्रमुख पत्नियों में से कई को तो उनके माता पिता ने विवाह में प्रदान किया और कई को कृष्ण विजय में प्राप्तकर लाये। प्रत्येक पत्नी से दस-दस सन्तान हुईं।

टिप्पणी- श्रीकृष्ण ने नरकासुर दैत्य का वध करके बलात् अपहरण कर कारागार में डाली गईं सोलह हजार एक सौ राजकुमारियों को मुक्त कराया और उन राजकुमारियों को आत्महत्या से रोकने के लिए परिस्थितिवश उनके सम्मान और अस्मिता की रक्षा हेतु उनसे विवाह किया था, क्योंकि उस युग में बलात् अपहरण की हुई नारी को समाज अपवित्र मानता था और उसे स्वीकार नहीं करता था जिसके कारण नारी का जीवन नरक बन जाता था। नारी के सम्मान हेतु ऐसा करके श्रीकृष्ण ने समाज के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया कि अपहरण की हुई नारी अपवित्र नहीं होती है। चन्द्रवंश प्रवर्तक अत्रि ऋषि ने 'अत्रि संहिता' में इस तथ्य की पुष्टि की है।

रुक्मिणी के अतिरिक्त श्रीकृष्ण की सात प्रमुख पत्नियाँ और थीं। सत्यभामा, जाम्बवन्ती, सत्या (नाग्नजिती), कालिन्दी, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा और भद्रा। इनका विवाह-सम्बन्ध इस प्रकार हुआ-

सत्यभामा- प्रसेनजित के भाई सत्राजित नामक प्रसिद्ध यादव की पुत्री थी। इसने स्वेच्छा से श्रीकृष्ण से विवाह किया था।

दस पुत्र- भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुभानु, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु, प्रतिभानु।

चार कन्याएँ- भानु, भीमलिका, ताम्रपर्णी और जलन्धमा।

जाम्बवन्ती- ऋक्षराज जाम्बवन्त की पुत्री थी। जाम्बवान ने इसे श्रीकृष्ण को स्वेच्छा से समर्पित कर दिया।

दस पुत्र- साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शत्जित्, सहस्त्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान, द्रविड़, क्रतु।

एक कन्या– मित्रवती।

नाग्नजिती (सत्या)– कौशलपुर (अयोध्या) नरेश नग्नजित की कन्या थी। सशर्त विवाह हुआ था।

दस पुत्र– वीरचन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, वसु, श्रीमान् और कुन्ति।

एक कन्या– भद्रवती।

कालिन्दी– आदित्य (सूर्य) पुत्री थी, यमुना जल में निवास। कृष्ण को समर्पित।

दस पुत्र– श्रुत, वृष, कवि, वीर, सुबाहु, भद्र, एकल, शान्तिदर्श, पूर्णमास, सोमक।

लक्ष्मणा– मद्रदेश के राजा बृहत्सेन की पुत्री थी। कृष्ण हरण करके लाये तथा विवाह किया।

दस पुत्र– प्रघोष, मात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, ओज, सह, अपराजित्।

मित्रविन्दा– वसुदेव की बहन राजाधिदेवी अवन्ति (उज्जैन) के राजा जयसेन के लिए ब्याही थी। इस प्रकार वह कृष्ण की बुआ थी। मित्रविन्दा श्रीकृष्ण की बुआ राजाधिदेवी की पुत्री थी। मित्रविन्दा के भाई विन्द और अनुविन्द दुर्योधन के अनुयायी थे लेकिन मित्रविन्दा स्वयंवर में श्रीकृष्ण को अपना पति बनाना चाहती थी। इस प्रकार कृष्ण राजाओं की भरी सभा में उसे बलपूर्वक हर ले गये, सभी लोग देखते रह गये।

दस पुत्र– वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, उन्नाद, महाश, पावन, वन्हि, क्षुधि।

भद्रा– कैकय (काकेशस) नरेश धृष्टकेतु तथा श्रीकृष्ण की बुआ श्रुतकीर्ति की पुत्री थी। स्वेच्छा से विवाह हुआ।

दस पुत्र– संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु, सत्यक।

रुक्मिणी के दस पुत्र– प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु, चारु।

एक पुत्री– चारुमती, जिसका विवाह कृतवर्मा के पुत्र बली के साथ हुआ।

श्रीकृष्ण की रानियों की संख्या सोलह हजार एक सौ आठ थी। प्रत्येक के दस–दस पुत्र थे। इस प्रकार श्रीकृष्ण के पुत्र–पौत्रों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई। श्रीकृष्ण के परम पराक्रमी पुत्रों में अठारह तो महारथी थे जिनका यश सारे जगत में फैला हुआ था। ये महारथी थे– प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, कवि, चित्रबाहु, विरूप और न्यग्रोध। जाम्बवन्ती नन्दन साम्ब विशेष बलवान था तथा श्रीकृष्ण के पुत्रों में श्रेष्ठों में गिना जाता था। वह स्वयंवर में स्थित दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा को हर लाया। बाद में इन दोनों का विवाह हो गया। महारथी प्रद्युम्न ने रुक्मिणी के भाई रुक्मी की कन्या रुक्मवती (अपने मामा की लड़की) से विवाह किया था। उसी के गर्भ से अनिरुद्ध का जन्म हुआ। रुक्मी के दौहित्र (धेवता) अनिरुद्ध ने अपने नाना रुक्मी की पोती (नातिनी) रोचना से विवाह किया। उसके गर्भ से वज्रनाभ का जन्म हुआ। ब्राह्मणों के शाप से पैदा हुए मूसल के द्वारा यदुवंश का नाश हो जाने पर एकमात्र वज्रनाभ ही बच रहे थे। वज्र के पुत्र हैं प्रतिबाहु, प्रतिबाहु के सुबाहु, सुबाहु के शान्तसेन और शान्तसेन के शतसेन। इस वंश में कोई भी पुरुष ऐसा न हुआ जो बहुत–सी सन्तान वाला न हो तथा जो निर्धन, अल्पायु और अल्पशक्ति हो। सभी ब्राह्मणों के भक्त थे। यदुवंश में ऐसे–ऐसे यशस्वी और पराक्रमी पुरुष हुए हैं जिनकी गिनती भी हजारों वर्षों में पूरी नहीं हो सकती। यदुवंश के बालकों को शिक्षा देने के लिए तीन करोड़ अठासी लाख आचार्य थे। ऐसी स्थिति में महात्मा यदुवंशियों की संख्या तो बतायी ही कैसे जा सकती है। यद्यपि संख्याबल में अतिशयोक्ति हो सकती है लेकिन तत्कालीन यदुवंश की विशाल जनशक्ति के बारे में कोई सन्देह नहीं है।–

(श्रीमद्भाग.– दशम स्कन्ध, अ. 61, 68, 90)

श्रीकृष्ण से अपमानित होने के कारण रुक्मी श्रीकृष्ण के साथ बैर–भावना रखता था, फिर भी उसने अपनी बहिन रुक्मिणी को प्रसन्न करने के लिए अपनी पुत्री तथा पौत्री का विवाह अपनी ही बहिन के पुत्र तथा पौत्र के साथ कर दिया था। यद्यपि रुक्मी को इस बात का पता था कि इस प्रकार का विवाह–सम्बन्ध धर्म के अनुकूल नहीं है फिर भी स्नेह–बन्धन में बँधकर उसने ऐसा कर दिया। –(अ. 90)

पुराणों में द्वापरयुग में श्रीकृष्ण का चतुर्व्यूहावतार का उल्लेख मिलता है जैसे- 1. श्रीकृष्ण स्वयं ब्रह्म परमात्मा पूर्णावतार 2. संकर्षण (बलदेव)- शेषावतार 3. प्रद्युम्न-कामदेव 4. अनिरुद्ध-चन्द्रमा, ब्रह्मावतार।

प्रद्युम्न पत्नियाँ- 1. कामदेव पत्नी रति 2. रुक्मी की पुत्री रुक्मवती (शुभांगी हरिवंश, विष्णुपर्व, अ. 61) 3. बिन्दु देश के राजा दीर्घबाहु की पुत्री (इस राजा ने श्रीकृष्ण के जो अठारह महारथी पुत्र थे उनको अपनी कन्याएँ प्रदान कीं)। 4. विद्याधरों के राजा सुकृति की सुन्दरी नाम वाली कन्या। 5. वज्रनाभ असुर कन्या प्रभावती (हरिवंश, विष्णु., 94)।

अनिरुद्ध की पत्नियाँ- 1. रुक्मी की नातिनी रोचना (विष्णु पुराण में सुभद्रा) 2. स्त्री राज्य की कुमारी रानी (राजकन्या) सुरूपा 3. बाणासुर की पुत्री ऊषा।- (गर्गसंहिता, द्वारकाखण्ड, अ. 8)

साम्ब की पत्नी गुणवती तथा गद की पत्नी चन्द्रवती वज्रनाभ असुर के भाई सुनाभ की कन्याएँ थीं (हरिवंश, विष्णु, अ. 94)

बाणासुर के मंत्री कूष्माण्ड की दूसरी पुत्री का विवाह भी द्वारका में साम्ब के साथ हुआ था।

असीरिया- इसके बाद हम पुनः श्रीकृष्ण-वंश के वर्णन की ओर लौटते हैं। जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है कि श्रीकृष्ण का परिवार बहुसंख्यक तथा अपार शक्तिशाली था। गर्गसंहिता-द्वारकाखण्ड तथा विश्वजित् खण्ड में इनके पुत्र-पौत्रों तथा उनके अलौकिक कार्यों का विस्तृत वर्णन है। विश्वजित् खण्ड में राजा उग्रसेन द्वारा राजसूय यज्ञ करने का विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें यादव वीरों के पराक्रम, प्रद्युम्न के नेतृत्व में यादवों द्वारा दिग्विजय करना, यादवों द्वारा समुद्र पर बाणमय सेतु का निर्माण करना, कौरव-यादवों का युद्ध, मथुरा और शूरसेन पर यादवों की पुनः विजय, बाणासुर से युद्ध तथा उसकी पुत्री ऊषा से अनिरुद्ध का विवाह आदि प्रसंगों का वर्णन है। अश्वमेध खण्ड में उग्रसेन द्वारा अश्वमेध यज्ञ किये जाने का वर्णन है जो प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध के नेतृत्व में चला।

यदुवंश शिरोमणि अनिरुद्ध ने बाणासुर की पुत्री ऊषा से विवाह किया था। बाणासुर की राजधानी शोणितपुर थी। यह शोणितपुर कहाँ था, इस सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ लोग इसे गढ़वाल जिले में रुद्रप्रयाग के उत्तर ऊषीमठ के समीप मानते हैं। यहाँ बाणासुर द्वारा निर्मित किले के भग्नावशेष

अब भी बताये जाते हैं। कुमायुँ पहाड़ी का कोटलगढ़, पहाड़ी पर स्थित बयाना (राज.), नर्मदा पर स्थित तेवर (प्राचीन त्रिपुरी) तथा आसाम के तेजपुर को भी विभिन्न मतों के अनुसार शोणितपुर माना जाता है। श्रीअमृतवसंत पण्ड्या का मत है कि शोणितपुर असीरिया में था और श्रीकृष्ण ने असीरिया पर आक्रमण कर बाणासुर को परास्त किया। गर्ग संहिता- विश्वजित् खण्ड, अ. 23 के अनुसार कैलाश पर्वत के पार्श्व भाग में बाणासुर का निवास स्थान शोणितपुर था।

मैं इस विषय के परिप्रेक्ष्य में 'श्रीकृष्ण का असीरिया पर आक्रमण और विजय' लेखक श्रीअमृतवसंत पण्ड्या (ब्रजभारती, फाल्गुन, सं. 2009) के लेख का संक्षेप में उल्लेख करना उपयुक्त समझता हूँ-

"यह प्रसिद्ध है कि श्रीकृष्ण के समय में बाणासुर नाम का राजा था। उसकी राजधानी शोणितपुर थी। कहीं-कहीं इसका उल्लेख 'रुधिरपुर' नाम से भी मिलता है। बाणासुर की 'ऊषा' या 'ऊखा' नामक कन्या थी जिसकी चित्रलेखा नामक सहेली थी जो बाणासुर के मंत्री कुष्माण्ड की पुत्री थी। ऐतिहासिक तथ्यपूर्ण यह पौराणिक-गाथा प्रसिद्ध है कि ऊषा ने एक रात्रि को स्वप्न में एक सुन्दर राजकुमार को देखा जिसको चित्रलेखा ने चित्रित किया था और वह राजकुमार श्रीकृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध था। इसको लाने के लिए चित्रलेखा द्वारिका आई और अनिरुद्ध को निद्रावस्था में हरण करके शोणितपुर ले गयी और वहाँ उसे ऊषा को सौंप दिया। जब बाणासुर को पता लगा कि उसकी पुत्री एक अज्ञात व्यक्ति के साथ रहती है तो उसने अनिरुद्ध को कैद कर लिया। श्रीकृष्ण ने अनिरुद्ध के शोणितपुर में होने का पता पाकर तथा वहाँ जाकर बाणासुर को युद्ध में हराया और अनिरुद्ध को छुड़ाकर उसे ऊषा सहित द्वारका ले आये। ऊषा हरण की यह रोचक प्रसिद्ध कथा वैसे तो अनेक पुराणों में है किन्तु हरिवंश पुराण-विष्णुपर्व के 13 अध्यायों में अति विस्तार सहित दी गयी हैं। इस युद्ध में वैज्ञानिक यंत्रों का भरपूर प्रयोग हुआ था।

असुर प्रजा- सुरों अथवा देवताओं के विरुद्ध आचरण करने वालों को असुर संज्ञा दी गयी है और छोटा नागपुर के पास के प्रदेश में आज भी ऐसे प्राचीन अवशेष हैं जो असुरों की संस्कृति के माने जाते थे। अवशेष निश्चयपूर्वक असुर लोगों के हैं, ऐसा प्रमाण तो कोई नहीं मिला है किन्तु जनसाधारण इनको इसी नाम से कहते हैं। अतः पुरातत्ववेत्ता विद्वान् भी उनको असुरों के अवशेष कहने लगे। ईराक के उत्तरी भाग में प्राचीनकाल में असीरिया देश के निवासी

असीरियन थे। इनका असली नाम '**अश्शुर**' था। प्रो. वेल्बेकर ने भी संस्कृत वैय्याकरणों के विषय में लिखी अपनी पुस्तक में इस बात की पुष्टि की है कि असुर असीरियन लोग ही थे। बाणासुर असुरों का राजा था उसकी राजधानी शोणितपुर थी यह निर्विवाद सत्य है। शोणितपुर कहाँ था ? महाभारत के विराटनगर को जिस प्रकार भारत में अनेक नगरों से मिलाया जाता है वही दशा इस शोणितपुर की है। इसको मुख्यत: नीचे लिखे स्थानों से मिलाया जाता है–

1. जबलपुर के समीप तेवर गाँव– प्राचीनकाल में हैहयवंशी राजाओं की राजधानी त्रिपुरी कही जाती थी।

2. अरब में शम्भरा– जेम्स टॉड़ ने '**राजस्थान का इतिहास**' में जाड़ेचा राजपूतों की उत्पत्ति के वर्णन में लिखा है कि ' श्रीकृष्ण का पुत्र साम्ब शोणितपुर में जो कि अरब देश के शम्भरा प्रान्त में था, जाकर रहा था और उसके वंशज जाड़ेचाओं के पूर्वज थे जिन्होंने अरब से आकर अफगानिस्तान में गजनी का राज्य स्थापित किया। बाद में मुसलमानों से परास्त होकर सिन्ध में आये और वहाँ कच्छ काठियावाड़ में आकर बसे।

3. 'कच्छ का इतिहास'– नामक गुजराती भाषा की पुस्तक में लिखा है कि शोणितपुर, जहाँ से कि जाड़ेचा क्षत्रियों के पूर्वज भारत में आये थे, वह मिश्र देश में है। इससे विदित होता है शोणितपुर पश्चिम दिशा में अरब या मिश्र में था।

असीरियन प्रजा अत्यन्त घातकी (क्रूर) थी और उसका मुख्य नगर निनेवा था, जो सदैव शत्रु कैदियों को क्रूरतापूर्वक मारे जाने से रक्त–रंजित रहता था, जिससे असीरिया से बाहर निनेवा नगर 'रुधिर का नगर' कहलाने लगा था। इस प्रकार शोणितपुर का पता लग जाता है और वह भी यह कि नगर सुषा (श्रीकृष्ण बाणासुर को परास्तकर जब लौटे तो मार्ग में वरुण की राजधानी सुषा पड़ी, जहाँ श्रीकृष्ण और वरुण का युद्ध हुआ– हरिवंश., विष्णुपर्व, अ. 127) के उत्तर–पश्चिम स्थित असुर प्रजा के राजाओं का मुख्य नगर निनेवा था जिसने प्राग्–ऐतिहासिक काल में महत्वपूर्ण प्रसिद्धि प्राप्त की है। अतएव असुर बाणासुर निनेवा का राजा था और निनेवा असुर (असीरियन) प्रजा के देश का मुख्य नगर था, और यह भी सिद्ध हो जाता है कि हमारे प्राचीन साहित्य में वर्णित असुर असीरियन लोग थे। इस दृष्टि से असुर बाण और उसके पूर्वज बलि, प्रह्लाद, हिरण्यकश्यप आदि समस्त असुर राजा असीरियन थे। इस प्रकार पौराणिक इतिहास के संशोधन के लिए हमको एक नई दिशा मिलती है। द्वारकाधीश

श्रीकृष्ण ने आक्रमण कर असीरिया के सम्राट् को परास्त किया। इस घटना के सम्बन्ध में उस देश का इतिहास भी दृष्टव्य और विचारणीय है।

श्रीकृष्ण के असीरिया पर विजय प्राप्ति के बाद असीरिया और गुजरात के राजवंशों के बीच सम्बन्ध भी हुए हैं। असीरिया की राजपुत्री ऊषा सबसे पहले अनिरुद्ध की पत्नी बनी थी। बाणासुर के मंत्री कुष्माण्ड की दूसरी पुत्री रामा जो ऊषा के साथ शोणितपुर से द्वारका आयी थी, साम्ब के साथ विवाहित हुई। ऊषा के साथ अन्य अनेक असुर कन्या आयी थीं, वे भी यदुकुमारों के साथ विवाहित की गयीं, यह हरिवंश पुराण में लिखा है।

निनेवा (शोणितपुर) के नाश (ई. पू. 606) के पश्चात् वहाँ के अनेक शिल्पी मिश्र में और भारत में उदर-पूर्ति के लिए आकर रहे। इसी से भारत की प्राचीन स्थापत्थ शिल्पकला में असीरियन तत्त्व का मिश्रण देखा जाता है। यह उनके यहाँ आकर बसने का प्रमुख प्रमाण है।"

श्रीपड्या जी के इस लेख से यह बात भी निश्चित हो जाती है कि यदुवंश का सम्पर्क प्राचीनकाल से ही विदेशों से भी बना रहा है। चाहे वह सम्पर्क वैवाहिक हो, व्यापारिक हो या सत्ता-शासन हस्तान्तरण का हो।

यादवों का अन्त-

अन्धक-वृष्णि यादव बड़ी संख्या में महाभारत युद्ध में काम आये। जो शेष बचे थे वे आपस में मिल जुलकर अधिक समय तक न रह सके। श्रीकृष्ण-बलराम अब काफी वृद्ध हो चुके थे और सम्भवत: यादवों के ऊपर उनका प्रभाव भी कम हो गया था। पौराणिक विवरणों से पता चलता है कि यादवों में विलासता की वृद्धि हो चली थी और वे मदिरापान अधिक करने लगे थे। कृष्ण -बलराम के समझाने पर भी ऐश्वर्य से मत्त यादव न माने और वे कई दलों में विभक्त हो गये। एक दिन प्रभास क्षेत्र के मेले में, जब यादव लोग वारुणी के नशे में चूर थे, आपस में लड़ने लगे। यह झगड़ा इतना बढ़ गया कि अंत में वे सामूहिक रूप से कट मरे। इस प्रकार यादवों ने गृह-युद्ध द्वारा अपना अन्त कर लिया। महाभारत-मौसलपर्व, ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, लिंगपुराण, श्रीमद्भागवत्-स्कन्ध ग्यारह आदि में इस गृह-युद्ध का वर्णन मिलता है।

प्रभास के यादव गृहयुद्ध में चार प्रमुख व्यक्तियों ने भाग नहीं लिया, जिससे वे बच गये। कृष्ण, बलराम, दारुक सारथी और बभ्रु। महाभारत में श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के जीवित रहने का उल्लेख है। बलराम दु:खी होकर

समुद्र की ओर चले गये और वहाँ से फिर उनका पता नहीं चला। कृष्ण बड़े दु:खी हुए। वे द्वारका गये और दारुक को अर्जुन के पास भेजा कि वह आकर स्त्री-बच्चों को हस्तिनापुर लिवा ले जाय। कुछ स्त्रियों ने जलकर प्राण दे दिये। अर्जुन आये और शेष स्त्री-बच्चों को लिवाकर ले चले। कहते हैं कि मार्ग में पश्चिमी राजपूताना (महाभारत में पंचनद प्रदेश मिलता है) के जंगली आभीरों से अर्जुन को मुकाबला करना पड़ा। कुछ स्त्रियों और धन को आभीरों ने लूट लिया। शेष को अर्जुन ने शाल्वदेश और कुरुदेश में बसा दिया।

कृष्ण शोकाकुल होकर घने वन में चले गये थे। वे चिन्तित हो लेटे हुए थे कि जरा नामक एक बहेलिए ने हिरन के भ्रम में तीर मारा। वह बाण श्रीकृष्ण के पैर में लगा, जिससे शीघ्र ही उन्होंने इस संसार को छोड़ दिया। मृत्यु के समय उनकी उम्र लगभग 120 वर्ष (कहीं 125) थी। कृष्ण के महाप्रयाण के बाद द्वापर का अंत और कलियुग का आरम्भ हुआ। श्रीकृष्ण के अन्त का इतिहास वास्तव में यादव गणतंत्र के अन्त का इतिहास है। कृष्ण के बाद उनके प्रपौत्र (परनाती) वज्रनाभ यदुवंश के उत्तराधिकारी हुए। पुराणों के अनुसार वे मथुरा आये और इस नगर को उन्होंने अपना केन्द्र बनाया। इससे पूर्व द्वारका से लाकर अर्जुन ने उन्हें इन्द्रप्रस्थ का शासक बनाया था।

अंधक-वृष्णि-संघ- यह संघ यदुवंश की कई शाखाओं- अंधक, वृष्णि, भोज, कुकुर, दशार्ह, मधु आदि का महासंघ था। इसके बारे में डा० श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'ब्रज का इतिहास'- प्रथम भाग में लिखा है कि- "यादवों के 'अंधक-वृष्णि संघ' की कार्यप्रणाली गणतंत्रात्मक थी जो भारत का सबसे पहला विशाल गणतंत्र था। वह बहुत समय तक बड़े अच्छे ढंग से चलती रही। प्राचीन साहित्यिक उल्लेखों से पता चलता है कि अंधक-वृष्णि-संघ काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। इसका मुख्य कारण यही था कि संघ के द्वारा गणराज्य के सिद्धान्तों का सम्यक् रूप से पालन होता था, चुने हुए नेताओं पर विश्वास किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में अंधक और वृष्णियों की अलग-अलग मान्यताएँ हो गई और उनमें कई दल हो गये। प्रत्येक दल अब अपना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहने लगा। इनकी सभाओं में सदस्यों को जी भरकर आवश्यक बहस करने की स्वतंत्रता थी। एक दल दूसरे की आलोचना भी करता था। जिस प्रकार आजकल अच्छे से अच्छे कार्यकर्ताओं की भी बुराईयाँ होती है, उसी प्रकार उस समय भी ऐसे दलगत आक्षेप हुआ करते थे। महाभारत के शान्ति पर्व के अध्याय 82 में एक ऐसे वाद-विवाद का वर्णन है जो तत्कालीन प्रजातंत्रात्मक प्रणाली का

अच्छा चित्र उपस्थित करता है। यह वर्णन श्रीकृष्ण और नारद के बीच सम्वाद के रूप में है।"

जैन-परम्परा में श्रीकृष्ण सम्बन्ध-

भारतीय जनमानस में कृष्णचरित लोकोत्तर और लौकिक तत्त्वों का सांस्कृतिक संवाहक रहा है जिसके स्वरूप निर्माण में महाभारत, हरिवंशपुराण और श्रीमद्भागवत पुराण का विशेष योग रहा है। कृष्ण का उदात्त चरित्र वासुदेव, विष्णु, नारायण आदि तत्त्वों से अनुप्राणित होता हुआ महाभारत के राजनीति-विशारद, दिव्यपुरुष और गीता के योगेश्वर के रूप में विकसित हुआ। उत्तरोत्तर वह पुराण वाङ्मय में अवतार-वाद का प्रेरक बनता गया। पांचरात्रमत की ज्ञानयोग, क्रिया और चर्याओं की अवधारणाओं से सम्पुष्ट होकर कृष्ण का व्यक्तित्व सांख्य के प्रकृति तत्त्व और आगमों की युगल कल्पना का आलम्बन बन लीलावाद की पौराणिक कल्पना का उर्वर स्रोत बना। भारतीय जनमानस में कृष्ण का पुराण पल्लवित लीलात्मकरूप इतना सशक्त संचारक सिद्ध हुआ कि कृष्ण के लोकरक्षक, राजनीतिक, योगी, धर्मात्मा आदि रूप गौण पड़ गये। सभी वैष्णव सम्प्रदायों की दार्शनिक विचारधाराओं में कृष्ण के पुराण पल्लवित लीलात्मक गोपाल एवं रसिकेश्वर रूप को ही प्रमुखता मिली। आलवारों के भावपूर्ण गीतों से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं के शृंगारी साहित्य तक में रसिकेश्वर कृष्ण के व्यक्तित्व के ललितरूप का ही मुख्यरूपेण अभिव्यंजन हुआ है।

परन्तु जैन परम्परा में कृष्ण का जो चरित विकसित हुआ, वह अवतारवाद की रसमयी कल्पना से सर्वथा भिन्न है। अवतार की अवधारणा जैन परम्परा में मान्य नहीं है, अतः जैन-साहित्य में कृष्ण भगवद्रूप नहीं है। जैनमत में शलाकापुरुषों की अवधारणा के अनुरूप कृष्ण एक शलाकापुरुष हैं। जैन परम्परा के अनुसार एक काल-खण्ड में श्रेष्ठ शलाकापुरुष जन्म लेते हैं जिनमें चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र तथा प्रतिवासुदेव सम्मिलित हैं। श्रेष्ठ शलाकापुरुषों की सूची में अनेक पौराणिक महापुरुषों के नाम मिलते हैं जिनमें ख्यात और अख्यात दोनों ही प्रकार के नाम हैं। जैन-परम्परा के चौबीस तीर्थंकरों के अतिरिक्त जो विशिष्ट नाम चक्रवर्ती शलाकापुरुषों की सूची में मिलते हैं उसमें भरत, राम, लक्ष्मण, रावण, कृष्ण, बलराम और जरासंध उल्लेखनीय हैं। वासुदेव, प्रतिवासुदेव और बलभद्र कोटि के शलाकापुरुषों की संख्या नौ-नौ है। इनमें वासुदेव और प्रतिवासुदेव परस्पर प्रतिद्वन्द्वी हैं। बलभद्र

वासुदेव का अग्रज होता है। जैन परम्परा में मान्य श्रेष्ठ शलाकापुरुषों में कृष्ण नवम वासुदेव के रूप में मान्य है तथा जरासंध, जो उनका प्रतिद्वन्द्वी है, नवम प्रतिवासुदेव है और बलराम नवम बलभद्र हैं।

जैन-परम्परा में कृष्ण वासुदेव को बाईसवें जैन तीर्थंकर अर्हंत अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) का समकालीन और चचेरा भाई कहा गया है। जैन आगमों में ऐसे अनेक प्रसंग आये हैं जिनके अनुसार अर्हंत अरिष्टनेमि द्वारका जाते थे और कृष्ण अपने पूरे परिवार तथा अनुगत के साथ उनके उपदेशों को सुनते थे।

जैन परम्परा में अरिष्टनेमि और कृष्ण के सम्बन्धों के अन्य अनेक प्रसंग भी प्राप्त होते है। इनकी ऐसी मान्यता है कि कृष्ण आयु में अरिष्टनेमि से बड़े थे। भोजवंश की राजकुमारी राजीमती से अरिष्टनेमि की जीवन धारा ही बदल गयी। पूर्ण राजसी साज-सज्जा के साथ जब अरिष्टनेमि विवाह मंगल हेतु बारात के साथ जा रहे थे तो मार्ग में उन्होंने एक बाड़े में बारातियों के भोज के लिए एकत्रित अनेक पशु-पक्षियों को देखा। इन पशु-पक्षियों की हिंसा की कल्पना ने उनके मन में विरक्ति-भाव उद्वेलित कर दिया। अतः वे वस्त्राभूषणों का त्यागकर वहाँ से लौटने को उद्यत हो गये। सभी लोगों के समझाने पर भी अरिष्टनेमि न माने और गृहत्याग कर उन्होंने वैराग्य धारण कर लिया। गिरिनार की पहाड़ियों में उन्होंने साधना द्वारा कैवल्य प्राप्त किया। स्वानुभूत ज्ञान के प्रचार और लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अनेक यात्राएँ कीं तथा जनमात्र को उपदेश दिये। अरिष्टनेमि की शिक्षाओं के प्रति उनके कुल के लोग और प्रजा आकृष्ट हुई। वे अरिष्टनेमि की धर्मसभाओं में सम्मिलित होने लगे। अरिष्टनेमि के साथ कृष्ण के धार्मिक समागमों और सम्वादों के अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं। इस प्रकार कृष्ण और अरिष्टनेमि के सम्बन्धों का निरूपण जैन परम्परा की निजी विशेषता है क्योंकि महाभारत और वैष्णवपुराण साहित्य इस विषय में सर्वथा मौन है। यह भी एक रोचक एवं आश्चर्यजनक तथ्य है कि कृष्ण का जो व्यक्तित्व जैन परम्परा में मान्य रहा उससे वैष्णव परम्परा के कृष्ण चरित का अनेक बिन्दुओं पर तथ्यात्मक साम्य होते हुए भी भावात्मक भेद लक्षित होता है।

सारांशतः जैन-परम्परा से श्रीकृष्ण की लोकयात्रा से सम्बन्धित दो पक्ष उजागर होते हैं। पहला पक्ष यह है कि कृष्ण द्वारका सहित आधे भरत क्षेत्र पर प्रभुत्व रखने वाले शक्तिशाली वासुदेव तथा अद्‌भुत शौर्य एवं पराक्रम सम्पन्न विशिष्ट व्यक्तित्व वाले शलाकापुरुष थे। दूसरा यह कि वे अरिष्टनेमि की

आध्यात्मिक विचारधारा से प्रभावित प्रमुख राजपुरुष थे तथा दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध था।

जैन आगमिक कृतियों से कृष्ण के जीवन और व्यक्तित्व से सम्बन्धित जिन तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है उनके अनुसार कृष्ण का जन्म सोरियपुर में हुआ था। सोरियपुर में वसुदेव नाम के राजा थे। वसुदेव की दो भार्याएँ रोहिणी और देवकी थीं। कृष्ण देवकी के पुत्र थे। वसुदेव सोरियपुर के मर्हद्धिक राजा थे। वसुदेव दस भाईयों में सबसे छोटे थे। उनके सबसे बड़े भाई का नाम समुद्रविजय था। समुद्रविजय और वसुदेव सहित सभी भाई 'दस दशार्ह' नाम से प्रसिद्ध थे।

उत्तराध्ययन के अनुसार समुद्रविजय और वसुदेव पृथक्–पृथक् रूप से मर्हद्धिक राजा कहे गये हैं। अत: यह सिद्ध होता है कि दोनों के बीच के भाई भी सोरियपुर के राजा कहलाते थे।

उत्तराध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि कृष्ण का जन्मनाम केशव था। श्यामवर्णी होने के कारण स्नेहवश उन्हें '**कण्ह**' कृष्ण कहा जाता रहा होगा और कालान्तर में उनका यही नाम प्रसिद्ध भी हुआ। **ज्ञातधर्म कथा के अनुसार कृष्ण यादव (तथा कथित अहीर नहीं) क्षत्रिय थे।**

कृष्णचरित में अर्हंत अरिष्टनेमि से उनके सम्बन्ध के सन्दर्भ बहुत महत्वपूर्ण हैं जिनका उल्लेख पीछे किया गया है। '**अंतकृछसाओं**' के अनुसार कृष्ण के अनेक पारिवारिक जनों ने अर्हंत अरिष्टनेमि से प्रव्रज्या (दीक्षा) ग्रहण की थी। कृष्ण के पुत्र साम्ब की पत्नियाँ मूलश्री और मूलदत्ता भी प्रव्रजित हुई थीं। कृष्ण वासुदेव के सात सहोदर भाईयों तथा छ: सौतेले भाईयों के प्रव्रजित होने के उल्लेख मिलते हैं। उत्तराध्ययन से ज्ञात होता है कि वृष्णिपुंगव अरिष्टनेमि कृष्ण बाबा के पुत्र थे और केवल ज्ञान प्राप्त कर अर्हत हुए थे। अर्हत अरिष्टनेमि के तीन भाई रथनेमि, सत्यनेमि ओर दृढ़नेमि ने भी प्रवज्या ग्रहण की थी। इसी प्रकार कृष्ण के विमाता ज्येष्ठ भ्राता राम बलदेव के सुमुख आदि पन्द्रह पुत्रों का अर्हत अरिष्टनेमि से दीक्षा लेने का उल्लेख मिलता है। '**अंतगडद्दसाओ**' में अन्धक वृष्णि के गौतम आदि पुत्रों की भी प्रवज्या ग्रहण करने का भी उल्लेख हुआ है। इस प्रकार जैन परम्परा में प्राप्त कृष्णचरित अर्हत अरिष्टनेमि से व्यापक रूप में संदर्भित है।– (राधाकृष्ण भक्त कोश (खण्ड–1) में श्रीराजेन्द्र कुमार वर्मा के लेख से उद्धृत संक्षिप्त विवरण)

(पाठकों की जानकारी हेतु उक्त विषय का समावेश किया गया है। जैन साहित्य में समस्त कृष्णचरित का आधार महाभारत, हरिवंशपुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण हैं। कृष्ण और अरिष्टनेमि के सम्बन्धों के निरूपण के बारे में जैन परम्परा और वैष्णव परम्परा के कृष्णचरित का अनेक बिन्दुओं पर तथ्यों की समानता रहते हुए भी भावात्मक भेद दिखाई देता है।)

गोत्र-समस्या-शंका समाधान-

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बसे क्षत्रिय यदुवंश-समाज में प्रायः गोत्र-समस्या देखने-सुनने में आती है। वर्तमान में गोत्र-समस्या से उत्पन्न अनेक प्रश्न यदुवंशियों द्वारा सुने जाते हैं, जैसे- हमारा गोत्र क्या है? हम बच्चों की शादी-विवाह किन क्षत्रिय (राजपूतों) में करें या न करें? यदुवंशी-जादौन श्रीकृष्ण ने अपने पारिवारिक-निकटतम-सम्बन्धियों में अपने ही कुल में इस प्रकार शादियाँ कैसे कीं? आदि। इस सम्बन्ध में मेरा विचार है कि दीर्घकालीन विषम परिस्थितियों एवं दुर्धर्ष-जीवन-शैली के चलते वह अपने इतिहास, संस्कृति एवं क्षत्रिय कुलाचारों को भूलता चला गया और वर्तमान में होश आने पर भौतिकवादी जीवन के चलते जातीय-घालमेल में अपने अस्तित्व की तलाश कर रहा है। जब कोई भी समाज अपने अस्तित्व की भूल-भुलईयों में भटकता है तो प्रश्न उठना स्वाभाविक है, क्योंकि मनुष्य की चेतना में जब प्रश्न उठते हैं तभी वह उनका उत्तर ढूँढने का प्रयास करता है, जिसमें वह अपने अस्तित्व के प्रति जाग्रत होता चला जाता है।

गोत्रों के सम्बन्ध में हमारे प्राचीन साहित्य- वेद, पुराण, महाभारत, स्मृतियाँ एवं धर्मशास्त्रों में विस्तृत वर्णन मिलता है। आधुनिक काल के अनेक विद्वानों तथा इतिहासकारों ने भी गोत्र-सम्बन्धित विषय पर अपनी लेखनी चलाई है। सबसे पहले हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि गोत्र किसे कहते हैं? गोत्र का क्या अर्थ है? गोत्र-प्रवर का मानव -जीवन में क्या महत्व है? कब से आरम्भ हुए तथा कर्मकाण्ड में इनके उच्चारण का क्या महत्व है? आर्य (हिन्दू) संस्कृति में गोत्र और प्रवर का विचार रखना सर्वोपरि माना गया है। सनातन धर्मी आर्य जाति की सुरक्षा के लिए चार बड़े-बड़े दुर्ग हैं। प्रथम गोत्र और प्रवर, जिनके द्वारा अपनी पवित्र कुल परम्परा पर स्थिर लक्ष्य रहता है। द्वितीय रजोवीर्यशुद्धिमूलक वर्ण व्यवस्था, जिसमें जन्म से जाति मानने की दृढ़ आज्ञा है। तीसरे आश्रम धर्म की व्यवस्था, जिसमें आर्यजाति सुव्यवस्थित रूप से धर्ममूलक प्रवृत्ति मार्ग पर चलती हुई भी निवृत्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच जाती

है ओर चतुर्थ वर्ग सतीत्वमूलकनारी धर्म की सहायता से आर्य जाति की पवित्रता है- इन चार अटल दुर्गों में गोत्र एवं प्रवर पर सदा लक्ष्य रखने वाला प्रथम दुर्ग कितना महान और परमावश्यक है, उसको इस समय प्रकाशित करने की बड़ी आवश्यकता है। गोत्र प्रवर का महत्व तथा उसकी परम आवश्यकता का कुछ भी ज्ञान न होने से आजकल की सरकारें, राजकर्मचारी और प्रजावर्ग बहुत ही विपथगामी हो रहे हैं। उनके अन्त:करण में इतना अज्ञान छा गया है कि प्रवर को तो वे भूल ही गये हैं और सगोत्र विवाह को कानून द्वारा चलाना चाहते हैं। मानव अधिकारों के नाम पर गाँव-जाति आदि सभी प्रतिबन्धों को तोड़कर प्रेम-विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाहों को मान्यता दे रहे हैं जिसके कारण समाज में जातीय विद्वेष फैल रहा है। इसी प्रकार के अनेक प्रकरण अदालतों में चल रहे हैं। इस गोत्र सम्बन्धी विकृति के कारण अनेक जानें जा चुकी है। आर्य जाति का प्रधान महत्व यह है कि वह सृष्टि के आरम्भ से अब तक (स्वतंत्रता प्राप्ति तक) अपने रूप में विद्यमान है। चतुर्युगी सृष्टि एवं मन्वन्तर सृष्टि की तो बात ही क्या है, कल्पादि और महाकल्पादि की आदि सृष्टि के साथ-साथ गोत्र-प्रवर सम्बन्ध है, क्योंकि ब्रह्माजी की उत्पत्ति के साथ ही उनके मानस-पुत्र रूप में उत्पन्न हुए ऋषियों से ही गोत्र-प्रवर का सम्बन्ध चला है। यह गोत्र-प्रवर के विज्ञान की ही महिमा है कि हिन्दू जाति तब से अब तक जीवित है। उस समय से लेकर आज तक पृथ्वी की लाखों जातियाँ प्रकट हुईं और काल के गाल में चली गई, परन्तु दैवीय-जगत पर विश्वास करने वाली, वर्णाश्रम धर्म मानने वाली, अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए गोत्र-प्रवर की शृंखला के आधार पर चलने वाली सनातन धर्मी प्रजा अभी तक अपने अस्तित्व की रक्षा कर रही है। हमारे वेदों में, वैदिक कल्प-सूत्रों में तथा स्मृति और पुराणों में गोत्र-प्रवर-प्रवर्तक महर्षियों की चर्चा है, तथा उससे आर्यजाति को सुरक्षित रखने के लिए दृढ़ आज्ञा है। अत: आधुनिक अहंकारी नेतृ-वृन्दों (नेताओं के समूह) के द्वारा इस व्यवस्था का नाश न होने देना चाहिए। इस समय की क्षत्रिय, वैश्य आदि जातियों में अपने पुरोहित के गोत्र से गोत्र-प्रवर मानने की व्यवस्था प्रचलित थी, लेकिन वर्तमान में प्राचीन-शृंखला का ज्ञान न होने के कारण कुल स्थान या अपने किसी कुल पूर्वज के नाम का आधार लेकर गोत्रों के उच्चारण का प्रचलन होता जा रहा है। आजकल ब्राह्मण जाति में भी कुछ ऐसा ही दिखाई देता है। अत: जिनमें स्वजातीय अभिमान है, जो अपने स्वधर्म का गौरव समझते हैं, जो जन्मान्तर विज्ञान मानते हैं और जो रजोवीर्य की शुद्धता का गौरव समझते हैं, उनको इस समय प्रमादग्रस्त न होकर इस विषय में चैतन्य होना चाहिए।

'गोत्र' पाणिनी कृत, **'अष्टाध्यायी'** का महत्वपूर्ण शब्द है। पाणिनी के अनुसार **'अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम्'** (4/1/162) यह गोत्र की परिभाषा थी। इसका अर्थ था पौत्र प्रभृति यद पत्यंतद गोत्र संज्ञं भवति, अर्थात् एक पुरखा के पोते, पड़ पोते आदि जितनी संतान होगी, वह गोत्र कही जायेगी। गोत्र-प्रवर्तक मूल पुरुष को वृद्ध, स्थविर या वंश्य भी कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि मूल पुरुष का नाम गर्ग हो तो उसका, उसका पुत्र गार्गि, पौत्र गार्ग्य, और प्रपौत्र गार्ग्यायण कहलाता था।

किसी परिवार में कौन गार्ग्य है और कौन गार्ग्यायण है, इसका समाज में वास्तविक महत्व था। गोत्र नाम के अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत नाम भी होता था, इसीलिए महाभारत, जातक आदि प्राचीन ग्रन्थों में व्यक्ति का परिचय पूछते समय नाम और गोत्र दोनों के विषय में प्रश्न किया जाता था।

वास्तविक बात यह थी कि गोत्रों की परम्परा प्राचीन ऋषियों से चली आती थी। मान्यता है कि मूलपुरुष ब्रह्मा के चार पुत्र हुए- भृगु, अंगिरा, मरीचि और अत्रि। ये चारों गोत्रकर्ता थे। फिर भृगु के कुल में जमदग्नि, अंगिरा के गौतम और भारद्वाज, मरीचि के कश्यप, वशिष्ठ और अगस्त्य एवं अत्रि के विश्वामित्र हुए। इस प्रकार जमदग्नि, गौतम, भारद्वाज, कश्यप, वशिष्ठ, अगस्त्य, अत्रि और विश्वामित्र, इन्हीं मूल आठ ऋषियों को गोत्रकर्ता माना गया है। फिर इनमें से हरेक के वंश में भी ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति हुए, जिनकी विशेष कीर्ति के कारण उनके नाम से भी वंश का नाम प्रसिद्ध हो गया। उनकी गणना अपने मूलगोत्र के अन्तर्गत स्वतंत्र गोत्रकर्ता के रूप में की जाने लगी। होते-होते एक मूलगोत्र के अन्तर्गत आगे चलकर और भी बहुत से कीर्तिमान् गोत्रकर्ता उत्पन्न होते गये। उनकी गणना गोत्रगण के नाम से करली गई। इस प्रकार मूल आठ गोत्र और प्रत्येक के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले गोत्र गणों की सूचियाँ प्राचीन समय में संग्रहीत की गयीं। ऐसी सबसे वृहत् सूची बौधायन श्रौत सूत्र के अन्त में पाई जाती है जिसका नाम महाप्रवरकांड है। इस सूची में लगभग एक हजार नाम हैं। आपस्तंब, कात्यायन और आश्वलायन के श्रौत सूत्रों में भी गोत्रों की सूचियाँ हैं। कहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना वंश चलाता है, पर सच्चे वंशकर्ता या गोत्रकर्ता कुछ वे ही होते हैं जिनके नाम से कुल प्रसिद्धि पाता है। बस, इसी स्वाभाविक स्थिति को व्याकरण शास्त्र भी मानता है।

संस्कृत वैदिक साहित्य में सूत्रकाल से ही गोत्र शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है, वह है किसी एक ऋषि से वंश परम्परा का बढ़ना। पूर्वोक्त आठ

ऋषियों की संतानें गोत्र हैं, अर्थात् सगोत्री सारे ही व्यक्ति किसी एक पूर्वज ऋषि की सन्तान होते हैं किन्तु जिस आधुनिक अर्थ में गोत्र शब्द का प्रयोग किया जाता है, वह अर्थ वेदों में प्राप्त नहीं होता है। गेल्डनर ने इस शब्द का अर्थ यूथ अथवा समूह में लिया है। गेल्डनर द्वारा प्रस्तुत अर्थ ही परवर्ती संस्कृत साहित्य में गोत्र शब्द के परिवार अथवा वंश परम्परा के अर्थ में प्रयोग की व्याख्या करता है।

ऋग्वेद में गोत्र का अर्थ समूह है, जिसका अर्थ मनुष्यों के दल से निकालना सरल हो गया है। एक स्थान पर 'एक ही पूर्वज के वंशज' के अर्थ में भी गोत्र शब्द प्रयुक्त हुआ है (ऋक०- 2/23/28, 6/65/5) अथर्ववेद के अनुसार- अथर्ववेद में एक स्थल पर 'विश्वगोत्र्यः' पद आया है, जहाँ गोत्रशब्द का सुस्पष्ट अर्थ परस्पर सम्बद्ध मनुष्यों का दल है- (अथर्ववेद- 5/21/3)। इसी प्रकार कृष्ण यजुर्वेद, ब्राह्मण-साहित्य, उपनिषदों आदि में भी गोत्र शब्द का यही अर्थ मिलता है। उपर्युक्त विवेचना से ज्ञात होता है कि पूर्वज ऋषि की समस्त सगोत्री सन्तानें परस्पर भाई-बहन के समान हुईं। अतः सगोत्री स्त्री पुरुषों में विवाह निषेध कर दिया गया। धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में भी पर के लिए सगोत्री कन्या विवाह हेतु निषिद्ध ठहरायी गयी है। सूत्रों में जिस प्रकार सगोत्र विवाह का निषेध किया है उसी प्रकार सप्रवर-विवाह भी निषिद्ध माना है।

प्रसिद्ध विद्वान् पी.वी. काणे ने अपने ग्रन्थ '**धर्मशास्त्र का इतिहास**'- भाग प्रथम में गोत्र एवं प्रवर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि गोत्र प्राचीनतम पूर्वज हैं या किसी व्यक्ति के प्राचीनतम पूर्वजों में से एक हैं, जिसके नाम से युगों में कुल विख्यात रहा है, किन्तु प्रवर उस ऋषि या उन ऋषियों से बनता है जो अति प्राचीनतम रहे हैं, अत्यन्त यशस्वी रहे और जो गोत्र ऋषि के भी पूर्वज या कुछ दशाओं में अत्यन्त प्रख्यात ऋषि रहे हैं। प्रवर शब्द गोत्र से भी प्राचीनतर है। प्रत्येक ऋषि गोत्र के साथ बहुधा तीन या पाँच प्रवर होते हैं जो उक्त गोत्र (वंश) में होने वाले प्रवर (परम प्रसिद्ध) पुरुषों के सूचक होते हैं।

गोत्र तथा प्रवर पर विचार करने के साथ-साथ सापिण्ड पर भी ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है। मत्स्य पुराण में मत्स्य के कहे हुए वचन के अनुसार लेप के भागी प्रपितामह (पडबाबा) के पिता आदि चौथी पीढ़ी पर जो हों और पिण्ड के ग्रहण करने वाले पिता आदि तीन (पिता, बाबा, पडबाबा) और इनसे पडबाबा के पिता, बाबा, पडबाबा ये छः और सातवां पिण्ड के दान करने वाला, इन सात मनुष्यों में सपिण्डता होती है- (धर्मसिन्धु, तृतीय परिच्छेद- पू.)

सपिण्ड का तात्पर्य यह है कि दो व्यक्तियों में समान शरीर के अवयव हैं। इस प्रकार पुत्र का पिता से सापिण्ड सम्बन्ध है, क्योंकि पिता के शरीर के कण (शरीरांश) पुत्र में आते हैं। इसी प्रकार पितामह (बाबा) और पौत्र (नाती) सापिण्ड सम्बन्ध है। इसी प्रकार पुत्र का माता से सापिण्ड सम्बन्ध है। अत: नाना एवं धेवता (पुत्री का पुत्र) में सापिण्ड सम्बन्ध हुआ। इसी प्रकार मौसी एवं माता से भी सपिण्डता का सम्बन्ध होता है। चाचा एवं फूफी (पिता की बहिन) से भी सपिण्डता का सम्बन्ध है। पत्नी का पति से सापिण्ड सम्बन्ध है, क्योंकि वह पति के साथ एक पिण्ड (पुत्र) का निर्माण करती है। इसी प्रकार भाईयों की स्त्रियों में सपिण्डता पायी जाती है क्योंकि सपिण्ड सन्तान उत्पन्न करती हैं और उनके पति एक ही पिता के पुत्र हैं। इस प्रकार सपिण्डता की व्याख्या की जाय तो अन्ततोगत्वा इस अनादि विश्व में सब कोई एक ही सम्बन्ध वाले सिद्ध किये जा सकते हैं। इसीलिए महर्षि याज्ञवल्क्य ने एक सीमा का निर्धारण कर दिया- पाँचवीं पीढ़ी में माता के कुल में तथा सातवीं पीढ़ी में पिता के कुल में सपिण्डता की अन्तिम सीमा मानी जानी चाहिए। किसी भी व्यक्ति से छ: पीढ़ियाँ ऊपर या नीचे तथा उसको लेकर सात पीढ़ियाँ गिनी जाती हैं।

धर्मसिन्धु तथा निर्णयसिन्धु में इसी के सम्बन्ध में व्यवस्था भी दी है- वधू या वर का पिता मूलपुरुष से सातवीं पीढ़ी पर हो और माता पाँचवीं पीढ़ी पर हो तो सापिण्ड निवृत्त हो जाता है। महाभारत- अनुशासन पर्व, अ. 44 से भी इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है। इन बातों में दो नियम सामने आते हैं कि- 1. माता और पिता के द्वारा ही सापिण्ड होता है 2. और उनमें भी पाँचवीं और सातवीं पीढ़ी तक रहता है। इस अवस्था में वर-वधू का आपस में सम्बन्ध निषेध माना गया है। देश, आचार और कुलाचार के अनुसार विवाह-सम्बन्ध बना रहता है। यह बात वेद से भी सिद्ध है, ये सिद्धान्त धर्मग्रन्थों में मिलते हैं। सापिण्ड के संकोच से विवाह बहुत देशों में मिलते हैं, और जिनके कुल या देश में सदा से सापिण्ड के संकोच (विचार रहित) से विवाह चला आया है, उनको दोष नहीं होता। जो अपने कुल या देश से विरुद्ध करेंगे उनको तो दोष लगेगा, क्योंकि विवाह के विषय में देश और ग्राम के धर्मों को अवश्य विचारना चाहिए। इस बात से स्पष्ट है कि जिस मार्ग पर अपने पिता, बाबा आदि चले आये हों, उसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिए, उसमें कोई दोष नहीं है। अपने कुलाचार और देशाचार से जो कार्य विरुद्ध न हो, उसको ही करना उचित है। यही मामा की कन्या विवाहने में भी समझना चाहिए। भारत के अनेक क्षेत्रों में तथा अनेक

जातियों में इसी प्रकार के विवाह आजकल भी होते हैं (विशेषकर दक्षिण भारत में)।

सगोत्र, सप्रवर या सपिण्ड विवाह पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये, उसके कुछ महत्वपूर्ण कारण थे- इस विषय में मानव-शास्त्रियों ने कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। वेस्टरभार्क (हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन मैरेज, भाग 2, पृ. 71-81) एवं रिवर्स (मैरेज ऑफ कजिन्स इन इण्डिया, जे. आर.ए.एस. 1907, पृ. 611-640) ने कहा है कि लोग सन्निकट लोगों में विवाह करने को व्यभिचार समझते थे। भारत में सपिण्ड विवाह पर प्रतिबन्ध सम्भवत: दो कारणों से था- 1. यदि सन्निकट सम्बन्धी आपस में विवाह सम्बन्ध स्थापित करें तो दोष कई गुने रूप में उनकी सन्तानों में बढ़ जायेंगे 2. यदि सन्निकट लोगों में विवाह सम्बन्ध स्थापित होंगे तो गुप्त प्रेम की परम्पराएँ गूँज उठेंगी और समाज में अनैतिकता का राज्य बढ़ जायेगा और उन कन्याओं के लिए, जो एक ही घर में कई सन्निकट एवं दूर के सम्बन्धियों के साथ रहती हैं, वर पाना कठिन हो जायेगा।"

- (धर्मशास्त्र का इतिहास- डा० पी.वी. काणे, प्रथम भाग)

सगोत्र विवाह निषिद्ध क्यों? इस विषय पर शास्त्रार्थ महारथी पं. माधवाचार्य शास्त्री ने स्वरचित ग्रन्थ 'क्यों' में पृष्ठ 250-253 पर अपने प्रामाणिक विचार इस प्रकार लिखे हैं- "जैसे असवर्ण विवाह निषिद्ध है इसी प्रकार शास्त्र में सगोत्र और सपिण्ड विवाह का निषेध है, जैसे-

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥

(मनुस्मृति 3/5)

अर्थात् जो माता की छ: पीढ़ी में न हो तथा पिता के गोत्र में न हो ऐसी कन्या द्विजातियों में विवाह के लिए प्रशस्त है।

वैज्ञानिक रीति से जैसे अत्यन्त विजातीय (अन्य जाति) असवर्ण से विवाह सम्बन्ध करने का निषेध है वैसे ही अत्यन्त सजातीय समान गोत्र और समान प्रवर से भी विवाह सम्बन्ध करना वर्जित है। स्ववर्ण की हो- किन्तु स्वगोत्र और स्व-प्रवर की न हो- ऐसी कन्या से ही विवाह करना शास्त्र सम्मत है।

'विवाह स्ववर्ण (वर्ण चार हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) में हो, परन्तु स्वगोत्र में न हो' इसका वैज्ञानिक कारण यही है कि विजातीय सम्पर्क से दोनों

वस्तुओं के गुण नष्ट होकर नवीन विकृति का प्रादुर्भाव होता है और अत्यन्त सजातीय सम्पर्क से मूल वस्तु में कुछ भी विशेषाधान नहीं होता। जैसे- यव (जौ), गुड और बबूल का कस- इन तीन विभिन्न विजातीय द्रव्यों के मिश्रण से मादक शराब की उत्पत्ति होती है, अथवा घृत (घी), मधु (शहद) जैसे उत्तमोत्तम स्वादिष्ट दो विजातीय द्रव्यों के सम्मिश्रण से भी प्राण घातक विष उपस्थित हो जाता है। उधर, अत्यन्त सजातीय दूध को दूध में ही मिलाने पर कोई विलक्षणता उत्पन्न नहीं होती, परन्तु सजातीय किन्तु विषम दो द्रव्यों के सम्मिश्रण से दोनों मूल द्रव्यों के गुण का अत्यन्त विकास प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। जैसे दूध में थोड़ी-सी तक्र (छाछ) का सम्मिश्रण उसे दही में परिवर्तित कर उसमें व्याप्त मक्खन कणों को एकत्र संघटित हो जाने की योग्यता का विशेष गुण प्रदान कर देता है। ठीक इसी प्रकार असवर्ण विवाह का परिणाम शराब की भाँति विकार-मूलक और सगोत्र विवाह का परिणाम समान दूध के मेल की भाँति अनुन्नतिकारक होता है, परन्तु सवर्ण असगोत्र विवाह का परिणाम औटे हुए दूध से मठा के संयोग से मक्खन की उत्पत्ति की भाँति दम्पति के परम्परागत गुणों का विकाशक होता है।

विवाह सम्बन्ध का सीधा सूत्र यही है कि न विजातीय से यौन सम्बन्ध हो और ना ही अत्यन्त सजातीय से। किन्तु सवर्ण असगोत्र का यौन सम्बन्ध ही शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के मानव जीवन की स्थिति का स्थापक हो सकता है। दूसरे देशों की जातियाँ जहाँ उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होकर भी कुछ शताब्दियों में ही सदा के लिए समाप्त हो जाती हैं वहाँ संसार की आदिम जाति कही जाने वाली हिन्दू जाति लगभग दो अरब वर्ष से संसार में अपना अस्तित्व स्थिर रख रही है, और जब तक आगे भी विशुद्ध रक्त संरक्षण की 'स्ववर्ण असगोत्र विवाह संस्था'- यह प्रणाली सुरक्षित रहेगी तब तक यह जाति अपने अस्तित्व को स्थिर रखने में समर्थ रहेगी।

राजाओं एवं क्षत्रियों के गोत्रों एवं प्रवरों के विषय में भी कुछ जान लेना परमावश्यक है। उक्त विषयक प्रकरण में पाण्डुरंग वामन काणे (डा० पी.वी. काणे ने अपने ग्रन्थ **'धर्मशास्त्र का इतिहास'**, प्रथम भाग, पृष्ठ- 289 पर लिखा है कि- "ऐतरेय ब्राह्मण (35/5) के अनुसार क्षत्रियों के प्रवर उनके पुरोहित के प्रवर होते हैं। इससे लगता है कि ऐतरेय के काल तक बहुत से क्षत्रिय अपने गोत्रों एवं प्रवरों के नाम भूल गये थे। श्रौत सूत्रों में लिखा है कि क्षत्रिय एवं राजा लोग अपने पुरोहितों का प्रवर काम में ला सकते हैं या उनका प्रवर है

"मानव-एल- पौरुरवस।" (अर्थात् मानव-सूर्यवंश, एल- पौरुरवस- चन्द्रवंश से अभिप्राय है) मेधातिथि (मनुस्मृति- 3/5) ने लिखा है कि गोत्रों एवं प्रवरों की बातें मुख्यत: ब्राह्मणों से सम्बन्धित हैं क्षत्रियों एवं वैश्यों से नहीं। यह बात याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका मिताक्षरा में पायी जाती है, उनके तथा अन्य निबन्ध के अनुसार क्षत्रियों एवं वैश्यों के विवाह में उनके पुरोहितों के गोत्रों एवं प्रवरों की गणना होती है, क्योंकि उनके लिए विशिष्ट गोत्र एवं प्रवर है ही नहीं। यह सिद्धान्त 'अतिदेश' आरोपण का सूचक है क्योंकि हमें प्राचीन साहित्य एवं अभिलेखों से यह बात ज्ञात है कि राजाओं के गोत्र होते थे। महाभारत में आया है कि जब युधिष्ठिर ब्राह्मण के रूप में राजा विराट् के यहाँ गये तो उनसे नाम और गोत्र पूछा गया और उन्होंने बताया कि वे वैयाघ्रपाद गोत्र के हैं (विराट् पर्व 7/8/2)। यह गोत्र वास्तव में पाण्डवों का गोत्र था। पाण्डवों का प्रवर सांकृति था। कांची के पल्लवों का गोत्र भारद्वाज था। चालुक्यों का गोत्र मानव था। जयचन्द्र देव का गोत्र वत्स तथा प्रवर पाँच थे। इसी प्रकार अनेक अभिलेख प्राप्त होते हैं जिनमें राजाओं के गोत्रों एवं प्रवरों के नाम प्राप्त होते हैं। देखिए- एपीग्राफिया इण्डिका, वोल्यूम- 1,6,8,9,10,12,13,14,16,19)।

आगे लिखते हैं कि आपस्तम्ब के मत से यदि अपना गोत्र एवं प्रवर स्मरण न हो तो आचार्य (वेदगुरु) के गोत्र एवं प्रवर काम में लाये जा सकते हैं। संस्कार कौस्तुभ एवं संस्कार प्रकाश (पृ. 650) के मत से यदि अपना गोत्र ज्ञात न हो तो अपने को काश्यप गोत्र कहा जा सकता है किन्तु यह तभी किया जायेगा जब कि गुरु (आचार्य) का गोत्र भी न ज्ञात हो। स्मृति चन्द्रिका (श्राद्धप्रकरण, पृ. 481) का कथन है कि यदि नाना का गोत्र ज्ञात न हो तो पिण्डदान करते समय नाना को काश्यप गोत्र का कहा जा सकता है, क्योंकि कश्यप द्वारा ही मानव सृष्टि की वृद्धि हुई है। कालान्तर में गोत्र से कुल का परिचय भी दिया जाने लगा, ऐसी बात अभिलेखों से प्राप्त होती है।"

विवाह सम्बन्धी कृत्यों के विषय में बहुत प्राचीनकाल से ही अत्यधिक मत-मतान्तर रहे हैं। गृहसूत्रों, धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के काल से ही विवाह आठ प्रकार के कहे गये हैं जैसे- ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस एवं पैशाच। विभिन्न लेखकों द्वारा लिखे गये प्रकारों की अर्थविभिन्नता स्पष्ट करना आसान नहीं है, इसलिए हम यहाँ मनु द्वारा कहे गये लक्षणों का वर्णन उपस्थित करेंगे (मनुस्मृति 3/27-34)। जिस विवाह में बहुमूल्य अलंकारों एवं परिधानों से सुसज्जित, रत्नों से मण्डित कन्या वेद पण्डित एवं सुचरित्र व्यक्ति

को निमंत्रित कर (पिता द्वारा) दी जाती है, उसे '**ब्राह्म**' कहते हैं। जब पिता अलंकृत एवं सुसज्जित कन्या किसी पुरोहित को (जो यज्ञ करता है) यज्ञ करते समय दे तो उस विवाह को '**दैव**' कहा जाता है। यदि एक जोड़ा पशु (एक गाय एक बैल) या दो जोड़ा पशु लेकर (केवल नियम के पालन हेतु न कि कन्या के विक्रय रूप में) कन्यादी जाय तो इसे 'आर्ष' विवाह कहते हैं। जब पिता वर और कन्या को "तुम दोनों साथ ही साथ धार्मिक कृत्य करना" यह कहकर तथा वर को मधुपर्क आदि से सम्मानित कर कन्यादान करता है तो उसे '**प्राजापत्य**' विवाह कहा जाता है। जब वर अपनी शक्ति के अनुरूप कन्या पक्ष वालों तथा कन्या को धन दे देता है, तब इस प्रकार अपनी इच्छा के अनुकूल पिता द्वारा दी गई कन्या के विवाह को '**आसुर**' विवाह कहते हैं। वर एवं कन्या की परस्पर सम्मति से जो प्रेम की भावना के विकास का प्रतिफल हो तथा सम्भोग जिसका उद्देश्य हो, उस विवाह को '**गान्धर्व**' विवाह कहा जाता है। सम्बन्धियों को मारकर, घायल कर, घर-द्वार तोड़-फोड़कर जब रोती बिलखती हुई कन्या को बलपूर्वक छीन लिया जाता है तो इस प्रकार से प्राप्त कन्या के सम्बन्ध को '**राक्षस**' विवाह कहा जाता है। जब कोई व्यक्ति चुपके से किसी सोई हुई, उन्मत्त या अचेत कन्या से सम्भोग करता है तो इसे निकृष्ट एवं महापातकी कार्य कहा जाता है और इसे '**पैशाच**' विवाह कहते हैं।

स्मृतियों में विविधि वर्णों के लिए इन आठ प्रकार की उपयुक्तता के बारे में कुछ मत प्रकाशित किये हैं। मनु ने एक मत प्रकाशित किया है कि गान्धर्व एवं राक्षस क्षत्रियों के लिए उपयुक्त (धर्म्य) है, दोनों का मिश्रण (जैसे- जहाँ कन्या वर से प्रेम करे, किन्तु उसे माता-पिता या अभिभावक न चाहें तथा अवरोध उपस्थित और प्रेमी लड़ाई लड़कर उठा ले जाय) भी क्षत्रियों के लिए ठीक है (मनु. 3) 36 एवं बौधायन-धर्मसूत्र- 1/11/3)। नारद (स्त्री पुंसवन, 40) के अनुसार गान्धर्व सभी वर्णों में पाया जाता है। यों तो आठों प्रकार के विवाह आदिकाल से वर्तमानकाल तक होते आये हैं, लेकिन राक्षस तथा पैशाच विवाह को किसी ने भी मान्यता नहीं दी है।

राजकुलों में गान्धर्व विवाह बहुत प्रचलित रहा है। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् (3) में इसके बहु व्यवहार का उल्लेख किया है। महाभारत (आदि पर्व, 229/22) में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं अब अर्जुन सुभद्रा के प्रेम में फँस चुका- "शूरवीर क्षत्रियों के लिए अपनी प्रेमिकाओं को हरकर ब्याह करने की भी नीति है।" इसी व्यवस्था का प्रयोग उन्होंने स्वयं रुक्मिणी के साथ विवाह के

लिए किया। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने पुत्र-पौत्रों के विवाह-सम्बन्ध में भी अनेक बार इसी गान्धर्व-नीति का प्रयोग किया। श्रीकृष्ण तथा उनके पुत्र-पौत्रों के आकर्षक व्यक्तित्व पर प्रायः अनेक राजा तथा उनकी कन्याएँ आकर्षित रहती थीं, किन्तु किसी अन्य व्यवधान के आने पर वे अपने बल का प्रयोग भी करते थे। प्रद्युम्न, साम्ब, अनिरुद्ध आदि पुत्र-पौत्रों के विवाह सम्बन्ध के बारे में महाभारत, श्रीमद्भागवत्, हरिवंशपुराण, गर्गसंहिता आदि ग्रन्थों में ऐसा ही वर्णन मिलता है। महाभारत-आदिपर्व में आया है कि क्षत्रिय लोग स्वयंवर करते थे किन्तु कन्याओं के सम्बन्धियों को हराकर उनका अपहरण करके विवाह करना बहुत अच्छा समझते थे। भीष्म काशिराज भीष्मक की तीन कन्याओं का हरण करके अपने भाईयों के लिए ले आये थे। सावित्री, सीता, द्रौपदी, दमयन्ती, इन्दुमती आदि के स्वयंवरों के वर्णन हमारे ग्रन्थों में मिलते हैं यद्यपि ये सशर्त-पूर्ति द्वारा ही विवाह पूरे हुए। आधुनिक युग में भी इस प्रकार के विवाह के उदाहरण इतिहास में मिलते हैं जैसे- इन्द्रराज और चालुक्यराज विक्रमांक का विवाह आदि। कवि बाणभट्ट रचित कादम्बरी (पूर्व भाग, उपान्त्य अंश) में पत्रलेखा कहती है कि स्वयंवर सभी धर्मशास्त्रों में उपदिष्ट है।

आजकल ब्राह्म एवं आसुर विवाह प्रचलित हैं। ब्राह्म में कन्यादान होता है, किन्तु आसुर में लड़की के पिता या अभिभावकों को उनके लाभ के लिए शुल्क देना पड़ता है। गान्धर्व विवाह आजकल एक प्रकार से समाप्त प्राय हैं। यद्यपि कभी-कभी कुछ मुकदमे कचहरी में आ जाया करते हैं। आजकल देखने में आता है कि नयी रोशनी में पले नव-युवक एवं नवयुवतियाँ गान्धर्व विवाह की ओर उन्मुख हो रहे हैं। यदि कोई विधवा स्वयं विवाह करे तो वह गान्धर्व के रूप में ग्रहण किया जा सकता है, क्योंकि इस विषय में कन्यादान नहीं होता।

अब, कुछ अन्य टिप्पणियों द्वारा इस विषय पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है जैसे- 1. कैकय (काकेशस) नरेश महाराज धृष्टकेतु ने कृष्ण की बुआ श्रुतकीर्ति से विवाह किया था। उसकी पुत्री का विवाह (भद्रा का) श्रीकृष्ण के साथ हुआ था। इस विवाह के सम्बन्ध में कैकय नरेश ने अपने शास्त्रज्ञ राजपुरोहित से प्रश्न उठाया कि- 'हमें एक बात का ध्यान रखना चाहिए, महाराज कुन्तिभोज सम्बन्ध में भाई होते हैं और उनकी पुत्री कुन्ती श्रीकृष्ण की बुआ है।' यह एक मर्यादा सम्बन्धी अड़चन थी। इस प्रकार शास्त्रज्ञ पुरोहित ने राजा को आश्वस्त किया- 'कुन्ती देवी महाराज कुन्तिभोज की औरस (अपने अंश से) पुत्री नहीं है। मित्रता के कारण ही उनके पिता

शूरसेन ने कुन्तिभोज को पुत्री रूप से उन्हें (गोद) दिया था। मैत्री का भ्रातृत्व विवाह सम्बन्ध में बाधक नहीं होता। अतः कुन्तिभोज आपके भाई हैं, तो भी वसुदेव जी आपके भ्रातृपुत्र नहीं माने जा सकते। आप कृष्ण के लिए शादी का निमंत्रण भेजो।' वैसे तत्कालीन समाज में राजकुल के लिए माता या बुआ की लड़कियों से विवाह करने की प्रथा प्रचलित थी। श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्न, पौत्र अनिरुद्ध तथा अर्जुन का इसी कारण विवाह हो सका।- (स्कन्द पुराण- 10, अ. 58, नारी अंक- पृ. 558- गीताप्रेस)

2. क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महायशाः।
वृजिनीवत्सुतश्चापि स्वाहिः स्वाहाकृतां वरः॥

अर्थात् वैशम्पायन कहते हैं- जनमेजय! (यदु के पुत्र) क्रोष्टा के वृजिनीवान्, उसके स्वाहि हुए। (इसी क्रोष्टा वंश में श्रीकृष्ण पैदा हुए, उसी प्रकार क्रोष्टावंश में ही सत्यभामा आदि भी हुईं। क्रोष्टावंश की एक शाखा में रुक्मिणी पैदा हुई। और इन सबका विवाह श्रीकृष्ण के साथ हुआ। क्षत्रियों में एक कुल के होने पर भी सात पीढ़ियाँ बीत जाने के बाद पुरोहित के गोत्र से यजमान क्षत्रिय का भी गोत्र बदल जाता है और इस प्रकार गोत्र भेद से उनमें विवाह हो जाते हैं।

3. भविष्यपुराण-मध्यमवर्ग- द्वितीय भाग, अ. 9 में गोत्र-प्रवर आदि के ज्ञान की आवश्यकता पर बल देते हुए सूतजी कहते हैं कि- "गोत्र-प्रवर की परम्परा को जानना अत्यन्त आवश्यक होता है, इसलिए अपने-अपने गोत्र-प्रवर को पिता, आचार्य तथा शास्त्र द्वारा जानना चाहिए। गोत्र-प्रवर को जाने बिना किया गया कर्म विपरीत फलदायी होता है। समान गोत्र में विवाहादि सम्बन्धों का निषेध है। वास्तव में देखा जाय तो सारा जगत महामुनि कश्यप से उत्पन्न हुआ है, इसलिए जिन्हें अपने गोत्र-प्रवर का ज्ञान नहीं है तो स्वयं को कश्यप गोत्रीय मानकर उनका प्रवर लगाकर शास्त्रानुसार कर्म करना चाहिए।"

क्षत्रियों के गोत्रों के सम्बन्ध में इतिहासकारों में दीर्घकाल से इस बात से बहस चल रही है कि क्षत्रियों के गोत्र वास्तव में उनके मूल पुरुषों के सूचक हैं या उनके पुरोहितों के, जो उनके संस्कार करते और उनको वेदादिशास्त्रों का अध्ययन कराते थे। इस विषय पर विद्वान् आजतक भी एकमत नहीं हैं। अधिक विस्तार में न जाकर कुछ विद्वानों के मत को रख रहा हूँ। श्रीयुत् चिन्तामणि विनायक वैद्य (सी. वी. वैद्य) ने ई. सन् 1923 में "मध्ययुगीन भारत, भाग दूसरा" नाम की मराठी पुस्तक प्रकाशित की। उसमें वैद्यजी ने 'राजपूतों के गोत्र' तथा '**गोत्र और प्रवर**' इन दो लेखों में यह बतलाने का यत्न किया है कि

क्षत्रियों के जो गोत्र हैं, वे उनके मूल पुरुषों के सूचक हैं, पुरोहितों के नहीं, और पहले क्षत्रिय लोग ऐसा ही मानते थे (पृ. 61)। अर्थात् भिन्न-भिन्न क्षत्रिय वास्तव में उन ब्राह्मणों की सन्तति हैं, जिनके गोत्र वे धारण करते हैं।

लेकिन इसके विरोध में प्रसिद्ध इतिहासकार पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझाजी का मानना है कि यदि क्षत्रियों के गोत्र उनके पुरोहितों (गुरुओं) के सूचक न होकर उनके मूल पुरुषों के सूचक होते जैसा कि वैद्यजी का मानना है तो ब्राह्मणों के समान उनके गोत्र सदा वे ही बने रहते और कभी न बदलते। परन्तु प्राचीन शिलालेखादि से ऐसे प्रमाण मिल जाते हैं जिनसे एक ही कुल या वंश के क्षत्रियों के समय-समय पर भिन्न गोत्रों का होना पाया जाता है। उदाहरण के लिए विभिन्न शिलालेखों के अनुसार मेवाड़ (उदयपुर) के गुहिलवंशियों के तीन भिन्न-भिन्न गोत्रों का पता चलता है- वैजपाय, गौतम तथा विश्वामित्र। इसी प्रकार सोलंकियों (चालुक्यों) का मूल गोत्र मानव्य था किन्तु लूडवाण, पीथापुर और रीवा आदि के सोलंकियों (बघेलों) का गोत्र भारद्वाज वैद्यजी ने बताया है।

इस प्रकार एक ही वंश के राजाओं के भिन्न-भिन्न गोत्र होने का कारण यही मानना पड़ता है कि राजपूतों के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रों के सूचक हैं और जब वे अलग-अलग जगह जा बसें तब वहाँ जिसको पुरोहित माना, उसी का गोत्र वे धारण करते रहे।

ऐसी दशा में यही कहा जा सकता है कि राजपूतों के गोत्र सर्वथा उनके वंशकर्ताओं के सूचक नहीं, किन्तु पुरोहितों के गोत्रों के सूचक होते थे और कभी-कभी पुरोहितों के बदलने पर गोत्र भी बदल जाया करते थे। यह रीति उनमें उसी समय तक बनी रही, जब तक कि पुरोहितों के द्वारा उनके वैदिक संस्कार होकर प्राचीन शैली के अनुसार वेदादि पठन-पाठन का क्रम उनमें प्रचलित रहा। पीछे तो गोत्र नाम मात्र के रह गये। केवल प्राचीन प्रणाली को लिए हुए संकल्प, श्राद्ध आदि में गोत्रोच्चार करने के अतिरिक्त उनका महत्व कुछ भी न रहा और न वह प्रथा रही कि पुरोहित का जो गोत्र हो वही राजा का भी हो।

गोत्र के विषय में मैंने मूल यादव, यदुवंशी या जादौंन की स्थिति बड़ी विचित्र देखी है। भारत के विभिन्न राज्यों एवं क्षेत्रों में जहाँ यदुवंशी-जादौंन बहुतायत में बसे हुए हैं, उनसे सम्पर्क करने पर पता चलता है कि ये लोग अपने विवाहादि कार्यक्रमों में प्रायः गोत्र के स्थान पर '**अत्रि**' गोत्र शब्द का प्रयोग करते हैं। जब कि वर्तमान काल में यदुवंशियों के लिए '**अत्रि**' गोत्र का कोई

महत्व या उपयोगिता नहीं रह गई है। मैंने इसीलिए गोत्र–समस्या के प्रत्येक तथ्य को लेकर विशद विवेचना प्रस्तुत की है कि यदुवंशी–जादौंन, गोत्र क्या हैं? उसे पूर्णत: समझ सकें। भारत का यदुवंश समाज गोत्र विषय में पूर्णत: गम्भीर नहीं है दूसरे, जातियों से सम्बन्धित इतिहास लिखने वाले आधुनिक इतिहासकार जो मनगढन्त इतिहास लिख रहे हैं, उनमें विभिन्न प्रकार से विभिन्न जातियों की गोत्र–सारिणी लिख रहे हैं, उन अप्रामाणिक विवरण को पढ़कर लोगों में भ्रम फैलता है और वे अपने गोत्र को निश्चित नहीं कर पाते। एक और बड़ी विडम्बना यह है कि कुछ क्षेत्रों के लोगों ने मुझे अपने अनेक क्षेत्रीय गोत्रों का विवरण भी बताया है लेकिन वे उनको प्रयोग में न लाकर मात्र '**अत्रि**' गोत्र का प्रयोग करते चले आ रहे हैं। यदुवंशी लोगों के द्वारा प्रदत्त तथा अनेक पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं में छपी यदुवंश गोत्रावलियों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि वे वंशावलियाँ वर्तमान युग के अपने किसी पूर्वज राजा के नाम पर हैं या ग्रामों की बसावट के आधार पर हैं, जो मेरे मत से उचित भी है। इसका प्रमुख कारण है कि जब हम भारतीय इतिहास में यदुवंश इतिहास का सूक्ष्म अनुसन्धान करते हैं तो पाते हैं कि विगत हजारों सालों से यदुवंशियों का इतिहास अनेक संघर्षों, संकटों एवं विभीषिकाओं के कारण अस्थिर रहा है जिससे यदुवंशी–क्षत्रिय अपने मान–मर्यादा तथा महान गौरव की रक्षा हेतु अपने को बलिदान करते हुए विभिन्न स्थानों पर अस्थिर बने रहे। स्वाभाविक है कि आत्म रक्षार्थ में वे अपने इतिहास, संस्कृति एवं अपने अस्तित्व को भूलते चले गये और वर्तमान में यदुवंश समाज का यही रूप स्पष्ट दिखाई देता है। आज कल प्राय: किसी भी यदुवंशी युवावर्ग से यह पूछा जाय कि तुम कौन हो? तुम्हारा वंश क्या है? तुम्हारा गोत्र–प्रवर क्या है? तुम्हारे विवाहादि किन जातियों में होते हैं? आदि, जो किसी वंश या जाति के इतिहास तथा संस्कृति से जुड़े प्रश्न हैं, जिनका ज्ञान होना प्रत्येक व्यक्ति के लिए परमावश्यक है, इन प्रश्नों का उनके पास कोई स्पष्ट उत्तर नहीं होता। यहाँ तक कि अन्य क्षत्रिय तथा अन्य जाति के व्यक्ति ये कहकर कि तुम्हें अपने वंश के बारे में कुछ पता ही नहीं है, तुम अपने एक ही '**अत्रि**' गोत्र में लड़का–लड़की की शादियाँ कर लेते हो, ऐसे व्यंग शब्दों को भी यदुवंशी–जादौंन सुनने का अभ्यासी हो गया है। यदुवंश–समाज की ऐसी ही अनेक दुर्बलताओं के कारण आज यदुवंशी अपमानित हो रहा है तथा अन्य लोग इसके शेष अस्तित्व को भी मिटाने के प्रयास में लगे रहते हैं। अत: भारत के यदुवंश–समाज को देश, काल, परिस्थिति के अनुसार जाग्रत होना चाहिए तथा अपने शेष प्राय: अस्तित्व की रक्षा करनी चाहिए। आशा है कि इस 'गोत्र–समस्या

–शंका समाधान' पर की गई विस्तृत विवेचना को पढ़कर सम्भवत: यदुवंश समाज को अपना मार्ग प्रशस्त करने में अवश्य सहायता मिलेगी।

यद्यपि यदुवंशी–जादौन समाज के प्रत्येक क्षेत्र में गोत्र मौजूद हैं, लेकिन अज्ञानतावश उनका प्रयोग नहीं करते हैं। अत: इस विषय में मेरा तो यही मानना है कि यदुवंशियों को अपने गोत्रों की जानकारी कर उनको प्रयोग में लाना चाहिए, यही समय की माँग है।

कलियुग के आदि-यदुवंश-प्रवर्तक- श्रीवज्रनाभ-

जब हम भारतीय इतिहास को उठाकर देखते हैं तो प्राय: सभी प्रसिद्ध भारतीय तथा विदेशी इतिहासकारों ने स्वरचित ग्रन्थ या पुस्तक में कृष्णकाल वर्णन में मथुरा में शूरसेनाधिपति या राजा के रूप में श्रीवज्रनाभ जी का उल्लेख किया है। क्योंकि वज्रनाभ एक पौराणिक तथा ऐतिहासिक सत्य हैं तथा ऐतिहासिक वज्रनाभ ही इस युग के आदि–यदुवंश–प्रवर्तक हैं, जिनकी सन्तति आज भारत में कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा द्वारका से मणिपुर तक विभिन्न राज्यों में विभिन्न नामों, उपनामों, उपाधियों तथा गोत्रनामों से विभिन्न संस्कृतियों में बसे हुए हैं। वर्तमानकाल में उन्हें खोजने तथा संगठित करने की महती आवश्यकता है।

श्रीवज्रनाभ जी का उल्लेख यदुवंश–विनाश से प्रारम्भ होता है जिसका विवरण महाभारत, श्रीमद्भागवत, तथा गर्गसंहिता में विस्तार से मिलता है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में श्रीकृष्ण द्वारा अपने ही वंश का नाश करने के उद्देश्य का वर्णन दिया है जो एक लोक हितकारी हेतु था। भगवान् श्रीकृष्ण ने बलराम तथा अन्य यदुवंशियों के साथ मिलकर बहुत से दैत्यों का संहार किया तथा कौरव और पाण्डवों में भी शीघ्र मारकाट मचाने वाला अत्यन्त प्रबल कलह उत्पन्न करके पृथ्वी का भार उतार दिया। कौरवों ने कपटपूर्ण जुए से, तरह–तरह के अपमानों से तथा द्रौपदी के केश खींचने आदि अत्याचारों से पाण्डवों को अत्यन्त क्रोधित कर दिया था। उन्हीं पाण्डवों को निमित्त बनाकर श्रीकृष्ण ने दोनों पक्षों में एकत्र हुए राजाओं को मरवा डाला, और इस प्रकार पृथ्वी का भार हलका कर दिया। अपने बाहुबल से सुरक्षित यदुवंशियों के द्वारा पृथ्वी के भार–राजा और उनकी सेना का विनाश करके, प्रमाणों के द्वारा ज्ञान के विषय न होने वाले श्रीकृष्ण ने विचार किया कि लोक दृष्टि से पृथ्वी का भार दूर हो जाने पर भी वस्तुत: मेरी दृष्टि से अभी तक दूर नहीं हुआ, क्योंकि जिस पर कोई विजय

प्राप्त नहीं कर सकता, वह यदुवंश अभी पृथ्वी पर विद्यमान है। यह यदुवंश मेरे आश्रित है, और हाथी, घोड़े, धनबल, जनबल आदि विशाल वैभव के कारण उच्छृंखल हो रहा है। अन्य किसी देवता आदि से भी इसकी किसी प्रकार पराजय नहीं हो सकती। बाँस के वन में परस्पर संघर्ष से उत्पन्न अग्नि के समान इस यदुवंश में भी परस्पर कलह खड़ा करके मैं शान्ति प्राप्त कर सकूँगा। भगवान् सर्वशक्तिमान और सत्य संकल्प हैं। उन्होंने इस प्रकार अपने मन में निश्चय करके ऋषियों के शाप के बहाने अपने ही वंश का संहार कर डाला और सबको समेटकर अपने धाम को चले गये।

महाभारत में यदुवंश-विनाश की भूमिका इस प्रकार वर्णित है-

गान्धारी शाप (स्त्री-पर्व)- महाभारत युद्ध के पश्चात् सती गान्धारी ने जिसको व्यासजी द्वारा दिव्यदृष्टि प्राप्त हो चुकी थी, जब युद्धक्षेत्र में अपने सभी पुत्रों तथा अन्य सभी सम्बन्धियों के मृतशवों को देखा तो वह शोक से अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। दु:ख की अधिकता से उसकी विचारशक्ति नष्ट हो गई और उसका धैर्य टूट गया। जब उसे चेत हुआ तो पुत्र शोक की प्रबलता से उसके अंग-अंग क्रोध से भर गये और श्रीकृष्ण पर दोष दृष्टि करके वह कहने लगी, "कृष्ण! पाण्डव और कौरव आपस की फूट के कारण ही नष्ट हुए हैं किन्तु तुमने समर्थ होते हुए भी इनकी उपेक्षा क्यों कर दी। तुम्हारे पास अनेकों सेवक थे और बड़ी भारी सेना थी। तुम दोनों को दबा सकते थे और अपनी वाक्पटुता से उन्हें समझा भी सकते थे। किन्तु तुमने अपनी इच्छा से ही इस कौरवों के संहार की उपेक्षा कर दी थी, सो अब तुम उसका फल भोगो। मैंने पति की सेवा करके जो तप संचय किया है, उसी के प्रभाव से मैं तुम्हें शाप देती हूँ- तुमने कौरव और पाण्डवों दोनों भाईयों के आपस में प्रहार करते समय उनकी उपेक्षा कर दी थी, इसलिए तुम भी अपने बन्धु-बान्धवों का वध करोगे। आज से छत्तीसवें वर्ष तुम भी बन्धु-बान्धव, मंत्री और पुत्रों का नाश हो जाने पर एक साधारण कारण से अनाथ की तरह मारे जाओगे। आज जैसे ये भरतवंश की स्त्रियाँ विलाप कर रही हैं उसी प्रकार तुम्हारे कुटुम्ब की स्त्रियाँ भी अपने बन्धु-बान्धवों के मारे जाने पर सिर पकड़कर रोवेंगी।"

गान्धारी के ये कठोर वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने कुछ मुस्कराते हुए कहा- 'मैं तो जानता था कि यह बात इसी प्रकार होनी है। तुमने जो कुछ होना था, उसी का शाप दिया है। इसमें सन्देह नहीं, वृष्णिवंशियों का नाश दैवी कोप से ही होगा। इसका नाश करने में भी मेरे सिवाय और कोई समर्थ नहीं है। मनुष्य तो

क्या देवता या असुर भी इनका संहार नहीं कर सकते। इसलिए ये यदुवंश आपस के कलह से ही नष्ट होंगे।'

मौसल-पर्व-

महाभारत युद्ध के बाद जब छत्तीसवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ तो राजा युधिष्ठिर को कई तरह के अपशकुन दिखाई देने लगे। इसके थोड़े ही दिनों बाद युधिष्ठिर को यह खबर मिली कि 'मूसल के कारण समस्त वृष्णिवंशियों का संहार हो गया, केवल श्रीकृष्ण ओर बलराम ही उसके आघात से बचे है।' ब्रह्मदण्ड के प्रभाव से वृष्णिवंशियों का संहार सुनकर पाण्डवों को बड़ी वेदना हुई)।

ऋषि-शाप-

एक समय की बात है- महर्षि विश्वामित्र, कण्व, दुर्वासा और नारद आदि ऋषिगण द्वारका के पास पिण्डारक क्षेत्र में गये हुए थे। उन्हें देखकर दैव के मारे हुए सारण आदि वीर बालक साम्ब को स्त्री के वेश में सजाकर उनके पास ले गये और बोले- 'महर्षियों! यह महा तेजस्वी बभ्रु (श्रीकृष्ण का अन्य पुत्र) की स्त्री है। बभ्रु पुत्र के लिए बड़े लालायित हैं। आप लोग अच्छी तरह समझकर यह बताईये कि इस स्त्री के गर्भ से क्या उत्पन्न होगा।' ऐसा कहकर छल के द्वारा जब उन्होंने तिरस्कार किया तो वे मुनि क्रोध में भरकर एक दूसरे की ओर देखते हुए बोले- 'मूर्खों! यह श्रीकृष्ण का पुत्र साम्ब, वृष्णि और अंधक वंशी पुरुषों का नाश करने के लिए लोहे का एक भयंकर मूसल उत्पन्न करेगा, जिसके द्वारा तुम जैसे दुराचारी, क्रूर और क्रोधी लोग अपने समस्त कुल का संहार कर डालेंगे, केवल बलराम और श्रीकृष्ण पर उसका वश नहीं चलेगा। बलराम जी तो स्वयं ही अपने शरीर का परित्याग करके समुद्र में प्रवेश कर जायेंगे और श्रीकृष्ण जब भूमि पर शयन करते होंगे, उस समय जरा नामक व्याध उन्हें अपने बाण से बींध डालेगा।' ऐसा कहकर वे मुनि श्रीकृष्ण से जाकर मिले। यह समाचार सुनकर श्रीकृष्ण ने समस्त वृष्णिवंशियों को भी बता दिया। वे सबका अन्त जानते थे, इसलिए यादवों से यह कहकर कि 'ऋषियों की यह बात अवश्य होगी' नगर में चले गये। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत के ईश्वर हैं, तथापि उन्होंने यदुवंशियों के उस अन्तकाल को पलटना न चाहा।

दूसरे दिन साम्ब ने मूसल उत्पन्न किया। यादवों ने इसकी सूचना राजा उग्रसेन को दे दी। यह सुनकर राजा के मन में बड़ा विषाद हुआ और उन्होंने उस

मूसल को चूर्ण कराकर समुद्र में फिंकवा दिया। द्वारका में भयंकर अपशकुन होने लगे। इस प्रकार काल की विपरीत गति देखकर और पक्ष के तेरहवें दिन अमावस्या का संयोग जानकर श्रीकृष्ण ने यदुवंशियों से कहा—'वीरो! महाभारत युद्ध के समय जैसा योग लगा था, इन दिनों भी हम लोगों का संहार करने के लिए वही योग प्राप्त हुआ है।' यों कहकर श्रीकृष्ण काल की अवस्था पर विचार करने लगे। सोचते-सोचते उनके मन में यह बात आयी—'जान पड़ता है कि बन्धु-बान्धवों के मारे जाने पर पुत्र-शोक से संतप्त गान्धारी ने आर्तभाव से यदुवंशियों के लिए जो शाप दिया था उसके पूर्ण होने का समय छत्तीसवाँ वर्ष आ गया।' यह सोचकर श्रीकृष्ण ने गान्धारी का शाप सत्य करने के उद्देश्य से यदुवंशियों को तीर्थयात्रा करने की आज्ञा दी। उनकी आज्ञा सुनकर सभी यदुवंशी समुद्र के तट पर अपनी स्त्रियों सहित प्रभास क्षेत्र में पहुँच कर अपने-अपने अनुकूल घरों में ठहर गये। तत्पश्चात् अत्यधिक मदिरा का सेवन कर गोष्ठी में बैठे हुए एक दूसरे का उपहास तथा अनादर करने लगे। उस समय काल से प्रेरित होकर अन्धक भोज, शिनि, कुकुर और वृष्णिवंश के वीर उस हंगामे में एक दूसरे को एरका नामक घास रूपी मूसल (जो वज्र के समान भयंकर लोहे का मूसल बन गई थी) द्वारा मारने लगे। उनमें से जो कोई भी क्रोध में आकर एरका नामक घास लेता, उसी के हाथ में वह वज्र के समान दिखाई पड़ती थी। यह सब ऋषियों के शाप का प्रभाव था कि तिनका भी मूसल के रूप में परिणत हो जाता था। जिस किसी तृण का प्रहार किया जाता, वह अभेद्य वस्तु का भी भेदन कर डालता था। उसको लेकर पुत्र पिता के और पिता पुत्र के प्राण ले रहे थे। मतवाले यदुवंशी आपस में ही लड़ कर धराशायी होने लगे। कुकुर और अन्धक वंश के योद्धा आग में गिरने वाले पतंगों की तरह प्राण त्याग रहे थे, फिर भी कोई भागना नहीं चाहता था। श्रीकृष्ण के देखते-देखते साम्ब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न अनिरुद्ध और गद की मृत्यु हो गयी। फिर तो उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और शंख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले उन प्रभु ने बाकी बचे हुए समस्त वीरों का संहार कर डाला। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने सारथि दारुक को आज्ञा दी कि—'तुम शीघ्र ही कुरुदेश की राजधानी हस्तिनापुर में जाकर अर्जुन को यादवों के इस महासंहार की सूचना दो। सूचना पाकर अर्जुन शीघ्र ही द्वारका चले आऐं।' श्रीकृष्ण के इस प्रकार आज्ञा देने पर दारुक रथ पर सवार हो कुरुदेश को चला गया। इधर श्रीकृष्ण बलराम जी को खोजते हुए उनके पास पहुँचे तो देखा कि अनन्त पराक्रमी बलराम जी एकान्त वन में योगयुक्त हो समाधि लगाये बैठे थे। श्रीकृष्ण के देखते-देखते उनके मुख से सफेद रंग का एक बहुत बड़ा सर्प

निकला और समुद्र की ओर चला गया। उसके हजारों मस्तक थे और मुख की प्रभा रक्त वर्ण की थी। समुद्र ने स्वयं प्रकट उन भगवान् अनन्त का स्वागत किया।

भाई बलराम के परमधाम पधारने के पश्चात् सम्पूर्ण गतियों को जानने वाले दिव्य दर्शी भगवान् श्रीकृष्ण उस सूने वन में विचरने लगे तथा एक जगह भूमि पर बैठकर कुछ सोचने लगे। छत्तीस वर्ष पूर्व गान्धारी देवी ने जो शाप दिया था उसको याद करके उन्होंने अपने अन्तर्ध्यान होने का उपयुक्त समय प्राप्त हुआ समझा। श्रीकृष्ण सम्पूर्ण अर्थों के तत्ववेत्ता और अविनाशी देवता थे, तो भी उन्होंने तीनों लोकों की रक्षा के लिए परमधाम पधारने के उद्देश्य से मन, वाणी और इन्द्रियों का संयम किया और महायोग समाधि का अवलम्बन करके वे पृथ्वी पर लेट गये। उसी समय एक जरा नामक व्याध (शिकारी) मृग मारने की इच्छा से वहाँ आया और योग में स्थित होकर सोते हुए श्रीकृष्ण के पैर में बाण मारकर घायल कर दिया। उसका चित्त मृग में आसक्त था इसलिए श्रीकृष्ण को भी भ्रमवश उसने मृग ही समझा था। जब वह वहाँ पहुँचा तो पीताम्बर धारी पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर घबरा गया और क्षमा-याचना माँगने लगा। श्रीकृष्ण ने उसे आश्वासन दिया और अपनी कान्ति से आकाश एवं पृथ्वी को व्याप्त करते हुए वे ऊर्ध्वलोक (अपने परमधाम) को चले गये।

इधर दारुक ने हस्तिनापुर पहुँच कर महारथी पाण्डवों से यह समाचार कह सुनाया कि समस्त यदुवंशी आपस में मूसलों की मार से नष्ट हो गये। सभी यदुवंशी वीरों का नाश सुनकर पाण्डवों को बड़ा शोक हुआ। श्रीकृष्ण के प्रिय सखा अर्जुन को तो सहसा इस बात पर विश्वास ही नहीं हुआ। वे तुरन्त अपने मामा वसुदेव जी से मिलने चल दिये। दारुक के साथ वृष्णियों के निवास स्थान पर पहुँच कर अर्जुन ने देखा कि द्वारका नगरी विधवा स्त्री की भाँति श्रीहीन हो रही है। द्वारका नगरी और श्रीकृष्ण की पत्नियों की यह दुर्दशा देखकर अर्जुन फूट-फूटकर रोने लगे। सँभलने पर वह मामा वसुदेव जी से मिले। वसुदेव जी विलाप करते हुए बोले कि—'जिन जगदीश्वर ने केशी, कंस, चेदिराज शिशुपाल, निषादराज, एकलव्य, कलिंग, मगध, गान्धार, काशिराज तथा मरुभूमि के राजाओं को भी यमलोक पहुँचाया, जिन्होंने पूर्व, दक्षिण तथा पर्वतीय प्रान्त के नरेशों का संहार किया, उन्हीं मधुसूदन ने बालकों की अनीति के कारण हुए इस संकट की उपेक्षा कर दी। तुम, देवर्षि नारद तथा अन्य महर्षि भी श्रीकृष्ण को पाप के सम्पर्क से रहित सनातन परमेश्वर जानते हैं, वे ही परमात्मा अपने कुटम्ब के वध को चुपचाप देखते रहे और सदा इसकी ओर से उदासीन बने रहे। जान पड़ता है,

मेरे पुत्र रूप में अवतीर्ण हुए जगदीश्वर ने गान्धारी तथा ऋषियों के वचन को अन्यथा करना नहीं चाहा।' अपने कुटुम्ब का विनाश देखकर श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा था कि—'यदुवंशियों का निधन सुनकर अर्जुन शीघ्र यहाँ आयेगा। जो मैं हूँ, वे ही अर्जुन हैं, जो अर्जुन है, वही मैं हूँ। अर्जुन यहाँ से शेष स्त्रियों, बालकों तथा वृद्धों को ले जायेगा। अर्जुन के यहाँ से जाते ही चार दीवारी तथा अट्टालिकाओं सहित इस द्वारका नगरी को समुद्र डुबा देगा।'

दूसरे दिन सबेरा होने पर महा तेजस्वी वसुदेव जी ने अपने चित्त को समाहित करके योग के द्वारा उत्तम गति प्राप्त की। वसुदेव जी को अपने जीवन में जो स्थान प्रिय था, वहीं पर उनका दाह-संस्कार किया गया। उनके साथ उनकी चार पत्नियाँ—देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिरा भी चिता पर जा बैठीं और उन्हीं के साथ भस्म होकर पतिलोक को प्राप्त हुईं। तत्पश्चात् वज्रनाभ आदि वृष्णि, भोज और अंधक वंश के कुमारों और स्त्रियों ने महात्मा वसुदेव को जलांजलि दी। इसके बाद अर्जुन उस स्थान पर गये, जहाँ यदुवंश का संहार हुआ था। वहाँ पर उसने मारे गये समस्त यादव-वीरों के अत्येष्टि-कर्म किये। उन सबका विधिवत् प्रेतकर्म करके अर्जुन सातवें दिन रथ पर सवार हो तुरन्त द्वारका से चल दिये। उनके साथ घोड़े, बैल, खच्चर और ऊँटों से जुते हुए रथों पर बैठकर शोक से दुर्बल वृष्णिवंशी वीरों की स्त्रियाँ भी रोती हुईं चलीं। अर्जुन की आज्ञा से अंधकों और वृष्णियों के नौकर और घुड़सवार रथी तथा नगर और प्रान्त के लोग बूढ़े और बालकों सहित वीर-विहीना स्त्रियों को चारों ओर से घेरकर चलने लगे। अन्धक और वृष्णिवंश के बालक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा श्रीकृष्ण की सोलह हजार स्त्रियाँ श्रीकृष्ण के पौत्र वज्रनाभ को आगे करके चल रही थीं। भोज, वृष्णि और अन्धक वंश की लाखों विधवा स्त्रियाँ उस समय अर्जुन के साथ जा रही थीं। उन सबके निकल जाने पर मगर और नाकों के निवासभूत समुद्र ने रत्नों से भरी हुई द्वारका को अपने जल में डूबो दिया।

अर्जुन रमणीय वनों, पर्वतों और नदियों के तट पर निवास करते हुए यदुवंश की स्त्रियों को ले जा रहे थे। चलते-चलते वे अत्यन्त समृद्धशाली पंचनद देश में जा पहुँचे और वह प्रान्त गौ, पशु तथा धन-धान्य से सम्पन्न था, अर्जुन ने वहीं पड़ाव डाला। अकेले अर्जुन के संरक्षण में इतने बड़े समुदाय को जाते देख वहाँ रहने वाले लुटेरों के मन में लोभ पैदा हुआ। वे आभीर जाति के मनुष्य थे। हजारों की संख्या में लूट का माल लेने वाले वे लट्ठधारी लुटेरे एकत्रित होकर वृष्णिवंशियों के समुदाय पर टूट पड़े और काल के उलट-फेर में उन्हें मार डालने पर उतारू हो

गये। तब अर्जुन ने अपने दिव्य-धनुष-गाण्डीव को चढ़ाना आरम्भ किया और यत्नपूर्वक बडी कठिनाई से उसको चढ़ा भी दिया, किन्तु जब वे अपने अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग करने लगे तो उनकी बिलकुल याद नहीं आयी। यह देखकर वे बड़े लज्जित हुए। हाथी सवार और रथी योद्धा भी उन डाकुओं के हाथ में पड़े हुए अपने मनुष्यों को लौटा न सके। उस समुदाय में स्त्रियों की संख्या बहुत थी, इसलिए डाकू कई ओर से उन पर धावा करने लगे और अर्जुन उनकी रक्षा का यथासाध्य प्रयत्न करते रहे। सब योद्धाओं के देखते-देखते वे लुटेरे कितनी ही सुन्दर स्त्रियों को घसीट-घसीट कर चारों ओर ले जाने लगे। उनकी यह दुर्दशा देख बहुत सी स्त्रियाँ डाकुओं के भय से उनकी इच्छा के अनुसार चुपचाप उनके साथ चली गयीं। अर्जुन ने विकल होकर गाण्डीव से छोड़े हुए बाणों द्वारा उन्हें मारना शुरु किया, लेकिन एक ही क्षण में उसके सारे बाण तरकस में समाप्त हो गये। उस समय पार्थ के देखते-देखते ही वे म्लेच्छ डाकू, वृष्णि और अन्धक वंश की सुन्दर स्त्रियों को लूटकर चारों ओर भाग गये। अस्त्रों का ज्ञान लुप्त हो गया, भुजाओं में अब पहले जैसी शक्ति नहीं रही, धनुष पर काबू नहीं चलता था और अक्षय बाणों का भी क्षय हो गया। इन सब बातों को ईश्वरीय-लीला समझ कर वे बहुत उदास हो गये और डाकुओं का पीछा न करके लौट आये। फिर अपहरण से बची हुई स्त्रियों और लूट-खसोट से बचे हुए रत्न आदि धन को लेकर कुरुक्षेत्र में पहुँचे। इस प्रकार वृष्णिवंशियों के शेष परिवार को लाकर अर्जुन ने उनको जहाँ-तहाँ बसा दिया। उन्होंने कृतवर्मा के पुत्र को मार्तिकावत नगर का राज्य दे दिया और भोजराज के परिवार की बची हुई स्त्रियों को उसके साथ छोड़ दिया। तत्पश्चात् बूढ़ों, बालकों तथा अन्य स्त्रियों को साथ लेकर वे इन्द्रप्रस्थ आये और उन सबको वहाँ का निवासी बना दिया। वज्रनाभ को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया और सात्यकि के प्रिय पुत्र को सरस्वती के तटवर्ती (सारस्वत) देश का अधिकारी बनाया। वज्रनाभ के बहुत रोकने पर भी अक्रूर की स्त्रियाँ वन में तपस्या करने के लिए चलीं गयीं। रुक्मिणी, गान्धारी, शैव्या, हेमवती तथा जाम्बवती देवी-ये अग्नि में प्रवेश कर गयीं। श्रीकृष्ण की प्रिया सत्यभामा तथा अन्य देवियाँ तपस्या का निश्चय करके वन में चली गयीं। जो-जो द्वारकावासी मनुष्य पार्थ के साथ आये थे, उन सबका यथायोग्य विभाग करके अर्जुन ने उन्हें वज्रनाभ को सौंप दिया।

टिप्पणी—विष्णुपुराण, पंचमअंश, अध्याय-38 में इन लुटेरों के लिए अहीर, म्लेच्छ, अहीर (नीचवर्ग), आभीर शब्दों का अलग-अलग श्लोक-24, 28, 31, 52 में प्रयोग हुआ है। ब्रह्मपुराण में भी यथावत् व्याख्या मिलती है।

विवेचना-

यदुवंश-विनाश के इस कथानक को लिखने का उद्देश्य है कि—

1. कलियुग के यदुवंश-प्रवर्तक श्रीवज्रनाभ जी के बारे में जहाँ यदुवंश-समाज वज्रनाभ जी के नाम से भी परिचित तक नहीं है, उनकी उत्पत्ति-कथा को लोगों के संज्ञान में लाना।

2. यदुवंश-विनाशकी इस कथा से लोगों में अनेक भ्रम हैं, उन्हें दूर करना।

3. यदुवंश-विनाश के इस विस्तृत-वर्णन से समस्त यदुवंशी सबक लें कि पारस्परिक ईर्ष्या, अहंकार तथा मद्यपान से परिवार एवं वंशों का सर्वनाश होता है। वर्तमान में भी इस विकृत मानसिकता के कारण अनेक क्षेत्रों में परिवार तथा कुलों को नष्ट होते देखा जाता है।

4. यदुवंशियों से मैं प्रायः सुनता रहा हूँ कि यदुवंशियों को माता-गान्धारी तथा द्वारका में ऋषियों द्वारा अपना नाश करने का शाप लगा हुआ है। कभी नहीं सुधरेगा, इसका तो नाश होना ही है। इसका तात्पर्य है कि यदुवंशी अपनी स्वभावगत जातीय अवगुणों को समझते हुए भी उन्हें मिटाने की कोशिश न कर पर्दा डालने की कोशिश करता है। दूसरे, उन्हें दिये गये दोनों शापों की भाषा का ज्ञान नहीं है। जब कि शापों में स्पष्ट रूप से भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छानुसार यदुवंश-विनाश की भूमिका है जो श्रीकृष्ण द्वारा ही समयानुकूल पूर्ति हुई है। समझ में नहीं आता है कि अब कौन सा शाप इसके विनाश का लगा हुआ चल रहा है, जिसका अन्त कब होगा? पता नहीं। मुझे तो ऐसा अनुभव होता है कि अज्ञानतावश यदुवंशी अस्तित्वहीन शापों की असत्य मानसिकता के बहाने पुनः अपने विनाश की भूमिका तैयार कर रहा हो।

5. आजकल अन्य लोगों को छोड़ दें तो भी स्वयं यदुवंशी ही अपने इतिहास-संस्कृति से अनभिज्ञ हैं और अपनी भौतिकीय-बुद्धि द्वारा उस परमात्मा श्रीकृष्ण की मानवीय दृष्टि से तुलनाकर उसकी लोकहितकारी अलौकिक लीलाओं में शंका पैदा कर आक्षेप लगाते हैं। जब कि श्रीकृष्ण पूर्णावतार ब्रह्म है, सृष्टि के सर्वेसर्वा हैं। बिना श्रीकृष्ण के जीव का कोई अस्तित्व नहीं है। अर्जुन के उदाहरण से यह बात भलीभाँति समझी जा सकती है।

मथुरा में शासन-सत्ता-

श्रीकृष्ण के महाप्रयाण के बाद कलियुग आरम्भ हो चुका था। द्वारका से अर्जुन द्वारा लाये गये शेष बालकों में एक श्रीकृष्ण का प्रपौत्र (श्रीकृष्ण-प्रद्युम्न -अनिरुद्ध-वज्रनाभ) वज्रनाभ भी था। उस समय उसकी किशोरावस्था 16 वर्ष (गर्गसंहिता) थी। पाण्डवों के हिमालय महाप्रस्थान से पूर्व राजा युधिष्ठिर ने अपने पुत्र युयुत्सु के संरक्षण में अर्जुन-पौत्र परीक्षित् (अर्जुन-अभिमन्यु-परीक्षित्) को हस्तिनापुर का तथा वज्रनाभ को इन्द्रप्रस्थ का राजा घोषित किया। परीक्षित् अवस्था में वज्रनाभ से बड़े थे (यदुवंश विनाश से 36 वर्ष पूर्व महाभारत हुआ था उस समय परीक्षित् अभिमन्यु पत्नी उत्तरा के गर्भ में था)। इस प्रकार परीक्षित् की उम्र 36 वर्ष थी। कुछ समय बाद वज्रनाभ की इच्छा हुई कि क्यों न अपने पूर्वजों की मूल राजधानी मथुरा चला जाय। वज्रनाभ की इच्छानुसार परीक्षित् ने शूरसेनाधिपति के रूप में वज्रनाभ के नेतृत्व में मथुरा में यदुवंशी राज्य की पुनः स्थापना की। उस समय मथुरा नगरी तथा पूरा ब्रजमण्डल जरासंध एवं कालयवन के बार-बार आक्रमणों से नष्ट हो चुका था। यदुवंशियों के द्वारका पलायन करने के कारण ब्रजमण्डल सूना हो गया था। वज्रनाभ ने इधर-उधर बिखरे हुए यदुवंशियों को संगठित कर उनसे मथुरा को आबाद किया, फिर भी वहाँ पर उद्योग, व्यापार, विद्या और कला का विकास नहीं हो पा रहा था।

A FRATRICIDAL STRUGGLE DESTROYED THE YADAVAS AND THEIR STRONG HOLD ON THE WEST COST, KRISHNA HIMSELF DYING SOON AFTER. VAJRA (A GREAT-GRANDSON THE NEARESTMALE HEIR OF KRISHNA) WAS INSTALLED ON THE THRONE OF MATHURA BY ARJUNA AS THE CHIEF OF THE YADAVAS AND SEVERAL OTHER YADAVA PRINCES WERE SET UP INDIFFERENT PRINCIPALITIES AND WERE MADE TO ACKNOWLEDGE VAJRA AS THEIR OVERHOLD.- मजूमदार एण्ड पुसलकर, वोल्यूम- 1- दि वैदिक एज, पार्जीटर -दि कलि एज।

श्रीमद्भागवत माहात्म्य, अध्याय- 1 में इसका वर्णन विस्तार से दिया है। वज्रनाभ के मथुरा में राज्यारोहण के कुछ दिन बाद सम्राट् परीक्षित्, वज्रनाभ से मिलने मथुरा गये। वज्रनाभ ने उनका बड़ा स्वागत किया। तब राजा परीक्षित् ने कहा- हे तात! तुम्हारे पिता और पितामहों ने मेरे पिता-पितामह को बड़े-बड़े संकटों से बचाया है। मेरी रक्षा भी गर्भ में (अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से) उन्होंने

ही की है। यदि मैं उनके उपकारों का बदला चुकाना चाहूँ तो किसी प्रकार नहीं चुका सकता। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम सुखपूर्वक अपने राज-काज में लगे रहो। तुम्हें अपने खजाने की, सेना की तथा शत्रुओं की कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यदि कभी तुम्हारे ऊपर आपत्ति-विपत्ति आये अथवा किसी कारणवश तुम्हारे हृदय में अधिक क्लेश का अनुभव हो तो मुझसे बताकर निश्चिन्त हो जाना, मैं तुम्हारी सारी चिन्ताएँ दूर कर दूँगा। तब वज्रनाभ ने कहा- महाराज! आपका कथन सत्य है। यद्यपि मैं मथुरा मण्डल के राज्य पर अभिषिक्त हूँ, फिर भी मैं यहाँ निर्जन वन में ही रहता हूँ। इस बात का मुझे कुछ भी पता नहीं है कि यहाँ की प्रजा कहाँ चली गयी, क्योंकि राज्य का सुख तो तभी है जब प्रजा रहे। जब वज्रनाभ ने परीक्षित् से यह बात कही तब उन्होंने इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) से हजारों बड़े-बड़े सेठों को बुलवाकर मथुरा में रहने की जगह दी। इसके अलावा मथुरा मण्डल के ब्राह्मणों, क्षत्रियों, व्यापारी तथा कारीगरों को बुलवाया और मथुरा में बसाया। इस प्रकार मथुरा पुनः एक समृद्धशाली नगरी का रूप धारण करने लगी, यद्यपि उसे पहले जैसा (उग्रसेन राज्य की तुलना) गौरव प्राप्त नहीं हो सका था।

श्रीकृष्ण-लीला-स्थलों की खोज तथा स्थापना-

मथुरा में राजकीय व्यवस्था कायम करने के बाद वज्रनाभ की इच्छा हुई कि अपने गौरवशाली प्रपितामह (परबाबा) भगवान् श्रीकृष्ण के लीला स्थलों को खोजकर स्मृति-चिह्न बनवाये जायें ताकि वे यादवों (मूल यदुवंशियों) के विगत गौरव की पुनः स्थापना के लिए प्रेरणा प्रदान कर सकें। शूरसेन प्रदेश और मथुरा को विगत वर्षों में जिन विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था उसके कारण श्रीकृष्ण के वे प्राचीन लीला-स्थल नष्ट हो गये थे। उन्हें बताने वाला वहाँ कोई उपयुक्त व्यक्ति भी नहीं रहा था। तब राजा परीक्षित् ने वज्रनाभ से परामर्श कर नन्द आदि गोपों के कुल पुरोहित वयोवृद्ध महर्षि शाण्डिल्य को बुलाया। राजा परीक्षित् ने वज्रनाभ की बात उन्हें कह सुनायी। तब शाण्डिल्य जी ने वज्रनाभ से कहा कि हे राजन्! '**ब्रज**' शब्द का अर्थ है व्याप्ति। इस पुरातन वचन के अनुसार व्यापक होने के कारण ही इस भूमि का नाम '**ब्रज**' पड़ा है। सत्व, रज, तम इन तीन गुणों से अतीत जो परमब्रह्म है, वही व्यापक है, इसलिए उसे '**ब्रज**' कहते हैं। इस परमब्रह्म स्वरूप ब्रजधाम में नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण का निवास है। प्रेम-रस में डूबे हुए रसिकजन ही उनका अनुभव करते हैं। तुम दोनों भगवान् की जिस लीला को देख रहे हो, यह व्यावहारिकी-लीला

है। यह पृथ्वी और स्वर्गलोक आदि लोक इसी लीला के अन्तर्गत हैं। इसी पृथ्वी पर यह मथुरा-मण्डल है। यहीं वह ब्रजभूमि है, जिसमें भगवान् की वह वास्तवी-रहस्य- लीला गुप्तरूप से होती रहती है।

इसलिए वज्रनाभ! तुम मेरी आज्ञा से यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने जहाँ जैसी लीला की है उसके अनुसार उस स्थान का नाम रखकर तुम अनेकों गाँव बसाओ और इस दिव्य ब्रजभूमि का भलीभाँति सेवन करते रहो। गोवर्धन दीर्घपुर (डीग), मथुरा, महावन (गोकुल), नन्दिग्राम (नन्दगाँव) और वृहत्सानु (बरसाना) आदि में तुम्हें अपने लिए छावनी बनवानी चाहिए। उन-उन स्थानों में रहकर भगवान् की लीला के स्थल नदी, पर्वत, घाटी, सरोवर, कुआँ और कुण्ड, कदम्बखण्डी तथा कुंजवन आदि का सेवन करते रहना चाहिए। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि मेरी कृपा से भगवान् की लीला के जितने भी स्थल हैं, सबकी तुम्हें ठीक-ठीक पहचान हो जायेगी। इस प्रकार राजा परीक्षित् की सहायता और महर्षि शाण्डिल्य की कृपा से वज्रनाभ ने क्रमशः उन सभी स्थानों की खोज की, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रेमी गोप-गोपियों के साथ नाना प्रकार की लीलाएँ करते थे। लीलाओं का ठीक-ठीक निश्चय हो जाने पर उन्होंने वहाँ की लीलाओं के अनुसार उस-उस स्थान का नामकरण किया, भगवान् के लीला-विग्रहों की स्थापना की तथा उन-उन स्थानों पर अनेकों गाँव बसाये। स्थान-स्थान पर भगवान् के नाम से कुण्ड और कुएँ खुदवाये, कुंज और बगीचे लगवाये, शिव आदि देवताओं की स्थापना की। गोविन्ददेव, हरिदेव आदि नामों से भगवद् विग्रह स्थापित किये। इन सब शुभ कर्मों के द्वारा वज्रनाभ ने अपने राज्य में सर्वत्र एकमात्र श्रीकृष्ण भक्ति का प्रचार किया और बड़े ही आनन्दित हुए। उनके प्रजाजनों को भी बड़ा आनन्द था और वे सदा ही वज्रनाभ के राज्य की प्रशंसा किया करते थे। गर्गसंहिता-अश्वमेध खण्ड, अ. 12 में श्रीवज्रनाभ द्वारा श्रीकृष्ण के विभिन्न विग्रहों की स्थापना का वर्णन मिलता है, 'वज्रनाभ के कुल गुरु गर्गाचार्य मथुरा आये तथा गर्गसंहिता नौ दिनों तक सुनाई। उस समय वज्रनाभ की अवस्था सोलह वर्ष थी। गर्ग जी के कहने पर वज्रनाभ ने मथुरा में उसी प्रकार अश्वमेध यज्ञ किया जैसे युधिष्ठिर ने किया था। इसके बाद मथुरा में '**दीर्घविष्णु**' और 'केशवदेव', वृन्दावन में '**गोविन्ददेव**', गिरिराज गोवर्धन पर '**हरिदेव**', गोकुल में 'गोकुलेश्वर' और एक योजन दूर '**बलदाऊजी**' के अर्चा-विग्रहों की उन्होंने स्थापना की। ये श्रीहरि की छः प्रतिमाएँ राजा वज्रनाभ द्वारा स्थापित की गई हैं। वज्रनाभ ने हर्ष से भरकर लोगों के कल्याण के लिए ब्रजमण्डल में बलदाऊजी की पाँच अन्य प्रतिमाएँ भी स्थापित कीं।

टिप्पणी– 1. श्रीमद्भागवत तथा गर्गसंहिता के आधार पर वर्णन का ऐतिहासिक विश्लेषण करने से पता चलता है कि '**भागवतधर्म**' की स्थापना सर्वप्रथम श्रीवज्रनाभ जी ने ही की थी। श्रीकृष्ण–भक्ति के सर्वप्रथम प्रचारक श्रीवज्रनाभ ही थे।

2. प्रकृति–सन्तुलन को बनाये रखने के लिए पृथ्वी पर जल और वृक्षों का होना आवश्यक है। वज्रनाभ जी ने पृथ्वी के इन दोनों मूल तत्त्वों पर भी विशेष ध्यान दिया, जिनसे मानव–कल्याण की भावना उजागर होती है। ब्रजभूमि में भूगर्भ–जलसंचय बना रहे जो प्राणिमात्र के पीने तथा भूमि–सिंचन के लिए आवश्यक है, इसके लिये उन्होंने जगह–जगह कुण्ड, सरोवरों का निर्माण कराया। दूसरे, वनों के संरक्षण के लिए वन, उपवन, कुंज, बगीचे तथा कदम्ब वन लगवाये थे। यद्यपि ये सब श्रीकृष्ण–लीलाओं से सम्बन्धित थे, फिर भी यह उनका एक लोकोपकारी भावनात्मक कदम भी था। वज्रनाभ जी द्वारा किये गये इन सब लोकोपकारी महान कार्यों से भक्ति–भावना के साथ–साथ आज के मानव–मात्र को एक लोक कल्याणकारी सन्देश भी मिलता है।

ऐतिहासिक-शोध-

'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास' तथा 'ब्रज के धर्म–सम्प्रदायों का इतिहास' शोध ग्रन्थों में डा० प्रभुदयाल मीतल जी ने श्रीवज्रनाभ द्वारा किये गये श्रीकृष्ण–भक्ति के प्रचार का तथा उनके धार्मिक कार्यों का वर्णन इस प्रकार किया है– 'श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ ने मथुरा में श्रीकृष्ण जन्म स्थान पर श्रीकेशवदेव जी की मूर्ति स्थापित की थी। गोवर्धन में श्रीवज्रनाभ के पधराये श्रीहरिदेव जी थे, परन्तु औरंगजेब काल में वह यहाँ से चले गये, बाद में उनके स्थान पर दूसरी मूर्ति स्थापित की गयी। गोवर्धन में ही वज्रनाभ के पधराये हुए चक्रेश्वर महादेव का मन्दिर है। गोकुल में गोकुलेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया। वृन्दावन में मदनमोहन मन्दिर भी इन्हीं के द्वारा स्थापित है।

अन्य ग्रन्थों के अनुसार वृन्दावन में रंगजी मन्दिर के सामने श्रीगोविन्ददेव जी (भूतों वाला मन्दिर) का प्राचीन मन्दिर वज्रनाभ जी द्वारा स्थापित था, जिनकी मूर्ति सोलहवीं सदी में चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रूप–गोस्वामी को मिली थी। मुगल उपद्रव के समय (औरंगजेबी काल) यह मूर्ति जयपुर नरेश जयसिंह द्वारा जयपुर ले जाई गयी और वर्तमान में वहाँ के राजमहल में विराजमान है। इसके बाद वृन्दावन में गोविन्ददेव जी का दूसरा विग्रह स्थापित किया गया

है। बलदेव में श्रीबलदेव जी का मन्दिर है जिसमें बलदेव जी तथा रेवती जी की मूर्तियाँ वज्रनाभ द्वारा स्थापित हैं। मथुरा में ही होली दरवाजा के पास श्रीकंस निकंदन मन्दिर तथा महौली की पौर में श्रीपद्मनाभ मन्दिर एवं दीर्घविष्णु मन्दिर का निर्माण वज्रनाभ जी ने कराया था। श्रीकामेश्वर महादेव मन्दिर, एवं श्रीकाशीनाथ मन्दिर कामाँ (राजस्थान) तथा श्रीरणछोड़राय मन्दिर द्वारका वज्रनाभ जी द्वारा स्थापित हैं।

अन्य स्रोतों से प्राप्त-

गोकुल में कर्णवेध कूप, श्रीगिरिराज परिक्रमा के आन्यौर गाँव में राधा-गोविन्द जी का प्राचीन मन्दिर, महावन में कोले घाट, आदि बद्री-कामाँ में-बूढ़ा बद्री मन्दिर, गणेश्वर महादेव मन्दिर गणेशरा- (मथुरा), श्रीदावानल बिहारी मन्दिर- दावानल कुण्ड, वृन्दावन, श्रीवंसीवट-वृन्दावन, गोपेश्वर महादेव मन्दिर-वृन्दावन, श्रीभूतेश्वर महादेव मन्दिर-मथुरा, बन्दी-आनन्दी देवी मन्दिर-बन्दी ग्राम, बड़े दाऊजी-नरी ग्राम, प्राचीन खाम्बी ग्राम (हरियाना) तथा दतिहा ग्राम-सतोहा के पास (मथुरा) आदि को श्रीवज्रनाभ जी ने स्थापित किया।

वज्रनाभ जी ने ब्रज में कुण्डों का भी निर्माण कराया। राधाकुण्ड कस्बे में स्थित राधाकुण्ड तथा उसके अन्तर्गत कंकणकुण्ड एवं श्यामकुण्ड एवं उसके अन्तर्गत वज्रनाभकुण्ड और गोवर्धन-राधाकुण्ड परिक्रमा मार्ग के मध्य कुसुम सरोवर के पश्चिम में उद्धवकुण्ड का निर्माण कराया था। कुसुम सरोवर का निर्माण भी वज्रनाभ ने कराया था। आज भी उद्धवकुण्ड के शिलापट्ट पर लिखे विवरण को परिक्रमार्थी पढ़कर जान सकते हैं कि यह वज्रनाभ जी द्वारा निर्मित है। इनके अतिरिक्त आन्यौर गाँव में गोविन्दकुण्ड, वृन्दावन में दावानलकुण्ड, गणेशरा (मथुरा) में गन्धर्वकुण्ड, जतीपुरा में सुरभिकुण्ड तथा पूंछरी में अप्सरा-कुण्ड श्रीवज्रनाभ जी द्वारा निर्मित हैं।- (चैतन्यकिरण मासिक, जन.फ. 1993)

टिप्पणी- 1. श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर श्रीकृष्ण मन्दिरों के निर्माण के बारे में प्रसिद्ध पुरातत्वविद् डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने शोध लेख 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान' में लिखा है- **प्रथम मन्दिर**- श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ द्वारा मथुरा शासनकाल में बनवाया था, जो लम्बे अन्तराल के बाद नष्ट हो गया।

द्वितीय मन्दिर- कृष्ण जन्मस्थान के पुराने शिलालेख में ब्राह्मीलिपि में लिखा है कि ईसा पूर्व 80-57 के महाक्षत्रप सोडास के राज्यकाल में वसु नामक एक व्यक्ति ने श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर एक मन्दिर, तोरणद्वार एवं वेदिका का

निर्माण कराया था, जो बाद में विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिया गया था।

तृतीय मन्दिर- 400 ई. के लगभग सम्राट् विक्रमादित्य के शासनकाल में बना। इस भव्य मन्दिर को महमूद गजनवी ने सन् 1018 में लूटा व तोड़ा।- (एफ. एस. ग्राउस)- 'मथुरा-ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर')

चतुर्थ मन्दिर- सम्वत् 1207 (सन् 1150 ई.) जब महाराज विजयपालदेव (यादव नहीं) मथुरा के शासक थे, जज्ज नाम के एक धनी व्यक्ति ने श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर एक नया मन्दिर बनवाया, जिसे सिकन्दर लोदी के शासनकाल अर्थात् सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में नष्ट कर दिया गया।

पंचम मन्दिर- इसके लगभग 125 वर्ष पश्चात् जहाँगीर के शासनकाल में ओरछा के राजा जू देव बुन्देला ने इसी स्थान पर भव्य मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर को हिन्दूधर्म के प्रति ईष्यालु औरंगजेब ने सन् 1669 में नष्ट कर दिया और मन्दिर के मशाले से ही एक मस्जिद-ईदगाह बनवादी। (एफ. एस. ग्राउस ने भी उल्लेख किया है)।

षष्ठ मन्दिर- वर्तमान श्रीकेशवदेव मन्दिर के निर्माण के बारे में श्रीकृष्ण जन्मस्थान, मथुरा से जो जानकारी मुझे प्राप्त हुई, उसके अनुसार इस मन्दिर का निर्माण भगवद्भक्त एवं 'कल्याण' गीताप्रेस, गोरखपुर के प्रथम सम्पादक श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार व प्रमुख समाज सेवी पण्डित मदनमोहन मालवीय तथा प्रमुख उद्योगपति **श्रीजगमोहन बिडला** के सहयोग से श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर केशवदेव मन्दिर का उद्घाटन श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार द्वारा भाद्रपद कृष्णा 8 सम्वत् 2015 तारीख 6 सितम्बर सन् 1958 को हुआ। यहाँ एक तथ्य महत्वपूर्ण है कि श्रीकृष्ण जन्मस्थान का गर्भ गृह जो औरंगजेब की क्रूर-दृष्टि से बच गया था, वह आज भी अपने मूल स्थान पर स्थित है तथा दर्शनार्थी उसके दर्शन करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वज्रनाभ-काल से लेकर आज तक (लगभग 5100 वर्ष के अन्तराल में) श्रीकृष्ण जन्मस्थान ने इतिहास के अनेक पन्नों को पलटा है तथा हिन्दू-संस्कृति को अक्षुण्य बनाये रखा है।

टिप्पणी- 1. पोतराकुण्ड-मथुरा- श्रीकृष्ण जन्मस्थान के निकट प्रसिद्ध पोतराकुण्ड (जो श्रीकृष्ण जन्म से सम्बन्धित है) का निर्माण औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् सन् 1718 से 1803 ई. में **महादेवी सिंधिया** ने कराया था।

2. श्रीरणछोड़राय मन्दिर- श्रीकृष्ण के लीला-संवरण के पश्चात् द्वारका समुद्र में डूब गयी। केवल श्रीकृष्ण का निज-भवन नहीं डूबा। वज्रनाभ ने वहीं रणछोड़राय के मन्दिर की प्रतिष्ठा की। यह मन्दिर द्वारका का मुख्य मन्दिर है। वर्तमान मन्दिर का यद्यपि कई बार जीर्णोद्धार हुआ है किन्तु उसकी प्रथम प्रतिष्ठा वज्रनाभ द्वारा हुई मानी जाती है।

3. विद्वानों के अनुसार ब्रजयात्रा का प्रारम्भ सर्वप्रथम वज्रनाभ जी ने ही किया था। कालान्तर में राजनैतिक तथा सामाजिक उथल-पुथल के कारण ब्रज-संस्कृति के नष्ट प्रायः हो जाने पर सोलहवीं सदी में स्वामी नारायणभट्ट द्वारा समस्त ब्रज की खोजकर पुनः ब्रज परिक्रमा को आरम्भ किया। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'ब्रजभक्तिविलास' से इसकी पुष्टि होती है।

काल क्रम से वे ब्रज के समस्त तीर्थ लुप्त हो गये तथा यहाँ के निवासी उन-उन लीलाओं को भूल गये। सिकन्दर लोदी के शासनकाल 1514 ई. में नीलांचल से श्रीमहाप्रभु चैतन्यदेव ब्रज में आये। इन्होंने समस्त ब्रजमण्डल की परिक्रमा की। तत्पश्चात् महाप्रभु ने प्रथम अपने दो शिष्य श्रीरूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को ब्रज में जाकर लुप्त तीर्थों के उद्धार तथा धर्म एवं कृष्ण भक्तिरस ग्रन्थों के निर्माण का आदेश दिया। इन्होंने ब्रजमण्डल में घूमकर अनेक तीर्थों का उद्धार तथा ग्रन्थ रचना की। इनके आने के बाद महाप्रभु की आज्ञा से दक्षिण से गोपालभट्ट तथा बंगाल से रघुनाथभट्ट तथा रघुनाथदास यहाँ आये तथा ब्रज परिक्रमा की।

- (चैतन्यकिरण मासिक, जन० 8 - फर० 1993)

कालगणना-

वज्रनाभ जी के निश्चित जन्मकाल का पता लगाने के लिए पौराणिक विवरणों के साथ-साथ ऐतिहासिक तथा ज्योतिषीय शोधों का सहारा लेना आवश्यक है। श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य, डा० प्रभुदयाल मीतल, श्रीलज्जाराम मेहता आदि प्रसिद्ध इतिहासकारों ने श्रीकृष्ण से सम्बन्धित जन्मकालों की विवेचना की है। पौराणिक विवरणों के अनुसार श्रीकृष्ण द्वापरयुग के अन्त और कलियुग के आरम्भ के सन्धिकाल में विद्यमान थे। श्रीकृष्ण के महाप्रयाण के बाद सम्राट युधिष्ठिर के समय में ही कलियुग का प्रवेश हो चुका था। युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण के बाद तो राजा परीक्षित् और कलियुग की भेंट का वर्णन श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध, अध्याय 16-17 में कथा-रूप में विस्तार से

हुआ है। परीक्षित् पाण्डवों का उत्तराधिकारी अर्जुन का पौत्र (नाती) था, जिसका जन्म भारतीय ज्योतिष के अनुसार विक्रम पूर्व सं. 3044 अर्थात् ईसा पूर्व 3100 चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को हुआ था। उसने विक्रम पूर्व सं. 3008 में शासन-भार सँभाला था, उस समय उसकी आयु 36 वर्ष के लगभग थी तथा उस समय वज्रनाभ की किशोर अवस्था (16 वर्ष) थी। इस प्रकार परीक्षित् के जीवन परिचय के आधार पर वज्रनाभ का जन्मकाल निश्चित हो जाता है। संयोगवश इनका जन्म भी चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को हुआ था। पौराणिक गणना के अनुसार दोनों की उम्र में 20 वर्ष का अन्तर था तथा दोनों समकालीन थे। आज विक्रम सम्वत् 2075, सन् 2018, शक सम्वत् 1940 तक ज्योतिषीय गणना के अनुसार कलियुग आरम्भ का समय 5119 वर्ष है तथा महाभारत काल 36 वर्ष पूर्व 5155 वर्ष होता है एवं कृष्णावतार लगभग 83 वर्ष पूर्व 5238 वर्ष पूर्व है (महाभारत के अनुसार युद्ध के समय अर्जुन 65 वर्ष के थे और हरिवंश तथा दूसरे पुराणों के अनुसार श्रीकृष्ण अर्जुन से 18 वर्ष बड़े थे अर्थात् श्रीकृष्ण की उम्र 83 वर्ष थी) महाभारत युद्ध से लगभग 20 वर्ष बाद वज्रनाभ का जन्म हुआ था। जब पाण्डवों ने वज्रनाभ को मथुरा की गद्दी पर बिठाया था उसे आज तक लगभग 5119 वर्ष होता है और उस समय उसकी उम्र 16 वर्ष थी। इस आधार पर भी इनका जन्मकाल लगभग 5100 वर्ष पूर्व निश्चित होता है। भारत का सर्वाधिक प्राचीन युधिष्ठिर सम्वत् की गणना कलियुग से 36 वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से की जाती है। यही दिन ब्रह्मा की सृष्टि का प्रथम दिन है।

टिप्पणी- 1. किंवदन्ती है कि वज्रनाभ का जन्म अनिरुद्ध-प्रेमिका ऊषा (बाणासुर-पुत्री) के द्वारा हुआ था, क्योंकि आम व्यक्ति ऐसा ही सुनता-समझता चला आ रहा है। लेकिन अनेक साक्ष्यों से पता चलता है कि श्रीकृष्ण के पौत्र (नाती) तथा प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध की तीन स्त्रियाँ थीं, जिनमें वंश-पम्परानुसार प्रथम रुक्मी की नातिनी रोचना विधिवत् विवाहिता पत्नी थी जिससे वज्रनाभ जी का जन्म हुआ था। ऊषा तथा सुरूपा जीती हुई स्त्री थीं और ना ही इनकी सन्तानोत्पत्ति का कहीं उल्लेख मिलता है। राजवंश परम्परा के अनुसार भी विधिवत् विवाहिता पत्नी से उत्पन्न सन्तान को ही राज्याधिकार का नियम था।

2. यादव-यदुवंशी-जादौं की राज गद्दी प्राचीनकाल से ही मथुरा रही है, जिस पर वज्रनाभ ने धर्मपूर्वक शासन किया था। इसीलिए यदुवंश-इतिहास में मथुरा तथा ब्रजमण्डल का विशेष महत्व है।

श्रीवज्रनाभ का महाप्रयाण-

श्रीवज्रनाभ जी का महाप्रयाण- स्थल गोवर्धन पर्वत के समीप कुसुम सरोवर के निकट (गोवर्धन-राधाकुण्ड परिक्रमा मार्ग के मध्य) उद्धवकुण्ड है। उद्धव- कुण्ड स्थान पर आज भी शिलापट्ट पर इनके महाप्रयाण का उल्लेख मिलता है। श्रीमद्भागवत माहात्म्य के अध्याय 3, श्लोक 65-72 में तथा गर्गसंहिता, अध्याय 62 में इसका वर्णन मिलता है। उद्धव जी ने उक्त स्थान पर वज्रनाभ तथा उसकी माताओं को एक माह तक श्रीमद्भागवत-कथा का श्रवण कराया। कथा रस का आस्वादन करते हुए वे सभी अपने को, कृष्ण स्वरूप में देखने लगे। वज्रनाभ ने भी अपने को श्रीकृष्ण के दाहिने चरण में स्थित देखा और श्रीकृष्ण के विरह शोक से मुक्त होकर उस स्थान पर अत्यन्त सुशोभित होने लगे। उद्धव जी द्वारा भागवत कथा सुनने के बाद वज्रनाभ अपने पुत्र प्रतिबाहु को अपना राज्य दे योग-समाधि द्वारा गोलोकधाम को चले गये। उनके साथ उद्धवजी भी चले गये। उद्धवजी परमभागवत थे तथा वसुदेव के भाई देवभाग के पुत्र थे। मथुरा में वज्रनाभ पुत्र प्रतिबाहु ने धर्मपूर्वक राज्य किया और उत्तर भारत में परीक्षित् पुत्र जनमेजय ने। ये दोनों समकालीन थे। प्रतिबाहु की पत्नी का नाम मालिनी देवी था।

वज्रनाभ जी के राज्यकाल (समय) का निश्चित हिसाब लगायें तो परीक्षित् काल के अनुसार परीक्षित् की मृत्यु के पश्चात् वज्रनाभ का महाप्रयाण हुआ है। इसी प्रकार से परीक्षित् का 24 वर्ष का शासन+वज्रनाभ का शासन सम्भालने का समय उम्र 16 वर्ष= 40 वर्ष का जीवनकाल वज्रनाभ जी का होता है।

एक जनश्रुति के अनुसार बरसाना के निकट रासलीला प्रवर्तक श्रीघमण्ड देवाचार्य जी की तपोस्थली ग्राम-करहला (कदम्बवन) में श्रीवज्रनाभ जी की तपस्थली बताया जाता है, लेकिन इस स्थान का श्रीवज्रनाभ से सम्बन्धित पौराणिक या ऐतिहासिक विवरण कहीं प्राप्त नहीं होता है और ना ही वज्रनाभ जी द्वारा कहीं तपस्या करने का उल्लेख है, क्योंकि ये प्रेमाभक्ति के उपासक थे।

श्रीवज्रनाभ-महत्ता-

'भक्ति रत्नाकर' बंगलाभाषी ग्रन्थ की पंचम तरंग में श्रीवज्रनाभ जी की महिमा विस्तार से गायी गई है। गर्गसंहिता- अश्वमेध खण्ड, अध्याय- 1 में भी श्रीवज्रनाभ जी का महिमा का वर्णन विस्तार से दिया है। इसके अलावा 'श्री

निम्बार्काचार्य' शोध ग्रन्थ में करौली के प्राचीन संस्कृत विद्वानों ने श्लोकों में भी श्रीवज्रनाभ जी को महिमा-मण्डित किया है-

कृष्ण-प्रपौत्रो नृप-वज्रनाभो, संदीक्षितो निम्बदिवाकराय।
अद्यापि तत्पद्गति वर्तमाना, तद्ववंशजा भूपबरा प्रजान्च॥

आधुनिक खड़ी बोली के आविष्कारकर्ता श्रीभारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने तो श्रीकृष्ण तथा श्रीवज्रनाभ जी के एकात्म श्रीमद्भागवत स्वरूप को भगवान् श्रीकृष्ण के चरण चिह्नों के ब्रजभाषा वर्णन में बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। श्रीकृष्ण के दाहिने चरण में वज्र-चिह्न को श्रीवज्रनाभ स्वरूप भाव को दर्शाते हुए कहते हैं-

चरन परस नित जे करत इन्द्रतुल्य ते होत।
वज्र-चिह्न हरि-पद-कमल येहि हित करत उदोत॥
पर्वत से निज जनन के पापहिं काटन काज।
वज्र-चिह्न पद में धरत कृष्णचन्द्र महाराज॥
वज्रनाभ यासों प्रगट जादव शेष लखाहिं।
पायन-हित निज वंश भुवि वज्र चिह्न पद माँहि॥

(इस पद्य में भारतेन्दु जी ने वज्रनाभ जी उत्पत्ति स्थान तथा उनकी महत्ता का वर्णन किया है। कहते हैं कि कलियुग में पृथ्वी पर अपने यदुवंश की स्थापना हेतु श्रीकृष्ण ने अपने दाहिने चरण में स्थित वज्रचिह्न से वज्रनाभ जी को प्रकट किया तथा श्रीवज्रनाभ जी को वज्रचिह्न के रूप में सदा अपने चरणों में रखते हैं। इससे श्रीकृष्ण तथा वज्रनाभ जी की एक रूपता तथा अभिन्नता स्पष्ट होती है। अर्थात् श्रीवज्रनाभ भगवान् श्रीकृष्ण के ही अंशरूप हैं।

वज्रनाभ जी के पश्चात् उनका पुत्र प्रतिबाहु, उसका पुत्र सुबाहु, उसका पुत्र शान्तसेन, उसका पुत्र शतसेन हुआ। श्रीमद्भागवत तथा हरिवंशपुराण (विष्णु पर्व) में- श्रीकृष्ण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध-सानु-वज्र-प्रतिरथ-सुचारु वर्णन मिलता है। मत्स्यपुराण में- अनिरुद्ध-मृगकेतन तक ही पौराणिक उल्लेख मिलता है। इसके आगे पुराणों में यदुवंश का वर्णन नहीं मिलता है जबकि पुरुवंश का वर्णन काफी आगे तक जाता है। वज्रनाभ जी के परवर्तीकाल का वर्णन करने के लिए हमें ऐतिहासिक वर्णन तथा शोधों का अध्ययन करना होगा जिसके लिए इतिहासकारों एवं विद्वानों को शोध करने की विशेष आवश्यकता है।

कथित महाभारत-युद्ध के छत्तीस साल बाद जब आपसी कलह में सारे यादवों यदुवंशियों का नाश हो गया तो उसके काफी बाद भी कृष्ण-पूजा का

प्रसार होता रहा। ईसा पूर्व छठी सदी में मथुरा पर शूरसेनों का अधिकार हो गया था, ब्राह्मणों ने मोटी दक्षिणा लेकर और झूठी वंशावलियाँ बनाकर ही मध्ययुग के नवोदित यादवों (छद्म) अथवा जाधवों का सम्बन्ध कृष्ण के यदुवंश से जोड़ दिया था। किन्तु शूरसेनो ने, कृष्ण-पूजा को जारी रखा और मथुरा इसका केन्द्र बना रहा।- (प्राचीन भारत की संस्कृति और सम्भ्यता- प्रो. दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी, पृ. 149)

पौराणिक यदुवंश-तालिका

पौराणिक विवरणों के आधार पर पार्जीटर ने अपने ग्रन्थ 'ऐंश्यट इंडियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन' में विभिन्न प्राचीन राजवंशों की तालिकाएँ तैयार की हैं, उनमें यादव वंश-वृक्ष भी दिया है। डा. कृष्णदत्त वाजपेयी ने अपने ग्रन्थ 'ब्रज का इतिहास-प्रथम भाग' तथा भारतीय विद्वान् श्रीविष्णु हरिवडेर ने कल्याण विशेषाङ्क '**कृष्णाङ्क**' में भी यादव वंश-तालिका तैयार की है। इतिहासकार श्रीमद्भागवत, महाभारत तथा विष्णु पुराण के यदुवंश वर्णन तथा वंशावली को अधिक विश्वसनीय मानते हैं। पौराणिक वंशावलियों में कहीं-कहीं नामों और वंशक्रम में भिन्नता मिलती है लेकिन इससे वंशावली की विश्वसनीयता समाप्त नहीं होती। पुराणानुसार वंशावली इस प्रकार है-

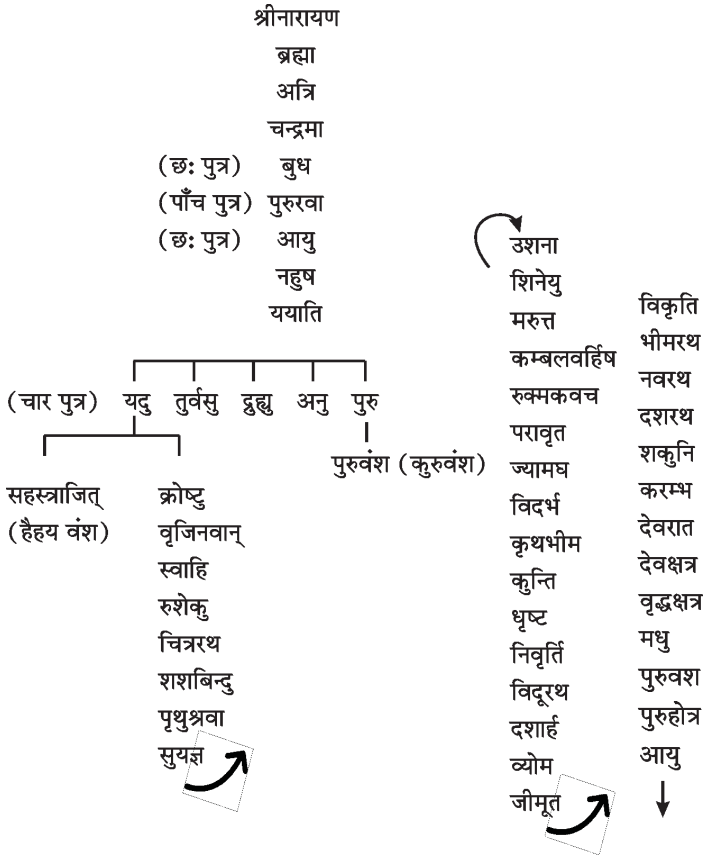

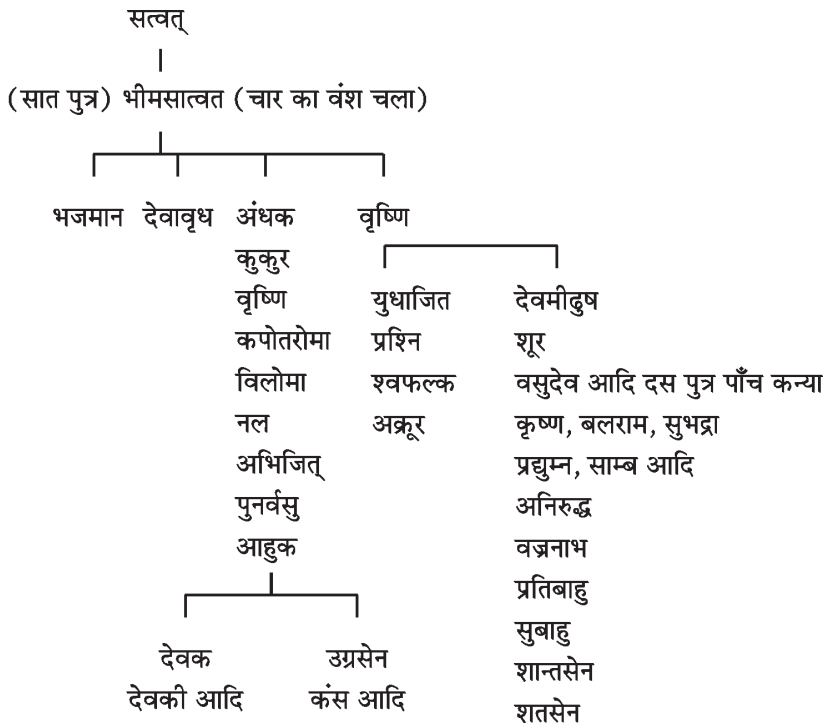

THE LIST, GIVEN IN THE PURANAS, OF THE NOTE WORTHY KINGDOMS WHICH CONTINUED TO EXIST IN THE CENTURIES FOLLOWING THE MAHABHARATA WAR INCLUDES SHURASENA WHERE TWENTY-THREE SHURASENAS (KING OF THE SHURASENA OF THE YADAVA LINEAGE) ARE SAID TO HAVE REIGNED ONE AFTER THE OTHER (BEGINNING PROBABLY WITH VAJRA) TILL THE TIME OF THE NANDAS (FOURTH CENTURY B.C.). BUT THE NAMES OF THESE RULERS AND THE HISTORY OF THIS REGION UNDER THEM ARE NOT KNOWN.

दि वैदिक एज- आर.सी. मजूमदार, Vol-I

ऐतिहासिक-काल

उत्तर महाभारत काल-

'प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य' नामक अपनी पुस्तक में बाबू वृन्दावनदास ने लिखा है कि- "महाभारत कालीन सभ्यता बहुत उच्चकोटि की थी। भारत के इतिहास में कभी जय कभी पराजय कभी सुख कभी दु:ख, कभी शान्ति कभी अराजकता रही है। जिस प्रकार इस देश के इतिहास में उतार-चढ़ाव आये हैं उस प्रकार विश्व के किसी अन्य देश के इतिहास में नहीं। कुछ भौतिक मामलों में महाभारत कालीन भारत की सभ्यता इतनी ऊँची थी जितनी कि यूरोप में 18वीं सदी के अन्त तक भी न हो पाई थी। इस सभ्यता का उत्कर्ष युद्ध संचालन, शस्त्र- अस्त्र उपकरण आदि साज-सज्जा, आवागमन, यातायात, वाणिज्य-व्यवसाय, नाविक सेवा आदि के कौशल में परिलक्षित होता है। नारायण अस्त्र, अग्निबाण, रुधिर वर्षा, व्यूहरचना, उत्तम सैन्य प्रबन्ध आदि सेना सम्बन्धी विशेषताऐं थीं।

युधिष्ठिर के बाद भारत का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। बहुत से राजवंश छोटे-छोटे प्रदेशों पर राज्य करने लगे। सार्वभौम सत्ता का अन्त हो गया और अनेक छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ। महाभारत के विनाश से भारत को जो आघात पहुँचा उसका प्रभाव भारत पर सदियों तक रहा। कुछ पाश्चात्य इतिहास लेखकों ने महाभारत युद्ध के बाद से लेकर विक्रम पूर्व चौथी-पाँचवी सदी तक किन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं अथवा राज्यों का उल्लेख ही नहीं किया है। वे इस काल के इतिहास को अन्धकार पूर्ण बतलाते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है, पुराणों के सूक्ष्म अध्ययन से इस काल के राजवंशों का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध होता है। महाभारत काल से लेकर गौतम बुद्ध के समय तक मगध, अयोध्या और हस्तिनापुर के राजाओं की क्रमबद्ध वंशावलियाँ प्राप्त होती है।

कुछ इतिहासकार महाभारत काल को ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व मानते हैं, जो कि सही भी है। महाभारत काल से पहिले का इतिहास तो उपलब्ध होता है परन्तु महाभारत काल से पूर्व बौद्धकाल का इतिहास तिमिर के गर्त में है। इस स्थिति का कारण महाभारत में हुई एक प्रकार की प्रलय है। महाभारत संग्राम में एक बार सम्पूर्ण संस्कृति का नाश हो गया था, असंख्य योद्धाओं, वीरों, राजाओं और सैनिकों के रणक्षेत्र में जूझने के कारण अनेक राज्य अस्त हो गये थे। विनाश इतना भयंकर हो गया कि पुनर्निर्माण के कार्य में हजारों वर्ष लग गये।

महाभारत संग्राम के बाद अन्य कई जनपदों की तरह शूरसेन जनपद का भी व्यवस्थित इतिहास उपलब्ध नहीं है। पुराणों के अनुसार महाभारत युद्ध से लेकर (वज्रनाभ से) महापद्मनंद के समय तक तेईस राजाओं ने शूरसेन पर शासन किया, परन्तु इन राजाओं के नाम तथा अन्य जानकारी सम्बन्धी बातें नहीं मिलती।

टिप्पणी- पुराणों के अनुसार महाभारत युद्ध के बाद से लेकर महापद्मनंद के समय तक 23 शूरसेन, 24 ऐक्ष्वाकु, 27 पंचाल, 24 काशी, 28 हैहय, 32 कलिंग, 25 अश्मक, 36 कुरु, 28 मैथिल और 20 वीतिहोत्र राजाओं ने भारत पर शासन किया (पार्जीटर-डाइनेस्टीज ऑफ कलि एज)

'ब्रज का इतिहास' प्रथम भाग में डा० कृष्णदत्त वाजपेयी जी ने तथा 'दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल'- वोल्यूम I में आर.सी. मजूमदार ने इस काल के बारे में लिखा है कि- द्वारका के यादवों का नाश एक प्रकार से यदुवंश की प्रमुख शक्ति का नाश था। भारत में अन्य कई भागों में भी यादवों के राज्य थे, परन्तु उनकी शक्ति और विस्तार प्रायः सीमित थे। श्रीकृष्ण ने अपने पराक्रम और बुद्धिमत्ता से यादवों का एक विशाल राज्य स्थापित कर लिया था। उन्होंने यादव-सत्ता की जैसी धाक भारत में जमा दी थी वैसी उनके बाद स्थिर न रह सकी। प्रभास के महानाश के बाद जो लोग द्वारका में बचे उनकी दशा सोचनीय हो गई। शेष यादवों को लेकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ पहुँचे और उन्हें यथास्थान बसाया। पुराणों से ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के लड़के वज्र या वज्रनाभ को अर्जुन ने शूरसेन जनपद के सिंहासन पर अभिषिक्त किया। (श्रीमद्भागवत में अर्जुन पौत्र परीक्षित् के द्वारा वज्रनाभ को शूरसेन जनपद के सिंहासन पर अभिषिक्त किया गया)। वज्रनाभ के बाद शूरसेन जनपद पर कौन-कौन से यादव या अन्य शासक हुए, इसका पता नहीं चलता। पुराण संख्या उल्लेख के अलावा इस विषय पर मौन है। सम्भवतः इन राजाओं में कोई इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ जिसकी चर्चा पुराणकार करते। अन्यथा जहाँ शूरसेन के पड़ोसी जनपद कुरु और पांचाल के अनेक शासकों के उल्लेख मिलते हैं वहाँ मथुरा के कुछ शासकों के भी नाम दिये जाते हैं। पूर्व बौद्धकाल शूरसेन जनपद में वैदिक धर्म का एक प्रधान-केन्द्र था, जिसका पता बौद्ध साहित्य से चलता है।

कर्नल जेम्स टॉड ने '**ट्रैवल्स इन वैस्टर्न इण्डिया**' में यादव-वंश के बारे में लिखा है कि- भारत में यदुवंश की सर्वोच्च सत्ता ईसा से लगभग बारह सौ

वर्ष पूर्व छिन्न-भिन्न हो गई थी, तदुपरान्त उनकी विशृंखलता के और अधिकार के (जो यद्यपि इतिहास विरुद्ध हैं) प्रचुर प्रमाण हमें उनकी शुद्ध और अशुद्ध वंशावलियों, तीर्थ स्थानों के माहात्म्यों, परम्पराओं और शिलालेखों आदि में प्राप्त होते हैं।

भारत में सार्वभौम-राज्य खो देने के बाद भी यादवों की सत्ता किसी तरह बराबर बनी रही। टॉड के अभिमत से इतिहास और परम्परा में 'छप्पन कुल यादव' का उल्लेख किया है। आन्तरिक अन्तर्जातीय युद्धों के कारण वे बिखर गये तथा अन्य देशों की ओर चले गये।

गर्गसंहिता में वज्रनाभ के पुत्र और उत्तराधिकारी का नाम प्रतिबाहु मिलता है। प्रतिबाहु का पुत्र और उत्तराधिकारी सुबाहु था जो बड़ा यशस्वी राजा था। गर्गसंहिता का यह उल्लेख कहाँ तक प्रामाणिक है इसे निश्चय पूर्वक कहना कठिन है। वैसे बौद्ध ग्रन्थों में भी बुद्ध के पूर्ववर्ती मथुरा के एक राजा का नाम सुबाहु मिलता है।

यदुवंशियों का राज्य विस्तार-

श्रीकृष्ण के जन्म से पहले यदुवंशियों के कई राज्य थे। उनमें मथुरा और शौरीपुर (वर्तमान बटेश्वर, जिला-आगरा) के सुप्रसिद्ध राज्य शूरसेन जनपद में थे, जहाँ अन्धक-वृष्णि संघ का गणतांत्रिक शासन था। यादवों के एक प्राचीन दक्षिणी राज्य माहिष्मती और उनके पराक्रमी हैहयवंशी राजा कार्तवीर्य अर्जुन का उल्लेख पहिले किया जा चुका है। महाभारत काल में चेदि हैहयवंशी राजा शिशुपाल था जो अपने निंदनीय आचरण के कारण कृष्ण द्वारा मारा गया था। उसी काल में हैहयवंश का एक राजा नील था, जो कौरवों की ओर से महाभारत के युद्ध में लड़कर मृत्यु को प्राप्त हुआ था।

जरासंध के आक्रमण के कारण जब शूरसेन के यदुवंशियों ने सामूहिक रूप में मथुरा से निष्क्रमण किया था, तब उन्होंने पहिले पश्चिम में, फिर दक्षिण-पश्चिम में और बाद में दक्षिण में कई राज्यों की स्थापना की थी। उनमें धुर पश्चिम का द्वारका राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली था, जहाँ श्रीकृष्ण और उनके परिवार वाले अन्धक-वृष्णि वंशीय यादवों का शासन था। उस काल में कुछ यादव परिवार भारत के पश्चिमी छोर से हटकर दक्षिणी-पश्चिम और दक्षिण में जाकर बस गये थे। उन्होंने महाराष्ट्र, विदर्भ, कर्नाटक, यहाँ तक कि सुदूर दक्षिण के केरल और तमिल प्रदेशों में भी कई राज्य स्थापित किये थे। 'ऐतरेय ब्राह्मण' ऐन्द्र महाभिषेक प्रसंग में यदुवंशी सात्वतों का निवास दक्षिण भारत बतलाया गया है।- भागवत सम्प्रदाय

डा० कृष्णस्वामी आयंगर ने द्रविड़ देशीय राजाओं के इतिहास का अनुसंधान कर यह प्रमाणित किया है कि वहाँ के अनेक राजाओं की परम्परा सात्वत वंशीय श्रीकृष्ण से जुड़ जाती है। महीसूर माईसार (वर्तमान मैसूर) के पूर्वोत्तर भाग में राज्य करने वाला 'इरुन गोवेड' नामक तमिल सरदार श्रीकृष्ण की 49वीं पीढ़ी में हुआ था। –भागवत सम्प्रदाय

दक्षिण–पश्चिम में देवगिरि का एक यादव राज्य अलाउद्दीन खिलजी के काल तक विद्यमान था। उसके राजा रामचन्द्र के अधिकार में वर्तमान महाराष्ट्र का अधिकांश भाग था और उसकी राजधानी देवगिरि (वर्तमान दौलताबाद) थी। उस यादव राजा को अलाउद्दीन ने सं. 1351 में धोखे से पराजित किया था। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यदुवंशियों के प्राचीन राज्य मथुरा और द्वारका के शक्तिहीन हो जाने के बाद भी विद्यमान थे। उन यादव राज्यों का विस्तार पश्चिम, दक्षिण–पश्चिम तथा सुदूर दक्षिण में हुआ था, वहाँ समय–समय पर अनेक शक्तिशाली राजा हुए थे।

बौद्धकाल (सोलह महा जनपद)–

महात्मा बुद्ध के आविर्भाव के पहले (छठी शताब्दी पूर्व) भारत में सोलह बड़े–जनपद थे। प्राचीन बौद्ध और जैन साहित्य में ये 'सोलह महाजनपद' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई महाभारत–युद्ध के पूर्व भी विद्यमान थे। ये सोलह बड़े राज्य इस प्रकार थे–

1. काशी– इसकी राजधानी वाराणसी (बनारस) थी। ब्रह्मदत्त राजाओं के राज्यकाल में इस राज्य की अच्छी उन्नति हुई।

2. कौशल– इस राज्य की राजधानी श्रावस्ती (वर्तमान सहेत–महेत, जि० गोंडा–बहराइच) थी। इसके पहले साकेत और अयोध्या कौशल के प्रधान नगर थे।

3. मगध– (आधुनिक पटना और गया जिले) राजधानी गिरिव्रज थी। धीरे–धीरे मगध जनपद अन्य जनपदों से विस्तार एवं शक्ति में बहुत बढ़ गया।

4. अंग– (मगध के पूर्व में)– इसकी राजधानी चंपा नगरी वर्तमान भागलपुर (बिहार) के निकट थी।

5. वज्जि– आठ क्षत्रिय जातियों ने मिलकर इस राज्य की स्थापना की थी। ये जातियाँ वज्जि, लिच्छवी, विदेह, ज्ञातृक आदि थीं। इस जनपद की राजधानी वैशाली थी। यह गणराज्य था।

6. मल्ल– यह भी गणराज्य था और हिमालय की तराई में स्थित था। मल्लों की दो शाखाएँ थीं– एक का केन्द्र कुशीनारा में था और दूसरी का पावा में।

7. चेटि या चेदि– यह राज्य आधुनिक बुन्देलखण्ड में था। इसकी राजधानी शुक्तिमती थी, जिसे **'सोत्थिवती'** नगर भी कहते थे।

8. वंस या वत्स– अवंती राज्य के पूर्वोत्तर में यमुना के किनारे यह राज्य था। इसकी राजधानी कोशांबी थी।

9. कुरु– दिल्ली के आस-पास का प्रदेश। इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर इसके प्रधान नगर थे।

10. पांचाल– आधुनिक रुहेलखण्ड। इसके दो भाग थे– उत्तर पांचाल और दक्षिण पांचाल। इन दोनों के बीच की सीमा गंगा नदी थी। उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र और दक्षिण पांचाल की कांपिल्य थी।

11. मत्स्य– कुरुराज्य के दक्षिण में, यमुना के पश्चिम में यह राज्य था। इसकी राजधानी विराटनगर थी।

12. शूरसेन– मत्स्य राज्य के पूर्व में था, राजधानी मथुरा थी।

13. अस्सक या अश्मक– बुद्ध के समय में यह राज्य गोदावरी नदी के तट पर था। इसकी राजधानी पोतली या पोतन थी। इसके पूर्व यह राज्य अवन्ती और मथुरा राज्यों के बीच में फैला हुआ था।

14. अवन्ती– आधुनिक पश्चिमी मालवा। इसकी राजधानी उज्जयिनी थी। यह राज्य बहुत बड़ा था। इसके दक्षिण भाग की राजधानी माहिष्मती थी।

15. गान्धार– वर्तमान पेशावर के पूर्व का भाग। इसकी राजधानी तक्षशिला थी।

16. कम्बोज– अफगानिस्तान का पूर्वी भाग (तुखार देश)। इसके मुख्य नगर राजपुर और द्वारका थे।

उपरोक्त सोलह बड़े जनपदों के अतिरिक्त तत्कालीन भारत में अनेक छोटे जनपद थी थे जैसे– कैकय, त्रिगर्त, यौधेय, अम्बष्ठ, शिवि, सौवीर, आन्ध्र आदि। सोलह महाजनपद बहुत काल तक यथापूर्व स्थिति में न रह सके। इनमें से कुछ में दूसरों को हड़पकर अपना विस्तार बढ़ाने की भावना बढ़ी, विशेषकर पूर्वी जनपदों में। इसका फल यह हुआ कि विभिन्न जनपदों के बीच संधि विग्रह की घटनाएँ द्रुतगति से बढ़ने लगीं। महात्मा बुद्ध के समय तक आते-आते

मगध, कौशल, वत्स और अवन्ति- ये भारत के चार प्रधान राज्य बन गये और इनके सामने प्राय: सभी अन्य जनपदों की स्थिति गौण हो गई।

कुरु, शूरसेन और मत्स्य (संभवत: ऋग्वैदिक दाशराज्ञ युद्ध में भाग लेने वाले मत्स्यों के वंशज), सभी कबीलाई (एक ही वंश का संगठन) राज्य थे और सोलह जनपदों में इनका समावेश था। ईसा पूर्व चौथी सदी के बाद इनका कोई अस्तित्व नहीं रहा, यद्यपि मथुरा के शूरसेनों की ख्याति यूनानियों तक पहुँची थी। (प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता- प्रो. दामोदर धर्मानंद कोसंबी, पृ. 167)

बुद्धकाल में उत्तर भारत-

महात्मा बुद्ध के जीवनकाल (ईसा पूर्व 623-543) में उत्तर भारत की राजनैतिक स्थिति का कुछ परिचय तत्कालीन साहित्य से प्राप्त होता है। उस समय राजतंत्र के साथ-साथ प्रजातंत्र- व्यवस्था भी विद्यमान थी। शाक्य, भग्ग, मल्ल, मोरिया, लिच्छवि आदि प्रसिद्ध गणराज्य थे। महात्मा बुद्ध का जन्म शाक्य-वंश में हुआ था और जैन तीर्थंकर महावीर भी ज्ञातृक नामक कुल में पैदा हुए थे। इन दोनों ही वंशों में गणतांत्रिक मान्यताएँ थीं। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि तत्कालीन अनेक गणराज्य शक्तिशाली थे। कुछ गणों ने मिलकर उसी प्रकार अपने संघ बना लिये जिस प्रकार कि श्रीकृष्ण के समय में अंधक-वृष्णि संघ था। ये गणराज्य नंदवंशीय महापद्मनंद के समय तक और इनमें से कुछ गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के समय तक चलते रहे।

टिप्पणी- ई. पूर्व 500 के लगभग लिखी गई पाणिनी की अष्टाध्यायी में अनेक 'आयुधजीवी' संघों का उल्लेख है, जैसे- वृक, दामनि, त्रिगर्तषष्ठ, यौधेय, पर्शु, वाल्हीक, असुर, वृजि, राजन्य, भरत, उशीनर, सात्वत, दाशार्ह आदि। इनमें सात्वत तथा दाशार्ह नामक संघ महाभारत के अनुसार अंधक-वृष्णि-संघ के अन्तर्गत थे।- 'इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनी'- डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

परन्तु बुद्ध के समय में राजतंत्र-शासन का प्रचलन अधिक हो चला था। शक्ति के विस्तार के लिए कई राज्यों में होड़ सी लगी हुई थी। धीरे-धीरे सोलह बड़े जनपदों में से चार ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली। ये चार राज्य मगध, कौशल, वत्स और अवन्ती थे। अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए इन बड़े राज्यों ने अपने समीपवर्ती जनपदों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किये। अवन्ती के तत्कालीन शासक चंड प्रद्योत ने अपनी लड़की का विवाह शूरसेन के

यदुवंशी राजा के साथ किया, जिससे अवन्तिपुत्र का जन्म हुआ। चंड प्रद्योत की दूसरी लड़की वासवदत्ता का विवाह कौशांबी के प्रसिद्ध शासक उदयन के साथ हुआ।– उ०प्र० डिस्ट्रिक्ट– गजेटियर्स– मथुरा पृष्ठ० 25, उ.प्र. सांस्कृतिक केन्द्र– मथुरा– डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, अध्याय–4, दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल– Vol-II– आर.सी मजूमदार। पृ०12, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति– के.सी. श्रीवास्तव)

"IT IS SAID THAT AVANTI PUTRA (PROBABLY THE SON OF A PRINCESS FROM AVANTI) THE KING OF THE SHURASENAS AT MATHURA, WAS AMONG CHIEF DEVOTEES OF THE BUDDHA AND THAT IT WAS THROUGH HIS HELP THAT BUDDHISM GAINED GROUND IN THE REGION"- U.P. DISTRICTGAZETTEERS-MATHURA, –वासुदेवशरण अग्रवाल– मथुरा कला, पृष्ठ 7–8

तत्कालीन समृद्ध एवं विशाल अवन्ती राज्य के साथ शूरसेन राज्य का वैवाहिक सम्बन्ध इस बात का सूचक है कि उस समय भी शूरसेन राज्य की स्थिति महत्वपूर्ण समझी जाती थी। यह भी सम्भव है कि इस वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा अवन्ती राज्य का कुछ प्रभाव शूरसेन जनपद पर स्थापित हो गया हो।

अवन्तिपुत्र (अवन्ती पुत्तो) का नाम बौद्ध साहित्य में अनेक जगह मिलता है। ललित विस्तर ग्रन्थ में शूरसेन के राजा सुबाहु का भी उल्लेख आया है। यह नहीं कहा जा सकता कि सुबाहु और अवन्ती पुत्र में क्या सम्बन्ध था। मज्झिमनिकाय आदि ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि अवन्ती पुत्र पहले वैदिक धर्म का अनुयायी था, परन्तु बाद में वह बौद्ध हो गया। हो सकता है कि महात्मा बुद्ध के शिष्य विद्वान् महाकात्यायन का प्रभाव उस पर पड़ा हो। अंगुत्तर निकाय ग्रन्थ से पता चलता है कि बुद्ध शूरसेन जनपद में कई बार आये।

महात्मा बुद्ध के समय से पूर्व में मगध राज्य की शक्ति बहुत बढ़ने लगी। पहले इस राज्य की राजधानी राजगृह थी, परन्तु बाद में पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) मगध साम्राज्य की राजधानी हुई। बुद्ध के समय में यहाँ शिशु नाग वंश का राज्य था। इस वंश में बिम्बिसार और उसका पुत्र अजात शत्रु शक्तिशाली शासक हुए। ऐतिहासिक साक्ष्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि शिशुनाग वंश के समय तक शूरसेन जनपद अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रहा। अवन्तीपुत्र के बाद उसके वंशजों का यहाँ पर शासन रहा। पाँचवीं शती ईसा पूर्व के अंत में मगध नंदवंश के अधिकार में आया। इस वंश में महापद्मनंद प्रतापी शासक हुआ। साम्राज्यवाद (राज्य का विस्तार करना) की महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर

महापद्मनंद ने तत्कालीन अनेक छोटे-बड़े स्वतंत्र राज्यों का अस्तित्व समाप्त कर दिया।

महापद्मनंद ने कलिंग, चेदि, मिथिला, काशी, कुरु, पंचाल आदि अनेक जनपदों पर अपना अधिकार कर लिया। शूरसेन प्रदेश को भी जीतकर उसने उसे अपने विशाल राज्य में मिला लिया (लगभग ईसा पूर्व 350)। महापद्मनंद के बाद उसके पुत्रों ने मगध साम्राज्य पर शासन किया। घननंद अन्तिम सम्राट् था। ईसा पूर्व 327 में सिकन्दर ने उत्तर-पश्चिम भारत पर आक्रमण किया लेकिन वह पंजाब से आगे न बढ़ सका।

मौर्य वंश-

नंदवंश की समाप्ति के बाद मगध पर मौर्य वंश का शासन प्रारम्भ हुआ। चन्द्रगुप्त मौर्य (ईसा पूर्व 325-298) इस वंश का पहला शासक था। उसने अपने प्रधानमंत्री चाणक्य या कौटिल्य की सहायता से मगध साम्राज्य को बहुत बढ़ाया। चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर के प्रशासक सिल्यूकस को हराकर उससे काबुल, हिरात, कन्दहार मथुरा तथा मकरान के प्रदेश जीत लिए। सिल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को अपनी लड़की ब्याह दी और मैगस्थनीज नामक अपने राजदूत को मौर्य दरबार में भेजा। मैगस्थनीज ने तत्कालीन भारत की राजनैतिक और सामाजिक दशा का वर्णन अपनी पुस्तक 'इण्डिका' में लिखा है। मौर्यों के शासन-काल में मथुरा नगर की उन्नति हुई।

अनेक यूनानी लेखकों ने शूरसेन प्रदेश का वर्णन किया है। मैगस्थनीज ने शूरसेन प्रदेश की भी चर्चा की है। एरियन नामक यूनानी लेखक ने मैगस्थनीज के विवरण को उद्धृत करते हुए लिखा है कि 'शौरसेनाइ' लोग 'हेराक्लॉज को बहुत आदर की दृष्टि से देखते हैं। शौरसेनाइ लोगों के दो बड़े नगर हैं- 'मेथोरा' और 'क्लासीबोरा'। उनके राज्य में 'जोबरेस' नदी बहती है जिसमें नावें चल सकती हैं। दूसरे यूनानी लेखकों प्लिनी तथा टालमी ने भी शूरसेन प्रदेश का इसी प्रकार वर्णन किया है।

यूनानी इतिहासकारों के वर्णनों पर विचार करने से पता चलता है कि मैगस्थनीज के समय में मथुरा जनपद 'शूरसेन' कहलाता था और उसके निवासी 'शौरसेन'। हेराक्लीज से यहाँ तात्पर्य श्रीकृष्ण से हैं। ईसा पूर्व चौथी शती में शूरसेन जनपद के लोग श्रीकृष्ण को महापुरुष के रूप में आदर भाव से मानते रहे।

टिप्पणी- 'शूरसेन' नाम शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम पर पड़ा और लगभग ईस्वी सन् के प्रारम्भ तक जारी रहा। इसके बाद जनपद का नाम उसकी राजधानी मथुरा के नाम पर 'मथुरा' प्रचलित हो गया। (मथुरा-परिचय)

जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है कि समय-समय पर भारत में यादवों की सार्वभौम सत्ता समाप्त होने के बाद भी उनकी सत्ता किसी तरह बराबर बनी रही। कभी छुप गई तथा कभी पुनः प्रकट हुई। कर्नल टॉड लिखता है कि- "जूनागढ़ (गुजरात) को किसी भी ओर से देखें तो ध्यान तुरन्त ही इतिहास के उस प्राचीनतम काल तक पहुँच जाता है, जिसको स्पष्ट रूप से सौराष्ट्र पर राज्य करने वाली यादवों की प्रथम शाखा का समकालीन कहा जा सकता है और सम्भवतः तब यह देश सिकन्दर के सेनापति मिनान्डर और अपोलोडोटस का मुकाबला करने वाले तेसारिओस्तस अर्थात् तेजराज यदुवंशी का आवास बना हुआ था।" इससे प्रमाणित होता है कि उस समय भी भारत के विभिन्न भागों में यादवों की सत्ता मौजूद थी- (ई. पूर्व 327)।

आगे लिखता है कि ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व पर्वत पर गुजरात में स्थित सोमप्रीत राजा (सम्प्रतिराज) की छतरी स्मारक के रूप में आज भी यथावत खड़ी है। यह यदुवंशी राजा था तथा जैनमत का प्रधान अनुयायी था।

चन्द्रगुप्त के बाद उसके पुत्र बिन्दुसार (ई. पू. 298-272) ने मगध साम्राज्य पर शासन किया। उसने पश्चिमी एशिया, यूनान तथा मिस्र से सम्बन्ध स्थापित किये और इन देशों के साथ व्यापार वर्ग का आदान प्रदान किया। बिन्दुसार का उत्तराधिकारी अशोक (ईसा पूर्व 272-232) मौर्य सम्राटों में सबसे प्रसिद्ध शासक था। इसके समय में बौद्ध धर्म की बड़ी उन्नति हुई। प्रसिद्ध है कि मथुरा में यमुना तट पर अशोक ने विशाल स्तूपों का निर्माण कराया। मौर्यों के शासन-काल में मथुरा नगर की बहुत उन्नति हुई। ईसा पूर्व 232 में अशोक की मृत्यु के बाद क्रमशः सात मौर्य शासक मगध साम्राज्य के अधिकारी हुए। इनके नाम पुराणादि साहित्य में विभिन्न रूपों में मिलते हैं। सम्भवतः कुनाल, जलौक, सुभोगसेन, दशरथ, सम्प्रति, शालिशूक तथा वृहद्रथ ने क्रमशः राज्य किया। इनमें कोई ऐसा न था जो बड़े साम्राज्य को सम्भालता। फलस्वरूप अशोक के बाद ही मौर्य साम्राज्य का ह्रास होने लगा। विंध्य के दक्षिण में आंध्र (सातवाहन) वंश ने मौर्य सत्ता से मुक्त होकर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। इधर उत्तर-पश्चिम में बैक्ट्रिया के यूनानी राजाओं ने हाथ पैर मारने शुरु किये। ईसा पूर्व 190 के लगभग डिमेट्रियस ने भारत पर

आक्रमण कर दिया और मौर्य राजा वृहद्रथ से साम्राज्य के उत्तर-पश्चिम का एक बड़ा भाग छीन लिया। इन तथा विविध आन्तरिक झगड़ों के कारण मौर्य साम्राज्य की नींव हिल गई। वृहद्रथ मौर्य वंश का अन्तिम शासक हुआ। उसे उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने ईसा पूर्व 185 में मारकर मौर्य वंश की समाप्ति कर दी।

शुंग-वंश-

पुष्यमित्र से मगध साम्राज्य पर शुंग वंश का शासन आरम्भ हुआ। शूरसेन प्रदेश पर लगभग ईसा पूर्व 100 तक शुंग-शासन दृढ़ बना रहा। उनके समय में भागवत धर्म की विशेष उन्नति हुई। शुंग काल में उत्तर भारत के मुख्य नगरों में मथुरा की भी गणना थी।

इस प्रकरण में एक अन्य उल्लेख '**मथुरा गजेटियर**' में मिलता है कि- लगभग ईसा पूर्व 200 मौर्य साम्राज्य के अन्त में तथा पुष्यमित्र शुंग का शासन हुआ तो उस समय शूरसेन प्रदेश तथा पंचाल जागीरदारी के रूप में स्वतंत्र राज्य घोषित थे, लेकिन बाद में मथुरा स्वतंत्र राज्य के रूप में स्थापित हो गया।

"ABOUT THE BEGINNING OF THE SECOND CENTURY B.C. THE GREAT MAURYA EMPIRE OF MAGADHA COLLAPSED, THE DOWN-FALL BEING ATTRIBUTED TO INTERNAL INTRIGUELED BY THE GENRERAL PUSHYAMITRA SUNGA, THE DECLARATION OF INDE-PENDENCE BY PROVINCIAL GOVERNORS OR FEUDATORIES SUCH AS THE THOSE OF MATHURA AND PANCHALA" IT APPEARS THAT DURING THE LAST DAYS OF MAURYAS (ABOUT 200 B.C. ORALITTLE EARLIER), THEIR GOVERNOR OR FEUDATORY IN THE SURASENA COUNTRY OR SOME ONE ELSE TAKING ADVANTAGE OF THE WEAKNESS OF THE CENTRAL AUTHORITY, ESTABLISHED AN INDEPENDENT LOCAL DYNASTY AT MATHURA.

मथुरा के शक राजा-

(लगभग ईसा पूर्व 100 से ईसा पूर्व 57 तक)

यद्यपि ईसा पूर्व 100 के लगभग शुंग वंश की प्रधान शाखा का अन्त हो गया, तो भी उसकी कई अन्य शाखाएँ बाद में भी शासन करती रहीं। इन शाखाओं के केन्द्र अहिच्छत्र, विदिशा, मथुरा, अयोध्या तथा कोशाम्बी थे। इसके बाद उत्तर भारत की राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन आया। दक्षिण की ओर आंध्र या आंध्रभृत्य लोगों का जोर बहुत बढ़ गया। उन्होंने विदिशा तक

पहुँचकर वहाँ की शुंग सत्ता को समाप्त कर दिया। इधर मथुरा की ओर विदेशी शकों का प्रबल झंझावात आया, जिसने यहाँ के मित्र वंशी राजाओं की शक्ति को हिला दिया। उत्तर-पश्चिम भारत की तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति का लाभ उठाकर शक लोग आगे बढ़ने लगे। शुंग साम्राज्य के पश्चिमी भाग को उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया। इस जीते हुए प्रदेश का केन्द्र उन्होंने मथुरा को बनाया, जो उस समय उत्तर भारत में धर्म, कला तथा व्यापारिक यातायात का एक प्रधान नगर था। शकों के उत्तर-पश्चिम राज्य की राजधानी तक्षशिला हुई। धीरे-धीरे तक्षशिला और मथुरा पर शकों की दो पृथक् शाखाओं का अधिकार कायम हो गया। सम्भवत: इसी समय से जनपद का नाम भी शूरसेन के स्थान पर 'मथुरा' प्रसिद्ध हो गया।

प्रारम्भ में मथुरा के ऊपर जिन शक राजाओं का आधिपत्य रहा, उनकी उपाधि 'क्षत्रप' मिलती है। धीरे-धीरे अधिक प्रतापी शासकों ने '**महाक्षत्रप**' उपाधि धारण करना शुरु कर दिया। मथुरा के शक शासकों में हगान, हगामस, राजबुल तथा सोडास महाक्षत्रप का उल्लेख मिलता है। कनिंघम का अनुमान है कि मथुरा के क्षत्रपों के समय मथुरा राज्य का विस्तार उत्तर में दिल्ली तक, दक्षिण में ग्वालियर तक तथा पश्चिम में अजमेर तक था।

शकों की पराजय- ई. पूर्व 57 के लगभग उज्जयिनी के उत्तर में मालवगण ने अपनी शक्ति संगठित करली। राष्ट्र प्रेमी मालव लोग चाहते थे कि भारत से शकों को भगाकर विदेशी शासन से छुटकारा पाया जाय। उन्होंने दक्षिण महाराष्ट्र के तत्कालीन सातवाहन शासकों से इस कार्य में सहायता ली और उज्जयिनी के शकों को परास्त कर दिया। यह पराभव शकों की शक्ति पर गहरा प्रहार सिद्ध हुआ और कुछ समय के लिए उत्तर भारत पर उनका राजनैतिक प्रभुत्व समाप्त हो गया।

दत्तवंश- उज्जैन में शकों की हार का प्रभाव मथुरा पर भी पड़ा और यहाँ के क्षत्रप राजवंश का अन्त हो गया। मथुरा और उसको आस-पास उपलब्ध सिक्कों से पता चलता है कि इसके बाद वहाँ पर दत्तवंश का अधिकार स्थापित हो गया। इस वंश के कई राजाओं का विवरण इतिहास में मिलता है।

कुषाणवंश- लगभग ईस्वी सन् के आरम्भ से शकों की कुषाण नामक एक शाखा का प्रभुत्व हुआ। विद्वानों ने उन्हें युइशिया ऋषिक तुरुष्क (तुखार) नाम दिया है। इनका पहला शक्तिशाली सरदार कुजुलकर कडफाइसिस नामक हुआ। इस वंश में विमतक्षक, कनिष्क, हुविष्क, वासुदेव आदि प्रसिद्ध शासक

हुए। कनिष्क इनमें सबसे प्रसिद्ध शासक हुआ जिसने अपने राज्यारोहण की तिथि से एक नया संवत् चलाया, जो '**शक**' संवत् के नाम से प्रसिद्ध है। कनिष्क के समय में मथुरा नगर की बहुमुखी उन्नति हुई। वासुदेव कुषाण वंश का अन्तिम प्रसिद्ध शासक था।

ईस्वी दूसरी शती का अन्त होते-होते मथुरा प्रदेश तथा उसके पश्चिम से कुषाण-सत्ता उखड़ गयी। मध्य देश तथा पूर्वी पंजाब से कुषाणों को हटाने में कई शक्तियों का हाथ था। कौशाम्बी तथा विंध्य प्रदेश के मघ राजाओं एवं पद्मावती, कांतिपुरी तथा मथुरा के नागवंशी लोगों ने मध्यदेश से तथा यौधेयों, मालवों और कुणिंदों ने राजस्थान और पंजाब से कुषाणों को भगाने में प्रमुख भाग लिया।

नागशासन- (लगभग 200-350 ई)- नागों के शासन काल में मथुरा में शैव धर्म की विशेष उन्नति हुई। मथुरा और पद्मावती नगर बड़े समृद्ध नगरों के रूप में विकसित हुए। यहाँ विशाल मन्दिर, महल, मठ, स्तूप तथा अन्य इमारतों का निर्माण हुआ। धर्म, कला-कौशल तथा व्यापार के ये प्रधान केन्द्र हुए। नागशासन का अन्त होने के बाद मथुरा को राजनैतिक केन्द्र होने का गौरव फिर कभी न प्राप्त हो सका।

गुप्त वंश- ईस्वी चौथी शताब्दी के आरम्भ में महाराज गुप्त के द्वारा गुप्तवंश की स्थापना की गयी। उसका लड़का घटोत्कच हुआ जिसका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम 320 ई. में पाटलिपुत्र की राजगद्दी पर बैठा। उसने 'महाराजाधिराज' उपाधि ग्रहण की। वैशाली के प्रसिद्ध लिच्छवि गणतंत्र की कन्या कुमार देवी के साथ विवाह कर चन्द्रगुप्त ने अपनी शक्ति बढ़ा ली। चन्द्रगुप्त प्रथम (335-376 ई.) का उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त बड़ा प्रतापी एवं महत्वाकांक्षी शासक हुआ। उसके द्वारा भारत की दिग्विजय की गयी, इस दिग्विजय में मथुरा को भी जीतकर समुद्रगुप्त ने उसे अपने साम्राज्य का एक अंग बना लिया। मथुरा के जिस शासक को उसने पराजित किया वह गणपति नाग था। उसके बाद उसका यशस्वी पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय '**विक्रमादित्य**' गुप्त साम्राज्य का अधिकारी हुआ।

इस सम्बन्ध में '**मथुरा गजेटियर**' में उद्धृत समुद्रगुप्त के समय में मथुरा में स्थापित राज्य बयाना से सम्बन्धित यादव वंश शासन का उल्लेख मिलता है-

"AFTER ITS CONQUEST BY SAMMUDRAGUPTA MATHURA BEGAN TO DECLINE AND IT CEASED TO BE THE CAPITAL OF AN EMPIRE OR EVEN OF AN INDEPENDENT KINGDOM. THE

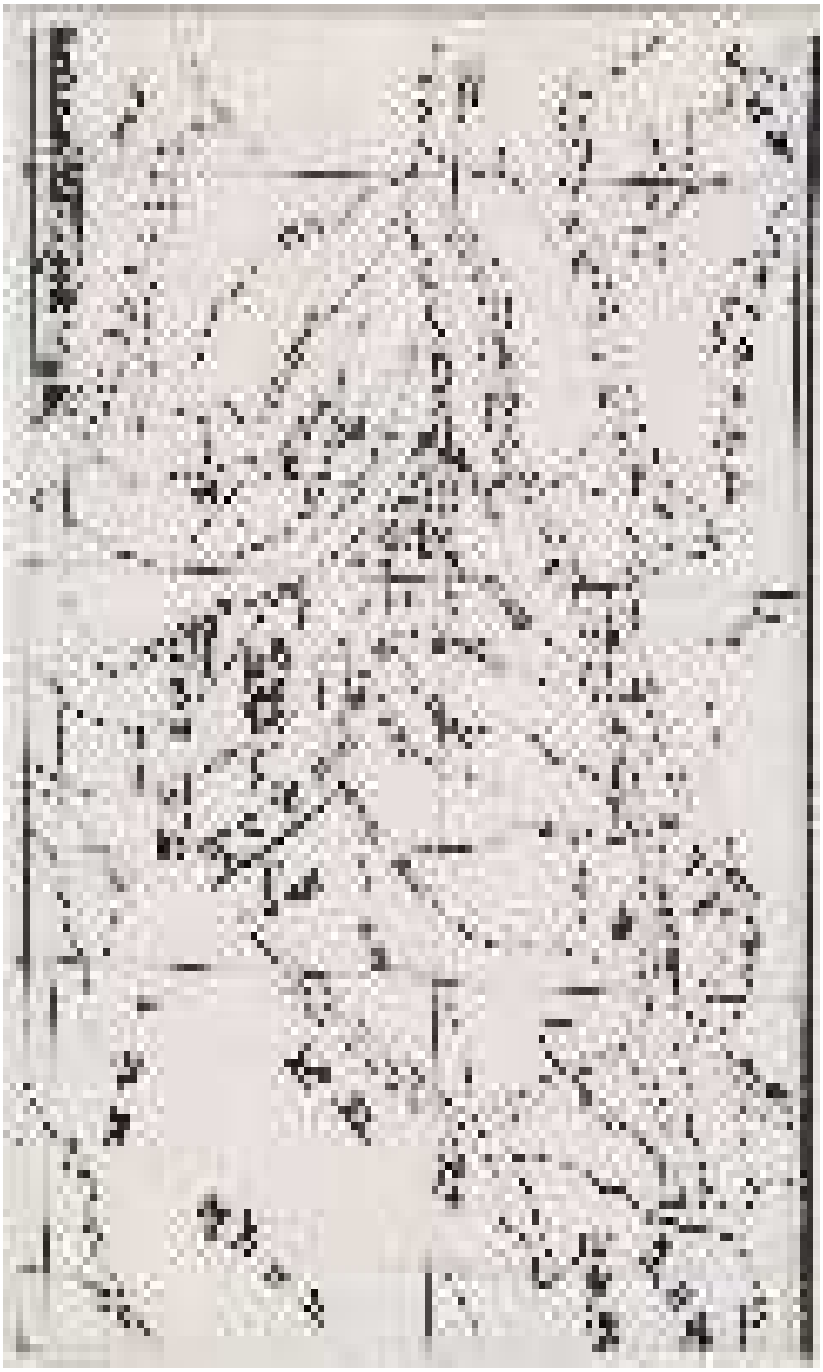

MATHURA REGION WAS ANNEXED TO THE GUPTA AMPIRE BUT THE FORM OF GOVERNMENT ESTABLISHED IS NOT KNOWN. (DR. K.D. BAJPAI-BRAJA KA ITIHAS, VOL.I, P.116). A LINE OF PRINCES, PROBABLY BELONGING TO THE YADAVA CLAN, SEEMS TO HAVE BEEN RULING AT BAYANA (IN THE ADJOINING DISTRICT OF BHARATPUR) FROM SOME TIME IN THE THIRD TO A BOUT THE CLOSE OF THE FOURTH CENTURY [AS IS ATTESTED TO BY AN INSCRIPTION DATED SAMVAT 428 (371 A.D.) DiSCOVERED THERE)- ARCHAEOLOGICAL SURVEY OF INDIA, VOL. XX, P.81-82, WHICH MIGHT HAVE HELD THE WHOLE OR A PART OF THE MATHURA DISTRICT AS A FEUDATORY OF THE GUPTAS".

विजय मन्दिर गढ़ शिलालेख के अनुसार (शिलालेख का अनुवाद डा. बुहलर ने किया है) विक्रमादित्य काल (गुप्तकाल) 371 ई. में बयाना में के कृष्णवंशज यदुवंशी राजपूत राजा विष्णुवर्धन तथा उसके तीन वंशजों का उल्लेख मिलता है।- (ए. कनिंघम, Vol. XX, P-81-82)

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय के मथुरा से प्राप्त शिलालेखों से पता चलता है कि परम भागवत महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त के द्वारा श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया गया। चन्द्रगुप्त के शासन काल में फाह्यान नामक चीनी यात्री पश्चिमोत्तर मार्ग से भारत आया। वह अन्य अनेक नगरों से होता हुआ मथुरा भी पहुँचा। उसने अपने भारत-यात्रा वर्णन में मथुरा की धार्मिक स्थिति का उल्लेख किया है। अपने शासनकाल में चन्द्रगुप्त ने शकों का शासन हमेशा के लिए समाप्त कर दिया।

कालिदास द्वारा शूरसेन जनपद का वर्णन-

महाकवि कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समकालीन माने जाते हैं। अपने **'रघुवंश'** महाकाव्य में कालिदास ने शूरसेन जनपद, मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन तथा यमुना का उल्लेख किया है। इन्दुमती के स्वयंवर में विभिन्न प्रदेशों से आये हुए राजाओं के साथ उसने शूरसेन राज्य के अधिपति सुषेण का भी वर्णन किया है। मगध, अंग, अवन्ती, अनूप, कलिंग और अयोध्या के बड़े राजाओं के बीच शूरसेन-नरेश की गणना की गई है।

टिप्पणी- यहाँ मथुरा का उल्लेख करते समय सम्भवत: कालिदास को समय का ध्यान नहीं रहा। इन्दुमती (जिसका विवाह अयोध्या नरेश अज के साथ हुआ) के समय में मथुरा नगरी नहीं थी। वह तो अज की कई पीढ़ी बाद शत्रुघ्न के द्वारा बसाई गई। टीकाकार लिखता है कि- कालिदास ने अन्यत्र शत्रुघ्न के

द्वारा यमुना-तट पर भव्य मथुरा नगरी के निर्माण का कथन किया है। शत्रुघ्न के पुत्रों-शूरसेन और सुबाहु का क्रमशः मथुरा तथा विदिशा के अधिकारी होने का भी वर्णन रघुवंश में मिलता है। इस प्रकार कालिदास द्वारा उल्लिखित शूरसेन के अधिपति सुषेण का नाम काल्पनिक प्रतीत होता है। पौराणिक सूचियों या शिलालेखों आदि में मथुरा के किसी सुषेण राजा का नाम नहीं मिलता।

वैसे कालिदास के वर्णनों से तत्कालीन शूरसेन जनपद की महत्वपूर्ण स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। आर्यावर्त के प्रसिद्ध राजवंशों के साथ उसने शूरसेन के अधिपति का उल्लेख किया है। '**सुषेण**' नाम काल्पनिक होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि शूरसेन वंश की गौरवपूर्ण परम्परा ईस्वी पाँचवीं शती तक बरकरार थी। वृन्दावन, गोवर्धन तथा यमुना-सम्बन्धी वर्णनों से ब्रज की तत्कालीन शोभा का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

हूण आक्रमण-

चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम के अन्तिम समय में उत्तर-पश्चिम की अरक्षित सीमा की ओर से हूणों का भयंकर आक्रमण गुप्त साम्राज्य पर हुआ। यद्यपि कुमारगुप्त के यशस्वी पुत्र स्कन्द गुप्त ने हूणों का कड़ा मुकाबला किया तो भी इन बर्बरों के भीषण आक्रमणों ने गुप्त साम्राज्य को डगमगा दिया।

तोरमाण की अध्यक्षता में हूणों ने 500 ई. के लगभग पश्चिमी मध्यभारत पर अपना अधिकार कर लिया। इस समय इनकी शक्ति बहुत प्रबल थी। 484 ई. में उन्होंने ईरान के सम्राट् को समाप्त कर वहाँ अपना अधिकार जमा लिया था। बल्ख को उन्होंने अपना केन्द्र बनाया। उसके आगे दक्षिण-पूर्व चलकर वे तक्षशिला आदि विशाल नगरों को उजाड़ते और राज्यों को नष्ट करते हुए, मथुरा होकर मध्य भारत तक पहुँच गये थे। मथुरा नगर उस समय बहुत समृद्ध था और वहाँ अनेक बौद्धस्तूपों और संघारामों के अलावा विशाल जैन तथा हिन्दू इमारतें विद्यमान थीं। हूणों के द्वारा अधिकांश इमारतें जलाई और नष्ट की गई, प्राचीन मूर्तियाँ तोड़ डाली गईं और नगर को बर्बाद किया गया। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में जिस विशाल मन्दिर का निर्माण श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर किया गया था, वह भी हूणों की क्रूरता का शिकार हुआ। ग्वालियर पहुँचने के पहले सम्भवतः हूण लोग मथुरा में कुछ समय तक ठहरे।

स्कन्दगुप्त बड़ा वीर एवं योग्य शासक था। भीतरी के लेख से स्पष्ट पता चलता है कि हूणों के साथ स्कन्दगुप्त का भयंकर संग्राम हुआ। हूणों के साथ युद्ध करते समय पृथिवी काँप उठी। स्कन्दगुप्त के समय का एक ताम्रपत्र

बुलन्दशहर जिले के इन्दौर (प्राचीन इन्द्रपुर) नामक गाँव से मिला है जो गुप्त सम्वत् 146 (465-66 ई.) का है। उससे ज्ञात होता है कि उस समय गंगा-यमुना के दोआब (अंतर्वेदी) पर विषयपति शर्वनाग नियुक्त था। शर्वनाग का केन्द्र सम्भवत: मथुरा नगर था।

स्कन्दगुप्त गुप्तवंश का अंतिम प्रतापी सम्राट् था। उसकी मृत्यु के बाद गुप्त साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। स्कन्दगुप्त के बाद गुप्त वंश में ऐसा कोई असाधारण प्रतिभा वाला शासक नहीं हुआ जो विस्तृत साम्राज्य को संभाल सकता। फलत: साम्राज्य का अन्त हो गया।

गुप्त साम्राज्य की समाप्ति के बाद लगभग आधी शताब्दी तक उत्तर भारत की राजनैतिक स्थिति ठीक नहीं रही। अनेक छोटे-बड़े राजा विभिन्न प्रदेशों में अपनी शक्ति बढ़ाने में लग गये। सम्राट् हर्षवर्धन के पहले तक कोई ऐसी प्रबल केन्द्रीय सत्ता स्थापित न हो सकी जो छोटे-मोटे राज्यों को सुसंगठित करती। ईस्वी छठी शती के मध्य से बारहवीं शती के अंत तक क्रमश: मौखरी, वर्धन, गुर्जर, प्रतिहार तथा गाहड़वाल वंशों ने मथुरा प्रदेश पर शासन किया।

बौद्धकाल से लेकर यहाँ तक का संक्षेप में वर्णन लिखने का मेरा एक ही उद्देश्य है कि हमें यह जानकारी मिल सके कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी से लेकर ईस्वी छठी शताब्दी तक (लगभग 1200 वर्ष) यदुवंश किस स्थिति में रहा? किस काल में कौन-कौन राजा हुए? शूरसेन जनपद एवं मथुरा की राजनैतिक स्थिति कैसी रही? अब यहाँ से आगे यदुवंश का इतिहास क्रमिक रूप से मिलता तो है लेकिन उसका आधार मुख्यत: जनश्रुतियाँ, जगाओ, भाटों द्वारा प्राप्त विवरण एवं अंग्रेजों द्वारा की गईं पुरातात्विक शोध हैं। साथ ही भारतीय इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि शूरसेन जनपद के राजा वज्रनाभ जी के बाद से इतने प्रभावशाली नहीं हुए जिनका इतिहासकार वर्णन करते। अधिकांश राजा बड़ी राज्यशक्तियों के अधीन सामंत जागीरदार रहे लेकिन समय-समय पर वे अपने को स्वतंत्र कर सत्ता पर भी काबिज होते रहे। कई राजाओं के बारे में तो देशी-विदेशी इतिहासकारों ने विस्तृत रूप से उल्लेख भी किया है।

यद्यपि भारत के विभिन्न भागों में जो यदुवंश की विभिन्न शाखाएँ फैलीं उन्होंने देश में बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित किये तथा दीर्घकाल तक शासन किये, जिनका विस्तृत इतिहास प्राप्त होता है। पहले हम जहाँ से यदुवंश इतिहास आरम्भ होता है और जहाँ समाप्त होता है उस शूरसेन। मथुरा। ब्रजमण्डल प्रदेश के राजनैतिक इतिहास पर विवेचना करते हैं। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण एवं

आवश्यक भी है कि वर्तमान में देश का बहुसंख्यक यदुवंश समुदाय उत्तरी भारत में ही अधिक फैला हुआ है।

मध्य काल-

मौखरी वंश (540-606 ई.)- पहले वे गुप्त सम्राटों के अधीनस्थ सामंत थे। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद लगभग (सं. 611) 554 ई. में मौखरी शासक ईशानवर्मन ने **'महाराजाधिराज'** उपाधि धारण की। ईशानवर्मन् ने अपने शासनकाल में राज्य का काफी विस्तार किया। ईशानवर्मन् के समय (सं. 607-633) कन्नौज तथा मथुरा पर मौखरियों का शासन रहा। ईशानवर्मन् के बाद तीन अन्य मौखरी शासकों ने भी राज्य किया।

हर्षवर्धन-

(606-647 ई.) ईस्वी छठी शती के आरम्भ में पुष्यभूति नामक राजा ने थानेश्वर और उसके आस-पास एक नये राजवंश की नींव डाली। इस वंश का पाँचवाँ राजा प्रभाकरवर्धन (लगभग 583-605 ई.) हुआ। प्रभाकरवर्धन का राज्य पश्चिम में व्यास नदी से लेकर पूर्व में यमुना तक फैल गया। मथुरा प्रदेश इस राज्य की पूर्वी सीमा पर था। प्रभाकरवर्धन के दो पुत्र राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन और एक पुत्री राज्यश्री थी। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद हर्षवर्धन थानेश्वर राज्य का अधिकारी हुआ।

हर्ष का साम्राज्य विस्तार-

इस विषय में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। कुछ का मत है कि हर्ष पूर्ण उत्तर-भारत का स्वामी नहीं था किन्तु बहुमत इसके विपरीत है। अत: हुएन-सांग के साक्ष्य के आधार पर और अन्य शिलालेख सम्बन्धी तथ्यों तथा साहित्यिक गवाही के आधार पर हम मोटे तौर पर कह सकते हैं कि आधुनिक भौगोलिक शब्दावली में हर्ष के कन्नौज राज्य का विस्तार निम्न क्षेत्रों में था अर्थात् पूर्वी पंजाब के कुछ अंश, करीब-करीब पूर्ण उत्तर प्रदेश (मथुरा और मतिपुर को छोड़कर) बिहार, बंगाल और उड़ीसा, कोन्गोधा या गंजाम क्षेत्र को मिलाकर। (क्लासीकल एज, Vol. III-आर.सी. मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज- डा. रमाशंकर त्रिपाठी)

टिप्पणी- हुएन-सांग के यात्रा विवरण के आधार पर डा. रमाशंकर त्रिपाठी (हिस्ट्री ऑफ कन्नौज) का विचार है कि मथुरा तथा मतिपुर ये दो राज्य हर्ष के

साम्राज्य के बाहर रहे। हुएनसांग 635 ई. के लगभग मथुरा आया था। हो सकता है कि उस समय मथुरा के शासक ने अपनी स्वतंत्र सत्ता घोषित कर दी हो। परन्तु उसके पहले मथुरा प्रदेश अवश्य ही हर्ष के साम्राज्य के अन्तर्गत था और सम्भवत: हर्ष की मृत्यु के कुछ समय पूर्व तक यही स्थिति रही।

हर्ष के साम्राज्य विस्तार पर श्रीवाचस्पति गैरोला (भारतीय संस्कृति और कला) में लिखते हैं कि- सामान्यत: हिमालय पर्वत, पश्चिमी पंजाब, राजपूताना, मध्य प्रदेश, आसाम और बंगाल का विस्तृत भू-भाग के राजा तथा सामन्त उसके अधीन थे। केवल कुछ अंचलों पर ही उसका प्रत्यक्ष शासन था। अधिकतर प्रदेश ऐसे थे जो कि हर्ष की अधीनता स्वीकार करते हुए वहाँ के शासक स्वयं थे। इस प्रकार के अनेक पराजित राजाओं को हर्ष ने उनका राज्य लौटा दिया और इस प्रकार उसने भारत के पूर्ववर्ती दिग्विजयी सम्राटों के आदर्श का अनुसरण कर अपनी महानता का परिचय दिया। इतना निश्चित है कि भारत का सम्पूर्ण उत्तरी प्रान्त उसके राज्य के अन्तर्गत था।

हर्ष के उत्तराधिकारी-

हर्ष के कोई सन्तान नहीं थी, और उसका कोई योग्य सम्बन्धी भी नहीं था अत: उसके उत्तराधिकारी के लिए झगड़े होना स्वाभाविक था। उसके कारण ही हर्ष का विशाल राज्य टुकड़े-टुकड़े होकर अनेक छोटे राज्यों में बँट गया था। उन राज्यों पर हर्ष के सरदार सामंतों ने अधिकार कर अपना स्वतंत्र शासन चलाया। मथुरा राज्य भी तब सम्भवत: स्वाधीन हो गया था। उसका राजा मथुरा के प्राचीन यादव वंश से सम्बन्धित था जिसके प्रमाण भी मिलते हैं।

हुएनसांग के यात्रा- विवरण में उसके समय के मथुरा राज्य और मथुरा नगर के सम्बन्ध में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। (हुएनसांग ट्रेविल्स इन इण्डिया-Vol. I) उसने लम्बाई-चौड़ाई के अनुसार मीलों में नाप का उल्लेख किया है। इस पर ए. कनिंघम का मत है। कि- "यदि हुएनसांग की नाप का अनुमान सही है तो उस काल में मथुरा राज्य में न केवल वैराट और अतरंजी जनपदों के बीच का समस्त प्रदेश ही होगा, वरन् आगरा से परे दक्षिण में नरवर और श्यौपुरी (शिवपुरी) तक तथा पूर्व में काली सिंध नदी तक का विशाल क्षेत्र सम्मिलित होगा। इसमें वर्तमान मथुरा-आगरा-जिला के साथ भरतपुर, खिरावली (करौली) और धौलपुर की छोटी रियासतें तथा ग्वालियर राज्य का उत्तरार्द्ध सम्मिलित था। पूर्व में उसकी सीमा जिझौती तक और दक्षिण में मालवा तक होगी। आर.सी. मजूमदार की टिप्पणी के अनुसार- हुएनसांग के समय का

मथुरा राज्य चम्बल नदी से लेकर मथुरा नगर से प्राय: 50 मील उत्तर तक फैला हुआ था।

डा० प्रभुदयाल मीतल ने '**ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास**' में उस काल की युगान्तरकारी घटनाओं का उल्लेख इस प्रकार किया है- "हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरान्त इस देश में ऐसी अनेक अभूत पूर्व युगांतरकारी घटनाएँ हुईं, जिन्होंने यहाँ के इतिहास को नया मोड़ दिया था। हर्ष का विशाल साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर अनेक छोटे राज्यों में विभाजित हो गया। फिर शताब्दियों तक कोई ऐसा प्रभावशाली सम्राट् नहीं हुआ, जो हर्ष की तरह इस देश को एकता के सूत्र में बाँधकर यहाँ व्यापक रूप से शान्ति और व्यवस्था कायम करता। उस काल में यहाँ जो छोटे-बड़े अनेक राज्य बने थे उनके राजागण अधिकतर राजपूत जातियों के थे। राजपूत जातियों का उदय और प्रसार उस काल की ऐसी महत्वपूर्ण घटना है, जिसने बाद में कई शताब्दियों तक इस देश की राजनैतिक स्थिति पर अपनी महत्ता की छाप लगाई थी। उसी काल में भारत के सुदूर पश्चिम में इस्लाम के रूप में एक नई शक्ति का उदय और प्रसार हुआ था। उसने अन्य देशों के साथ ही साथ भारत में भी अपना विस्तार कर यहाँ के जनजीवन को पूरी तरह झकझोर दिया था। और इस देश की राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थिति को अद्‌भुत रीति से प्रभावित किया था। उन युगांतरकारी घटनाओं का इस काल पर और उसके बाद भी पूरा प्रभाव पड़ा था।"

आगे लिखते है कि- "प्राचीनतम काल में आर्यों में केवल चार वर्ण थे, जिनके अन्तर्गत बाद में अनेक जातियाँ बन गई थीं। क्षत्रिय वर्ण की अनेक जातियों को तथा उनमें मिश्रित कई देशी विदेशी जातियों को कालान्तर में राजपूत कहा जाने लगा था। कवि चन्दवरदायी के कथनानुसार राजपूतों की 36 जातियाँ थीं। प्राचीनकाल में क्षत्रिय वर्ण के अन्तर्गत सूर्यवंश और चन्द्रवंश के राजघरानों का बड़ा विस्तार हुआ था। जब उन वंशों की जातियाँ बनीं, तब चन्द्रवंशी राजपूतों में यादव (जादों), भाटी और तँबर (तोमर) जातियाँ अधिक प्रसिद्ध हुई थीं। उनके अतिरिक्त अग्निवंशीय राजपूतों की उत्पत्ति ऋषियों के अग्निकुण्ड से हुई थी। उनका यह अभिप्राय मालूम होता है कि जो देशी-विदेशी जातियाँ क्षत्रिय वर्ण स्वीकार कर क्षत्रिय जातियों में मिल गई थी, उन्हें ऋषि-मुनियों ने अग्नि-होम द्वारा शुद्ध कर क्षत्रियत्व की मान्यता प्रदान की थी। अग्निवंशियों में चौहान (चाहमान), पँवार (प्रमार या परमार), सोलंकी (चालुक्य) और पडिहार (प्रतिहार) नामक राजपूत जातियों ने बड़ी ख्याति प्राप्त की थी।"

अब हम अपने मुख्य विषय पर आते हैं। पीछे कहा जा चुका है कि हर्ष काल में मथुरा राज्य स्वतंत्र था तथा उसमें यदुवंशी राजा का शासन रहा। इस सन्दर्भ में 'मथुरा गजेटियर' का उक्त उल्लेख महत्वपूर्ण है–

"ABOUT THE MIDDLE OF THE SIXTH CENTURY THE MAUKHARIS OF KANNAUJ BECAME INDEPENDENT AND POWERFUL, THEIR RULE EXTENDING OVER A CONSIDERABLE TERRITORY CORRESPONDING ROUGHLY TO PRESENT UTTAR PRADESH WHICH MIGHT HAVE INCLUDED THE MATHURA REGION (R.S. TRIPATHI, HISTORY OF KANAUJ, R.C. MAJUMDAR AND PUSALKAR -VOL.III, P.69, K.D. BAJBAI- ब्रज का इतिहास, प्रथमभाग)।

IN THE OLD FORT AT KAMA (IN THE BHARATPUR DISTRICT) A STONE PILLAR WITH A SANSKRIT INSCRIPTION OF THIRTY-SEVEN LINES ON IT, WHICH SEEMS TO BELONG TO THE EIGHTH CENTURY, MENTIONS A SUCCESSION OF SEVEN RULERS OF THE SHURASENA FAMILY DESCRIBED THERE AS THE DESCEND ENTS OF SHAURI (KRISHNA), THE LAST NAME BEING THAT OF VATSADAMAN. PHAKKA, THE FIRST IN THE LINE, IS BELIEVED TO HAVE LIVED ABOUT THE CLOSE OF THE SIXTH CENTURY AND THE FAMILY TO HAVE REPRESENTED A BRANCH OF THE SHURASENAS (OR YADAVAS) OF MATHURA (ARCHAEOLOGICAL SURVEY OF INDIA, VOL-XX, P.54-60). THE KINGS OF THIS LINE MAY HAVE OCCUPIED MATHURA SOON AFTER THE YASHODHARMAN EPISODE OR ATLEAST TOWARDS THE BEGINNING OF THE SEVENTH CENTURY (WHENTHE POWER OF THE MAUKHARIS HAD DECLINED) AND MADE IT THEIR CAPITAL. (MATHURA-GAZETIEERS- 1968, P.47)

अर्थात् लगभग छठवीं शताब्दी के मध्य में कन्नौज के मौखरी शक्तिशाली एवं स्वतंत्र हो गये। उनके शासन का विस्तार वर्तमान उत्तर प्रदेश के मथुरा राज्य तक हो गया था। भरतपुर जिला के कामां नगर के पुराने किले में 37 पंक्तियों में लिखा एक पत्थर का शिलालेख प्राप्त हुआ है जो आठवीं शती का प्रतीत होता है। उसमें शूरसेन परिवार के सात राजाओं के राज्यारोहण का यथाक्रम उल्लेख मिलता है, जो कृष्ण के वंशजों में से अन्तिम शासक वत्सदामा का नाम मिलता है। फक्क (प्रथम राजा) को छठी सदी के मथुरा के शूरसेन परिवार के शासकों में प्रथम यादव वंश की शाखा से सम्बन्धित किया है। लगता है कि इस पक्ति के राजाओं ने मथुरा राज्य यशोवर्मन के पश्चात् अपने अधिकार में लिया होगा

और लगभग सातवीं शताब्दी के आरम्भ में इन्होंने मथुरा को अपनी राजधानी बनाया।

यशोवर्मन-

हर्ष के पश्चात् उत्तर भारत में अनेक छोटे-बड़े राज्य फिर से स्थापित हो गये। ईस्वी आठवीं शती के आरम्भ में कन्नौज में यशोवर्मन नामक शासक का पता चलता है जिसका उल्लेख 'मथुरा गजेटियर' में किया गया है। लगभग 700-740 ई. तक मथुरा प्रदेश कन्नौज के शासक यशोवर्मन की अधीनता में रहा। यशोवर्मन की वंश-परम्परा के सम्बन्ध में निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। हो सकता है वह कन्नौज के मौखरी वंश से ही सम्बन्धित हो। यशोवर्मन एक शक्तिशाली शासक था। उसके समय में कन्नौज के साथ मथुरा की भी उन्नति हुई। ('ब्रज का इतिहास', प्रथम भाग- डा० कृष्णदत्त वाजपेयी)

मथुरा के वर्णन में हुएन-सांग ने मथुरा से सटे हुए क्षेत्र के विषय में किसी पहाड़, नदी, शहर या बुद्ध-स्मारक के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया है, और बौद्ध-स्मारकों के विषय में उसका वर्णन भ्रमात्मक है, वह किसी ज्ञान पर आधारित नहीं है। उसने मथुरा का शायद भ्रमण नहीं किया और इसके सुदूर क्षेत्रों का शीघ्रता में ही दौरा किया हो। इस सम्बन्ध में आर.एस. त्रिपाठी का कहना है कि- "हुएन-सांग के क्षेत्रीय शासक का सन्दर्भ भी बहुत संक्षिप्त है। शासक और उसके पदाधिकारी जो श्रेष्ठ कार्यों के प्रति समर्पित थे, उनके नाम का भी उल्लेख नहीं है।" लेकिन आर्कियोलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया- Vol. XX में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि उस समय मथुरा के क्षेत्रीय शासक के रूप में शूरसेन वंशज फक्क थे, अथवा उसके पुत्र या उसके उत्तराधिकारी कुलभट्ट अथवा उसके बाद के शासक के पुत्र अजित थे। तत्कालीन मथुरा राज्य की सीमा का विस्तार शायद पश्चिम, दक्षिण और पूर्वी सीमाओं के पार हो चुका था-(ए.कनिंघम - दि एश्येंट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया)।

आगे कनिंघम ने लिखा है कि हर्ष की मृत्यु के बाद उसका राज्य बिखर गया था और उत्तरी भारत में अराजकता एवं अंधकार फैलता चला गया। फलस्वरुप शूरसेन वंशज अजित के राज्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इसी क्रम में दुर्गभट्ट एवं दुर्गदामा क्रमानुसार शासक हुए।

सातवीं शताब्दी के अन्त में एवं आठवीं शती के प्रारम्भ में जैसा कि पीछे लिख चुके हैं, कन्नौज का यशोवर्मन (690-710 ई.) एक शक्तिशाली शासक हुआ और उसने समस्त उत्तरी भारत पर अपना राज्य स्थापित किया। उसने

मथुरा के साम्राज्य को भी जीता और सम्भवत: उसने शूरसेन वंशज राजाओं देवराज और वत्सदामा को मथुरा का शासक नियुक्त किया। इस पंक्ति का अन्तिम शासक वत्सदामा का पुत्र अन्यदामा हुआ। "कल्हण की 'राजतरंगिणी' के अनुसार-कश्मीर के राजा ललितादित्य ने यशोवर्मन् के राज्य को (अल्पकालिक) मथुरा सहित जीत लिया- (डा० के.डी. वाजपेयी)। कुछ समय के पश्चात् आठवीं शती के अन्त में मथुरा के तत्कालीन शूरसेन शासक के दामाद के द्वारा कश्मीर में मन्दिर का भी निर्माण कराया गया।- (एफ.एस. ग्राउस, मथुरा-ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर)

कामां शिलालेख के अनुसार मथुरा राज्य के प्रसिद्ध शूरसेनी शाखा के प्रमुख कामां के राजाओं के नाम क्रमश: इस प्रकार हैं-

1- फक्क - पत्नी देविका

2- कुलभट्ट (पुत्र) - पत्नी द्रंगनी

3- अजित (पुत्र) - पत्नी अप्सराप्रिया

4- दुर्गभट (पुत्र) - पत्नी वच्छालिका

5- दुर्गदामाँ (पुत्र) - पत्नी वच्छिका

6- देवराज (पुत्र) - पत्नी यजनिका

7- वत्सदामाँ (पुत्र)

8- अन्यदामा

आर्कियोलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया, VOL. XX , ए.कनिंघम, पृ० 59)

कनिंघम को प्राप्त पण्डित भगवानलाल इन्द्रजी द्वारा प्रदत्त एक संस्कृत शिलालेख की प्रतिलिपि में 7 शूरसेनी राजाओं के नाम मिलते हैं जो आठवीं शताब्दी का है तथा कामां की चौरासी खम्बा मस्जिद से प्राप्त हुआ। इस शिलालेख के आधार पर यदि हम वत्सदामा का काल 750 ई. से 775 ई. मानलें तो प्रथम राजा फक्क का समय लगभग 600 ई. होता है। प्रत्येक का राज्यकाल 25 वर्ष माना है।

टिप्पणी- 1- अंग्रेजों द्वारा की गई छठी सदी के आरम्भ से आठवीं सदी के अन्त तक (लगभग 600-800 ई.) की उपरोक्त एकमात्र शोध यदुवंश के इतिहास को आगे बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। जबकि भारतीय इतिहास में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है।

2- इस विवरण से यह भी स्पष्ट होता है कि लगभग 200 साल के इस काल में मथुरा का शूरसेन राज्य उत्थान-पतन के दौर से गुजरते हुए भी बरकरार बना रहा।

3- भारतीय इतिहास में मथुरा राज्य का विशेष स्थान रहा है तथा मथुरा ही यदुवंशियों का आदिकाल से मूल स्थान तथा राजधानी रही है।

राजपूत काल-

आठवीं सदी से लेकर बारहवीं सदी तक (800-1200 ई. लगभग) के काल को इतिहासकारों ने 'राजपूत काल' का नाम दिया है। राजपूत काल में मथुरा राज्य की क्या स्थिति रही थी, इस बारे में डा० प्रभुदयाल मीतल ने लिखा है कि- "नाग (चौथी शती) राजाओं के पश्चात् मथुरा राज्य को स्वाधीन रहने का बहुत कम अवसर मिला था। मथुरा के प्राचीन यादववंशियों ने भी यहाँ से हटकर अन्य स्थानों में अपने राज्य कायम कर लिये थे। उस काल में कन्नौज राज्य पर जिस राजा का अधिकार होता, मथुरा राज्य भी प्रायः उसी के शासन में रहा करता था। इस प्रकार राजनैतिक दृष्टि से तब मथुरा राज्य का कोई महत्व नहीं रहा था, किन्तु धार्मिक दृष्टि से उसकी महत्ता के कारण यहाँ के देवस्थानों में इतनी सम्पत्ति संचित हो गई थी और यहाँ के निवासी इतने समृद्ध हो गये थे कि विगत काल में हूणों द्वारा की हुई भीषण लूट की बात एक कहानी सी जान पड़ती थी। मथुरा की वह धार्मिक महत्ता और उसकी समृद्धि ही मुसलमानों के आक्रमण काल में उसके सर्वनाश का कारण हुई थी।"- (ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास)

ईस्वी नवीं शती के प्रारम्भ से कन्नौज पर गुर्जर प्रतिहार शासकों का अधिकार स्थापित हो गया। वत्सराज के पुत्र नागभट्ट ने 810 ई. के लगभग कन्नौज को जीता। मथुरा प्रदेश इस समय से लेकर दसवीं शती के अन्त तक गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य के अन्तर्गत रहा। नवीं और दशवीं शताब्दियों में कई बार भारत की प्रमुख शक्तियों में प्रभुत्व के लिए संघर्ष हुए। आक्रमणकारियों का मुख्य उद्देश्य भारत की राजधानी कन्नौज को जीतने का होता था। मथुरा को इन युद्धों में विशेष क्षति पहुँची हो, इसका पता नहीं चलता।

-ब्रज का इतिहास, प्रथम भाग- के.डी. वाजपेयी

इन दोनों विवरणों की पुष्टि अन्य उल्लेखों से भी होती है-

DURING THE NINTH CENTURY AND THE GREATER PART OF THE TENTH THE CITY WAS NO MORE THE CAPITAL OF A KING-

DOM, THE REGION MIGHT HAVE BEEN HELD BY THE YADAVAS OF BAYANA WHO HAD ESTABLISHED THEM SELVES THERE UNDER DHARMAPALA ABOUT THE BEGINNING OF THE NINTH CENTURY, PROBABLY AS FEUDATORIES OF THE GURJARA PRATIHARAS. THESE YADAVAS MIGHT WELL HAVE BEEN CONNECTED WITH THE OLDER SHURASENAS OF KAMA AND MIGHT HAVE SUCCEEDED THEM AS RULERS OF THIS AREA. - MATHURA DISTRICT GAZETTEERS, PAGE-50

अर्थात् नौवीं शताब्दी में इस मथुरा राज्य की राजधानी का बहुत बड़ा भाग निकल गया। पुनः बयाना के यादवों ने धर्मपाल के नेतृत्व में इस राज्य को अधिकार में किया, जो गुर्जर प्रतिहार शासकों के अधीन था। ये यादव कामां के शूरसेन वंशज थे और क्षेत्र के शासक के रूप में स्थापित हुए। कनिंघम ने भी VOL.XX P.60 पर इस तथ्य की पुष्टि की है।

कनिंघम लिखता है कि– इन नामों पर कोई भी सहमत नहीं होगा कि वे बयाना के यादव राजा, जो भाटों के संग्रह द्वारा प्रमाणित भी हैं, प्रायः ऐसा लगता है कि ये कामां या कदम्ब वन के प्रमुख थे और ये मथुरा के प्रसिद्ध शूरसेनियों की एकमात्र शाखा थे।

THE ONLY HINDU DESCENDANTS OF THE YADUVANSIS AT THE PRESENT DAY ARE THE JADONS OF THE SMALL STATE OF KARAULI, TO THE WEST OF THE CHAMBAL, AND THE JADONS OF SABAL GARH, OR JADONVATI, IN THE GWALIOR TERRITORY TO THE EAST OF THAT RIVER.

THE YADUVANSIS, OF COURSE, CLAIM DESCEMT FROM KRISHNA, THE ACKNOWLEDGED LORD OF MATHURA AFTER THE DEATH OF KANSA. THEIR EARLY HISTORY, THERE FORE, CONSISTS OF A NUMBER OF THE POPULAR TALES OF KRISHNA DERIVED FROM THE MAHABHARATA AND THE PURANAS. BUT SOMETHING LIKE REAL HISTORY BEGINS WITH DHARAMA PALA, THE 77TH IN DESCENT FROM KRISHNA ACCORDING TO THE LISTS OF THE CHRONICLERS. HE IS THE FIRST WHO BEARS THE NAME OF PALA WHICH HAS DESCENDED IN THE FAMILY OF THE KARAULI RAJAJ TO THE PRESENT DAY. HIS PROBABLE DATE IS ABOUT 800 A.D. HE AND HIS SUCCESSORS ARE SAID TO HAVE RESIDED IN BAYANA. - आर्कियोलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया, VOL.XX, P.5-6.- ,- ए. कनिंघम

कनिंघम लिखता है कि यदुवंश का कुछ वास्तविक इतिहास राजा धर्मपाल के साथ प्रारम्भ होता है जो कृष्ण की 77वीं पीढ़ी में आता है। वर्तमान में करौली राजाओं के नाम के साथ 'पाल' शब्द का प्रयोग धर्मपाल से शुरू हुआ। वह तथा उसके वंशज लगभग 800 ई. से बयाना में शासक के रूप में स्थापित रहे।

लगभग दसवीं सदी के मध्य में गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य बिखरने लगा। दूसरे सामंतों के साथ में यादवों ने भी उस स्थिति का लाभ उठाते हुए स्वतंत्र शासक बन गये (मथुरा गजेटियर, पृ. 50, आर.सी. मजूमदार एण्ड पुसालकर, VOL. IV, P.38)। लगभग उसी समय (एक दूसरा परिवार) जो शायद पुराने शूरसेन वंश के बयाना घराने से सम्बन्धित यादव थे, उन्होंने यमुना नदी के किनारे महावन राज्य की स्थापना की, और उन्होंने सम्पूर्ण ब्रज को जिसे हम मथुरा जिला भी कहते हैं, अपने अधीन किया। वर्तमान में स्थित कंकाली टीला (मथुरा) तथा कई तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के आधार पर जो तिथि निर्धारित की गई है, वह सं. 1038 (981 ई.) तथा दूसरी तिथि सं. 1071 (1014 ई.) वहाँ पर अंकित है।

(ग्राउस–मथुरा–ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर, मथुरा गजेटियर, P.50, मजूमदार एण्ड पुसालकर, VOL.V, P.13, आर्कियोलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया, VOL.XX, P.44–46– कनिंघम)

मथुरा नगर का राज्य जो उस समय दिल्ली राज्य के अन्तर्गत था, मथुरा के शक्तिशाली राजा कुलचन्द्र के द्वारा विशेष महत्व नहीं दिया गया। मथुरा राज्य का स्वतंत्र अस्तित्व इस बात से भी प्रमाणित होता है कि तत्कालीन राजकुमारी के लिए मथुरा के शासक को योग्य माना गया, जो अन्तिम रूप से गुजरात के राजा दुर्लभराज के द्वारा प्राप्त की गयी– (मजूमदार और पुसालकर, VOL.V, दि डायनेस्टीज हिस्ट्री ऑफ नादर्न इण्डिया,–VOL.II,– एच.सी. राय)।

मथुरा और महावन साम्राज्य के पतन के बाद पारम्परिक सूची के अनुसार उस पंक्ति के ग्यारहवें राजा जैत्रपाल के नेतृत्व में बयाना के यादव राजाओं ने अधिकार किया, जिन्होंने 11वीं शती के आधे समय तक शासन किया, जिसके उत्तराधिकारी विजयपाल हुए (1044 ई.)। विजयपाल से चौथा या पाँचवाँ शासक (1135–1160 ई.) भी विजयपाल ही था जिसका वर्णन महावन के नन्दभवन के असीखम्बागुम्बद में अंकित है। उक्त विजयपाल कन्नौज के राजा गाहडवाल वंशीय गोविन्दचन्द्र का पुत्र था। कुछ समय के लिए मथुरा पर इसका शासन रहा। ये भवन मौलिक रूप से मन्दिर प्रतीत होता है। जिसको

शायद महमूद गजनवी ने तोड़ा और जिसे बाद में मस्जिद में बदल दिया। दूसरे शिलालेख में अजयपाल के वंशज हरिपाल (1170 ई.) का इस स्थान पर नाम मिलता है। इन अभिलेखों से संकेत मिलता है कि शायद कुछ समय बाद मुस्लिमों द्वारा जीते जाने तक लगातार इसी वंश का शासन रहा।- (दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल, VOL. V, PAGE-55-56- मजूमदार एण्ड पुसालकर, ग्राउस- पेज 251, 256, आर्कियोलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया, VOL. XX, P.5-7, 42-43, 46)।

टिप्पणी- उपरोक्त विवरणों से यह प्रमाणित होता है कि-

1- चौथी शताब्दी (गुप्तकाल) से मथुरा राज्य एवं यदुवंश का क्रमिक इतिहास मिलने लगता है। चाहे किसी बड़े साम्राज्य की इकाई के रूप में या स्वतंत्र सत्ता के रूप में।

2- विदेशी यात्रियों फाह्यान, हुएन-सांग, अलबेरुनी, उत्वी, फरिश्ता आदि के यात्रा-वर्णनों से ज्ञात होता है कि मथुरा राज्य का राजनैतिक तथा धार्मिक केन्द्र मथुरा नगर ही रहा है यदुवंश का महत्वपूर्ण इतिहास आदिकाल से जुड़ा रहा है। मथुरा के बिना यदुवंश का इतिहास ही नहीं लिखा जा सकता है।

3- ज्ञात होता है कि बयाना भी मध्यकाल से ही यदुवंशियों का प्रमुख केन्द्र रहा है। यद्यपि वह मथुरा राज्य से सम्बद्ध रहा है किन्तु इस सत्य को हम अस्वीकार नहीं कर सकते हैं कि राजा विजयपाल (1044 ई.) से पूर्व भी बयाना पूर्णत: अस्तित्व में था।

4- छठी शताब्दी से आठवीं शताब्दी के मध्य मथुरा के साथ-साथ कामां नगर का भी विशेष महत्व रहा है, जहाँ यदुवंशी राजाओं की शृंखला के शासन का ब्यौरा उपलब्ध होता है। सम्भवत: उस काल में मथुरा राज्य में होने वाले निरन्तर विप्लवों को देखते हुए सुरक्षा के दृष्टिकोण से यदुवंशियों ने अपना राजनैतिक केन्द्र कामां बना लिया हो, एवं वहीं से मथुरा राज्य जो बयाना तक विस्तृत था, संचालित होता हो।

5- नवीं शताब्दी में मथुरा राज्य का राजनैतिक केन्द्र पुन: कामां से बयाना स्थानान्तरित हुआ जो पीछे लिखे उल्लेख से ज्ञात होता है।

6- लगभग दसवीं शताब्दी के मध्य में यदुवंशियों की एक शाखा ने बयाना से मथुरा के समीप महावन में आकर अपने राज्य की पुन: स्थापना की। इसका तात्पर्य है कि मथुरा राज्य के यदुवंशी शासक चौथी शती से दसवीं शती

तक राजनैतिक उथल-पुथल में अपना यथावसर स्थान बदलते रहे। मथुरा से कामां, कामां से बयाना, बयाना से फिर मथुरा-महावन तक अपना स्थान बदलते हुए अपनी सत्ता एवं अस्तित्व को बनाये रहे।

कनिंघम लिखता है कि वर्तमान अलवर, जयपुर, भरतपुर, वैराट और मचारी मत्स्य देश के अन्तर्गत थे, जबकि कामां, मथुरा और बयाना-शूरसेन जनपद के अन्तर्गत थे। शूरसेनी जादव या जदुवंशी थे जो श्रीकृष्ण और उसके शत्रु मथुरा के राजा कंस से सम्बन्धित थे। इनकी यही प्राचीन वंशावली करौली के जादों राजा तक बराबर चलती रही। (ए. कनिंघम, VOL.XX, P.2)

आगे लिखता है कि ह्वेनसांग की यात्रा के समय (635 ई.) में मथुरा का राजा शूद्र था (यद्यपि इतिहासकारों ने इसका खण्डन किया है), लेकिन केवल कुछ शताब्दियों के बाद बयाना और मथुरा दोनों पर प्राचीन जादों राजपूत पूर्णरूपेण स्थित थे, और वे विजयपाल (1043 ई.), और उसके पुत्र तहनपाल और उसके बाद अजयपाल (1150 ई.) के अधीन रहे। इस कारण से लगभग सम्पूर्ण पूर्वी राजपूताना पूर्वकाल से ही यदुवंशी या जादों राजपूतों से सम्बन्धित था। लगभग आधा अलवर का भाग, पूरा भरतपुर, करौली और धौलपुर एवं इनके अतिरिक्त ब्रिटिश कालीन जिले गुड़गाँव, मथुरा और यमुना के पश्चिम का आगरा का बड़ा भाग उनके अधिकार में था। ऐसा लगता है कि शायद करौली के नजदीक चम्बल नदी तक वर्तमान ग्वालियर राज्य के कुछ भाग पर भी अधिकार था।- (पृष्ठ, 4-5)

बयाना- श्रीपथ के यदुवंशी राजा-

"TRADITION RELATES THAT A YADU DYNASTY RULED IN BAYANA, THE MODERN BAYANA, IN THE OLD BHARATPUR STATE, RAJPUTANA THE ANCIENT NAME OF WHICH WAS SRIPATHA. THE TRADITIONAL LIST OF KINGS OF THIS DYNASTY, AS GIVEN BY THE BARDS, IS PARTLY VERIFIED BY THE EPIGRAPHIC RECORDS. THESE RECORDS PROVE THAT THE KINGDOM OF THIS DYNASTY COMPRISED THE OLD BHARATPUR STATE AND THE MATHURA DISTRICT. THE KING JAITAPALA OF THE TRADITIONAL LIST MAY BE PLACED IN THE FIRST HALF OF THE ELEVENTH CENTURY. HIS SUCCESSOR WAS VIJAYAPALA, WHO MAY BE IDENTIFIED WITH THE KING VIJAYA OF THE BAYANA INSCRIPTION, DATED A.D. 1144. VIJAYA PALA'S SUCCESSOR WAS TAHANAPALA WHO, ACCORDING TO TRADITION, BUILT THE FORT OF

TAHANGARH, 14 MILES SOUTH OF BAYANA. TAHANAPALA. WAS FOLLOWED IN SUCCESSION BY DHARAMAPALA KUNWARPALA AND AJAYAPALA. CUNNINGHAM SUGGESTS THAT THERE IS A CHRONOLOGICAL ERRORIN PLACING KUNWAR PALA BEFORE AJAYAPALA. IT IS KNOWN FROM THE **MAHABAN PRASASTI,** FOUND NEAR MATHURA, THAT **MAHARAJADHIRAJA** AJAYAPALA WAS RULING IN A.D. 1150, THE TRADITION MENTIONS HARIPALA AS THE SON AND SUCCESSOR OF AJAYAPALA. AN INSECRIPTION OF HARIPALA DATED A.D. 1170, HAS BEEN FOUND AT MAHABAN. HARIPALA WAS SUCCEEDED BY SOHAPALA. AN IMAGE INSCRIPTION OF THE REIGN OF SAHANPALA DEVA, DATED A.D. 1192, HAS BEEN DISCOVERED AT AGHAPUR, IN THE OLD BHARATPUR STATE, THE TRADITIONAL LIST DESCRIBES ANANGAPALA AS THE SUCCESSOR OF SOHAPALA OR SAHANPALA. BUT SOHAPALA'S SUCCESSOR SEEMS TO HAVE BEEN KUNWARPALA WHO ACCORDING TO TRADITION, WAS THE PREDECESSOR OF AJAYAPALA. FOR **TAJ-UL-MA ASIR** STATES THAT IN A.D. 1196 **MU'IZZ-UD-DiN** MUHAMMAD GHURI DEFEATED KUNWARPALA, THE RAI OF THANGARH (TAHANGARH), AND HANDED THE FORT OVER TO BAHA-UD-DINTUGHRIL, ANANGAPALA MAY BE TAKEN TO HAVE ASCENDED THE THRONE AFTER KUNWARPALA. ANANGAPALA WAS FOLLOWED IN SUCCESSTION BY PRITHVIPALA RAJAPALA AND TRILOKAPALA, THE LAST OF WHOM MAY BE PLACED AT THE END OF THE THIRTEENTH CENTURY A.D."- (दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, वोल्यूम-V पेज-55-56- आर.सी. मजूमदार, ए.डी. पुसालकर)

उक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि बयाना एवं मथुरा पर भाटों से प्राप्त अभिलेखों के अनुसार ग्यारहवीं शताब्दी के मध्यकाल से तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक यदुवंशी राजाओं का शासन रहा है। इसी संदर्भ में उपरोक्त ग्रन्थ के पृष्ठ 850 पर बयाना के यदुवंशी राजाओं की लिस्ट दी है जो इस प्रकार है- 1. जैतपाल 2. विजयपाल 3. तहनपाल 4. धर्मपाल 5. कुँवरपाल 6. अजयपाल 7. हरिपाल 8. सोहपाल या सहनपाल 9. अनंगपाल 10. पृथ्वीपाल 11. राजपाल 12. त्रिलोकपाल।

इसी प्रकरण के अन्तर्गत मुझे कई प्रमुख इतिहासकारों तथा भाटों द्वारा प्राप्त यदुवंशी राजाओं की वंशावलियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका उल्लेख करना परमावश्यक है। (प्रथम वंशावली)-

1. जैतपाल (11वीं शताब्दी का आरम्भ)

2. विजयपाल (1044 ई.) – बयाना/विजय मन्दिर गढ़/श्रीपथ का किला बनाया।

3. तहनपाल (1073 ई.) – तहनगढ़ का किला बनवाया

4. धर्मपाल

5. कुँवरपाल (तहनगढ़ के राय कुँवरपाल को मुहम्मद गौरी ने हराकर किला बहाउद्दीन तुगरिल को सौंप दिया)।

6. अजयपाल (1150 ई.), महावन प्रशस्ति के अनुसार मथुरा के पास शासन अर्थात् महावन में, महाराजाधिराज की उपाधि), कनिंघम ने कुँवरपाल से पहले अजयपाल का वर्णन किया है।

7. हरिपाल (1170 ई.)

8. सोहपाल/सहनपालदेव (1192 ई., अघापुर खोज के अनुसार)

9. अनंगपाल (1196 ई.)

10. पृथ्वीपाल

11. राजपाल

12. त्रिलोकपाल (13वीं शती के अन्त में)

द्वितीय वंशावली-

राजस्थान के दो भाटों द्वारा ए. कनिंघम को दो वंशावलियाँ प्राप्त हुईं जिनमें बयाना और करौली के 49 राजाओं का उल्लेख है। प्रथम वंशावली खींची चौहानों के भाट मुक्जी की पुस्तक से प्राप्त है तथा दूसरी उनके ही बयाना भाट की है। इनमें प्रत्येक राजा के समय को 23 वर्ष का शासन माना गया है। विजयपाल राजा को 12वाँ राजा लिखा है जो सम्वत् 1100 (सन् 1043 ई.) में हुआ, और हरिपाल 47वाँ राजा था जिसकी मृत्यु सन् 1850 ई. में हुई। 37 राजाओं ने लगभग 23 वर्ष प्रत्येक का शासनकाल मानकार) लगभग 850 वर्ष शासन किया। यहाँ प्रत्येक राजा के शासन का अनुपात 22 वर्ष मानकर लिस्ट दी है-

बयाना और करौली के युदवंशी राजा-

क्रम प्रायः शुद्ध समय मुक्जी के अनुसार बयाना भाट की लिस्ट

लगभग ईस्वी 800 धर्मपाल (श्रीकृष्ण से 77वीं पीढ़ी)
सिंहपाल
जगपाल
नरपालदेव
संग्रामपाल
कुंथपाल
भौमपाल
सुचपाल
पुचपाल
बिरमपाल
जैतपाल

1. 1030 (12वीं पीढ़ी पर) विजयपाल (बयाना विजयमन्दिरगढ़ किला बनाया

2. 1060 तहनपाल (तहनगढ़ किला बनाया)-
तहनपाल
क्षितिपाल
धर्मपाल
कुँवरपाल
अजयपाल
हीरापाल
सोहनपाल

3. 1090 धर्मपाल
4. 1120 कुँवरपाल
5. 1150 अजयपाल
6. 1180 हरीपाल
7. 1196 सोहपाल
8. 1220 अनंगपाल
9. 1242 प्रिथीपाल
10. 1264 राजपाल
11. 1286 त्रिलोकपाल
12. 1308 विपलपाल
13. 1330 आसलपाल
14. 1352 गुगोलपाल
15. 1374 अर्जुआपाल
16. 1396 विक्रमाजीतपाल

17.	1418 ईस्वी	अभयचन्दपाल
18.	1440	प्रिथीराजपाल
19.	1462	चन्द्रसेनपाल
20.	1484	भारतीचंद
21.	1506	गोपालदास
22.	1528	द्वारकादास
23.	1550	मुकन्ददास
24.	1572	जगपाल
25.	1594	तुलसीपाल
26.	1616	धर्मपाल
27.	1638	रत्नपाल
28.	1660	आरतीपाल
29.	1682	अजयपाल
30.	1704	रचीपाल
31.	1726	सुजाधरपाल
32.	1748	कुंवरपाल
33.	1770	श्रीगोपाल
34.	1792	मानिकपाल
35.	1814	अमोलपाल
36.	1836	हरीपाल
37.	1856	मधुपाल
38.	1879	अर्जुनपाल

टिप्पणी– 1. इन दोनों लिस्ट में दिये गये सभी राजाओं के नाम ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर प्रमाणित नहीं हैं।

2. लगभग सभी राजाओं के राज्यकाल में भिन्नता है (ऐतिहासिक प्रमाणों से)।

3. नामों को भिन्न–भिन्न तरीके से प्रस्तुत किया है। नामों में क्रमिक एकरूपता नहीं मिलती है।

4. नं. 36– हरिपाल की मृत्यु 1850 ई. में हुई। अर्थात् सन् 1850 में वह राज्याधिकारी था।

5. नं. 37- मधुपाल के राज्यकाल में बराबर सैन्य विद्रोह (बलवा) होते रहे, जिससे उसका शासन स्थिर न रह सका।

6. मथुरा पर तीन आक्रमणकारी महमूद गजनवी- सन् 1018, सिकन्दर लोदी- लगभग 1500 ई., तथा औरंगजेब- 1669 ई. के आक्रमण उक्त काल के सबसे भयानक आक्रमण थे, जिनके कारण मथुरा राज्य का भीषण सर्वनाश हुआ।

तृतीय वंशावली-

तीसरी वंशावली कवि जदुनाथ द्वारा रचित 'वृत्तविलास' से प्राप्त हुई है। कवि जदुनाथ प्रसिद्ध कवि (भाट) चंदबरदाई का वंशज था। आजकल यह पुस्तक दुर्लभ-प्राप्त है। कवि जदुनाथ ने 'वृत्तविलास' की रचना करौली के राजा गोपाल सिंह के समय में की थी। गोपाल सिंह करौली के राजा कुँवरपाल द्वितीय का पुत्र था और उसने वि.सं. 1781 से सं. 1814 तक करौली पर राज्य किया था। अतएव वृत्तविलास की रचना वि. सं. 1800 के आसपास होना अनुमान किया जा सकता है। 'वृत्तविलास' हिन्दी पिंगल का ग्रन्थ है तथा यह रचना अधिक विश्वसनीय है। कवि ने राजा गोपाल सिंह (गोपालपाल) की कीर्ति को चिरस्थायी करने के निमित्त उक्त ग्रन्थ की रचना की। उसमें राजा विजयपाल से लेकर गोपाल सिंह तक की करौली के राजवंश के 31 राजाओं के नामोंवाली जो वंशावली दी है, वह कम महत्व की नहीं है। करौली के राजा मथुरा के यादवों (जादों) के वंशधर हैं और उनका वंश बहुत प्राचीन है। यह विवरण मुझे 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (काशी)- भाग 5, सं. 1981, अंक 2, अंक 4 में छपे भारतीय प्रसिद्ध इतिहासकार राय बहादुर पण्डित गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा लिखित विस्तृत लेख से प्राप्त हुआ। 'वृत्तविलास' के अनुसार 'करौली का राजवंश' इस प्रकार है (मूल प्रति के अनुसार)-

1. विजयपाल 2. तिहुणपाल 3. धर्मपाल (प्रथम) 4. कुँवरपाल (प्रथम) 5. अजैपाल 6. हीरपाल 7. साहनपालु 8. अनंगपाल 9. पृथ्वीपाल 10. राजपाल 11. तिलोकपाल 12. बापलदेव 13. आसलदेव 14. सहसदेव 15. घूघलदेव 16. अर्जुनदेव 17. विक्रमाजीत 18. अभेचंदु 19. पिरथीराज 20. रुद्रप्रताप 21. चन्द्रसेन 22. भारथीचंद 23. गोपाल (प्रथम) 24. द्वारकादासु 25. मुकुंददास 26. जगपाल 27. छत्रपाल 28. धर्मपाल (द्वितीय) 29. रतनपाल 30. कुँवरपाल (द्वितीय) 31. गोपाल सिंह (द्वितीय)।

चतुर्थ वंशावली-

चौथी वंशावली हमें स्वर्गीय इतिहासकार श्रीदामोदर लाल गर्ग (गंगापुर सिटी) द्वारा लिखित पुस्तक 'करौली इतिहास के झरोखे से' (प्रथम संस्करण, सं. 2037) से प्राप्त हुई। उन्हें यह वंशावली करौली शासकों का दर्पण एवं सजला- श्रीकुँवर सतेन्द्र सिंह जी वी.आर. दीवान हाउस करौली की सहायता से प्राप्त हुई थी।

सजला - चन्द्रवंशीय शासकों का-

इस वंशावली का प्रारम्भ श्रीसहस्रशीर्षापुरुष से श्रीकृष्ण तक का वर्णन तो वंशावली लगभग पुराणों के अनुसार है जैसा कि पीछे हम पौराणिक वंशावली में लिख चुके हैं। अधिक विस्तार में न जाकर उसी शृंखला को श्रीकृष्ण से लेकर आगे बढ़ते हैं-

श्रीसहस्रशीर्षापुरुष.....वसुदेव-श्रीकृष्ण-

1. श्रीकृष्ण
2. प्रद्युम्न
3. अनिरुद्ध
4. वज्रनाभ
5. प्रतिबाहु
6. सुबाहु
7. रूपसेन (पुराणों में शान्तसेन)
8. शतसेन
9. सुचारु
10. क्षेमरूप
11. रुचिकराय
12. सुवृष
13. सुश्रमभूपाल
14. सुमितराय
15. दृढ़सेन
16. सुबलभूप
17. शिवजीत
18. विश्वजीत
19. रिपुजीत
20. हैहयकुमार
21. धर्मपुत्र
22. कालजीत
23. सुबलराय
24. भूरिश्रवा
25. लोकजीत
26. कुन्तिभोज
27. सहस्रजीत
28. भद्रसेन
29. सुमंतु
30. धवेश
31. श्रीनाभ
32. दिनेश
33. क्षेमधर्म
34. छत्रधर्म
35. देववर्मा
36. वीरसेन

37. सनिविजय
38. विरंचि
39. चन्द्रसेन
40. सहस्रसेन
41. वीरबाहु
42. अंकबाहु
43. भीमसेन
44. उग्रसेन
45. धर्ममूर्ति
46. देवदत्त
47. देवानीत रूचि
48. विश्वकेतु
49. विवस्वान
50. वीरबाहु
51. ब्रजबाहु
52. सुबाहु
53. अरिमर्दन
54. अतिकाल
55. आहि
56. लोकेशवीर
57. कुशविन्दु
58. शशिबिन्दु
59. संग्रामजीत
60. दर्पराय
61. हेमांगद
62. अनंग – 9
63. नंद – 66
64. विरंचि 91
65. सुनन्द 140
66. सल्य 148
67. श्रीरज 232
68. निवास 244
69. रवितेज 346
70. भद्रसेन 413
71. नन्दराय 494
72. वीरसेन 552
73. सिंधुपाल 611
74. जगतपाल 688
75. नरपाल 724
76. संग्रामपाल 772
77. केतुपाल 801
78. भूमिपाल 844
79. तुच्छपाल 872
80. इच्छपाल 936
81. ब्रह्मपाल 987
82. जइन्दपाल 1023
83. विजयपाल 1056
84. तिमनपाल 1115
85. धर्मपाल 1147
86. कुमरपाल 1158
87. अजयपाल 1170
88. हरिपाल
89. सोहनपाल 1193
90. अंगनपाल 1202
91. पृथ्वीपाल 1243
92. राजपाल
93. लोकपाल 1245
94. बाबलदेव 1273
95. आसलदेव 1311
96. सहस्त्रदेव
97. घुघलदेव 1340
98. अर्जुनदेव 1384
99. विक्रमाजीत 1418
100. अभयचन्द 1429

101. पृथ्वीराज 1460
102. उदयचन्द 1480
103. प्रतापरुद्र 1493
104. चन्द्रसेन (द्वितीय) 1506
105. भारतीचन्द 1561
106. गोपालदास 1590
107. द्वारिकादास 1626
108. मुकन्दजी 1641
109. जगमणी 1662
110. छत्रमणी 1668
111. धर्मपाल (द्वितीय) 1701
112. रतनपाल 1722
113. कुमरपाल (द्वितीय) 1745
114. गोपाल सिंह 1781
115. तुरसन पाल 1812
116. मानिकपाल 1819
117. हरबक्सपाल 1859
118. प्रतापपाल 1894
119. नृसिंहपाल 1906
120. मदनपाल 1910
121. जयसिंह पाल 1926
122. अर्जुनपाल 1932
123. भवरपाल 1942
124. भौमपाल 1985
125. गणेशपाल 2001

(इति चन्दवंशीय वंशावली)

उपरोक्त वंशावली की विवेचना से ज्ञात होता है कि सारिणी के नं. 9 से नं. 72 तक आने वाले राजाओं के नाम कल्पित लगते हैं। क्यों कि इन नामों का उल्लेख न तो पुराणों में प्राप्त होता है और न ही इतिहास में। ऐसा लगता है कि राजाओं के नामों का क्रम बनाये रखने के लिए भाटों द्वारा काल्पनिक नाम रख लिए गए हों। हाँ, नं. 73 (सिंधुपाल) से लेकर अंत तक राजाओं के नाम कुछ अंतर से पीछे लिखी वंशावलियों से मेल खाते हैं। दूसरे, राजाओं के शासनकाल में भी अन्तर मिलता है।

करौली के राजाओं की एक वंशावली मुझे पुस्तक 'क्षत्रिय वंशावली' तथा 'राजपूत वंशावली'- ठा. ईश्वर सिंह मढाड से प्राप्त हुई जो इस प्रकार है-

1. विजयपाल
2. तवनपाल
3. धर्मपाल - 1
4. कुँवरपाल - 1
5. सोहनपाल
6. त्रिलोकपाल
7. गोकुलदेव
8. अर्जुनदेव (अर्जुनपाल-1)- 1327-1361 ई.
9. विक्रमादित्य (1361-1400 ई.)
10. अभयपाल (1400-1403 ई.)
11. पृथ्वीपाल (1403-1423 ई.)
12. उदयपाल (1423-1449) ई.)
13. प्रतापरुद्र (1449-1454 ई.)
14. चन्द्रसेन (1454-1509 ई.)
15. गोपालदास -1 (1509-1571 ई.)
16. द्वारकादास (1579-1604 ई.)
17. मुकुन्ददास (1604-1622 ई.)
18. जगपाल (1622-1643 ई.)
19. छत्रपाल (1643-1655 ई.)
20. धर्मपाल-2 (1655-1674 ई.)
21. रतनपाल (1674-1688 ई.)
22. कुँवरपाल-2 (1688-1724 ई.)
23. गोपालसिंह - 2 (1724-1757 ई.)
24. तुरसमपाल (1757-1772 ई.)
25. माणकपाल (1772-1804 ई.)
26. हरबक्सपाल (1804-1837 ई.)
27. प्रतापपाल (1837-1849 ई.)
28. नरसिंहपाल (1849-1854 ई.)
29. मदनपाल (1854-1869 ई.)
30. लक्ष्मणपाल (1869-1869 ई.)
31. जयसिंहपाल (1869-1876 ई.)
32. अर्जुनपाल (1876-1886 ई.)
33. भँवरपाल (1886-1927 ई.)
34. भीमपाल (1927-1947 ई.)
35. गणेशपाल (1947)- अन्तिमराजा

पीछे लिखी सभी वंशावलियों का सूक्ष्म निरीक्षण करने से पता चलता है कि कुछ वंशावलियों में एक ही राजा के कई पुत्रों को एक ही क्रम में एक दूसरे का पुत्र लिख दिया है जिससे क्रमबद्ध-वंशावली लिखना कठिन है। दूसरे, एक ही काल में दो राजाओं को रख दिया गया है जिसने ऐतिहासिक काल का सामंजस्य नहीं हो पाता है। तीसरे भाटों के द्वारा जो राजाओं की वंशावली तथा वर्णन किया गया है वह भी कहीं-कहीं भ्रमित करता है। फिर भी उपरोक्त वंशावलियों के आधार पर एक प्रामाणिक वंशावली बनाई जा सकती है जो ऐतिहासिक- तौर पर स्वीकार्य होगी।

बौद्ध काल से लेकर सातवीं शताब्दी तक तो हमें भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न यदुवंशी राजाओं का विवरण मिलता है जिनका हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं, लेकिन सातवीं शताब्दी से हमें क्रमिक वंशावली प्राप्त हो जाती है। इसलिए सातवीं शताब्दी से वंशावली का विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत है-

यदुवंशी राजाओं की वंशावली (सातवीं शताब्दी से वर्तमान काल तक)-

(शोधपूर्ण-वंशावली)-

मथुरा राज्य
1. राजा फक्क 600 ई. लगभग
2. राजा कुलभट्ट 625 ई. लगभग
3. राजा अजित 650 ई. लगभग
4. राजा दुर्गभट 675 ई. लगभग
5. राजा दुर्गदामा 700 ई. लगभग
6. राजा देवराज 725 ई. लगभग
7. राजा वत्स दामा 750 ई. लगभग
8. राजा अन्यदामा 775 ई. लगभग

कामां

(सम्भवत: इन्हीं के वंशज आगे चलकर)

मथुरा बयाना राज्य
1. राजा धर्मपाल-1 800 ई. लगभग (श्रीकृष्ण की 77वीं पीढ़ी)
2. राजा सिंहपाल (सिंधुपाल)
3. राजा जगपाल (जगतपाल)
4. राजा नरपालदेव
5. राजा संग्रामपाल
6. राजा कुंथपाल (केतुपाल)
7. राजा भौमपाल (भूमिपाल)
8. राजा सुचपाल (तुच्छपाल)
9. राजा पुचपाल (इच्छपाल) 879 ई.
10. राजा बिरमपाल (ब्रह्मपाल) 930 ई.
11. राजा जैतपाल (जयेन्द्रपाल 966 ई.- 992 (मृत्यु)
12. राजा विजयपाल 999 ई.- 1046 ई. (श्रीकृष्ण की 88वीं पीढ़ी)
(बयाना दुर्ग का निर्माण)

लगभग 80 वर्ष का काल

13. राजा तिमनपाल (तहनपाल) 1058 ई.- 1090 ई.-
तिमनगढ़ निर्माण (12 वर्ष बाद)-
14. राजा धर्मपाल-2 1090 ई.- 1101 ई.
भिन्न 15. राजा कुंवरपाल-1 1101 ई0- 1147 ई.
(गौलारी में कुंवरगढ़ दुर्ग निर्माण)
16. राजा अजैपाल (अजयपाल) 1150 ई.-1170 ई.
17. राजा सोहनपाल (सोनपाल) 1192 ई.-1202 ई.
भिन्न 18. राजा अनंगपाल (सासलदेव) 1202 ई.-1242 ई.
19. राजा पृथ्वीपाल-1 1242 ई.-1245 ई.
20. राजा त्रिलोकपाल (त्रिलोचनपाल) 1245 ई.-1273 ई.
(तिमनगढ़ पर कब्जा)
क्षेत्रों 21. राजा पापलदेव/बापलदेव। विपलपाल- 1273 ई.-1308 ई.
22. राजाआसलदेव/आसलपाल 1308 ई.- 1311 ई.
का 23. राजाघूघलदेव/गुगोलपाल/धूगलदेव/गोकुलदेव-
1311 ई.-1327 ई.
अधि 25. राजा अरजनदेव/अरजनबली/अर्जुनदेव- 1327-1367 ई.
(सन् 1348 में करौली की स्थापना की तथा बयाना लिया।
26. राजा विक्रमाजीत 1361 ई. (सं. 1418-1439 तक)
ग्रहण 27. राजा अभयचंद (अभैचंद) 1382 ई. (सं. 1439-1460 तक)
तथा 28. राजा पृथ्वीराज (पिरथीराज)-2 1403 ई. (सं. 1460-1480 तक)
29. राजा उदयचंद 1433 ई0 (सं. 1480-1493 तक)
शा 30. राजा प्रतापबहादुर/ प्रतापरुद्र/रुद्रप्रताप 1435 ई. (सं. 1493-1506 तक)
स 31. राजा चन्द्रसेन/चन्दसेन 1449 ई. (1327-1449- 112 वर्ष दीर्घायु)
न 32. राजा भारतीचंद 1504 ई. (गद्दी का वारिस, कुंवरगढ़ी में मृत्यु)

33. राजा गोपालदास 1533 ई. (महाराजा चन्द्रसेन के समय गद्दी पर बैठा, दिल्ली अकबर दरबार की (1545 से 1569 तक शासन) की नौकरी में रहा।
34. राजा द्वारिकादास 1533 ई. (1569 में राज्याभिषेक)
35. मुकुन्ददास (मुकुटदास) 1584 ई. (सं. 1641-1662 तक)
36. राजा जगमणि/जगमन/जगपाल- 1605 ई. (शाहजहाँ काल) (सं. 1662-1688 तक)
37. छत्रमणि/छत्रमन/छत्रपाल- 1631 ई. (औरंगजेब काल)
38. राजा धरमपाल (धर्मपाल)-3 1644 ई. (सं. 1641-1662 तक) सन् 1650 में करौली राजधानी
39. राजा रतपाल (रतनपाल)- 1665 ई. (ई. 1655-1688)
40. राजा कुंवरपाल-2 1688 ई. (ई. 1688-1724)
41. राजा गोपालसिंह-2 1724 ई. (सन् 1724-1755 ई. में करौली के यदुवंशी राजा सुजानसिंह उपनाम फकीरसिंह ब्रजभाषा के उच्चकोटि के कवि हुए)
42. राजा तुरसमपाल/तुरसनपाल- 1757 ई. (गोपालसिंह के चचेरे भाई)
43. राजा मानिकपाल- 1772-1804 ई.
44. राजा हरबख्शपाल- 1804 ई. (करौली राजवंश यहीं तक है, नि:सन्तान मरा) 1805-1837 ई.
45. राजा प्रतापपाल- 1837 ई. (राव हाड़ौती को गोद लिया, अंग्रेजों ने गद्दी पर बिठाया)
46. नरसिंहपाल- 1849 ई. (हाड़ौती राव)
47. राजा भरतपाल (भैरोंपाल)- 1852-1854 ई. (पोलिटिकल एजेंट के माध्यम से शासन चला)
48. मदनपाल (मंगलपाल)- 1854-1869 ई. (नि:सन्तान, अंग्रेजों द्वारा शासन)
49. जयसिंहपाल- 1869-1871 ई. (नि:सन्तान)
50. अर्जुनपाल- 1876 ई. (राव हाड़ौती)
51. भँवरपाल- 1886-1927 ई. (राव हाड़ौती)
52. भौमपाल- 1927-1947 ई. (इस समय गणेशपाल राव हाड़ौती युवराज करौली थे)
53. गणेशपाल- 1947 ई. (इनकी गद्दी नशीनी के कुछ समय बाद देश स्वतंत्र हो गया। बाद में इन्होंने अपनी रियासत मत्स्य संघ में विलीन कर दी। इस प्रकार गणेशपाल इस शाखा के अन्तिम शासक कहे जा सकते हैं।

क रौ ली के शा स क

गणेशपाल के दो पुत्र– 1. बृजेन्द्रपाल सिंह– नि:सन्तान, राज. में विधायक रहे, हृदयगति रुकने से 1983 ई. में मृत्यु। 2. सुरेन्द्रपाल सिंह– पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र सिंह, कार दुर्घटना में मृत्यु 1982 ई. वर्तमान– श्रीकृष्णचन्द्रपाल सिंह, पुत्र– युवराज विवस्वतपाल सिंह।

नोट– 'करौली पोथी' हिन्दी अनुवाद से भी मिलान किया गया। नाम तथा समय प्राय: समान हैं।

भारतीय इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि बौद्धकाल से लेकर सातवीं शती के प्रारम्भ तक भारत में अनेक विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों ने भारत पर शासन करने की पुरजोर कोशिशे कीं, लेकिन वे भारत की अखण्डता एवं सम्प्रभुता को खण्डित नहीं कर सकीं। यहाँ तक कि वे भी अंत में हारकर भारतीय संस्कृति में ही विलीन हो गईं, जो भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। लेकिन जिस दिन से (लगभग सातवीं शती भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ, उसी समय से भारतीय इतिहास के पन्ने रक्त से लाल होने लगे तथा संस्कृति का ह्रास प्रारम्भ हो गया, हिन्दू और हिन्दुत्व खतरे में आने लगा था जो आज तक भी बरकरार है। इसी पृष्ठभूमि में यदुवंश की शृंखला को सम्बद्ध करते हुए इतिहासकारों के मत के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत है–

विश्लेषण – हर्षवर्धन काल से ग्यारहवीं शताब्दी तक –

जिस समय भारत में हर्षवर्धन का राज्य था, उसी समय अरब देश में 'इस्लाम' नामक एक नये मजहब का उदय हुआ था। उसके प्रवर्तक (571 ई.) मुहम्मद थे, और उनके उत्तराधिकारियों को '**खलीफा**' कहा गया है। इस्लाम के अनुयायी मुसलमान कहलाते हैं। खलीफा इस्लाम के सर्वोपरि धर्मगुरु और मुसलमानों के सबसे बड़े धार्मिक एवं राजनैतिक नेता रहे हैं। उन्होंने मुसलमानों को आदेश दिया कि वे इस्लाम का व्यापक प्रचार करें। उनके आदेशानुसार अरब के मुसलमान बड़े मजहबी जोश से इस्लाम के प्रचार में जुट गये, और थोड़े ही समय में पश्चिमी एशिया, दक्षिण यूरोप एवं उत्तरी अफ्रीका जैसे तीन महाद्वीपों के विभिन्न देशों में इस्लाम मजहब के साथ ही साथ इस्लामी संस्कृति को प्रसारित करने में सफल हुए थे।

इस्लाम का प्रचार-प्रसार एक ओर मुसलमान फकीरों ने किया, तो दूसरी ओर मुस्लिम सशस्त्र सैनिकों द्वारा किया गया। फकीर लोग प्रेम-मुहब्बत के साथ रजामंदी से इस्लाम का प्रचार करते थे, तो सैनिक लूट मार द्वारा जबर्दस्ती लोगों को मुसलमान बनाते थे। वे दोनों उपाय साथ-साथ चलते रहे थे। आरम्भ

में फकीरी उपाय की प्रधानता थी, बाद में सैनिक अभियान प्रमुख हो गया। मुसलमान सैनिक जिन देशों को जीतते थे, उनके निवासियों को पहले गुलाम बनाते थे, फिर उन्हें जबर्दस्ती मुसलमान बना लिया जाता था। इस प्रकार इस्लाम का व्यापक प्रचार होता रहा, और मुसलमानों की संख्या दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई। जब जबरन मुसलमान बनाये गये लोग अपने पूर्ववर्ती धर्मों में लौटना चाहते तो वे तथाकथित धार्मिक व्यक्ति उन्हें स्वीकार नहीं करते थे। उनके मतानुसार वे ऐसे अशुद्ध हो गये थे, जिनको शुद्ध करना शास्त्र विरुद्ध था। उसके फलस्वरूप जबर्दस्ती मुसलमान बनाये गये मुसलमान मन मारकर रह जाते थे, और उनकी भावना गैर मुसलमानों के प्रति बड़ी कटु हो जाती थी।

मुसलमानों का सिंध पर आक्रमण-

सर्वप्रथम मुसलमानों ने भारत के सिंध राज्य पर आक्रमण किया था। सिंध पश्चिमी सीमान्त का ऐसा भू-भाग है, जो राजस्थान के विस्तृत मरुस्थल के कारण देश के अन्य भागों से कटा हुआ रहा है। वहाँ जनसंख्या भी कम है। जिस समय मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में मुसलमानों ने सिंध पर आक्रमण किया था, (20 जून 712 ई.) उस समय वहाँ का शासक दाहिर नाम का एक हिन्दू राजा था। उसने अपने सीमित साधनों से आक्रमणकारियों का प्रतिरोध किया, और कई बार उन्हें पराजित भी कर दिया। अन्ततः उसे हार जाना पड़ा। इसका एक बड़ा कारण यह था कि पराजित मुसलमानों को अपनी शक्ति बढ़ाने की सुविधा थी, जब कि दाहिर को मरुस्थल के कारण यह सुविधा नहीं थी। फलतः सिंध राज्य पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। उन्होंने वहाँ खूब मार-काट मचाई, और वहाँ के निवासियों की धन-सम्पत्ति को लूटा तथा उन्हें गुलाम बनाया। जब उन्होंने उन्हें मुसलमान बनाने की चेष्टा की, तो उसमें उन्हें पर्याप्त सफलता नहीं मिली। इस प्रकार भारत का सिंध राज्य मुसलमानों के आक्रमण का प्रथम शिकार हुआ था। सिंध के साथ मुल्तान पर भी आक्रमणकारियों ने अधिकार कर लिया। इस प्रकार वहाँ खलीफा का प्रभुत्व स्थापित हो गया। सिंध का पराजित राजा कन्नौज के राजा यशोवर्मन का समकालीन था, जो विक्रम सम्वत् की आठवीं शताब्दी के अन्त में था।

- 'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास', डा० प्रभुदयाल मीतल

सिंध के बाद मुसलमानों ने भारत में आगे बढ़ने की बहुत चेष्टा की, किन्तु राजस्थान के गुर्जर-प्रतिहार राजाओं ने एवं राष्ट्रकूटों ने उनके आक्रमणों को विफल कर दिया था। सिंध और मुल्तान पर अरबी मुसलमानों का शासन प्रायः

150 वर्ष तक रहा था, किन्तु वे चेष्टा करने पर भी इस देश के किसी अन्य भाग पर अधिकार नहीं कर सके थे। अंत में भारत का वह भाग भी अरबों की पराधीनता से मुक्त हो गया था। सिंध की पराजय का प्रभाव भारत के अन्य भागों पर कुछ भी नहीं पड़ा था। अत: उस काल के भारतीय राजा विदेशी आक्रमण के उस संकट के खतरे को नहीं समझ सके। वे उसकी ओर से उदासीन होकर आपस में ही लड़ते-झगड़ते रहे थे।

जब पश्चिमी सीमा की ओर से भारत के आंतरिक भाग में पहुँचना सम्भव नहीं हुआ, तब मुसलमानों ने पश्चिमी-उत्तरी सीमान्त से आक्रमण करना आरम्भ किया। उधर से आक्रमण करने वाले वे तुर्क जाति के लोग थे जो कुछ समय पहले मुसलमान हो गये थे। उनके एक नेता सुबुक्तगीन ने 977 ई. में अफगानिस्तान के गजनी नगर पर अधिकार कर लिया था। उसके बाद वह भारत पर आक्रमण करने का आयोजन करने लगा, किन्तु वहाँ के 'हिन्दू शाही' राजाओं ने उसके उद्देश्य को सफल नहीं होने दिया था।

`हिन्दू शाही' राजाओं की वंश-परम्परा और उनका मुसलमानों से संघर्ष-

मुसलमानों के आरम्भिक आक्रमणों को रोकने में भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा के 'हिन्दू शाही' राजाओं ने बड़ा संघर्ष किया था। भारतीय इतिहास में इस संघर्ष का विशेष महत्व है। उनके राज्य की सीमाएँ चिनाब नदी से हिन्दु कुशपर्वत तक थी। इस प्रकार राज्य की स्थिति ऐसी थी कि पश्चिमोत्तर से भारत पर आक्रमण करने वालों का प्रथम प्रहार उन्हीं को सहन करना पड़ता था। जब से मुसलमानों का सिंध राज्य पर आक्रमण हुआ, तब से महमूद गजनवी के काल तक वह **'हिन्दू शाही'** राज्य अकेला ही मुसलमान आक्रमणकारियों का सामना करता रहा था। इस प्रकार उसने प्राय: तीन सौ वर्ष तक मुसलमानों को भारत में प्रवेश नहीं करने दिया था। इतिहासकारों ने हिन्दू शाही राजाओं के प्रतिरोध को तो बड़ा महत्व दिया है, किन्तु वे उनकी वंश-परम्परा पर प्रकाश डालने में असमर्थ रहे हैं। वे राजागण किस वर्ण अथवा जाति के थे और उनका उस प्रदेश में कब से निवास था, इसका प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता है।

हिन्दू शाही राजाओं की वंश-परम्परा के बारे में इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं, लेकिन डा० प्रभुदयाल मीतल जी ने 'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास' ग्रन्थ में इस प्रकार उल्लेख किया है-

राजस्थान के जैसलमेर राज्य के विगत भाटी राजाओं की वंश-परम्परा का उल्लेख करते हुए बतलाया गया है कि वे श्रीकृष्ण की वंश परम्परा में उन यादवों के वंशज थे, जो शूरसेन राज्य से इधर आ बसे थे। उसी प्रसंग में यह भी बतलाया गया है कि उनमें से बहुत से यदुवंशी भारत के पश्चिमोत्तर भाग में जाकर बस गये थे, और उन्होंने अपने राज्य कायम किये थे। श्रीकृष्ण की 12वीं पीढ़ी में गज नामक एक राजा हुआ। जिसने खैबर घाटी के पार एक गढ़ बनवाया था, जो उसके नाम से 'गजनी' कहलाता है। राजा गज की नवीं पीढ़ी में राजा मर्यादपति हुआ, जिसने गजनी से लेकर पंजाब तक शासन किया था। मुसलमानों के आक्रमण काल में उसकी वंश परम्परा के यदुवंशियों ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए बड़ा संघर्ष किया था किन्तु उनमें से बहुतों को बलात् मुसलमान बना लिया गया था। वहाँ रहने वाले चगताई, बलोच और पठान उन्हीं यदुवंशियों की सन्तान हैं। (ब्रज का इतिहास,- प्रथम भाग, डा० कृष्णदत्त वाजपेयी)। इस उल्लेख से समझा जा सकता है कि हिन्दू शाही राजा भी उन यदुवंशियों की परम्परा में ही होंगे। इस प्रकार उनका श्रीकृष्ण के वंशज होने के कारण मथुरा के प्राचीन यादव राजाओं से पारिवारिक सम्बन्ध जुड़ जाता है।

इस प्रकार यादव लोग सातवीं शती के अंत तक मुस्लिम देशों में शासन की हैसियत से रहते रहे।

आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुहम्मद-बिन-कासिम के नेतृत्व में सिंध पर जो अरब-आक्रमण हुआ था उसका कोई स्थायी परिणाम नहीं हुआ। अरबों का राज्य सिंध और मुल्तान के पूर्व में नहीं फैल सका तथा उनकी शक्ति शीघ्र ही क्षीण हो गई। उनके इस अधूरे कार्य को तुर्कों ने पूरा किया। तुर्क चीन की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं पर निवास करने वाली एक असम्य एवं बर्बर जाति थी। जब अरब के उमय्यावंशी शासकों ने इस्लाम धर्म का प्रचार मध्य एशिया की ओर किया तो तुर्क भी इस्लाम धर्म के सम्पर्क में आये। वे अत्यन्त खूँखार एवं लड़ाकू होते थे। उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया तथा इसका प्रचार पूरे जोर-शोर के साथ करने में जुट गये। उनका उद्देश्य एक विशाल मुस्लिम-साम्राज्य स्थापित करना था।

(प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति- के.सी. श्रीवास्तव, पृ. 614)

कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव आगे लिखते हैं कि- "भारत में सबसे पहले जो तुर्क आक्रमणकारी आये, वे गजनी के शासक कुल से सम्बन्धित थे। 962 ई. में अलप्तगीन नामक एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति ने गजनी में एक स्वतंत्र तुर्की राज्य

की स्थापना की। उसके दामाद सुबुक्तगीन (नासिरुद्दीन) ने उसके वंश का अंत कर 977 ई. में गजनी की राजगद्दी हथिया ली। वह एक शक्तिशाली शासक था जो भारत पर आक्रमण की योजनाएँ तैयार करने लगा। सुबुक्तगीन के काल में 'हिन्दू शाही' वंश के पंजाब के राजा का नाम जयपाल था।

तदुपरान्त धर्मयुद्ध करना अपना कर्तव्य मानते हुए सुबुक्तगीन ने जयपाल की सीमाओं पर स्थित अनेक किलों पर अधिकार कर (978 ई.) अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ानी आरम्भ कर दी। जयपाल ने भी उसके मुकाबले के लिए उसकी योजनाओं को प्रारम्भ में ही विफल करने के उद्देश्य से (986-87 ई.) गजनी से मिलने वाली अपनी सीमाओं पर स्थित किसी किले के पास डट गया। अल-उत्बी कहता है कि दोनों दलों के बीच होने वाली मुठभेड़ों से युद्ध-स्थल लहू-लुहान हो गया, किन्तु किले पर यमीनियों का अधिकार न हो सका। कई दिनों तक युद्ध चलता रहा तथा किसी भी पक्ष की विजय न हो सकी। इसी बीच एक भयानक हिमवर्षा से जयपाल की मैदानी सेनाओं को बड़ी भारी क्षति हुई जिसके फलस्वरूप जयपाल को अत्यन्त अपमान जनक संधि करनी पड़ी। संधि-प्रस्ताव के अनुसार 10 लाख दीनार, 50 हाथी तथा कुछ प्रदेश देने का वचन दिया, किन्तु कुछ दिनों के बाद उसने उस संधि की अपमान जनक शर्तों को स्वीकार करने से मना कर दिया। उत्बी का कथन है कि- संधि प्रस्ताव के अन्तिम शब्द थे 'तुमने भारतीयों के इस उत्तम चरित्र को सुना और जाना है कि किस प्रकार अत्यन्त घोर स्थिति में भी वे विनाश एवं मृत्यु से नहीं डरते। अपमानित करने वालों से बचने का यदि उनके पास कोई उपाय नहीं होता है तो वे उनके विरुद्ध तलवार की धार पर चढ़ जाते हैं। अपनी प्रतिष्ठा और यश के लिए हम आग पर मांस की तरह भुन जाने अथवा तलवार पर सूर्य की किरणों की तरह चमकने को तैयार रहते हैं।' सुबुक्तगीन के पास यह सन्देश भेजने वाले उस वीर राजा ने उपयुक्त कठोर शर्ते मानी होंगी, इसमें सन्देह प्रतीत होता है। वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि युद्ध अन्त करने की चाहे जो भी शर्तें रही हों, दोनों ही पक्ष उनका स्थायी पालन करने को तैयार नहीं थे, विशेषत: उस स्थिति में जब कि सुबुक्तगीन अपनी विजय-योजनाओं को त्यागने के लिए तैयार नहीं था। कदाचित दोनों ही पक्ष युद्ध के उस प्रथम दौर की भयंकरताओं से थोड़े समय के लिए राहत चाहते थे। जो भी हो, यमीनियों ने थोड़े ही समय बाद जयपाल के विरुद्ध संधि की शर्तों की तथा कथित अवहेलना का बहाना बनाकर 'लमगान को वीरान बना डाला', 'अनेक अन्य क्षेत्रों को जीत लिया', 'मन्दिरों को मस्जिद बना डाला' तथा वे पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को मारते हुए एवं

गुलाम बनाते हुए आगे बढ़ने लगे। फरिश्ता कहता है कि जयपाल ने उसके मुकाबले के लिए 991 ई. कुछ मित्र राजाओं की सहायता से गजनी पर पुनः आक्रमण किया। किन्तु अपने शत्रु की कुशल रणनीति और मोर्चेबन्दी के सामने वह हारा और बची-खुची सेना लेकर पीछे हट गया। इस विजय के फलस्वरूप सुबुक्तगीन ने पेशावर तक के भूभाग पर अपना अधिकार कर लिया। 997 ई. में सुबुक्तगीन की मृत्यु हो गयी। जयपाल का सुबुक्तगीन से कई बार युद्ध हुआ था। (उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास- डा० विशुद्धानन्द पाठक, पृ. 220-222)

सुबुक्तगीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महमूद 998 ई. में जब गजनी का शासक बना तब उसने एक विशाल सेना के साथ जयपाल पर आक्रमण कर उसे पराजित किया था, परिणामस्वरूप हिन्दू शाही राजाओं का परम्परागत राज्य प्रायः समाप्त हो गया और तुर्क आक्रमणकारियों द्वारा भारत में प्रवेश करने का मार्ग साफ हो गया।

डा० आशीर्वादीलाल ने लिखा है, '**हिन्दू शाही**' राज्य एक बाँध की भाँति तुर्की आक्रमणों की बाढ़ को रोके हुए था। उसके टूट जाने से समस्त उत्तरी भारत मुसलमानी आक्रमणों की बाढ़ में डूब गया। महमूद गजनवी पहिला मुसलमान आक्रमणकारी था, जिसने सर्वप्रथम भारत के आन्तरिक भाग में दूर-दूर तक जाकर भीषण लूटमार की थी।

महमूद गजनवी-

महमूद यमीनी वंश का तुर्क सरदार था और गजनवी के शासक सुबुक्तगीन का पुत्र था। सुबुक्तगीन की मृत्यु के पश्चात्-महमूद 998 ई. में गजनी का शासक बना। राज्यारोहण के समय उसकी अवस्था 27 वर्ष थी। महमूद बचपन से ही अपने देश के व्यापारियों द्वारा भारतवर्ष की अपार समृद्धि और धन-दौलत के विषय में सुनता रहा था। उसके पिता ने एक बार '**हिन्दू शाही**' राजा जयपाल के राज्य को लूटकर प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त की थी, अतः महमूद भी भारत की दौलत को लूटकर मालामाल होने का स्वप्न देखा करता था। अपने मजहबी जोश के कारण वह भारत के विरुद्ध '**जिहाद**' (धर्मयुद्ध) छेड़कर वहाँ के लोगों को मुसलमान बनाने के लिए भी बड़ा लालायित था। अपने इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उस काल की प्रथा के अनुसार उसने बगदाद के खलीफा से मान्यता प्राप्त की और उसने यह प्रतिज्ञा भी की थी कि वह प्रतिवर्ष भारत पर एक आक्रमण करेगा। मध्य एशिया में अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए उसे

धन की भी आवश्यकता थी जो भारत से आसानी से प्राप्त हो सकता था। अत: इस्लाम धर्म के प्रचार तथा धन प्राप्त करने की लालसा से उसने भारत पर अनेक आक्रमण किये। महमूद गजनवी के आक्रमणों की चुनौती साधारण नहीं थी, वह भी ऐसे समय जब उत्तरी भारत राजनीतिक अव्यवस्था का शिकार हो रहा था। वह इस देश में दूर-दूर तक धावा मारकर लूटमार करने वाला पहिला मुसलमान शासक था। उसने 17 बार भारत पर आक्रमण किया था और यहाँ की अपार सम्पत्ति को वह लूटकर गजनी ले गया था। उसके आक्रमण और लूटमार के काले कारनामों से तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों के पन्ने भरे पड़े हैं।

महमूद का प्रथम भारतीय आक्रमण पश्चिमी भारत के शाही राजा जयपाल के विरुद्ध (29 नवम्बर सन् 1001) में हुआ था। पेशावर में दोनों के बीच एक घमासान युद्ध हुआ जिसमें जयपाल की पराजय हुई। अन्त में 15000 हिन्दू सैनिक मारे गये और जयपाल अपने कई सेनापतियों एवं सम्बन्धियों के साथ पकड़ा गया। महमूद ने उसके गले की बहुमूल्य रत्नजटित माला तथा उसके साथियों के आभूषण उतरवा लिये। (उत्बी ने उस माला का मूल्य 20 लाख दीनार तथा जयपाल के अन्य साथियों के आभूषणों का मूल्य 40 लाख दीनार बताया है)। उसके अतिरिक्त उसे लूट का बहुत अधिक सामान तथा 'खुरासान से भी बड़े और अधिक उपजाऊ एक भारतीय प्रान्त पर अधिकार मिला। जयपाल को अनेक प्रकार से अपमानित किये जाने के बाद 50 हाथियों की भेंट के बदले मुक्त कर दिया गया (फरिश्ता का कथन है कि जयपाल को अपनी मुक्ति के लिए महमूद के पास बहुत अधिक धन और हाथियों की भेंट प्रतिवर्ष भेजना स्वीकार करना पड़ा) अपनी वृद्धावस्था में इस अपमान से जयपाल का हृदय व्याकुल हो उठा और अपनी गद्दी अपने पुत्र आनन्दपाल को देकर स्वयं प्रज्ज्वलित चिताग्नि में वह जीवित ही जलकर मर गया। पश्चिमी पंजाब तथा लाहौर पर महमूद का अधिकार हो गया।

सन् 1001-1002 ई. में आनन्दपाल शाही राज गद्दी पर आसीन हुआ। उस समय की राजनीतिक स्थिति उसके लिए अत्यन्त भयावह थी। आनन्दपाल और उसके वंशज त्रिलोचनपाल तथा भीमपाल ने कई बार महमूद से युद्ध किया, किन्तु सदैव उन्हें पराजित ही होना पड़ा। सन् 1014 ई. में हिन्दू शाही राजाओं का परम्परागत राज्य समाप्त हो गया।

हिन्दू शाही राजाओं ने अपनी जान की बाजी लगाकर महमूद को भारत के आन्तरिक भागों में बढ़ने से रोक रखा था, किन्तु जब उनका राज्य समाप्त हो

गया, तब महमूद को खुला मार्ग मिल गया और बाद के आक्रमणों में उसने मुल्तान, लाहौर, नगरकोट, थानेश्वर, और कालिंजर तक का विशाल भू-भाग रौंद डाला था, जिसमें उसने खूब मारकाट और लूट-खसोट की थी तथा भारतीयों को जबर्दस्ती मुसलमान बनाया था। उसका नवाँ (कुछ लेखकों के अनुसार बारहवाँ) आक्रमण 2 दिसम्बर 1018 ई. में कन्नौज राज्य के विरुद्ध हुआ था। उसी अवसर पर उसने मथुरा नगर पर भी आक्रमण कर उसे बुरी तरह लूटा था।

मथुरा की लूट का अभियान और महावन का युद्ध-

मथुरा नगर को लूटने से पहले महमूद गजनवी को यहाँ एक भीषण युद्ध करना पड़ा था। वह युद्ध मथुरा के निकटवर्ती महावन में वहाँ के शासक कुलचन्द्र के साथ हुआ था। महमूद के मीरमुंशी अल-उत्बी ने अपनी पुस्तक 'तारीखे यामिनी' में इस आक्रमण का विस्तृत वर्णन किया है, जिससे निम्नलिखित बातें ज्ञात होती है- "महावन में उस समय कुलचन्द्र (कूलचन्द) राजा का किला था। (सम्भवत: इस समय मथुरा प्रदेश का राजनैतिक केन्द्र महावन ही था)। यह राजा बड़ा शक्तिशाली था और उससे कोई विजय प्राप्त न कर सका था। उसका राज्य बहुत बड़ा था। वह अपार धन तथा एक बड़ी सेना का स्वामी था और उसके सुदृढ़ किले को कोई भी दुश्मन न नहीं जीत सका था। उसको अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा था। जब उसने सुल्तान महमूद की चढ़ाई की बाबत सुना कि महमूद उस पर आक्रमण करने के लिए आ रहा है तो अपनी फौज इकट्ठी करके मुकाबले के लिए तैयार हो गया। अत्यन्त वीरतापूर्वक युद्ध करने पर भी उसकी सेना शत्रु को हटाने में असफल रही और सैनिक गढ़ से निकलकर भागने लगे ताकि वे यमुना नदी पारकर अपनी जान बचा सकें। जब कुलचन्द्र के लगभग 50,000 (पचास हजार) आदमी मारे गये या यमुना में डूब गये, तब कुलचन्द्र ने पहले अपनी रानी को और फिर स्वयं अपने को भी तलवार से समाप्त कर दिया। सुल्तान को इस विजय से 185 बढ़िया हाथी तथा अन्य माल हाथ लगा।"

(ब्रज का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 130-डा० कृष्णदत्त वाजपेयी)

महावन किले का निर्माण मेवाड़ (चित्तौड़) के राणावंशीय सरदार 'राणा कटेह ने कराया था, किन्तु मैनपुरी जिले में प्रचलित परम्परा के अनुसार राणा कटेह, को जब मुसलमान आक्रान्ताओं ने स्वदेश से बाहर निकाल दिया तो उसने महावन के राजा 'दिगपाल' के यहाँ शरण ली। तत्पश्चात् उसके पुत्र कान्ह

कुँवर और दिगपाल की पुत्री में परस्पर प्रेम हो गया और वे परिणय-सूत्र में बँध गये। राणा कटेह के मारे जाने के पश्चात् उसका पुत्र महावन (राज्य) का शासक बना। उसने अपने समस्त नगर (महावन) को अपने कुल-पुरोहित पाराशर गोत्रीय ब्राह्मणों को अनुदानित कर दिया, जो आज भी विशेष उपाधि 'चौधरी' धारण किये हुए हैं। ब्रज के प्रमुख 12 वनों में महावन का उल्लेख है।

- (ब्रजनन्दिनी मासिक, मार्च-अप्रैल 2012- डा० प्रेमदत्त मिश्र के लेख से उद्धृत

नोट- महावन का तत्कालीन राजा सम्भवत: यदुवंशी हो।

फरिश्ता ने भी उस युद्ध का वर्णन इस प्रकार किया है- "मेरठ से आकर सुल्तान ने महावन के दुर्ग पर आक्रमण किया था। महावन के शासक कुलचन्द्र से उसका सामना हुआ। उस युद्ध में अधिकांश हिन्दू सैनिक यमुना नदी में धकेल दिये गये थे। राजा ने निराश होकर अपने स्त्री-बच्चों का स्वयं वध किया और फिर अपना भी काम तमामकर डाला। दुर्ग पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। महावन की लूट में उसे प्रचुर धन-सम्पत्ति तथा 80 हाथी मिले थे। महावन को जीतने के बाद महमूद ने मथुरा पर आक्रमण किया।"

(ब्रज का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 131- डा० कृष्णदत्त वाजपेयी)

इसी प्रकरण में डा० विशुद्धानन्द पाठक ने अपनी पुस्तक 'उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास' में '**इलियट एण्ड डाउसन**', जिल्द 2 का ब्यौरा देते हुए लिखा है कि- "2 दिसम्बर 1018 ई. को 30 हजार सैनिकों के साथ यमुना नदी पारकर महमूद बरन (बुलन्दशहर) के किले पर चढ़ गया, जहाँ के राजा हरदत्त ने आतंकित होकर उसकी अधीनता तो मान ही ली, स्वयं भी मुसलमान बन गया। किन्तु महावन (मथुरा जिला) का कुलचन्द्र भागने वाला नहीं था और लड़ते-लड़ते जब उसने अपनी सफलता और मर्यादा रक्षा की आशा छोड़ दी तो स्वयं अपनी ही तलवार से अपना और अपनी स्त्री का प्राणान्त कर डाला। उसके बाद महमूद मथुरा के मन्दिरों को लूटता और तोड़ता कन्नौज पर 20 दिसम्बर 1018 ई. को जा टूटा, किन्तु राय राजपाल (राज्यपाल) भयभीत होकर गंगा के पार उसके पूर्वी किनारे पर स्थित बारी भाग गया और तुर्कों को कन्नौज नगर की खुली लूट, महलों और मन्दिरों के विनाश तथा रक्षक विहीन नागरिकों की हत्या अथवा बलात् धर्म परिवर्तन कराने का बिना प्रतिरोध मौका मिल गया।"

(उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास- डा० विशुद्धानन्द पाठक, पृ. 181)

वारण (बुलन्दशहर) के राजा हरदत्त के बारे में प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीगौरीशंकर हीराचंद ओझा जी ने अपनी पुस्तक 'राजपूताने का प्राचीन इतिहास' में भी उल्लेख किया है।) पृष्ठ 219)

इतिहासकारों ने राजा हरदत्त को यदुवंशी बताया है। राजा हरदत्त का उल्लेख डा० प्रभुदयाल मीतल ने 'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास', पृष्ठ 304 पर भी किया है।

महावन का राजा कुलचन्द्र-

महमूद गजनवी जैसी विशाल शक्ति के साथ भीषण युद्ध करने वाले योद्धा कुलचन्द्र के व्यक्तित्व पर तत्कालीन लेखकों ने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है, जबकि समस्त अर्वाचीन भारतीय तथा विदेशी प्रसिद्ध इतिहासकारों ने भारत के इतिहास में इस योद्धा का शोधात्मक वर्णन किया है। अत: उसका शोधात्मक वर्णन प्रस्तुत है-

मथुरा में लूटमार करने से पहले महमूद गजनवी को एक वीर सेनानायक से भीषण युद्ध करना पड़ा था। अल उत्बी ने उसका नाम कूलचंद (कुलचन्द्र) लिखा है, और उसके सुदृढ़ दुर्ग, मन्दिर-भवन आदि तथा उसकी विशाल सेना का आश्चर्यजनक वर्णन किया है।

श्रीयुगल किशोर चतुर्वेदी ने करौली के यादव राजाओं का उल्लेख करते हुए उनकी परम्परा मथुरा के राजाओं से सम्बन्धित बतलाई है। यदि वह ठीक है, तो उससे कुलचन्द्र के अस्तित्व और उसकी वंश-परम्परा पर प्रकाश पड़ सकता है। श्रीचतुर्वेदी ने लिखा है- "प्राचीन ख्यातों से सिद्ध होता है कि विक्रम सम्वत् 936 (सन् 879 ई.) में इच्छपाल नामक एक यादव नरेश मथुरा का राजा था। उसके दो पुत्र ब्रह्मपाल तथा विनयपाल हुए। इच्छपाल के बाद ब्रह्मपाल मथुरा का शासक हुआ तथा उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र जयेन्द्रपाल (इन्द्रपाल) वि.सं. 1023 (सन् 966 ई.) में गद्दी पर बैठा और सं. 1049 (सन् 992 ई.) में उसका देहान्त हो गया। उसके ग्यारह पुत्रों में से ही एक महाराजा विजयपाल थे, उन्हीं महाराज विजयपाल ने अपनी राजधानी मथुरा से हटाकर वहाँ से लगभग 50 मील दूर पश्चिम की ओर, प्राचीन श्रीपथ तथा वर्तमान भरतपुर जिले के अन्तर्गत बयाना के समीप की पहाड़ी पर स्थापित की। उन्होंने वहाँ वि.सं. 1097 (सन् 1040 ई.) में 'विजय मन्दिर गढ़' नाम से एक सुदृढ़ और विशाल दुर्ग का निर्माण किया, जो आज भी वहाँ उसी स्थिति में खड़ा हुआ अपनी

अनुपम अजेयता का प्रमाण प्रस्तुत कर रहा है। राजधानी के उस स्थानान्तरण का कारण उसको पर्वत श्रेणियों के मध्य एक सुरक्षित स्थान पर स्थापित करना ही था, ताकि वह आये दिन के तत्कालीन मुसलमानी आक्रमणों का शिकार बनने से बच सके। महाराजा विजयपाल अपने समय के एक बड़े प्रबल प्रतापी नरेश हुए, जिनको तत्कालीन शिलालेखों में "महाराजाधिराज परम भट्टारक' लिखा है।" (ब्रज भारती, वर्ष 12 अंक 4, पृ. 21-22)

डा० प्रभुदयाल मीतल ने उक्त उल्लेख की विवेचना करते हुए लिखा है कि- "प्राचीन ख्यातों के उक्त विवरण को यदि सत्य माना जाय, तो जयेन्द्रपाल (इन्द्रपाल) के 11 पुत्रों में से किसी एक को कुलचन्द्र समझा जा सकता है। सम्भव है कि उपनाम कुछ और हो। उसके भाई विजयपाल को यहाँ से हटकर अपनी राजधानी अन्यत्र बसाने की आवश्यकता ही इसलिए हुई कि उनका परम्परागत राज्य महमूद गजनवी के आक्रमण से संकटग्रस्त हो गया था। इस प्रकार कुलचन्द्र को यादव वंशीय राजा जयेन्द्रपाल (इन्द्रपाल) का पुत्र और सम्भवत: उत्तराधिकारी मानना समीचीन होगा। वह मथुरा राज्य का स्वामी था और दुर्गसहित उसकी सैनिक छावनी महावन में थी। सम्भव है कि सन् 1018 ई. में राजा कुलचन्द्र की मृत्यु के बाद मथुरा राज्य पर जो महमूद के आक्रमण से नष्ट प्राय: हो चुका था, सन् 1043 ई. विजयपाल राजा के रूप में विद्यमान रहा था, तथा उत्तरी भारत पर महमूद के बार-बार आक्रमणों से भयभीत होकर उसने बयाना के लिए प्रस्थान किया था।

टिप्पणी- राजा जयेन्द्रपाल (सन् 992 ई.) की मृत्यु के बाद उसके पुत्र विजयपाल को मथुरा राज्य का शासक बताया जाता है, और सन् 1040 में मथुरा में उसकी मौजूदगी बताई जाती है। जबकि इस काल के (सन् 992 से 1040 तक) मध्य में महावन पर यदुवंशी राजा कुलचन्द्र (सन् 1017-18) के शासन का सभी इतिहासकारों ने विस्तृत वर्णन किया है। कुलचन्द्र की मृत्यु के बाद विजयपाल मथुरा का शासक कब रहा इसका उल्लेख किसी भी इतिहासकार ने नहीं किया है। उस समय मथुरा राजधानी थी तथा महावन उसकी सैनिक छावनी थी। महाराजा जयेन्द्रपाल ने अपने पूर्व राज्य बयाना से आकर महावन को स्थापित किया था। इसका उल्लेख मिलता है। सम्भवत: उसने राजा कुलचन्द्र को महावन में तथा विजयपाल को मथुरा में स्थापित किया हो, लेकिन महमूद के द्वारा मथुरा विध्वंस के समय उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

यद्यपि महमूद के आक्रमण से वह राजवंश बिखर गया, कुलचन्द्र की मृत्यु हो गयी और विजयपाल अन्यत्र चला गया, फिर भी शेष भाईयों में से किसी का वहाँ राज्य बने रहने की सम्भावना जान पड़ती है, चाहे उसकी स्थिति कितनी ही दुर्बल क्यों न हो। महावन से प्राप्त एक प्रशस्ति-अभिलेख से ज्ञात होता है कि सं. 1207 (सन् 1150 ई.) में वहाँ पर अजयपाल और सं. 1227 (सन् 1170 ई.) में हरपाल नामक राजाओं का शासन था। वे राजा कुलचन्द्र के ही वंशज होंगे। उस काल में यादव राजवंश के जो व्यक्ति मथुरा से हटे थे उन्होंने कामवन, बयाना और करौली में विविध राज्यों की स्थापना की थी, तथा वहाँ की पहाड़ियों पर उन्होंने सुदृढ़ दुर्ग, दर्शनीय देवालय और सुन्दर सरोवर आदि का निर्माण कराया था। कालान्तर में वे राजा भी आक्रमणकारियों द्वारा संकट ग्रस्त हुए थे।"

यादव राजा कुलचन्द्र उसके वंश का महत्व इसलिए अधिक है कि मथुरा के इतिहास में कृष्णकालीन अथवा उनके बाद के यादव राजाओं के पौराणिक विवरण के बाद उसी यादव वंश की स्वतंत्र राज्यसत्ता का ऐतिहासिक उल्लेख मिलता है और वह भी एक समकालीन विदेशी लेखक (अलउत्बी) द्वारा किया हुआ। उस राजवंश से पहिले मथुरा राज्य पर जिन महान् राजाओं का शासन रहा था, वे नाग राजाओं को छोड़कर सभी दूसरे स्थानों के थे। मथुरा राज्य तो उनके विशाल साम्राज्य का एक भाग मात्र था। बाद के राजाओं का भी वर्णन हमें ख्यातों, लोक कथाओं, भाटों, जगाओं एवं पुरातात्विक स्रोतों से ही प्राप्त होता है।

श्रीगौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने भी पुस्तक 'राजपूताने का प्राचीन इतिहास' पृष्ठ 219 पर महावन के राजा कुलचन्द्र तथा महमूद के मध्य हुए युद्ध का कुछ भिन्न प्रकार से संक्षेप में वर्णन किया है जिसमें युद्ध न होकर तकरार लिखा है।

वरन (बुलन्दशहर) का उल्लेख आर्कियोलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया, V.XX, P.34-ए. कनिंघम, में भी मिलता है।

'दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, वोल्यूम-V- 'दि स्ट्रगल फार एम्पायर पृष्ठ 13-14 में आर.सी. मजूमदार ने इस प्रकार ब्यौरा दिया है-

AFTER A LONG AND TEDIOUS JOURNEY THROUGH FORESTS AND JUNGLES, THE SULTAN REACHED THE YAMUNA AND CROSSED IT ON 2ND DECEMBER, 1018. HAVING OVERCOME

SOME HILL-FORTS ON THE WAY HE REACHED BARAN, MODERN BULANDSHAHAR, IN U.P. THE RULER OF THE PLACE, HARDAT, WHO WAS FILLED WITH ALARM AT HIS APPROACH, DID NOT PUT UP ANY RESISTANCE AGAINST HIM; UTBI STATES THAT HARDAT SURRENDERED TO MAHMUD WITH 10,000 MEN AND WAS EVEN WILLING TO EMBRACE ISLAM TO SAVE THEM FROM DISASTER, GARDIZI AND NIZAMUD-DUN AHMAD, HOW EVER, RELATE THAT HARDAT FLED AWAY, LEAVING THE FORT IN CHARGE OF HIS FOLLOWERS. THE GARRISON FOUND THEIR POSITION UNTENABLE AND PURCHASED PEACE BY PAYING THE SULTAN 1,000,000 DIRHAMS AND 30 ELEPHANTS, FROM BARAN MAHMUD ADVANCED TO ATTACK MAHABAN, ON THE YAMUNA, IN THE MATHURA DISTRICT. IT WAS AT THAT TIME RULED BY A CHIEF NAMED KULACHAND, WHO OWNED A LARGE NUMBER OF FORTS AND MAINTAINED A STRONG ARMY. MANY NEIGH BOURING RULERS HAD TO SUBMIT TO HIS MILITARY POWER. IT IS KNOWN FROM SOME EPIGRAPHIC RECORDS THAT IN THE ELEVENTH AND TWELETH CENTURIES MAHABAN AND ITS ENVIRONS WERE RULED BY THE YADU DYNASTY, AND KULACHAND WAS POSSIBLY A MEMBER OF THIS FAMILY. AS SOON AS MAHMUD INVESTED MAHABAN, KULACHAND, ALONG WITH HIS ARMY AND ELEPHANTS, RETREATED TO FORT IN A DENSE FOREST, AND KEPT EVERY THING READY FOR BATTLE. THE SULTAN, AFTER A CAREFUL SEARCH, DISCOVERED THE FORT WHERE KULACHAND HAD CONCENTRATED HIS FORCES. A HAND TO HAND FIGHT WITH SWORDS AND SPEARS ENSUED BETWEEN THE TWO ARMIES. THE HINDUS, HAVING FAILED TO DEFEND THEIR POSITION, JUMPED IN TO THE YAMUNA AND TRIED TO CROSS IT OVER IN SEARCH OF SAFETY. KULANCHAND, FINDING NO OTHER WAY TO ESCAPE, KILLED HIS WIFE FIRST AND THEN KILLED HIMSELF. NEARLY 5,000 HINDUS LOST THEIR LIVES, AND THE SULTAN SECURED A LARGE BOOTY TOGETHER WITH 185 WAR ELEPHANT.

NOTE- THE NAMES HARDAT AND KULACHANDEVIDENTLY STAND FOR HARADATTA AND KULACHANDRA.

THE SULTAN NEXT DIRECTED HIS ATTACKS AGAINST THE SACREDCITY OF MATHURA. FROM MATHURA THE SULTAN MARCHED ON KANAUJ.

मथुरा नगर की भीषण लूट-

महमूद गजनवी ने अपना नौवां आक्रमण सन् 1018 में किया था, जिसमें मथुरा नगर को लूटा था। महमूद गजनवी के आक्रमणों को जिन लेखकों ने अपनी आँखों से देखकर लिपिबद्ध किया था, उनमें महमूद अलउत्बी, बुरिहाँ अलबरूनी और इस्लाम वैराकी प्रमुख हैं। उनके लिखे हुए विवरण भी उपलब्ध होते हैं। उस आक्रमण का विवरण इन लेखकों ने अपने-अपने ग्रन्थों में विस्तार से किया है। संक्षेप में उसका विवरण प्रस्तुत है-

महावन में लूट-मारकर और वहाँ के मन्दिर देवालयों को बर्बाद कर महमूद ने अपनी युद्धोन्मत्त विजय-वाहिनी के साथ यमुना नदी को पार किया और वह मथुरा के अरक्षित नगर पर चढ़ दौड़ा। नगर में प्रवेश करते ही वह वहाँ भव्य भवन, सुन्दर मन्दिर-देवालय और उनके अपार वैभव को देखकर चकित रह गया। मथुरा के मन्दिरों में और विशेष रूप से यहाँ के कृष्ण-जन्मस्थान वाले प्राचीन देवालय में सोने-चाँदी की अनेक देव-मूर्तियाँ, जवाहरात के आभूषण धारण किये हुए विराजमान थीं। धर्मप्राण राजा महाराजा और सेठ साहूकारों द्वारा भेंट की हुई अपार धन-सम्पत्ति वहाँ कई शताब्दियों से संचित होती रही थी। उस 'कारुँ के खजाने' को देखकर महमूद की ललचायी हुई आँखें खुली की खुली रह गयी। उसने अपने सैनिकों को वहाँ लूटमार करने का आदेश दिया। अलउत्बी ने लिखा है कि- महमूद ने आदेश दिया कि सब मन्दिरों में आग लगाकर उन्हें धराशायी कर दिया जाय। उस समय बीस दिनों तक लूट होती रही थी। उस लूट में जो अपार सामग्री मिली, उसमें शुद्ध सोने की बनी हुई मूर्तियां थीं, जिनकी आँखों में लाल मणि जड़े हुए थे, और जो बहुमूल्य रत्नों के आभूषण पहिने हुए थीं। उनके अतिरिक्त बहुसंख्यक चाँदी की प्रतिमाएँ भी थीं। उन सबको ध्वंस करने के बाद जब लूट का सामान इकट्ठा किया गया, तब वह सौ से अधिक ऊँटों पर लादने लायक हो गया। उसके अतिरिक्त महमूद 5000 हिन्दुओं को गुलाम बनाकर भी ले गया। (एफ.एस. ग्राउस-मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर)।

मथुरा उस समय बड़ा समृद्धि शाली नगर था, जो यमुना नदी के किनारे पत्थर के मजबूत परकोटा के अन्दर वर्तमान कटरा केशवदेव के आस-पास बसा हुआ था। नगर के दोनों ओर सुन्दर मकान और देवालय थे और उनके बीचों-बीच भगवान् वासुदेव का विशाल मन्दिर था। महमूद ने 20 दिनों तक नगर को लूटा और बर्बाद किया। वासुदेव मन्दिर सहित समस्त देवालय एवं

भवन तोड़े और जलाये, तथा अनेक लोगों को मार डाला गया। मथुरा की लूट में महमूद को अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई थी।

उस मन्दिर की बर्बादी के सम्बन्ध में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है- "महमूद का आँखों देखा वर्णन और उसके आधार पर किया हुआ अनुमान दोनों ही सत्य हैं, क्योंकि गुप्तकाल से एक हजार ईस्वी तक लगभग 600 वर्षों की अवधि में वह विराट् मन्दिर सँवारा और सजाया गया था। उस दीर्घ समय में वहाँ जो अतुल धन-सम्पत्ति और सुवर्ण-राशि एकत्र हो चुकी थी, उसका वर्णन भी महमूद के मीरमुंशी अलउत्बी ने यथार्थ ही किया है। बीस दिन तक की लूट में पाँच सोने की प्रतिमाएँ मिलीं, जिनमें माणिक्य की आँखें जड़ी हुई थीं। उनका मूल्य 50 हजार दीनार था। एक और सोने की मूर्ति मिली, जिसका वजन 98300 मिश्कल या लगभग 14 मन था, उसमें करीब डेढ़ सेर का एक नीलम जड़ा हुआ था। चाँदी की सौ भारी-भारी मूर्तियाँ सौ ऊँटों पर लादकर ले जाई गई थीं। उस मेरू तुल्य राशि या कुबेर के कोश को देखकर लुटेरों की आँखें फट गई थीं। उन्होंने समझा कि रत्नों की खान हाथ आ गई। उस आपत्ति काल में लोगों द्वारा मूर्तियों को कुओं में फेंक दिया गया था, मथुरा के कितने ही कुएँ उन मूर्तियों से पटे हुए मिले हैं।"

महमूद ने भागवत धर्म के प्रमुख उपासना केन्द्र और भारतीय स्थापत्य की उस अनुपम कलाकृति को नष्ट कर दिया एवं वहाँ की बहुमूल्य देव-मूर्तियों को तोड़कर वह समस्त रत्न-राशि, सोना-चाँदी और कीमती सामान लूटकर ले गया।

महमूद का मथुरा पर आक्रमण ऐसा विध्वंसक था और वहाँ की लूट ऐसी भीषण थी कि उन्होंने विगत काल की सभी दु:खान्त घटनाओं को मात दे दी थी। तब से प्राय: 500 वर्ष पहले हूणों ने मथुरा की बड़ी बर्बादी की थी, किन्तु महमूद की विनाश-लीला उससे कहीं बढ़कर थी। हूणों ने धन के लोभ से मथुरा में लूट-मार तो खूब की, किन्तु उन्होंने यहाँ के विशाल मन्दिर-देवालयों को नष्ट नहीं किया था, क्योंकि उन्हें उनसे कोई धार्मिक विद्वेष नहीं था। महमूद लालची होने के साथ धर्मोन्मादी भी था। उसने लूटमार के साथ ही साथ यहाँ के बहुसंख्यक मन्दिर-देवालयों को भी नष्ट किया था। इस प्रकार हर्षवर्धन की मृत्यु के 370 वर्ष बाद मथुरा मण्डल के सांस्कृतिक इतिहास की वह अत्यन्त भयावह दुर्घटना थी।

महमूद को कन्नौज में भी लूट का बहुत सामान मिला था। उसे लेकर वह मथुरा आया, फिर वहाँ की लूट के सामान सहित वह गजनी चला गया था। उस आक्रमण से मथुरा का समृद्धिशाली धार्मिक नगर बर्बाद हो गया और कन्नौज के प्रतिहार राज्य की प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। मथुरा के विख्यात मन्दिर-देवालयों के नष्ट हो जाने का दु:खदायी समाचार जहाँ हिन्दू धर्म के प्रति आस्था रखने वाली इस भू-भाग की धार्मिक जनता को मर्मान्तक पीड़ा पहुँचाने वाला था, वहाँ हिन्दू राजाओं के खून को खौला देने वाला भी था। इस प्रकार की प्रतिक्रिया जिन राजाओं पर विशेष रूप हुई उसमें धारा-नरेश भोजदेव और चन्देल राज्य के अधिपति गंडदेव के नाम उल्लेखनीय हैं।

गंडदेव का प्रतिरोध-

गंडदेव बड़ा शक्तिशाली राजा था जिसने सं. 1056 (सन् 999 ई.) में राज्याधिकार प्राप्त किया था। वह धार्मिक प्रवृत्ति का एक वीर पुरुष था। उसे मथुरा के ध्वंस से बड़ा दु:ख हुआ, किन्तु उसका दोषी उसने कन्नौज के प्रतिहार राजा राज्यपाल को समझा था, जिसने न तो मथुरा के राजा कुलचन्द्र को सहायता दी थी और न वह अपने राज्य की ही रक्षा कर सका था। गंडदेव ने राज्यपाल को दण्ड देने के लिए कन्नौज पर आक्रमण कर दिया और सं. 1077 (सन् 1020 ई.) में उस पर अधिकार कर लिया। उस समाचार को सुनकर आगामी वर्ष महमूद ने गंडदेव के विरुद्ध आक्रमण किया और कालिंजर तक पहुँच गया। गंडदेव ने उसका ऐसी वीरता से सामना किया कि आक्रमणकारी को वापिस लौटना पड़ा। यदि गंडदेव अपने रोष का पात्र कन्नौज नरेश को न बनाकर उसके सहयोग से महमूद पर आक्रमण करता तो दोनों की सम्मिलित शक्ति उसका पूरी तरह मान-मर्दन कर सकती थी। किन्तु देश के दुर्भाग्य से उस समय के राजपूत राजाओं में वह सुबुद्धि नहीं आई थी। वे सदैव आपस में लड़ते रहे और विदेशी आक्रमणकारी एक-एक कर उनको पराजित करते रहे थे।

डा० प्रभुदयाल मीतल ने लिखा है कि- महमूद के उन तूफानी आक्रमणों से प्रत्येक व्यक्ति को आश्चर्य होना स्वाभाविक है। एक विदेशी आक्रमणकारी सैंकड़ों मील दूर से आकर यहाँ के अनेक राजाओं को पराजित कर देता है, वह उनके राज्यों को लूटता है, धार्मिक मूर्तियों को नष्टकर धर्मप्राण जनता के हृदय को चोट पहुँचाता है और यहाँ के निवासियों को धर्म परिवर्तन करने के लिए बाध्य करता है, जो लोग उसके लिए तैयार नहीं होते, उनका वह कत्लेआम कराता है और हजारों नर-नारियों को गुलाम बनाकर ले जाता है। इस पर भी

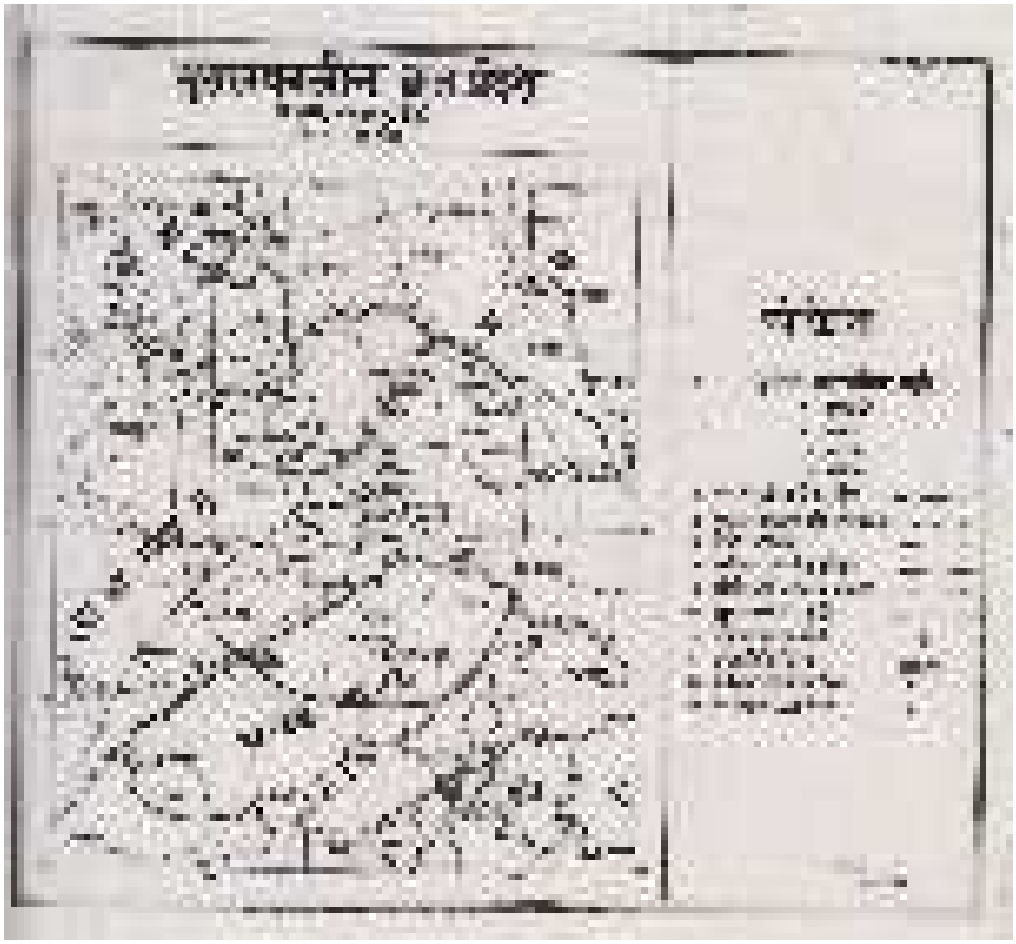

यहाँ के अनेक राजाओं और उनकी असंख्य प्रजा के करे-धरे कुछ नहीं होता है। बात वास्तव में आश्चर्य की मालूम होती है, किन्तु उस काल में इस देश की जैसी दुरवस्था थी, उसे देखते हुए इस पर आश्चर्य नहीं किया जा सकता। महमूद गजनवी द्वारा यदुवंशियों के प्रमुख केन्द्र महावन तथा मथुरा की विनाश-लीला के साथ ही यदुवंशियों का भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पलायन प्रारम्भ हो चुका था।

महमूद के परवर्ती (बाद के) राजपूत राज्य और उनके राजा-

महमूद के आक्रमण काल में यह देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। उन राज्यों के राजागण अपनी सीमाओं के विस्तार के लिए आपस में युद्ध किया करते थे। मथुरा के चारों ओर भी ऐसे ही राज्य स्थित थे। इसके उत्तर में हरियाणा के तोमर वंशी राजाओं ने पांडव कालीन प्राचीन इन्द्रप्रस्थ के स्थान पर दिल्ली बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया था। पश्चिम में चाहमान (चौहान) राजाओं का प्रभुत्व था, जिनकी राजधानी अजमेर थी। दक्षिण में कछवाहे और चंदेल राजाओं के राज्य थे, जिनकी राजधानी क्रमशः ग्वालियर, खजुराहो और महोबा थी। पूर्व में गाहड़वाल (गहरवार) वंशीय राजाओं का अधिकार था, जिनकी राजधानी कन्नौज थी। सुदूर पूर्व में पाल और बाद में सेन वंशीय राजाओं का अधिकार क्षेत्र था। देश के दुर्भाग्य से वे सभी राज्य एक दूसरे से शत्रुता रखते थे और आपस में युद्ध करते हुए अपनी शक्ति का ह्रास किया करते थे। तोमर और चाहमान, चाहमान और चंदेल, चंदेल और गाहड़वाल तथा गाहड़वाल और सेन राजाओं के बीच उस काल में जो निरन्तर युद्ध हुए थे, उनसे इतिहास के पन्ने रंगे हुए हैं। राजपूतों की इसी आपसी फूट, वैमनस्यता तथा आपसी निरन्तर युद्धों का प्रभाव यदुवंश सत्ता एवं राजाओं पर न पड़ा हो, असम्भव है। प्रभावशाली यादव राजाओं की सत्ता पर देश की तत्कालीन दुरवस्था के कारण ही यादव-सत्ता कभी स्थिर नहीं रह सकी थी। कभी जमी और कभी उखड़ी, अस्थिरता का सिलसिला यहीं कई सौ वर्षों तक चलता रहा था, जिसका वर्णन हम आगे करेंगे।

भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं कि यदुवंश की शासन-सत्ता के प्रमुख केन्द्र मथुरा, बटेश्वर, महावन, कामां, बयाना और, बाद में करौली रहे हैं। मथुरा-आदिकाल से ही यदुवंश इतिहास का सबसे प्राचीन धार्मिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक महत्वपूर्ण नगर तथा राज्य रहा है जिसका स्थान-स्थान पर पीछे हम उल्लेख करते रहे हैं। बटेश्वर तथा महावन भी कृष्णकाल से ही धार्मिक

तथा राजनैतिक रूप में यदुवंश इतिहास से जुड़े हुए हैं, जिनकी उपलब्ध जानकारी के आधार पर पीछे उल्लेख किया जा चुका है। दो प्रमुख केन्द्र कामां तथा बयाना जिनके बारे में लोगों को कम जानकारी है, उनका वर्णन प्राप्त स्रोतों के अनुसार प्रस्तुत है–

कामाँ (कामवन)–

ब्रजमण्डल के अन्तर्गत कामवन परम्परा से एक सुप्रसिद्ध धार्मिक स्थल के रूप में प्रसिद्ध रहा है। राजनैतिक और प्रशासनिक रूप में चाहे यह स्थान इस समय राजस्थान के भरतपुर जिले के अंतर्गत है, किन्तु धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से यह सदा से ब्रजमण्डल का ही एक भाग रहा है। ऐतिहासिक परम्परा भी इसे शताब्दियों तक ब्रजमण्डल से सम्बद्ध किये रही है। सांस्कृतिक अनुश्रुतियों में इसे ब्रज का अत्यन्त पुरातन लीलास्थल और सुविस्तृत प्राचीन वृन्दावन का एक भाग माना गया है। कुछ विद्वान् इसे महाभारत काल के 'काम्यवन' से मिलाते हैं। पुराणों में उल्लखित ब्रज के 12 वनों में इसे पाँचवाँ वन माना गया है। ग्राउस ने भी इसे काम्यवन लिखा है, तथा यहाँ की प्रत्येक प्राचीन धरोहर जादोंन राजाओं के समय की हैं जो अब राधाकृष्ण से सम्बन्धित हैं।

पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर कुछ विद्वान् कामवन को दत्तवंश के राजा कामदत्त अथवा कामसेन की राजधानी बतलाते हैं। यह राजा विक्रम सम्वत् की प्रथम शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान था। यहाँ की पहाड़ी पर इस राजा का दुर्ग और महल थे। उसके बाद गुप्तकाल में और उसके बाद भी यह एक समृद्धिशाली नगर रहा था। इसमें अनेक कलात्मक भवन और मन्दिर–देवालय बने हुए थे। ब्रज के प्राचीन यादव वंशीय राजाओं के वंशजों ने यहाँ पर्याप्त समय तक राज्य किया था। उस काल में कामवन की पहाड़ी पर एक विष्णु मन्दिर था, जिसे यदुवंशी राजा फक्क के वंशज पर्जण्यदामा ने 8वीं शती के लगभग बनवाया था। वहाँ से जो शिलालेख मिला है उसमें मन्दिर के निर्माता और कारीगर के नाम तथा उनके पूर्वजों की वंशावली दी हुई है। उसमें कारीगर का नाम नागमित्र बतलाया गया है, जो महटक शिल्पी का पुत्र था। मन्दिर के सभामण्डप में अनेक कलात्मक स्तम्भ थे, जिन पर सुन्दर मूर्तियाँ छापी गई थीं। इस कलापूर्ण विशाल मन्दिर को गुलाम वंश के सुल्तान इल्तुतमिश ने 13वीं शताब्दी में क्षतिग्रस्त किया। इसके बाद फिरोज तुगलक ने सम्वत् 1410 में उसे पूरी तरह नष्ट करा दिया था। उसके ध्वंस किये अवशेषों से उसी स्थान पर उसने एक मस्जिद बनवाई थी। इस प्रकार एक धर्मांध शासक द्वारा उस अनुपम

कलाकृति को नष्ट कर उसका विकृत रूपान्तर किया गया। उस मन्दिर के नष्ट अवशेषों में अनेक कलापूर्ण स्तम्भ भी थे, जो कई शताब्दियों तक बिखरे पड़े रहे थे। कालान्तर में उन्हें जोड़-तोड़ कर उनसे एक मन्दिर बनाया गया। उन खम्भों की विशेषता के कारण उसे '**चौरासी खम्भों वाला मन्दिर**' कहा जाने लगा, यद्यपि उसके खम्भों की संख्या 84 से कम है।

- ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास- डा० प्रभुदयाल मीतल, पृष्ठ 334-35

'मैं कामवन हूँ' पुस्तक में डा० रमेशचन्द्र मिश्र ने 'कामवन की कहानी-अपनी जुबानी' शीर्षक में पृष्ठ 15 पर लिखा है- "बारहवीं शताब्दी के राजाओं की राजधानी बनने का भी मुझे सौभाग्य मिला है। उस समय मेरा विस्तार बयाना से सतवास (जगनेर के पास) तक रहा है, जहाँ दोनों सीमाओं पर ऊषा मन्दिर अवस्थित रहे हैं। कालान्तर में यह सतवास का ऊषा मन्दिर भवन आक्रान्ताओं द्वारा ध्वस्त किया गया और कामसेन की कचहरी चौरासी खम्भा को ऊषा मंदिर के प्रस्तर खण्ड़ों से रातों रात मस्जिद का रूप दिये जाने का दुस्साहस किया गया।" पृष्ठ 28- ब्रजक्षेत्र- कामवन ऐतिहासिक का परिप्रेक्ष्य शीर्षक के अन्तर्गत मिश्र जी लिखते हैं- भरतपुर के पूर्व लेखाधिकारी श्रीनरेन्द्र शर्मा ने 'भरतपुर दर्शन' नामक आलेख में लिखा है कि "कामां को ब्रह्मपुर भी कहते हैं, यदुवंशी महाराज कनकसेन या कामसेन की राजधानी रहा है।"

कामां के चौरासी खम्भा को इल्तुतमिश (12वीं शती) ने मस्जिद का रूप दिया। राजस्थान पुरातत्व संग्रहालय से प्रकाशित पुस्तक 'एज स्टोन्स स्पीक इन भरतपुर' के पृष्ठ 12 पर चौरासी खम्भा को दसवीं सदी के नागसेन शासक द्वारा निर्मित बताया है, जिसे बाद में यवन शासकों ने मस्जिद का रूप दिया।- पृष्ठ 29

THE EIGHTY FOUR PILLARS MOSQUE USUALLY AS CRIBEE TO THE NAGSEN RULERS OF THE 10TH CENTURY A.D. THE MONUMENT IS REPORTED TO BELONG TO THE 10TH CENTURY A.D. IT WAS TERNED INTO A MOSQUE AT SAME STAGE BY THE MOHAMMDAN RULERS OF DELHI.

-(AS STONES SPEAK IN BHARATPUR, P.12)

पृष्ठ 29- कामां के चौरासी खम्भा में लगे हुए पाषाण अभिलेख के अनुसार 8वीं शती के शूरसेन राजवंश के राजस्व में विष्णु मन्दिर का उल्लेख है। 9वीं शती के कुटिल लिपि अभिलेख में कामेश्वर महादेव के शैवाचार्यन के द्वारा दिये गये 'दान' और गोष्ठियों का उल्लेख मिलता है।

ऐसी मान्यता है कि कृष्णकाल में पाँचों पाण्डवों ने अपने वनवास के समय इस रमणीय काम्यवन में बहुत दिनों तक वास किया था। उस वनवास काल की कई कथाएँ पाण्डवों से सम्बन्धित मिलती हैं। पंचतीर्थ सरोवर के निकट इसी स्थान पर पाण्डवों और द्रौपदी की दिव्य मूर्तियाँ थीं। कुछ समय पहले यह स्थान जनशून्य होने पर इसमें से कुछ मूर्तियों को चोर चुराकर ले गये और कुछ का अंग-भंग हो गया। तब ये बची हुई मूर्तियाँ निकट ही कामेश्वर मन्दिर पधराई गईं। ये यहीं पर उपेक्षित रूप में पड़ी हुई हैं।

काम्यवन के दरवाजे-

काम्यवन में सात दरवाजे हैं- 1. डीग दरवाजा 2. लंका दरवाजा 3. आमेर दरवाजा 4. देवी दरवाजा 5. दिल्ली दरवाजा 6. रामजी दरवाजा 7. मथुरा दरवाजा।

भारत का प्रसिद्ध नगर बयाना-

बयाना एक पौराणिक नगर ही नहीं रहा बल्कि यह अनेकानेक संस्कृतियों के उदय और अस्त का साक्षी भी रहा है। पुराण प्रसिद्ध बलि पुत्र असुर राज बाणासुर के समय में जहाँ यह नगरी शोणितपुर के नाम से ख्याति प्राप्त रही, वहीं ऊषा-अनिरुद्ध की प्रेमकथा का मुख्य केन्द्र भी रही, और श्रीपथ, श्रीपुर तथा शान्तिपुर जैसे धार्मिक नामों से उस काल में इसे अलंकृत भी किया गया। विजैगढ़/विजयमन्दिर गढ़ नामों से भी इस नगर को पहचान मिली तो राजपूताने में प्रथम शाके की विभीषिका भी इसी दुर्ग ने सहन की। महाराजा पृथ्वीराज तृतीय के काल में इसे बयाना के नाम से पुकारा गया, और मुस्लिम काल में थंगर एवं सुल्तान कोट जैसे नामों से पुकारा गया। सिकन्दर लोदी ने इस नगर को अपने साम्राज्य की राजधानी बनाते हुए इस का नाम सिकन्दरा (बयाना) प्रचलित कर दिया।

बयाना दुर्ग, जिसे बाद में विजयमन्दिर गढ़ के नाम से पुकारा गया, के निर्माण के बारे में लगभग सभी इतिहासकारों और स्थानीय किंवदन्तियों की मान्यता एक जैसी है जिसमें मुख्य रूप से इस दुर्ग के निर्माण का श्रेय महाराजा विजय पाल को दिया जाता है। ये कथन असंगत हैं। चूँकि एक ओर तो विदेशियों के आक्रमण दूसरी ओर स्वयं की लड़खड़ाती स्थिति, उसमें भी सुरक्षा को प्राथमिकता, तृतीय जंगलों की ओर भागकर सुदृढ़ दुर्भेद्य गढ़ का निर्माण कराना, उसके बाद विधिवत् उसे राजधानी का स्वरूप देना आदि सभी

ऐसी विषम परिस्थितियाँ थीं जिनमें यह स्वीकारना कि विजयपाल ने मथुरा से भागने के बाद अथवा अपने पिता की मौजूदगी में किसी दुर्ग का निर्माण करवाया, अविश्वसनीय लगता है।

महाभारत के सभापर्व में एवं विष्णुपुराण में बाणासुर को शोणितपुर का राजा बतलाया गया है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण तथा गर्ग-संहिता में भी ऊषा-अनिरुद्ध कथा-प्रसंग में शोणितपुर को ही बाणासुर की राजधानी लिखा गया है। कथा-प्रसंग संक्षेप में प्रकार है- राजकुमारी ऊषा, पुराण प्रसिद्ध बाणासुर की इकलौती पुत्री और इस कथा की प्रसिद्ध नायिका रही है। जब राजकुमारी ऊषा युवावस्था को प्राप्त हुई, उस समय उसने स्वप्न में किसी सुन्दर राजकुमार को देखा। ऊषा अपने स्वप्न की बात अपनी सहेली चित्रलेखा जो बाणासुर के मंत्री कूष्माण्ड की पुत्री थी, को बताती है और उससे स्वप्न वाले राजकुमार से मिलाने की इच्छा प्रकट करती है। चित्रलेखा मायावी गुणों वाली थी। वह योगबल से उस राजकुमार का पता लगाकर श्रीकृष्ण के पौत्र (नाती) अनिरुद्ध को सोते हुए द्वारकापुरी से शोणितपुर ले आती है। श्रीकृष्ण को जब पता चलता है कि अनिरुद्ध का अपहरण हो गया और वह बाणासुर की राजधानी शोणितपुर पहुँच गया है तो श्रीकृष्ण यादवों की सेना सहित शोणितपुर पर चढ़ाई कर देते हैं। ऊषा के विवाह को लेकर श्रीकृष्ण और बाणासुर में घोर युद्ध होता है जिसमें स्वयं महादेव जी ने अपने भक्त बाणासुर का पक्ष लेकर युद्ध किया। युद्ध के उपरान्त राजकुमारी ऊषा का विवाह राजकुमार अनिरुद्ध से होता है। ऊषा के विदा हो जाने पर, जब चित्रलेखा को अपनी सहेली की याद बहुत सताने लगी तब इसने उसकी याद में एक विशाल और भव्य देवालय का निर्माण कराया जो कालान्तर में 'ऊषा मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस प्रकार बाणासुर के द्वारा बसाई मायापुरी, जिसे बाद में शोणितपुर के नाम से संज्ञा दी गई, वर्तमान में वह नगर अथवा स्थान अन्यत्र कहीं नहीं है, बल्कि बाद में बयाना कहलाने वाला क्षेत्र ही मूल रूप से शोणितपुर है, यह प्रमाणित हो चुका है।

युद्धोपरान्त पूर्व उत्पीड़ित क्षेत्र में अब शान्ति का राज्य स्थापित हो गया इसलिए शोणितपुर को बाद में शान्तिपुर के नाम से पुकारा गया। ऐसा भी माना जा सकता है कि जब क्षेत्र में पूरी तरह से अमनचैन कायम हो गया तो एकबार पुनः श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हों जिसकी पावन स्मृति में (श्रीचरण पड़ने से) इस

क्षेत्र का नाम श्रीपुर अथवा श्रीप्रस्थ रखा गया हो। कनिंघम ने भी अपनी रिपोर्ट में उपरोक्त तथ्य की पुष्टि की है। -Vol.VI

सारांश यह है कि पुराण प्रसिद्ध बाणासुर की मायानगरी का मुख्य केन्द्र यही रहा जहाँ बाणासुर-श्रीकृष्ण के मध्य भीषण संग्राम हुआ (सम्भव है कि बयाना की भूमि पर लड़ा जाने वाला यह प्रथम युद्ध था), उषा अनिरुद्ध की शादी हुई तथा चित्रलेखा द्वारा अपनी सहेली उषा की स्मृति में एक वृहत् देवालय का निर्माण करवाया गया जिसे बाद में उषा मन्दिर के नाम से पुकारा गया। बाणासुर के समय में क्षेत्र का नाम मायापुरी एवं मुख्यालय का नाम शोणितपुर रखा गया। बाणासुर के पतन के साथ ही इसे श्रीपुर, श्रीप्रस्थ, शान्तिपुर जैसे धार्मिक नामों से अलंकृत किया गया।

अनेक प्रमाणों से यह सर्वमान्य तथ्य है कि राजा विजयपाल मथुरा को छोड़कर मानी पहाड़ी (श्रीपथ) आये जहाँ अपनी राजधानी बनाई। इससे स्पष्ट है कि मानी पहाड़ पर इससे पूर्व कोई दुर्ग अवश्य रहा होगा। दूसरे गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य के पतन के साथ मथुरा में इन्होंने स्वतंत्र इकाई के रूप में अपने शासन की घोषणा की। उस समय प्रतिहार साम्राज्य का सामन्त मंथन देव का बयाना पर शासन था जिसने बाद में यदुवंशियों की अधीनता स्वीकारी। इस तथ्य की पुष्टि सन् 959 के उस दानपत्र से और स्पष्ट होती है। जिसमें मंथनदेव ने बागरैन नामक एक गाँव किसी मन्दिर को भेंट किया।

(ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ. 129-30, डा० प्रभुदयाल मीतल,

तीसरे, इस दुर्ग के तलहटी मार्ग पर दुर्गभीति में तीन पंक्ति का एक लेख मिला है जिससे स्पष्ट होता है कि दूसरी शताब्दी के मध्य यौधेय लोगों का इस दुर्ग पर अधिकार रहा। इससे स्पष्ट होता है कि महाराजा विजयपाल के बयाना आने से लगभग नौ सौ वर्ष पूर्व यह किला मौजूद था। कुछ विद्वानों ने यौधेयों को यदुवंश की शाखा में लिखा है।

चौथे, दुर्ग में एक प्रस्तर स्तम्भ लेख और देखने को मिलता है जो इस तथ्य की पुष्टि के लिए पर्याप्त होगा कि यह दुर्ग राजा विजयपाल से शताब्दियों पूर्व का है। वर्तमान में इस दुर्ग के अन्दर भीमलाट के नाम पर पाषाण स्तम्भ है जिस पर सम्वत् 428 यानि 371-372 ई. अंकित है। यह लेख वारीक कुल के विष्णुवर्धन नामक राजा का है जो समुद्रगुप्त का सामन्त और यहाँ का शासक था। उसने पुण्डरीक नामक यज्ञ की समाप्ति पर इस स्तम्भ को दुर्ग में लगवाया।

इससे स्पष्ट होता है कि यह दुर्ग बहुत प्राचीन और महाराजा विजयपाल से पूर्व का है। कुछ इतिहासकारों- गौरीशंकर ओझा- राजपूताने का प्राचीन इतिहास,- आर.सी. मजुमदार, कनिंघम आदि ने विष्णुवर्धन को यदुवंशी राजपूत लिखा है।

इतिहासकार ठा. मोहनसिंह चौहान ने अपने वृहद् ग्रन्थ 'राजपूत क्षत्रिय वंश भास्कर' में इन सभी तथ्यों की पुष्टि की है।

इस प्रकार यह अवश्य स्वीकारा जा सकता है कि महाराजा विजयपाल ने अपने वैभव पूर्ण शासन के अंतर्गत इस दुर्ग में आमूलचूल परिवर्तनों के माध्यम से कुछ आवश्यक निर्माण करवाये, यह स्वाभाविक है। ऐसा लगता है कि उन्हीं निर्माणों के लेकर भावी इतिहास वेत्ताओं ने सम्पूर्ण दुर्ग निर्माण का श्रेय महाराजा विजयपाल को दिया हो।

बयाना दुर्ग (विजयमन्दिर गढ़) का किला भरतपुर से 46 कि.मी. दक्षिण में और करौली से 90 कि.मी. दूर राजस्थान में भरतपुर जिले की बयाना तहसील में गम्भीर नदी के निकट स्थित है। बयाना दुर्ग साधारण ऊँचाई की पहाड़ी पर बना है परन्तु चारों ओर से पर्वतमालाओं व वन सम्पदा से घिरे होने के कारण तथा इसकी विशाल बुर्जों, उन्नत प्राचीर से इसकी महत्ता ज्ञात होती है। डा० दशरथ शर्मा ने अपनी पुस्तक-'राजस्थान थ्रू दी एज' में बयाना का प्राचीन नाम भदानक लिखा है। स्कन्दपुराण में भदानक का एक विशाल राज्य के रूप में उल्लेख है। यदुवंशी शासक विजयपाल ने यहाँ पहले से विद्यमान प्राचीन दुर्ग के ध्वंशाशेषों पर ही नये किले का निर्माण कराया था।

ए. कनिंघम ने Vol.XX, P.62 पर लिखा है कि एक संस्कृत शिलालेख के अनुसार सम्वत् 1100 या सन् 1043 में विजयमन्दिर गढ़ के किले पर जादोंन राजा विजयपाल का शासन था।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न कालों में बयाना के नाम भी भिन्न-भिन्न मिलते हैं। बाणासुर के समय बयाना का नाम शोणितपुर था, अनिरुद्ध की विजय के पश्चात् इसका नाम शान्तिपुर हो गया। 11वीं शताब्दी में श्रीपथ तथा 12वीं शताब्दी में सुलतानकोट तत्पश्चात् इसे बयाना के नाम से पुकारा जा रहा है।

यदुवंश के बारे में इतिहासकार स्व. दामोदरलाल गर्ग ने अपनी पुस्तक भारत का प्राचीन नगर बयाना पृ. 46-47 में लिखा है- "दसवीं शताब्दी के अंत तक बयाना प्रतिहार वंश के सम्राट् महीपाल के शासन के अन्तर्गत चल रहा था

और स्थानीय शासक के रूप में वारिक कुलश्रेष्ठ विष्णुवर्धन का वंशज यहाँ काबिज था। सम्राट् महीपाल जब दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा से परास्त हो गया था। उसी समय से प्रतिहार वंश का पतन होना आरम्भ हो गया था। अन्त में तो राज्यपाल (सन् 990-1018) का शासन क्षेत्र सिमटकर कन्नौज के इर्द-गिर्द तक ही रह गया था। प्रतिहारी शासकों की क्षीण होती शक्ति का लाभ उठाते हुए पराभूत राज्यों ने भी अपने को स्वतंत्र घोषित करना आरम्भ कर दिया। इस क्रम में मथुरा के इच्छपाल ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित करके नजदीकी क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमाना शुरु कर दिया था।

बयाना के विष्णुवर्धन (चौथी शताब्दी) के वंशज मूलरूप से मथुरा के यादव ही थे। इसलिए उन्होंने बिना किसी विरोध के महाराजा इच्छपाल की अधीनता स्वीकार करली। इस प्रकार से बयाना कहलाने वाले क्षेत्र पर मथुरा के यदुवंशियों का अधिकार हो गया। महाराजा इच्छपाल के मरने के बाद उसका बड़ा पुत्र ब्रह्मपाल मथुरा का शासक बना और इसका छोटा भाई विनायकपाल मोहवेगढ़ (बाँदा के पास) का राजा हुआ। महाराजा ब्रह्मपाल की मृत्यु के बाद इसका लड़का जयेन्द्रपाल कार्तिक सुदी एकादशी सं. 1023 (सन् 966) को मथुरा की गद्दी पर बैठा, इसके ग्यारह लड़के हुए। इनमें विजयपाल बड़ा पुत्र होने के कारण सन् 999 में मथुरा की गद्दी का उत्तराधिकारी बना।

यदुवंश की उत्पत्ति के बारे में लिखते हैं कि श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, अग्निपुराण एवं गर्गसंहिता आदि धर्मग्रन्थों की मान्यता है कि महाराजा यदु की संतानें ही कालान्तर में यादव अथवा यदुवंशी कहलाई। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के इसी वंश में उत्पन्न होने के कारण श्रीकृष्ण को भी यदुवंशी, यादवेश्वर एवं यादव ही कहा गया। श्रीकृष्ण का बचपन बाबा नन्द के यहाँ व्यतीत हुआ, जो जाति से अहीर थे। कालान्तर में ये ही अहीर अपने को जादौं, जादु, जदु एवं जादव (यादव) जैसे शब्दों से सम्बोधित कराने लगे।

मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार, जहाँ इनका कभी वर्चस्व रहा, वहाँ के आंचलिक क्षेत्रों में अहीर लोग आज भी अपने को ठाकुर कहलवाते हैं, किन्तु लिखते यादव, जादौं जैसे शब्द हैं। उपरोक्त क्षेत्रों में जो पद-प्रतिष्ठा में आगे बढ़ गया बस वही लोग अपने को सीधे तौर पर यादव लिखते हैं और कहलवाते भी यादव ही हैं। राजपूताने में गोलों (रखैलों की संतान) को ठाकुर कहा गया।

मेवाड़ में आज भी मूल यदुवंशी अपने को यादव अथवा जादौं नहीं लिखते बल्कि स्पष्ट रूप से यदुवंशी शब्द का उपयोग कर रहे हैं। जानकारी करने पर

बतलाया गया कि आज निम्न वर्ग के लोग भी अपने को यादव लिखने लग गये हैं। सच्चाई भी यही है कि आज उपरोक्त कारणों से मूल यादव की पहचान संदिग्ध होती जा रही है।" (भारत का प्राचीन नगर बयाना- स्व. दामोदरलाल गर्ग, पृ. 46-47)

बयाना के बारे में लिखा है कि इस पौराणिक नगर के आंचल में अनेक सभ्यताओं ने शरण ली और विकसित हुईं। अनेक आक्रमणकारी, सम्राट् और शासकों के युद्ध, वैभव और उनके पतनों का यह दुर्ग चश्मदीद गवाह रहा तथा कथित कहलाने वाले बादशाह और उनके गुलामों ने इसे बुरी तरह नष्ट करने का प्रयास भी किया। ऐसा करने वाले आज संसार में नहीं रहे किन्तु उनके दुष्कृत्यों की कहानी कहने वाले अनगिनत अवशेष आज भी यहाँ मौजूद हैं।

आरम्भिक काल में इसे शोणीतपुर, श्रीपुर, श्रीप्रस्थ, विजैगढ़ जैसे नामों से सम्बोधित किया जाता रहा था, वहीं मध्यकाल में पथयामपुरी, विजयमन्दिर गढ़, थंगर, सुल्तानकोट, सिकन्दरा, बयाना नामों से अलंकृत किया गया। इस तरह हम देखते हैं कि यहाँ पर अनेक संस्कृतियों का उदय और अन्त हुआ। मध्यकाल में यह नगर हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का केन्द्र बना। यह शिक्षा का बड़ा केन्द्र रहा किन्तु उसके उपरान्त भी यहाँ शान्ति कभी कायम नहीं हो पाई। कभी बाणासुर के अत्याचारों ने इसे आतंकित किया तो कभी हूण, यौधेयों की मारकाट ने इसे सिकुड़कर जीने को मजबूर कर दिया था। यदुवंशियों ने यदि इसे राहत देने का प्रयास किया तो गुर्जर नरेशों ने अदब से जीने का साहस भी दिया। मध्यकालीन विदेशी आक्रान्ताओं ने तो इस नगर की सुदृढ़ता, सुन्दरता एवं वैभवता पर ऐसी क्रुदृष्टि डाली कि भविष्य में यह नगर पनप ही नहीं सका।

कहने का तात्पर्य यह है कि आरम्भिक काल से ही यह नगर देश का दूसरा अघोषित कुरुक्षेत्र रहा जहाँ का सम्पूर्ण मैदानी भाग लाशों से पाटा गया। आज भी यहाँ की जमीन से यत्र-तत्र हड्डियों के ढेर निकलते देखे जाते हैं।

आठवीं से तेरहवीं शताब्दी तक के काल को कभी-कभी 'अन्धकार युग' कहा जाता है, जब हिन्दुओं की उच्च संस्कृति का ह्रास हुआ और राजनीतिक विशृंखलता के फलस्वरूप एक पूर्णतया विदेशी शक्ति को इस उपमहाद्वीप में विजय प्राप्त करने में सुविधा हुई। परन्तु यह अन्धकार युग न होकर निर्माणात्मक युग था जिसका विस्तृत अध्ययन लाभप्रद हो सकता है, क्योंकि आज के भारत की अनेक संस्थाएँ इसी युग में स्थायी रूप ग्रहण करने लगी थीं।

राजनीतिक-आर्थिक ढाँचे के आधार के रूप में सामंतवाद मोटे रूप में, अभी हाल तक जीवित रहा है और समाज के विकास को प्रभावित करता रहा है। इस काल में जन्म लेने वाली अनेक जातियाँ सामाजिक क्षेत्र में अब भी सक्रिय हैं। भारत के विभिन्न भागों में आज भी बोली जाने वाली भाषाएँ तेरहवीं शताब्दी की विभिन्न प्रदेशिक भाषाओं से निकली हैं। स्थापित धर्मों से सर्वथा पृथक् अनेक धार्मिक पंथ जो आज ग्रामीण जनता (भारत की बहुसंख्यक) पर छाए हैं, इसी युग में उद्‌भूत हुए थे। इतना ही नहीं, इस काल के ऐतिहासिक साक्ष्य की पूर्णता इस समय के पूर्ण चित्रण के पुनर्निमाण की सुविधा प्रदान करती है।- (भारत का इतिहास- रोमिला थापर), पृष्. 238-39)

बयाना जादौं- राज्य के प्रसिद्ध राजा-

समस्त विद्वान् व इतिहासकारों ने एकमत से यह स्वीकार किया है कि वर्तमान जादौं वंश महाराजा यदु का ही यादव वंश है। मथुरा शूरसेन क्षेत्र से निकलने के कारण यादव वंश ही जादव वंश हुआ है। ब्रजभाषा में **'य'** का उच्चारण **'ज'** होने से यादव का जादव (जादौंन) हो गया है, जादव को ही जादुई, जादौन शब्द से उच्चारित किया जाता है।

(राजपूत क्षत्रिय वंश भास्कर, पृ. 860, ठा. मोहन सिंह चौहान)

श्रीकृष्ण के वंशजों ने द्वारका के बाद मथुरा का शासन किया। ख्यातों के लेख अनुसार राजा इच्छपाल यादव विक्रम सम्वत् 936 सन् 879 ई. के लगभग मथुरा पर शासन करता था जो सम्भवत: कन्नौज के शासकों का सामन्त था। इच्छपाल के ब्रह्मपाल और विनायकपाल दो पुत्र थे। इच्छपाल के बाद ब्रह्मपाल मथुरा का शासक बना और विनायकपाल मौहवेगढ़ का। वर्तमान में मौहवेगढ़ आल्हा ऊदल के गढ़ के नाम से प्रसिद्ध है। दुर्ग खंडहर पड़ा है। राजा इच्छपाल के पूर्व भी कामां क्षेत्र पर यादवों का राज्य था। कामां की चौरासी खम्भा वाली मस्जिद में एक खण्डित शिलालेख में फक्क और उसके सातवें वंशज वत्सदामा यादव का उल्लेख है। मथुरा का राजा इच्छपाल का पुत्र ब्रह्मपाल और ब्रह्मपाल का पुत्र जयेन्द्रपाल (इन्द्रपाल) हुआ। जयेन्द्रपाल के ग्यारह पुत्रों में विजयपाल हुआ। मथुरा के आस-पास के भाग से आकर यादव राजस्थान में भरतपुर, धौलपुर आदि स्थानों में बस गये थे। इस राजवंश का मूल पुरुष विजयपाल यादववंशी मथुरा के शूरसेनी से निकला हुआ है। वर्तमान में करौली के राजवंश ऐसा ही मानते हैं। ऐतिहासिक विवरण के आधार पर यह तथ्य प्रमाणित होता है

कि सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय ब्रज प्रदेश पर यादव वंश का राज्य था। – (उपरोक्त उद्धरण, पृ. 861)

अत: विभिन्न स्रोतों से प्राप्त विवरण के आधार पर प्रसिद्ध यदुवंशी/जादौं राजाओं का हम संक्षेप में वर्णन करते हैं–

महाराजा विजयपाल- (सन् 999-1046 ई.)-

महाराजा विजयपाल के बारे में हम पीछे भी लिख आये है। मथुरा के शासक जयेन्द्रपाल मथुरा की गद्दी पर कार्तिक सुदी एकादशी सम्वत् 1023 सन् 966 ई. में बैठा। इसने गुर्जर-प्रतिहारों के पतन के बाद पहली बार बयाना पर अधिकार किया। इसके ग्यारह सन्तानें हुईं जिसमें विजयपाल ज्येष्ठ पुत्र था, जो बाद में सन् 999 ई. में मथुरा गद्दी का वारिस हुआ। जयेन्द्रपाल के ग्यारह पुत्रों के नाम इस प्रकार मिलते हैं- विजयपाल, रतनपाल, नाहरपाल, सोनपाल, आनन्दपाल, भवनपाल, कच्छपाल, देवपाल, मैनपाल, महीपाल एवं भरतपाल। करौली ख्यातों से भी इन नामों की पुष्टि होती है।

महमूद गजनवी ने सन् 1018 ई. में जब मथुरा में लूट की, तो उसके बाद विजयपाल ने मथुरा को छोड़कर मानी पहाड़ी पर विजयमन्दिर गढ़ नामक सुदृढ़ दुर्ग बनवाकर वि. सं. 1097 में अपनी राजधानी स्थापित की थी। डा० राघवेन्द्र सिंह मनोहर के अनुसार- "महाराजा विजयपाल ने राजधानी मथुरा को मुस्लिम आक्रमणों से असुरक्षित जान उसने निकट की मानी पहाड़ी पर 1040 ई. लगभग एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण कराया, जो अपने निर्माता राजा विजयपाल के नाम पर विजयमन्दिर गढ़ कहलाया।''यही दुर्ग बाद में बयानागढ़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बयाना दुर्ग के निर्माता महाराज विजयपाल ने लगभग 51 वर्षोंतक शासन किया। वह एक शक्तिशाली शासक था। महाराजा विजयपाल ने बयाना आने के बाद अनेक इलाकों को अपने अधीन कर अपने राज्य का विस्तार किया। लड़े गये सभी युद्धों में विजय श्री मिलने के कारण इसे विजयाधिराज भी कहा गया। करौली की ख्यात तथा जनश्रुति के अनुसार उसने गजनवी की तरफ से होने वाले मुस्लिम आक्रमणों का लम्बे समय तक सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया था। राज्य की सैन्य शक्ति मजबूत होने के कारण एक बार मालवा के खिलजी को वापिस आते समय इससे हार का मुँह देखना पड़ा जिसकी स्मृति में दुर्ग के अन्दर विजय स्तम्भ स्थापित किया गया (ऐसा लगता है कि विष्णुवर्धन के

समय के स्तम्भ को ही महाराजा विजयपाल ने वर्तमान स्थल पर खड़ा कराया हो)। समूचे राज्य में अमनचैंन था। अपने समय के ये एकमात्र हिन्दू शासक रहे जिन्होंने बयाना रहते हुए सम्पूर्ण राजपूताने को एक शासन (हिन्दुत्व) सूत्र में पिरोने का प्रयास किया।

कनावर का युद्ध और बयाना पतन-

इस युद्ध के बारे में श्रीदामोदरलाल गर्ग ने 'करौली इतिहास के झरोखे से', द्वितीय संस्करण, में इस प्रकार वर्णन किया है- "मालवा सम्राट् से हुए युद्ध ने महाराज विजयपाल को विजय का सेहरा तो बँधवाया, परन्तु मुस्लिम खेमों में अन्दरूनी तौर पर खिलाफती तैयारियाँ जोर पकड़ती जा रही थीं। इधर कुछ भेदिया राजपूतों ने अप्रत्यक्ष रूप से षड़यंत्र कर किले के सारे भेदों को मुस्लिम खेमों में पहुँचाना शुरु कर दिया जिससे विरोधियों को सशक्त होकर आक्रमण करने का अवसर भी मिलने लगा। मौका पाकर सुल्तान मसूद द्वितीय के सेनापति अबूबक्र शाह कंधारी, जो कंधार का रहने वाला था, ने बयाना की ओर कूच करते हुए सं. 1103 (सन् 1046 ई.) में कनावर में डेरे लगाये (कनावर बयाना-भुसावर के मध्य दुर्ग से 12 कोस है)। दुश्मन की इस जबर्दस्त और अप्रत्यक्ष घेराबन्दी ने राजपूतों के कान खड़े कर दिये। जैसे ही गुप्तचरों द्वारा महाराजा को जानकारी मिली, तो उन्होंने पूरी तैयारी के साथ दुर्ग को कुँवर गजपाल को सँभलाते हुए आवश्यक निर्देश देते हुए कहा कि यदि युद्ध में हमारी जीत हुई और हमारे निशान (झंडा) दिखें तो खुशियाँ मनाते हुए विजय की तोपें छुड़वाना। ब्राह्मणों और गरीबों को रुपये, कपड़े देना और भोजन करवाना, और यदि निशान पठानों के नजर आएँ तो महलात (जनाने महल) को बारूद से उड़वा देना, जो बाकी बचें उन्हें साथ लेकर मरने-मारने के लिए दुर्ग के नीचे आ जाना। इस प्रकार हिदायतें देने के साथ ही महाराजा ने मयलश्कर के रवाना हो कनावर में दुश्मन की फौज के सामने डेरा डाल दिया। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। बचने का कोई उपाय नजर नहीं आता देख सभी बहादुर केशरिया बाना पहन भूखे सिंह की भाँति यवनों पर टूट पड़े। जीवन मृत्यु के इस संघर्ष ने यवनों के दांत खट्टे कर दिये। कुछ ही घण्टों में इस युद्ध में हजारों सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया गया। वहीं महाराजा के ग्यारह लड़कों के साथ सैंकड़ों योद्धा शहीद हो गये। जीत महाराज की हुई। जोश में अर्द्धसैनिकों ने दुश्मन के निशानों तक को छीन लिया।

उस काल में केवल प्रशिक्षित सैनिक ही युद्ध करने नहीं जाते थे बल्कि सभी कौम के बहादुर लोग झुण्ड के झुण्ड बनाकर आया करते थे, जिनमें कुछ का कार्य तो केवल लूटपाट करना ही होता था। कुछ मनोरंजन अथवा सैनिकों को आवश्यक सामान जुटाने के लिए साथ जाते थे। इसी क्रम में युद्ध समाप्ति के बाद डौम जाति (नाचने-गाने वाले) के लोगों ने अपने महाराज की विजय पर जहाँ इनाम-इकराम माँगना शुरु किया वहीं कुछ लोग दुश्मनों से छीने झण्डों को लेकर सबसे पहले कौन खबर करे और इनाम पाये, इस भावना से दुर्ग की ओर दौड़ते गये। उधर कुँवर गजपाल बेसबी से युद्ध के परिणामों को जानने की उत्सुकता से बारादरी से देख रहे थे। कुछ समय बाद ही उसने हरे झण्डों को (दुश्मनों के) खुशी के इजहार के साथ दुर्ग की ओर आते देखा। उन हरे झण्डों को आते देख कुँवर गजपाल समझ गया कि हार हो गई है। ऐसा सोचकर उसने महत्वपूर्ण महलों को बारुद से उड़वा दिया। साथ ही प्रमुख रनिवास को बलात् ही जौहर की भीषण आग के हवाले करवा दिया। जो योद्धा और व्यक्ति शेष रहे उन्हें केशरिया बाना पहनाकर मरने-मारने की गरज से नीचे ले आया। जहाँ उसने देखा कि झण्डे लाने वाले अपने ही लोग हैं तो वह अनायास ही रो पड़ा और कहने लगा कि नाहक ही मैंने किले की समृद्धि को ग्रहण लगाकर बर्बाद कर दिया। अब तो कुछ भी शेष नहीं रहा। इसी सोच में उसने रात काटी। जब महाराजा मयलश्कर के दुर्ग में आये तो महलों का नजारा देखकर बड़े दु:खी हुए। वहाँ प्राणप्रिय पत्नियों की जगह अग्नि में धधकते पार्थिव शरीर मिले, जिन्हें देख नहीं सके, महल धूँ-धूँकर जल रहे थे। राजा फूट-फूटकर रोने लगे। उपरान्त उन्हें याद आया कि एक सन्त ने हमको इस दिन के लिए ताबीज दिया था जिसे मैं बाजू में पहने रहता था। उसे खोलकर देखा तो उसमें ऐसी घटना का होना, घड़ी, दिन, वर्ष और उम्र पूरी होने का लिखा था। वास्तव में उक्त सारी बातें आज पूरी होती नजर आ गईं। ऐसा सोचकर महाराजा ने ऊपर शंकर के मन्दिर में जाकर तलवार से अपना मस्तक काटकर शंकर को अर्पित कर दिया। कहते हैं कि उस दिन 360 रानियाँ मय रखैलों के सती हुई थीं। इस युद्ध में उसके ग्यारह पुत्र भी मारे गये थे।

मिति फाल्गुन बदी तीज इतवार सं. 1103 या सन् 1046 के दिन महाराजा विजयपाल की मृत्यु हुई।

महाराजा विजयपाल की मृत्यु के बाद दुर्ग की बर्बादी का समाचार जब अबूबक्र शाह को मिला तो वह फौज के साथ बयाना पहुँचा। फिर भी काफी लड़ाई के बाद यवनों का दुर्ग पर अधिकार हो सका।

महाराजा विजयपाल ने 51 वर्ष शासन किया और 35 लड़ाईयां लड़ी। 29 शादियाँ की जिनसे अठारह लड़के हुए जिन्होंने अलग-अलग इलाकों और दुर्गों पर कब्जा कर वंश परम्परा को कायम रखा।

करौली ख्यातों के अनुसार राजा विजयपाल के 18 पुत्रों के नाम इस प्रकार मिलते हैं- 1. चन्द्रपाल 2. मोतीपाल 3. (प्रानपाल) 4. उदयपाल 5. रुद्रपाल 6. रूपपाल 7. सन्तपाल 8. रामपाल 9. कानपाल 10. चन्दनपाल 11. सूरतपाल 12. तिमनपाल 13. छत्रपाल 14. गजपाल 15. गिर्जपाल 16. विनयपाल 17. रक्षपाल 18. रतनपाल।

कनिंघम, Vol. VI के पृष्ठ 54-55 पर लिखता है कि- ग्यारहवीं शताब्दी में इस किले पर राजा विजयपाल का अधिकार था और कहा जाता है कि उसने इस किले का पुनर्निर्माण कराया। विजयपाल चन्द्रवंश की यदुशाखा में था। उसके पुत्र का नाम आनन्दपाल था। उसके दो पुत्र और थे, जिनके एक पुत्र का नाम तहनपाल या तिमनपाल था जिसने करौली के निकट दक्षिण की ओर तहनगढ़ किला बनाया, दूसरा रित सिंह या रितपाल या रतनपाल था। कहा जाता है कि इसने उत्तर में भुसावर के निकट रितावर बसाया।

यहाँ हम देखते हैं कि वंश परम्परा के अनुसार आनन्दपाल विजयपाल के एक भाई का भी नाम है तथा दूसरा पुत्र का भी नाम है। दोनों ठीक हो सकते हैं। हो सकता है विजयपाल के 18 पुत्रों में से आनन्दपाल किसी पुत्र का उपनाम हो। अलग-अलग पीढ़ियों में एक ही नाम से दो व्यक्तियों का होना भी स्वाभाविक है।

महाराजा विजयपाल के उत्तराधिकारी रूप में तहनपाल या तिमनपाल का नाम आता है। विजयपाल के 18 पुत्रों में से युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले पुत्र कौन-कौन थे तथा शेष बचे हुए 7 पुत्र कौन-कौन थे उनका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। करौली रियासत के दस्तावेजों के आधार पर दामोदरलाल गर्ग ने विजयपाल के वंशजों द्वारा पृथक् इलाकों तथा गढ़ों का इस प्रकार उल्लेख किया है-

1. तिमनपाल - गद्दी का वारिस बना।

2. गजपाल - गजगढ़ (जेसलमेर) मोरस जादौ कहलाये ('वीर विनोद' में भाटी जादौ बताया है)

3. उदयपाल - करबा उदेई खुर्दकला आबाद किया।

4. मंडलपाल – मंडरायल किले की मरम्मत कराई।

5. बागपाल – बाघेर इलाका (सबलगढ़) पर काबिज हुए।

6. सरदपाल – –

7. छत्रपाल – गजनी में स्वर्गवास हुआ, औलाद ओगल जादौ कहलाई, कोटा, बूंदी, राजौगढ़, बजरंगगढ़ में आबाद है।

8. मदनपाल – सीसिला (सबखेरिया जादौ, एक इतिहासकार के.सी. जैन का मानना है कि इसने मण्डरायल का किला बनवाया।

9. हन्सपाल – –

10. मोतीपाल – जगरबाँध (हिण्डौन) के पास छतरी है। श्रद्धालु मनौती के रूप में पूजते हैं। पिरानपाल, देवपाल, रूपपाल, सतपाल, गंगपाल, रामपाल, सूरजपाल आदि इनके किसी जिक्र के साथ अन्तिम सन्तान की कोई जानकारी नहीं मिलती। कहने का तात्पर्य यह है कि औलाद के बारे में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती कि ये सन्तानें कहाँ-कहाँ रही अथवा युद्ध में काम आ गई अथवा इनकी भावी सन्तानें क्या कहलाई। जगाओं की पोथियों में कहीं-कहीं इसी प्रकार के नाम मिल जाते हैं।

'करौली पोथी' के अनुसार स्पष्ट है- वीरगति प्राप्त 11 पुत्रों के नाम- 1. चन्द्रपाल 2. मोतीपाल 3. प्रानपाल 4. उदेयपाल 5. रुद्रपाल 6. रूपपाल 7. संतपाल 8. रामपाल 9. कानपाल 10. चन्दनपाल 11. सूरतपाल।

शेष जीवित 7 पुत्रों के नाम- 1. तिमनपाल 2. रावरतनपाल (रक्षापाल) 3. चन्द्रपाल (चन्दनपाल) 4. ग्रीजपाल (गिर्जपाल), गजपाल 5. विनयपाल 6. ओमपाल 7. प्रानपाल। दोनों के कुछ नामों में अन्तर है) पृष्ठ. नं. 6,7)

महाराजा तिमनपाल-

बयाना के किले पर मुसलमानों का अधिकार होने के कारण राजा विजयपाल के बड़े पुत्र तवनपाल (तिमनपाल) को उत्तराधिकार मिला। राजा तिमनपाल के कठिन काल में बारह वर्ष तक अज्ञातवास रहने के बाद बयाना से लगभग 22 कि.मी. दूरी पर एक नया दुर्ग बनवाया जो उसके नाम पर तिमनगढ़ (तवनगढ़) कहलाया। करौली से तिमनगढ़ दुर्ग के लिए माची, मासलपुर, गाधोली व सागरपुरा गाँव होते हुए सागर (सरोवर) व तिमनगढ़ किले पर पहुँचते हैं। तिमनपाल एक वीर और प्रतापी शासक था। कनिंघम की आर्कियोलोजीकल

रिपोर्ट, भाग-2 के अनुसार तवनपाल का राज्य अलवर, भरतपुर, धौलपुर, गुड़गाँव, मथुरा से लेकर आगरा, ग्वालियर के भू-भाग तक फैला था। मध्यकाल का यह प्रसिद्ध दुर्ग दुर्गम पर्वत मालाओं से घिरा हुआ, वन-सम्पदा से परिपूर्ण, प्राकृतिक सौन्दर्य से सुशोभित होकर प्राचीनकाल की भव्य व सजीव प्रतिमाओं की कला की बहुमूल्य धरोहर है।

"परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर" की उपाधि से विभूषित यदुवंशी राजा तवनपाल या तिमनपाल या त्रिभुवनपाल की सफलता में एक सिद्ध योगी का सहयोग व आशीर्वाद जुड़े होने की जनश्रुति प्रचलित है। उस जनश्रुति का वर्णन दामोदरलाल गर्ग ने इस प्रकार किया है- महाराज विजयपाल की मृत्यु के बाद इसका दूसरा लड़का गजपाल बयाना से भाग निकला। लम्बे संघर्ष के बाद इसने चित्तौड़ तथा गजगढ़ को आबाद किया। तिमनपाल जो महाराज विजयपाल का ज्येष्ठ पुत्र था, दो साल तक लापता रहा। बाद में भ्रमण करते-करते पुनः बयाना की तरफ आया जहाँ धाय (कौम की मीणा) के यहाँ कुछ समय तक रहा। एक दिन शिकार खेलते समय इन्हें जंगल में खुदारसीदास (लोकगाथा अनुसार उस तपस्वी का नाम मेढ़कीदास था) नामक साधु मिला। तिमनपाल ने अपने घोर संकट को बतलाते हुए साधु से शुभ आशीर्वाद की याचना की। साधु ने उसके राजचिन्हों को देखते हुए, साथ ही दयनीय हालातों को देखते हुए आशीर्वाद के साथ एक पारस पत्थर इन्हें दे दिया एवं अपना माला सम्भलवाते हुए इसे आज्ञा दी कि- सीधे चले जाओ, पीछे मुड़कर मत देखना और जहाँ तुम्हारा घोड़ा रुक जाये वहीं इस भाले को गाड़ देना, जिससे अगाध जल की प्राप्ति होगी, उपरान्त उसी के किनारे नये राज्य की नींव डालना जो भावी पीढ़ी को तुम्हारे कृतित्व का परिचय देती रहेगी।

राजा तिमनपाल साधु आदेश से चल पड़ा। घोड़ा एक बीहड़ और वीरान जंगल में एक पहाड़ी की तलहटी में जाकर रुका। वहाँ भाला गाड़ते ही वृहत् जल स्रोत फूट निकला जो बाद में 'सागर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उक्त किंवदन्ती के अनुसार तिमनपाल ने सागर नामक विशाल तालाब के ठीक ऊपर समुद्रतल से 1309 फीट की ऊँचाई वाली पहाड़ी पर साधु द्वारा दिये गये पारस की सहायता से सं. 1105 के पुष्यनक्षत्र यानी सन् 1048 में किले की नींव डाली जो बाद में इसी के नाम से (तिमनगढ़) विख्यात हुआ। कहीं सन् 1120 भी लिखा है जो सही नहीं है।

तिमनपाल ने दुर्ग को जहाँ ऊँची प्राचीरों से सुरक्षित किया वहाँ अंदरूनी व्यवस्था को बनाये रखने हेतु अलग-अलग फौजी चौकियाँ नियुक्त कर दी। आम जनता के फर्शबन्दी बाजार, मन्दिर कुएँ एवं ताल बनवाये। शाही निवास हेतु दूसरे किनारे पर प्रासादों का निर्माण कराया। लगभग दस साल के परिश्रम के बाद दुर्ग पूर्ण वैभव के शिखर पर पहुँच गया था। उस समय इसे 'त्रिभुरानगरी' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। तिमनपाल इस दुर्ग की गद्दी पर सन् 1058 में बैठा।

तिमनपाल के शासन काल में राजस्व वसूली में अन्न और राशि के एवज में लोहा लिया जाता था, जिसे पारस की सहायता से सोना बनाया जाता था। साधु द्वारा दिये गये पारस के बारे में इतिहासकार मौन हैं, फिर भी क्षेत्रीय किंवदंतियों में बतलाया जाता था। एकबार तिमनपाल ने किसी बात पर खुश होकर पारस को वस्त्र में लपेटकर अपने पुरोहित को दान कर दिया। पुरोहित उसे खुशी-खुशी लेकर जगन पौर होते हुए नीचे आया और पोटली को इस उद्देश्य से तत्काल खोलकर देखा कि आज महाराज साहब ने ऐसी क्या इनाम दी है जिसे वस्त्र में लपेटकर दिया। उसने पोटली खोली, विचित्र किस्म का पत्थर देख, गुस्सा खाते हुए नजदीक के जलाशय में फेंक दिया और चलते बना। कहते हैं कि हीरा की परख जौहरी ही जानता है। जब राजा तिमनपाल को अवगत कराया गया कि पुरोहित जी आपके द्वारा दी गई इनाम को जलाशय में फेंक गये हैं तो उन्हें गहरा दुख हुआ। अमूल्य निधि को ढुँढ़वाने हेतु तुरन्त हाथियों को लोहे की भारी साँकलों से बाँधकर सागर में छोड़ा गया। लम्बे परिश्रम के बाद भी हाथी उसे खोजने में असफल रहे, परन्तु साँकल का जो हिस्सा पारस से छू गया वह अवश्य सोने का हो गया। इस प्रकार उक्त पारस राजा तिमनपाल को पुनः प्राप्त नहीं हो सका। जनश्रुति अनुसार पारस का टुकड़ा आज भी इसी सागर के गर्भ में है।

राजा तिमनपाल ने अपने बाहुबल से जहाँ डाँग क्षेत्र पर कब्जा किया वहाँ अलवर, भरतपुर एवं चम्बल के साथ-साथ धौलपुर तक को अपने अधिकार में ले लिया। राजा तिमनपाल 32 साल शासन करके सन् 1090 में तिमनगढ़ में मृत्यु को प्राप्त हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि तहनगढ़ दुर्ग का निर्माण तिमनपाल ने नहीं कराया बल्कि पूर्व ध्वंस किले का जीर्णोद्धार तथा सौन्दर्यीकरण कराया।

राजस्थान के बहुत से दुर्ग और गढ़ियों के निर्माण की कहानियाँ तत्कालीन अभिलेखों के अभाव में जिस नाटकीय ढंग से सुनने को मिलती हैं, उससे आश्चर्य होता है। कहीं किंवदंतियों का पुट देकर तो कहीं भूत-प्रेतों के माध्यम से विशाल दुर्भेद्य दुर्गों का निर्माण हुआ बतलाते हैं। रणथंभोर बयाना, तहनगढ़ आदि की कहानियाँ उक्त परिप्रेक्ष्य में सुनी जाती हैं। इतिहासवेत्ता यह तो स्वीकारते है कि उपरोक्त किलों का तत्कालीन शासकों द्वारा निर्माण हुआ पर कब और किन परिस्थितियों में हुआ, इस बात पर कहीं विस्तृत दृष्टि नहीं डाली गई। इतना अवश्य है कि महाराजा तिमनपाल ने इस तहनगढ़ दुर्ग का निर्माण अथवा जीर्णोद्धार जो भी किया हो, परन्तु इस दुर्ग के वैभव को पराकाष्ठा तक पहुँचाने में इसकी साधना एवं पारस की ही करामात रही।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो महाराज विजयपाल की समस्त सन्तानों में एकमात्र तिमनपाल ही प्रभावशाली व्यक्तित्व के साथ उभरा, जिसने पूर्वजों के खोये राज्य को पुनः हासिल करने में सफलता प्राप्त की। इसने अपने दीर्घकालीन शासन में जहाँ तिमनगढ़ का जीर्णोद्धार कराया, वहाँ अपने पैतृक क्षेत्रों को जीतते हुए अपने राज्य की शक्ति को बढ़ाया। वह अपने समय का आला बहादुर था, जिसने कभी हार का मुँह नहीं देखा।

महाराजा तिमनपाल की 20 रानियाँ थीं, जिनमें 18 रानी और दो खब्बास थीं। इनके ग्यारह लड़के थे जिनमें प्रथम चार तो असली रानियों से, बाकी सभी खब्बासनियों की औलाद थीं। हस्तलिखित करौली तवारीख फारसी के अनुसार इनके सात लड़के हुए। चार असली रानियों से और तीन खवासकर से। धर्मपाल, ईलाजी, बीलेजी, सोमदेव असली रानियों से (पवार, चौहान रानियों से), देवपाल, बलभद्रपाल, खवास राठौर से एवं हरिपाल खब्बास गूजरी से पैदा हुआ।

करौली ख्यातों के अनुसार तिमनपाल के दस पुत्र थे- धर्मपाल, सुआपाल, हरिपाल, उदयपाल, मदनपाल, नन्दपाल, पृथ्वीपाल, नागराज, टोडरमल, ब्रह्मपाल।

महाराजा धर्मपाल-

त्रिभुरानगरी (तिमनगढ़) की गद्दी पर बैठने के बाद महाराज तिमनपाल ने जहाँ राज्य का विस्तार और विकास कर अमनचैन कायम किया, वहाँ उन्हें एक चिन्ता लम्बे समय से सता रही थी- "किस प्रकार पिता की नीली घोड़ी और हीरा वापिस आये, जिसे आक्रमणकारी अबूबक्र कंधारी विजयमन्दिरगढ़ की

लूट के समय ले गया था।" समय व्यतीत होता गया, महाराज तिमनपाल बूढ़े हो चुके थे। एकबार महाराज तिमनपाल ने अपने बड़े लड़के धर्मपाल से उक्त विषय का जिक्र किया, परन्तु धर्मपाल शायद दूर की लड़ाई से कतराता था, उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। दूसरे लड़के हरिया (हरपाल) ने बहादुरी का परिचय दिया व अकेला ही कंधार गया और वहाँ कुछ समय रहकर चतुराई से पितामह (बाबा) की अमानत को सुरक्षित लाकर पिता (तिमनपाल) को भेंट करदीं। महाराज तिमनपाल हरपाल की होशियारी एवं बहादुरी से बहुत प्रसन्न हुआ। लिहाजा गद्दी का वारिस जहाँ बड़े लड़के धर्मपाल को बनाया वहाँ शासन के सारे अधिकार हरपाल को दे दिये।

महाराज तिमनपाल के गुजर जाने के बाद धर्मपाल की ताजपोशी हुई, परन्तु हरपाल ने इसकी हुकूमत स्वीकार नहीं की और ना ही धर्मपाल को शासक ठहराया। धर्मपाल नाम का शासक रहा। दुर्ग पर पूर्णरूपेण हरपाल ने अधिकार कर लिया। उपेक्षा और बेइज्जती ने धर्मपाल को किला छोड़ने को मजबूर कर दिया। अत: धर्मपाल कुछ सिपाईयों को लेकर जंगलों में होता हुआ चम्बल नदी के किनारे पहुँचा जहाँ पूर्व खंडहर पड़े किले व शहर को आबाद किया। उस समय इस क्षेत्र का नाम धौलहेरा था जो बाद में 'धौलपुर' नाम से प्रसिद्ध हुआ। धौलपुर आबाद होने के क्रम में 'वीर विनोद' का मानना है कि दौला नामी एक रईस ने इसे आबाद किया था, बाद में उसी के नाम पर इसका नाम धौलपुर रखा गया।

भाईयों में वैमनस्यता की नींव तो तब ही डल गईं जब महाराज तिमनपाल ने छोटे लड़के हरपाल को शासन के सारे अधिकार दे दिये, जिसके कारण धर्मपाल को अपमानित होकर दुर्ग से पलायन करना पड़ा। बाद में अन्य भाई भी धीरे-धीरे पलायन करते गये। कई एक ने तो अपना धर्म भी बदला और कई ने नई सन्तति को जन्म दिया। इनकी आपसी रंजिश ने यवनों को इस दुर्ग पर शासन करने का मौका दिया। यदि भाईयों में मतभेद नहीं होता तो त्रिभुरानगरी (तिमनगढ़) तो क्या? विजयमद्रगढ़ (बयाना) पर यवनों का पुन: कभी कब्जा नहीं होता और ना ही यवन इन रास्तों से राजस्थान में प्रवेश करते।

तिमनगढ़ का पतन-

वैसे तो इस दुर्ग पर हमेशा ही युद्ध के बादल मँड़राते रहे परन्तु महाराज तिमनपाल की सन् 1090 में मृत्यु होने के बाद एवं धर्मपाल के पारिवारिक-कलह की वजह से यहाँ से चले जाने के बाद यवनों के आक्रमण इस किले पर और भी

बढ़ गये। हरपाल बहादुरी से आक्रमणकारियों को खदेड़ता रहा। जब हरपाल वृद्धावस्था से गुजरने लगा उस समय धर्मपाल के बड़े लड़के कुंवरपाल ने राज्य की बागडोर संभाली। अपनी बहादुरी से आस-पास के क्षेत्रों को जीतता हुआ बयाना पर अधिकर कर लिया। सन् 1100 में कुंवरपाल बयाना और तिमनगढ़ का शासक बना। सन् 1139 ई. में मौहम्मद गौरी ने हमला किया, घोर संग्राम के बाद गौरी ने बयाना और तिमनगढ़ पर कब्जा कर लिया। इस लड़ाई में धर्मपाल तो मारा गया तथा ज्यादातर राजपूत लड़ाई में मारे गये। नारियों ने वीरतापूर्ण जौहर किया।

उक्त सन्दर्भ में करौली की तवारीख फारसी में हिन्दी अनुवाद पुस्तक में इस प्रकार विवरण प्राप्त होता है (करौली राज्य के दस्तावेज के अनुसार)- "सं. 1153 (सन् 1096) में धर्मपाल के लड़के कुंवरपाल ने अलग रहकर गौलारी में एक किला बनाया तथा तिमनगढ़ में भी सम्पर्क बनाये रखा। एक दिन मौका पाकर तिमनगढ़ के शासक हरपाल का वध कर दिया और स्वयं मालिक बन गया। जब खबर धौलपुर पहुँची तो धर्मपाल तिमनगढ़ आया, जहाँ कुंवरपाल ने उसे पुनः गद्दी पर बैठाया। चूँकि हरपाल के सम्बन्ध बादशाह (मौहम्मद गौरी) से अच्छे थे। इस प्रकार जब हरपाल के वध की सूचना बयाना पहुँची तो बयाना के सरदार ने तिमनगढ़ पर चढ़ाई कर दी। धर्मपाल किला छोड़ कुंवरगढ़ की ओर भागा, लेकिन मारा गया। किलों पर बयाना के यवनों का पुनः कब्जा हो गया।

टिप्पणी- उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि कुंवरपाल तथा हरपाल से सम्बन्धित उक्त ब्यौरा प्रामाणिक नहीं जान पड़ता है, क्योंकि इनके राज्य काल तथा मौहम्मद गौरी के काल में लगभग पचास वर्ष का अन्तर आता है। अतः यह ब्यौरा ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक नहीं है। दूसरे, पीछे लिखे विवरण तथा वंशावलियों को देखने से पता चलता है कि-

राजा कुंवरपाल के बारे में इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न मत लिखे हैं, जैसे-

1. अधिकतर इतिहासकारों ने वंशावलियों में राजा धर्मपाल के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र कुंवरपाल लिखा है, लेकिन कनिंघम ने धर्मपाल के बाद राजा अजयपाल को पुत्र लिखा है तथा अजयपाल का पुत्र कुंवरपाल लिखा है। अतः वंशजों की पीढ़ी में अन्तर आने पर उनके समय में भी अन्तर आता है।

2. राजा तिमनपाल का समय सन् 1058 ई.–1090 ई. है। इसके पौत्र तथा धर्मपाल के पुत्र कुंवरपाल ने इसके समय में ही गौलारी में कुंवरगढ़ का दुर्ग बना लिया था।

3. राजा तिमनपाल ने अपने बड़े पुत्र धर्मपाल को गद्दी का वारिस बनाया, लेकिन शासन के सारे अधिकार हरिपाल को सन् 1078 ई. में दे दिये थे। पिता धर्मपाल और चाचा हरिपाल के मध्य उठे विरोध के कुंवरपाल सन् 1096 ई. में तिमनगढ़ को छोड़ कुंवरगढ़ में रहने लगा।

4. कुंवरपाल ने अपने चाचा हरिपाल की हत्या कर दी तथा पिता धर्मपाल को तिमनगढ़ की गद्दी पर पुनः बिठाया। राजा धर्मपाल की मृत्यु 1101 ई. हुई थी। धर्मपाल की मृत्यु के बाद कुंवरपाल 1101 ई. में गद्दी पर बैठा।

5. एक मुस्लिम विद्वान् का मानना है कि मुईजुद्दीन सं. 1194 सन् 1137 ई. में बयाना की तरफ आया उस समय कुंवरपाल वहाँ का शासक था।

इन सभी उल्लेखों से यह तो प्रमाणित होता है कि राजा कुंवरपाल का (1101 ई. से 1147 ई. तक) शासनकाल रहा तथा उक्त काल में उसका साम्राज्यवादी मुस्लिमशक्तियों से कई बार संघर्ष भी हुआ, जिन संघर्षों में वह हारा भी और जीता भी। कुछ इतिहासकारों द्वारा यह लिखना कि सन् 1196 में वह बयाना की गद्दी पर मौजूद था और मुहम्मद गौरी से उसका युद्ध हुआ जिसमें उसकी हार हुई और बयाना तथा तहनगढ़ दुर्ग पर मुहम्मद गौरी का अधिकार हो गया था, बिलकुल असंगत है। इसके अतिरिक्त अधिकतर इतिहासकारों ने धर्मपाल के ज्येष्ठ पुत्र कुंवरपाल का ही विशेषरूप से उल्लेख किया है, इसलिए कनिंघम का उपरोक्त उल्लेख भी असंगत है। संभवतः उस समय सोहनपाल राजा रहा हो।

अब, हम यहाँ महाराजा विजयपाल से लेकर राजा कुंवरपाल तक (लगभग 1000 ई. से 1200 ई. तक) के यदुवंश इतिहास का विश्लेषण करें तो हमें इन यदुवंशी राजाओं से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है, जैसे– 1. उक्त राजाओं का जीवन चरित्र तथा महत्वपूर्ण कार्य 2. बयाना, तिमनगढ़ तथा कुंवरगढ़ दुर्गों का निर्माण तथा महत्व 3. उक्त काल (लगभग 300 वर्ष) में यदुवंशियों का पलायन। देखने में आता है कि इस महत्वपूर्ण इतिहास के बारे में यदुवंशी समाज बिलकुल अनभिज्ञ है। साथ ही जिन्हें थोड़ी–बहुत जानकारी भी है तो वह भी भ्रमपूर्ण स्थिति में है। अतः यहाँ इनका इतिहासकारों के वर्णनों के आधार पर पुनरावलोकन करना आवश्यक समझते हैं।

पुनरावलोकन-

पीछे उक्त प्रकरणों के बारे में काफी कुछ लिखा जा चुका है। अब देखना यह है की स्थिति क्या थी ? क्योंकि यह काल यदुवंशियों के लिए संक्रमण-काल था, जिसमें यदुवंशियों का सबसे अधिक पलायन तथा विस्थापन हुआ। एक ऐसा काल, जिसमें यदुवंशियों का अस्तित्व बार-बार खतरे में पड़ता रहा और पुनः स्थापित होता रहा। कभी बिखरा, कभी पुनः संगठित हुआ। अपने देश, गौरव तथा मान-मर्यादा की रक्षा हेतु न जाने कितने उतार-चढ़ाव के दौर से गुजरना पड़ा।

यदुवंशी विजयपाल के बारे में पर्याप्त दस्तावेज लेख, आलेख आदि उपलब्ध होने के बाद भी इसके इतिहास को विभिन्न तरीकों से मोड़ा गया है बल्कि उसके व्यक्तित्व तक को नष्ट करने का प्रयास भी किया गया। आधुनिक काल में महाराजा विजयपाल के जोभी तथ्य प्रस्तुत किए जा रहे हैं उनमें ज्यादातर प्रतिहार वंशीय विजयपाल के मिलते हैं। कुछ शिलालेख तथा प्रशस्तियों के आधार पर बयाना को प्रतिहारों के साम्राज्य में खड़ाकर यदुवंशी विजयपाल के व्यक्तित्व को बिलकुल ही कम कर दिया है।

लोक कथाओं में महाराज विजयपाल को आला बहादुर, प्रवीण और प्रज्ञावान बताया जाता है। इसके शासनकाल में नल्ल सिंह नामक कवि (भाट) ने वीररस में एक सुन्दर काव्य रचना की जिसे बाद में 'विजयपाल रासो' के नाम से पुकारा गया। इस ग्रन्थ में उसने इसकी धार्मिक, सामाजिक और वंश परम्परागत बहादुरियों के साथ युद्धों का उच्चस्तरीय बखान किया है। इस ग्रन्थ की कोई लिखित प्राचीन प्रति भी प्राप्त नहीं है। केवल मौखिक परम्परा द्वारा 42 छन्द ही प्राप्त हैं। भाषा ब्रज है। रचना का विषय महाराजा विजयपाल की दिग्विजय से सम्बन्धित है। 'विजयपाल रासो' के अनुसार विजयपाल का जन्मदिन सम्वत् 1035, आश्विन शुक्ल, तेरस गुरुवार मिलता है-

छप्पय- एक सहस्र पैंत्तीस मास आश्विन पख उज्ज्वल तिथि गुरुवार

घटी पच्चीस तीस पल मीन लग्न शुभ जोग भोग चित्र वाघ कर

मूरत रासन ग्वारवौ भौम शुक्र तीजे भवन जदु जनम विजयपाल को सप्त अंक नृप जेन्द्र तन, यहाँ से क्षेत्रीय किंवदंतियों में विजयपाल रासो को यदुवंश का श्रेष्ठतम ग्रन्थ माना जाता है।

'रासो' के अनुसार विजयपाल ने आक्रान्ताओं के भय के कारण मथुरा से आकर बयाना की पहाड़ी पर एक दुर्ग का पुनः निर्माण कराया तथा नीचे शहर आबाद किया। इस दुर्ग को अपनी राजधानी बनाने के बाद राजपूताने के राजाओं को ही नहीं जीता बल्कि गुजरात व दक्षिण में तेलंगाना तथा भूटान नेपाल तक के क्षेत्रों को अपने अधिकार में लेकर कुछ पाबन्दी और कर लगाकर जीते क्षेत्र उन्हें लौटाते हुए अपनी दयालुता का परिचय भी दिया। महाराज विजयपाल ने 29 शादियाँ की जिनसे 18 सन्तानें हुईं। अपने समय के ये एकमात्र हिन्दू शासक रहे जिन्होंने बयाना में रहते हुए सम्पूर्ण राजपूताने को एक शासन (हिन्दुत्व) सूत्र में पिरोने का प्रयास किया। इसने अन्तिम समय तक कुल 35 लड़ाईयाँ लड़ी तथा 51 साल राज किया।

जहाँ तक यदुवंशी विजयपाल की बात है, प्रतिहार गुर्जरों के पतन के बाद लगभग सन् 990 ई. में बयाना यदुवंशियों के कब्जे में आ गया तब ही जयेन्द्रपाल ने दुर्ग का जीर्णोद्धार कराया। उपरान्त यदुवंशी विजयपाल बयाना का शासक बना, जिसका मात्र एक प्रस्तर लेख बयाना की एक मस्जिद के स्तम्भ पर सन् 1043 का मिलता है।

बयाना के पतन को कप्तान पी.डब्लू. पाउलेट ने बयाना की जबर्दस्त बर्बादी बताया। वि.सं. 1103 सन् 1046 में यवनों ने इस दुर्ग पर पूर्ण अधिकार कर लिया। इसके बाद बयाना में मुस्लिम सभ्यता का तेजी से विकास हुआ। जगह-जगह मस्जिदें, दरगाहें एवं बावड़ियों का जहाँ निर्माण हुआ वहाँ ढेर सारी हिन्दू संस्कृति में आमूल चूल परिवर्तन हुए। यवनों के समस्त निर्माण मुस्लिम सभ्यता के उत्कृष्ट शिल्प को समेटे हुए हैं।

महाराजा विजयपाल के बाद यवनों का इस दुर्ग पर पूर्ण आधिपत्य रहा हो, ऐसी बात नहीं है। महाराजा विजयपाल के उत्तराधिकारियों ने समय-समय पर मजबूती से हमले किये, यवनों को खदेड़ा और स्वयं काबिज हुए।

वर्तमान बयाना जो भरतपुर जिले में एक बड़ा कस्बा है जहाँ आज भी महाराजा विजयपाल द्वारा निर्मित दुर्ग ऊँची पहाड़ी पर लगभग 14 कि.मी. वर्ग के घेरे में उजड़ा अतीत की गौरवगाथा को यादकर जीवित है। बारहदरी, गुम्बज, भीमलाट पानी के टांके, रनवास में जौहर की कालिमा, तलटी में दुकानें, झरने एवं मचान के साथ दूर तक मार करने वाली तोप आज भी खण्डहर पड़े इस दुर्ग में देखने को मिलती हैं। दुर्ग के सारे निर्माण साधारण किन्तु भीमकाय पत्थरों से बने हैं। परकोटा पूर्ण सुरक्षित है।

बाणासुर के समय का शोणितपुर था। इसके बाद समय-समय पर इसके नाम बदलते रहे जैसे शान्तिपुर, श्रीपथ, ब्रह्मवाद, भण्डानक, बारहवीं शताब्दी में सुल्तान कोट तत्पश्चात् इसे बयाना के नाम से पुकारा जा रहा है।

मुस्लिम इतिहासकार हबीब उल्लाह ने इस तथ्य को स्वीकारा है कि बयाना से भागने पर कुछ यादव अलवर की तरफ चले गये थे जो धीरे-धीरे लड़ाई के लिए सुनियोजित होते रहे। डा० गोपीनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक 'राजस्थान का इतिहास 1978' में इस तथ्य की पुष्टि की है कि मुहम्मद गौरी के आक्रमण से धकेले गये बयाना के कुछ यादव तिजारा और अलवर की सरहद में जा बसे जहाँ कुछ ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और खानजादा कहलाये। तेरहवीं शताब्दी के लगभग पूरे मेवात (अलवर) पर कब्जा कर लिया। यादवों की इस जबर्दस्त और सुनियोजित योजना ने बयाना के मुस्लिम शासन को भी भयभीत कर दिया था। उस समय बयाना पर मुगलों का अधिकार हो जाने के कारण काफी यदुवंशी क्षत्रिय उत्तर की ओर पलायन कर गये जिनमें मुख्यत: एटा जिले के जलेसर क्षेत्र और दक्षिण में मध्य प्रदेश के होशंगाबाद के शिवनी मालवा क्षेत्र एवं गोंडवाना क्षेत्रों में हुआ जिसके प्रमाण जगाओं और ताम्रपत्रों से मिल चुके हैं।

बयाना दुर्ग के पतन के बाद महाराजा विजयपाल के पुत्र तिमनपाल ने तिमनगढ़ दुर्ग को आबाद किया, लेकिन कुछ समय बाद यह किला भी मुस्लिमों की नजर से नहीं बच सका और इस दुर्ग पर अधिकार करने के लिए मुस्लिमों के बार-बार आक्रमण होने लगे तथा किले पर अपना अधिकार भी कर लिया। तिमनपाल की मृत्यु के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र धर्मपाल ने भागकर गौलारी में धौलपुर दुर्ग का निर्माण किया। धर्मपाल के पुत्र कुंवरपाल ने सैन्य शक्ति संगठित कर पुन: बयाना तथा तिमनगढ़ दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। लेकिन पारिवारिक कलह के कारण मुस्लिमों ने पुन: इन दुर्गों पर हमला किया तथा दोनों दुर्गों पर अपना अधिकार कर लिया। कुंवरपाल ने इस किले से भागकर गौलारी के दुर्ग में समय निकाला। एक ऐसी जानकारी भी मिलती है कि इस युद्ध में कुछ फौज भयवश भगोड़ी हो गई थी जो नजदीक के जंगलों में जा छुपी। शनै:-शनै: जंगलों को साफकर वे लोग गाँवों के रूप में बस गये। किले के दूर जंगलों में जो आबादी दिखलाई देती है, वे लोग उन्हीं सिपाहियों के वंशज बतलाये जाते हैं।

उपरोक्त सन्दर्भ में **'वीर विनोद'** का मानना है कि धर्मपाल मुसलमानों की लड़ाई में मारा गया, पुत्र कुंवरपाल यहाँ से निकलकर अंधेरा कोटला (रीवा म. प्र. के समीप) अपनी ननिहाल चला गया। उसका भाई मदनपाल मुसलमानों के अधीन रह तिमनगढ़ के पास ही रहा जिसकी औलाद गोहजे (गोजे) खानदान के नाम से किले में मौजूद बताये जाते हैं। इस किले पर यवनों के कई बार हमले हुए। कभी मुसलमानों को खदेड़ा गया तो कभी राजपूतों को हार का मुँह देखना पड़ा। परन्तु मुहम्मद गौरी के आक्रमण ने यदुवंशियों को ऐसा खदेड़ा कि वे मुस्लिम विजेताओं के भय से इधर-उधर भागते ही रहे, इस दुर्ग पर काबिज नहीं हो सके। यह किला मासलपुर तहसील के अंतर्गत भोजपुर गाँव के पूर्व में स्थित है।

एक लेखक ने लिखा है कि- "इसमें दोराय नहीं कि इस दुर्ग में करोड़ों की मूर्तियों के अवैध रूप से जाने के उपरान्त भी इसके गर्भ में अरबों की बेशकीमती प्रतिमाएँ आज भी छुपी हुई हैं जो जमीन में चार फीट से छः फीट की गहराई तक हो सकती हैं।

कुंवरपाल के पलायन तक यदुवंशियों का इस दुर्ग पर स्थाई अधिकार रहा, उपरान्त समय-समय पर शत्रु-पक्ष की कमजोरियों का फायदा उठा पुनः काबिज और पलायन होते रहे। बाद में यवनों की विभिन्न जातियों का 16वीं शताब्दी तक येन-केन प्रकारेण इस दुर्ग पर वर्चस्व बना रहा। कई पीढ़ियों बाद महाराजा धर्मपाल द्वितीय के सन् 1644 ई. में करौली तख्त पर सिंहासनारूढ़ होने के साथ तिमनगढ़ इनके अधिकार में आ गया, परन्तु करौली के विकास को प्राथमिकता देने के कारण, न तो महाराजा धर्मपाल ने इस दुर्ग के बारे में कुछ सोचा और न ही इसके वंशजों ने इसके उचित संरक्षण पर कभी ध्यान दिया। लिहाजा यह दुर्ग धीरे-धीरे निर्जन, बीहड़ और खण्डहर होता चला गया। वहीं कालान्तर में दस्युओं का विहार स्थल भी बनता गया।

मोहम्मद गौरी ने जब इस दुर्ग पर कब्जा किया उस समय बहुत से यदुवंशी परिवारभय और सुरक्षा की दृष्टि से यत्र-तत्र पलायन कर गये जिनमें से कुछ मेवात (अलवर गुड़गाँव) की ओर चले गये जहाँ अपने को जीवित रखने की गरज से उन्होंने धर्म परिवर्तन किया, वहीं वे लोग बाद में स्वयं को खान जादे अथवा मेव कहलाने लगे। इसके बाद इन्होंने धर्म-परिवर्तन नहीं किया, ऐसी बात नहीं। जलालुद्दीन फिरोज खिलजी ने रणथम्भौर जाते समय (सन् 1290-91 ई.) तिमनगढ़ के अधिकांश लोगों से धर्म परिवर्तन करवाया। वर्तमान करौली

के ज्यादातर मुसलमानों को यदि उन्हीं लोगों का वंशधर माना जाय, तो कोई असंगत बात नहीं होगी।

महाराजा तिमनपाल के संघर्षपूर्ण जीवन पर जब प्रकाश डालते हैं, तो ज्ञात होता है कि वह अपने समय का आला बहादुर था जिसने कभी हार का मुँह नहीं देखा। बयाना के भीषण नरसंहार के बाद भी वर्षों अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु संघर्षरत रहा। एक लम्बे खण्डहर पड़े दुर्ग को व्यवस्थित रूप देकर एक दशक बाद उसे अपनी राजधानी के रूप में घोषित कर अल्प समय में ही अपने पिता की खोई सम्पत्ति (बयाना) को पुनः हस्तगत कर अलवर, भरतपुर, मथुरा का कुछ क्षेत्र और धौलपुर को अपने कब्जे में कर अपने राज्य का विस्तार किया। अशिक्षित होने के बावजूद भी शासन-व्यवस्था अति उत्तम थी। चोरी, डकैती, बलात्कार जैसी बुरी प्रवृत्तियाँ नहीं थीं। प्रजा की सुख-सुविधाओं के साथ राज्य के विकास के लिए तत्पर रहता था। विवेक पूर्ण निर्णय लेने के कारण वह गरीबों का शुभचिन्तक बन गया था। तिमनपाल को व्यक्तित्व का धनी कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी, चूँकि वह जो सोचता था उसे पूरा करने की चेष्टा करता। महाराजा स्वयं वैष्णव होने के बाद भी सभी धर्मों का सम्मान करता था। बाद में इन पर धर्माचार्यों के सत्संग का इतना प्रभाव पड़ा कि इन्हें लड़ाइयों से घृणा सी होती गई। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से की जा सकती है कि विजय अभियानों से लौटते समय रणथम्भौर के शासक राणा हम्मीर को भारी नजराना देकर जहाँ दुर्ग को भारी खून खराबे से बचाया वहाँ धर्म के प्रति सच्ची आस्था का परिचय भी दिया। बाद में तो वन्य जीवों के शिकार पर भी पाबन्दी लगा दी।

कुंवरपाल-

तिमनगढ़ पतन के साथ कुंवरपाल यहाँ से पलायन कर अंधेर कोटला (रीवा के पास) चला गया, जहाँ रींवा महाराज ने इसे अच्छी खातिरदारी से रखा। बाद में अंधेर कोटला में गद्दी पर बैठा। यह बहुत ही बहादुर और काबिल योद्धा था। तिमनगढ़ में अपने चाचा हरिपाल की हत्याकर अपने पिता को पुनः वहाँ की गद्दी पर बैठाना, दो दुर्गों। (बयाना, तिमनगढ़) पर उस अराजकतावादी युग में नियंत्रण रखना एवं अपने नाम पर अलग किले (गौलारी) का निर्माण कराना उसकी विशेष उपलब्धियाँ रहीं।

कुंवरपाल के उत्तराधिकारियों के वंशजों में से तिमनगढ़ पर समय-समय पर अस्थाई तौर से शासक 1191 ई. तक बनते बिगड़ते रहे। यह ठीक है कि यह

अवधि इस वंश के वास्ते कठिन परीक्षा की घड़ी थी जहाँ इन्हें अपने प्राण बचाना, सम्मान से रहना कठिन हो रहा था। तदोपरान्त भी कुंवरपाल से अर्जुनदेव (सन् 1150 से 1327 ई.) (दशवीं पीढ़ी) तक की वंशावली तथा समय क्रमबद्ध मिलता है, लेकिन यह नहीं कह सकते कि उक्त अवधियों में ये लोग स्वतंत्र और स्थाई तौर पर कहीं शासक बनते रहे। तथ्यों के अध्ययन करने पर ऐसा मालूम पड़ता है कि तिमनगढ़ पतन के बाद और मण्डरायल दुर्ग पर काबिज होने से पूर्व कुंवरपाल के वंशज मुस्लिमभय से यत्र-तत्र भागते रहे। इसी कारण इसके मध्यकाल के शासन का प्रामाणिक उल्लेख नहीं किया गया। ख्यात से यह बिलकुल स्पष्ट होता है कि कुंवरपाल के जाने के बाद से अर्जुनदेव तक के शासकों का प्रारम्भिक जीवन रींवा और इसके इर्द गिर्द निकला जहाँ इसकी दस पीढ़ी रही। कुंवरपाल की आठ शादियाँ हुई जिनसे चार संतानें हुईं- अजैपाल (अजयपाल), कायमपाल, आनन्दपाल और मनोहरलाल। सम्भवत: मध्यप्रदेश में यदुवंशियों का विस्तार इसी काल में हुआ हो।

देव बहादुर अर्जुनदेव एवं करौली-

यहाँ तक आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी (राजपूत काल) तक का, जो मथुरा, कामां, बयाना तथा तिमनगढ़ के प्रसिद्ध यदुवंशी राजाओं एवं दुर्गों के उत्थान और पतन का इतिहास है, प्राप्त होता है जिसके बारे में यदुवंश समाज बहुत कम जानता है। प्राय: यदुवंशी कह देते हैं कि हमारा निकास करौली से है, जो उचित नहीं जान पड़ता। क्योंकि जितना पलायन एवं स्थापन राजपूत काल (उक्त 400 वर्ष) में हुआ उतना करौली की स्थापना के बाद नहीं। अत: अब हम करौली की स्थापना की ओर चलते हैं।

आगे इस वंश का इतिहास पुन: अंधेर कोटला (रींवा रियासत) से आरम्भ होता है जहाँ इस वंश में धूगलदेव नामक एक राजा हुआ जिसकी सन्तानों में अर्जुनदेव उर्फ नागार्जुन अथवा अर्जुनवली नाम का एक पुत्र था जिसे उस समय महानतम शासक के रूप में पहचान मिली। इसे दिल्ली तख्त से सर्वप्रथम देव बहादुर का खिताब ही नहीं मिला बल्कि उसने अपनी लड़की का डोला भी दिया, जिसे स्थानीय किंवदंतियों में हिन्दू मुस्लिम संस्कृति की बेजोड़ दास्तान बतलाया जाता है। इसका राजतिलक अंधेर कोटला में सन् 1327 ई. में हुआ। यह बहादुर होने के साथ-साथ दूरदर्शी व्यक्ति रहा।

करौली क्षेत्र के ग्रामीण अंचलों में एक लोकगाथा सुनने को मिलती है जो तिमनगढ़ पतन के बाद वंशधारा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण सहयोग करती है।

बताया जाता है कि कुंवरपाल के प्रपौत्र पृथ्वीपाल की बहू जो युद्ध के समय गर्भवती थी, जौहर के दोष को ध्यान रखते हुए बहू को झूठा बुलावा बतलाकर भीषण नरसंहारात्मक युद्ध से पूर्व ही पीहर अंधेरा कोटला भेज दिया, जहाँ इस वंश के घूगलदेव हुए जिसने सम्वत् 1350 सन् 1293 में तिमनगढ़ पर अधिकार किया।

मंडरायल दुर्ग पर अधिकार-

घूगलदेव की मृत्यु के पश्चात् इसके बड़े लड़के अर्जुनदेव (कुंवरपाल से दसवीं पीढ़ी पर) ने सं. 1384 सन् 1327 में गद्दी सम्भाली। करौली ख्यातों में इसकी सं. 1394 सन् 1337 ई. में अंधेरा कोटला से आकर गद्दी नशीनी तिमनगढ़ में हुई। बुजुर्गों की खोई सम्पत्ति और शासन को हस्तगत करने के इरादे से रींवा से रानी और प्रथम चार भाईयों को साथ लेकर चल पड़ा। जब सबलगढ़ क्षेत्र में पहुँचा तो वहाँ मौजा माँगरौल में एक चमत्कारी घोड़ी हाथ लगी जिसे मालिक ने हंस जानकर छोड़ दिया था। इसके बाद अपने बाहुबल से चम्बल के पास नीदर में गढ़ी बनाई और धीरे-धीरे संगठित होकर मंडरायल किले को, जो उस समय मियांमकन नामक किलेदार के कब्जे में था और जो जाति का पठान एवं निहायत अक्लमंद था। मुगल शासकों के समय में यह किला जहाँ मराठों को आगे बढ़ने से रोक रहा था। सन् 1327 में मण्डरायल दुर्ग पर जबर्दस्त हमलाकर मियांमकन को मौत के घाट उतार दिया तथा किले पर अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार कुंवरपाल के वंशज तिमनगढ़ पतन के बाद इस क्षेत्र में प्रथम विजय हासिलकर मंडरायल विजय के साथ पुनः चमके।

करौली के दक्षिण में राजस्थान और मध्यप्रदेश की सीमा को विभक्त करते हुए घाटियों के मध्य चम्बल नदी के किनारे एक छोटी सी पहाड़ी पर अस्त-व्यस्त प्राचीरों से घिरा लाल पत्थर का एक निर्माण देखने को मिलता है जिसे मंडरायल दुर्ग के नाम से पहचाना जाता है। यह वन प्रदेश का पहाड़ी दुर्ग है जिसमें निर्माण सम्बन्धी कोई लेख नहीं मिलता है। इस किले की तलहटी में मण्डरायल कस्बा बसा हुआ है। तथ्यों से यह स्पष्ट है कि इस दुर्ग का निर्माण यदुवंश के किसी शासक ने नहीं कराया बल्कि महाराजा हरबख्शपाल ने अपने शासनकाल (सन् 1804-1837) में इस दुर्ग के नीचे आबाद बस्ती की सुरक्षा हेतु परकोटा खिंचवाया था (वीर विनोद, भाग-2)! मुगल काल में यह दुर्ग बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिकाओं को समाहित किये हुए था। मुगल सम्राटों को दक्षिण जाने में ठहराव की भूमिका निभाता, वहीं यदुवंशियों को दक्षिण में सुरक्षा चौकी के रूप में काम

देता रहा। इसके उपरान्त भी यह दुर्ग लड़ाईयों का केन्द्र बना ही रहा। सन् 1504 ई. में सिकन्दर लोदी ने इस दुर्ग पर आक्रमण किया (इलियट, भाग-5) शहर के समस्त बाग, मन्दिरों को नष्ट कर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदें खड़ी करवा दीं। दुर्ग की व्यवस्था मुजाहिद खाँ को सौंपकर सुल्तान बयाना लौट गया। सम्भवत: यह दुर्ग उस समय महाराजा चन्दसेन के नाती भारतीचंद के पास था। इस दुर्ग की सबसे ज्यादा बर्बादी इसी युद्ध से हुई जिसका बाद में जीर्णोद्धार तक नहीं किया जा सका। महाराजा द्वारकादास के शासनकाल (सन् 1553-1583) में बहादुरशाह के सेनापति तातार खाँ ने करौली पर आक्रमण करते समय इसी दुर्ग को अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया था। उसी समय हुमायूँ की सेना ने तातार खाँ को परास्त कर इस दुर्ग को अपने अधिकार में ले लिया। (मुगल एम्पायर इन इण्डिया, डा० ईश्वरी प्रसाद)। बाद में यह दुर्ग और सबलगढ़ का क्षेत्र लम्बे समय तक गोपालदास के पुत्र और उसके वारिसों के कब्जे में रहा। महाराजा मदनपाल के समय में इस दुर्ग की सुरक्षा हेतु 300 सिपाहियों के साथ एक किलेदार को रख छोड़ा गया था।

मंडरायल जीतने के पश्चात् अर्जुनदेव ने पवार राजपूतों से मित्रता कर अपने शासन क्षेत्र को बढ़ाया। चम्बल नदी के किनारे उटगिरी जिस पर लगभग 400 वर्षों से लोधी राजपूतों का कब्जा था उसे भी सन् 1340 में अपने कब्जे में कर लिया। मौहम्मद तुगलक के शासन में रामनवमी के अभिजित नक्षत्र में दिन के 12 बजे सन् 1348 में नये शहर करौली की नींव रखी, सरमथुरा के 24 गाँव आबाद कर एक प्रकार से अपने पूर्वज महाराज तिमनपाल की कुछ जायदाद पर भी अधिकार जमाया। अर्जुनदेव की चार शादियाँ हुईं जिनसे दो संतानें (विक्रमाजीत, टोडरमल) हुईं। टोडरमल नि:सन्तान मर गया। उटगिरी-देवगिरी को अर्जुनपाल ने अपने शासनकाल में इस दुर्ग को हस्तगत कर टैक्स के आधार पर पुन: लोधियों को सौंप दिया। (वीर विनोद, भाग-2, खंड 2)।

अर्जुनदेव की मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का विक्रमाजीत सं. 1419 में गद्दी पर बैठा। इसने अपनी सूझ-बूझ से जहाँ मण्डरायल और तिमनगढ़ को पुन: अपने अधिकार में लेने में सफलता प्राप्त की वही क्षेत्र के आदिवासियों के जोर को कम नहीं कर सकने के कारण करौली का काबिज नहीं कर सका। इसकी दो शादियाँ हुई जिनसे पाँच लड़के क्रमश: अभयचंद, अजयचंद, मदनचंद, लोहरकचंद एवं करमाल हुए। पिता की मृत्यु के बाद अभयचंद करौली का शासक (सं. 1439-1469) रहा। अन्य 4 भाईयों का कोई ब्यौरा नहीं मिलता।

अर्जुनदेव के नाती अभयचन्द की मृत्यु के बाद उसका लड़का पृथ्वीपाल (पृथ्वीराज) द्वितीय तिमनगढ़ की गद्दी पर बैठा। उस समय अफगानियों ने तिमनगढ़ पर 15वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अधिकार कर लिया था। यद्यपि इसने ग्वालियर के शासक मानसिंह तोमर के हमले को विफल कर दिया परन्तु यह स्थानीय मचामीणाओं का दमन नहीं कर सका, जिसके कारण वे लोग करौली और इर्द गिर्द के क्षेत्रों में दुर्जेय बने रहे (राजपूताना गजेटियर, प्रथम भाग)। भाईयों की आपसी वैभन्यस्ता के कारण मण्डरायल का इलाका दखल से इनसे खाली करा लिया गया जिसकी एवज में मासलपुर का परगना इन्हें मिला। मण्डल दुर्ग के निकल जाने के कारण इनके पास कोई सुरक्षित स्थान नहीं रहा। करौली क्षेत्र पर मालवा के शासक महमूद खिलजी ने जीतकर अपने लड़के फिदबी खाँ को सौंप दिया। इसलिए मजबूर होकर पृथ्वीपाल के लड़के उदयचन्द ने उटगिरि पर कब्जा किया।

महाराज चन्द्रसैन-

इस वंश में धर्मात्मा और दीर्घायु वाले शासक हुए जिनका राज्याभिषेक बयाना दुर्ग में सन् 1449 ई. में हुआ। सन् 1454 में मालवा के महमूद खिलजी ने बयाना पर आक्रमण किया, जिसे रोकने में यह बिलकुल असफल हुए, लिहाजा उसने राज्य में घुसकर राजधानी को लूटा। मजबूर होकर चन्द्रसेन को अपना शेष जीवन उटगिरि दुर्ग में सन्यासी के रूप में व्यतीत करना पड़ा।

तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रसेन एवं उसके उत्तराधिकारियों ने अपने को सुरक्षित स्थान के पास थोड़े बहुत इलाके पर तब तक अधिकार कर बसाये रखा जब तक अकबर के समय गोपालदास ने पूर्वजों का कुछ भाग प्राप्त न कर लिया। 15वीं तथा 16वीं शताब्दी के मध्य तक करौली शासकों का राज्य उटगिरि के आस-पास तक ही सीमित रह गया। गजेटियर के अनुसार लड़ाई और सुरक्षा की दृष्टि से यह किला बहुत ही महत्वपूर्ण था, इसी कारण करौली शासक लड़ाई के समय अपने खजाने और जनाने को यहाँ रखते थे। उस समय यह दुर्ग ग्वालियर की कुंजी कहलाता था। अकबर के शासन काल में यह क्षेत्र पुनः गोपालदास को सम्भलवा दिया गया। उसके बाद से अन्तिम मुगल सल्तनत तक इस क्षेत्र पर यदुवंशियों का ही अधिकार रहा। यह दुर्ग चम्बल से हटकर करणपुर के पश्चिम में कल्याणपुरा के ऊपर स्थित है। दुर्ग के तीनों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ हैं, सामने विस्तृत खुला जंगली मैदान है। किले के नीचे पोखर-झरना एवं सतियों की धराशायी छतरियाँ हैं।

टिप्पणी- करौली तवारीख के अनुसार उदयचंद के पुत्र महाराजा प्रतापरुद्र सम्वत् 1452 में गद्दी बैठे। इनके तीन विवाह हुए- पवार जी, सिसोदिया जी एवं बडगूजरी जिनसे तीन लड़के क्रमशः चन्द्रसेन, सुन्दरसहाय तथा रथभान हुए। यद्यपि चन्द्रसेन का राजतिलक तिमनगढ़ में हुआ लेकिन बाद में भजन-पूजन तथा तपस्या की दृष्टि से इन्होंने उटगिरि रहना ज्यादा पसन्द किया।

महाराजा चन्द्रसेन अभी तक के शासकों में सबसे ज्यादा आयु के थे (लगभग 122 वर्ष)। धर्मप्रिय, न्यायकारी एवं ईश्वर-भक्त होने के कारण इनका ज्यादा समय ध्यान-पूजन आदि में व्यतीत होता था, इस कारण चन्द्रसेन युद्ध कला में असफल सिद्ध हुए। इसलिए इन्हें मुगल विजेताओं के भय के कारण अपनी राजधानी करौली के बजाय उटगिरि जैसे एकान्त स्थान पर बनानी पड़ी।

किसी प्रामाणिक इतिहास में इनके बारे में अधिक कुछ नहीं मिलता जब कि इनका राजतिलक बयाना दुर्ग में हुआ। नाभादास जी कृत 'भक्तमाल' में राजा चन्द्रसेन का उल्लेख मिलता है। बाद में अपने बड़े लड़के भारतीचंद को शासन के अधिकार देकर उसके साथ तिमनगढ़ में रहे। स्थानीय ख्यात के अनुसार यह भगवतस्वरूप, करामाती (जो कहता सत्य होता है), ताकतवर और शरीर से लम्बे-चौड़े भारी शरीर के होने के कारण खुराक के लिए प्रसिद्ध रहे। रातदिन भगवत् भजन में लीन रहने के कारण इन्हें फकीर महाराजा साहब बहादुर के नाम से पुकारा जाने लगा। इनकी पलकों पर इतने बाल थे कि किसी को देखने के लिए हाथों से उन्हें हटाना पड़ता था। बताया जाता है कि इन्हीं के आशीर्वाद से नाती गोपालदास ने दक्षिण की लड़ाईयों में जीत हासिल की, वहीं आगरा दुर्ग की नींव का पहला पत्थर भी रखा। दीर्घायु रहकर अन्तिम समय उटगिरि में निकाला। इसके लड़के भारतीचंद के अयोग्य होने के कारण अपने सामने यानि सन् 1533 ई. में नाती गोपालदास को शासन के सारे अधिकार दे दिये, परन्तु गोपालदास के अकबर की सेवा में चले जाने के कारण इनका पौत्र (नाती) द्वारकादास शासन की व्यवस्था सँभालता रहा। भारतीचंद कुंवरगढ़ी में रहते हुए गुजर गया।

आगरा किले की नींव करौली डाँग के राजा ने डाली हो, इतिहास के पन्नों में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता जिसमें चन्द्रसेन और उसके वंशजों का नाम आगरा दुर्ग तारीख से जुड़ा हो। परन्तु यह सत्य है कि आगरा किले की नींव का पहला पत्थर चन्द्रसेन की तपस्या पर ही इनके पौत्र गोपालदास ने रखा। जनश्रुति

के अनुसार मुगल सम्राट् अकबर जब अपनी राजधानी आगरा बनाने जा रहा था, उस समय यमुना जी के भीषण प्रवाह के समक्ष किले के वास्ते रखी जा रही नींव ठहर नहीं पा रही थी। रोज नींव बनाने का कार्य होता, प्रातः सफाया दिखलाई पड़ता। सम्राट् इस बात से परेशान हो गया। विद्वानों ने सम्राट् को सलाह दी कि यदि इस भावी दुर्ग की नींव किसी चन्द्रवंशीय राजा से रखवाई जाये तो यमुना जी कुल-परम्परा को ध्यान में रखते हुए शायद नष्ट नहीं करेगी (यमुना जी (कालिन्दी) श्रीकृष्ण की पटरानी हैं)। काफी विचार-विमर्श के बाद डाँग के राजा चन्द्रसेन का ध्यान आया। वह नजदीक भी है और महात्मा के रूप में करामाती राजा बतलाया जाता है, क्यों न उसी से दुर्ग का शिलान्यास कराया जाये। परीक्षा भी हो जायेगी और कार्य भी पूरा हो जायेगा।

इस कथन की पुष्टि हेतु अकबर बादशाह जब डाँग के राजा चन्द्रसेन के पास पहुँचा तो बादशाह उसे देखकर दंग रह गया। बादशाह ने देखा कि राजा के नेत्र भौंह के बालों से ढके हुए हैं। राजा उस समय भगवत् चिन्तन में लगे हुए हैं। भगवत् चिन्तन के पश्चात् जब राजा को बताया गया कि बादशाह आये हुए हैं तो राजा ने उन्हें उच्च आसन दिया। बादशाह का उन्हें देखकर श्रद्धा से मस्तक झुक गया। बादशाह ने राजा से निवेदन किया कि आप मेरे ऊपर कृपा कर नई राजधानी का शिलान्यास करें। आपके द्वारा लगाई नींव को शायद यमुना जी इतनी सरलता से नहीं हटा सकेंगी। मैं कोशिश करते-करते थक गया हूँ। तब राजा चन्द्रसेन की कृपा से इनके नाती गोपालदास ने किले का पत्थर अपने हाथ से रखा तब जाकर किले का निर्माण हुआ।

देवगिरि-

उटगिरि दुर्ग के ठीक पूर्व में चम्बल से सटे मिट्टी के टीले पर सघन वृक्षों के मध्य कुछ मकानों के अवशेष दिखलाई देते हैं जिसे लोकगाथा अनुसार देवगिरि किले के नाम से पुकारा जाता है। इतिहास में इसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। परकोटे और बुर्जों के नाम पर कुछ भी नहीं मिलता। अन्दर के सारे निर्माण प्रायः ध्वस्त हो चुके हैं। जन-समाज के कथानुसार उटगिरि में जहाँ शाही निवास था वहाँ इस कहे जाने वाले किले में रियासती जीवन रहा करता था। आज भी करौली क्षेत्र में 'देवगिरि कौ डाडौं नौ करोड़ कौ भाड़ौ' वाली कहावत बुजुर्ग पीढ़ी से आज भी सुनी जाती है। बुजुर्गों का इस कहावत के बारे में विश्वास है कि देवगिरि स्थान में अपार धन है। वस्तु स्थिति से स्पष्ट होता है कि इस मध्यकालीन दुर्ग के बारे में न तो तत्कालीन शासकों ने

ही रुचि दिखलाई और न ही पुरातत्व विभाग यह मानता है कि यह किला भी है। यह स्थल तीन तरफ परकोटे से सुरक्षित था। दक्षिण में चम्बल इसका एक परकोटा था। तत्कालीन स्थापत्य और विशाल भवनों, बावड़ी के अवशेषों को देखकर यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि यह बस्ती कभी धनाढ्य अवश्य रही होगी जिसका सबसे ज्यादा विनाश सिकन्दर लोदी के आक्रमण ने सन् 1506-07 में किया।

ख्यात के अनुसार महाराजा भारतीचंद की रानी (हाडी जी) ने इस स्थान पर बाग और बावड़ी का निर्माण करवाया। बावड़ी के अवशेष आज भी मौजूद हैं। उस समय इस स्थान को देवधर। (देवगढ़) के नाम से पुकारा जाता था। चूँकि उक्त बावड़ी का निर्माण महाराजा गोपालदास (जिसे उस समय देव बहादुर का खिताब मिला हुआ था) के दिल्ली सेवाओं से मुक्त होकर वापिस आने के बाद किया गया था। बाद में उसी खिताब के नाम पर इस क्षेत्र का नाम देवगढ़ पड़ा जो कालान्तर में अपभ्रंश होकर देवगिरि हो गया।

महाराजा गोपालदास देव बहादुर-

भारतीचंद के तीन लड़के हुए जो क्रमशः गोपालदास प्रतापदास एवं खांडेराव। महाराजा गोपालदास ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके पिता भारतीचंद को शासन के काबिल नहीं समझते हुए महाराजा चन्दसेन ने अपने शासनकाल में ही इसे सन् 1533 में शासन के सारे अधिकार दे दिये, परन्तु कुछ समय बाद ही इसे अकबर की सेवा में जाने के कारण अपने पोते द्वारकादास को शासन के अधिकार देकर महाराजा चन्द्रसेन उसके संरक्षक बन गये।

अकबर की सेवा में रहते इनकी पहली शादी आमेर के राजा भारमल की कन्या से हुई। अपने बाबा के आशीर्वाद और अपने रणकौशल से दौलताबाद की हार को जीत में पलटते हुए वहाँ के शासक दाऊद खाँ की हत्या कर दुर्ग पर अधिकार करके, उसे मुगल साम्राज्य में मिलाया। दौलताबाद से वापिस आते समय गोपाल जी की भव्य प्रतिमा भी साथ लेते आये। जिसे समय पाकर बहादुरपुर के गोपाल मन्दिर में प्रतिष्ठित करवाया जो वर्तमान में करौली के मदनमोहन देवालय में विराजमान है। दौलताबाद को जीतने की खुशी में बादशाह अकबर ने इसका मनसबा दो हजारी करते हुए रणजीत नक्कारा प्रदान किया। साथ ही इसकी बहादुरी का बखान करते हुए इसे 'देव बहादुर' के खिताब से भी अलंकृत किया। रणजीत नक्कारे को बाद में रियासत के राजचिन्ह से सम्मानित किया गया। अकबर की सेवा में रहते हुए गोपालदास ने सम्राट् के निवेदन और

अपने बाबा चन्द्रसेन के आशीर्वाद और निर्देशानुसार आगरा दुर्ग की नींव रखी। जब गोपालदास अकबरी सेवा से मुक्त होकर वापिस अपने प्रदेश आने लगे उस समय सम्राट् ने इनाम के रूप में काफी राशि दी तथा सुरक्षा हेतु सेना दी। बादशाह ने इन्हें मथुरा, बयाना आदि और इलाके भी देने के लिए कहा, लेकिन गोपालदास अपने पूर्व इलाकों (खंडार, मंडरायल, उटगिरि, झिरी, सरमथुरा, तिमनगढ़, बहादुर, करौली, सबलगढ़ और विजयपुर) का अधिकार पाकर ही खुश था, उसने और अधिक नहीं माँगा।

बादशाह की सेवा से मुक्त होने के बाद यानी सन् 1545 में गोपालदास ने अपना राजतिलक तिमनगढ़ में कराया। बाद में यहाँ रहते हुए मासलपुर में महल और बाग लगवाया जिसमें दौलताबाद से लाई प्रतिमा को प्रतिष्ठित कराया। यद्यपि करौली की नींव अर्जुनदेव ने रखी, परन्तु वह मचा मीणाओं के जोर के कारण आबाद नहीं कर सका। मीणाओं को महाराजा गोपालदास ने बादशाही सेना की मदद से जहाँ मारा खदेड़ा, वहीं भद्रावती नदी के पश्चिम में ऊँचे मिट्टी के टीले पर महल बनवाये जिन्हें वर्तमान में सुर्री वाली गुर्ज के नाम से पहचाना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि अर्जुनदेव ने करौली की स्थापना अवश्य की लेकिन वर्तमान करौली को भव्यरूप राजा गोपालदास ने ही दिया।

इस प्रकार गोपालदास अपनी बहादुरी और रणकौशल का परिचय देकर देव बहादुर खिताब के साथ पूर्वजों की खोई जागीरों को प्राप्त करने में सफल हुआ। मासलपुर, झिरी और करौली में महल बनवाए। बाद में बहादुरपुर का विकास करते हुए उसे अपनी नई राजधानी बनाया। इस प्रकार महाराजा गोपालदास सन् 1545–1569 तक शासन कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसने कुल सात शादियाँ कीं जिनसे तीन लड़के हुए- द्वारिकादास, राव मुकुटदास और तुरसम बहादुर।

बहादुरपुर-

सिकन्दर लोदी के आक्रमण के कारण उटगिरि का किला इन्हें खाली करना पड़ा। लिहाजा सुरक्षित स्थान की खोज में इन्हें बहादुरपुर की डाँग में आना पड़ा जहाँ गोपालदास ने पहाड़ी पर एक किला बनवाया और गोपाल मन्दिर में अपने इष्टदेव गोपाल जी की प्रतिष्ठा करवाई। द्वारिकादास और मुकुन्ददास के शासन में इस दुर्ग का विकास हुआ। करौली विकास के साथ-साथ यह किला बाद में बर्बाद होता चला गया। आज वीरान और बीहड़ है।

राव मुकुटदास या मुकुन्ददास -

महाराजा गोपालदास की मृत्यु के उपरान्त द्वारिकादास का विधिवत् राज्याभिषेक सन् 1569 में बहादुरपुर के किले में हुआ जिसमें दूर-दूर के यादवों ने भाग लिया। इसके शासनकाल में कोई नया काम नहीं हुआ बल्कि पूर्ववत् इलाकों पर अपना अधिकार बनाए रखा। इनकी सात शादियाँ हुईं जिनसे आठ पुत्र हुए- प्रतापसिंह, मुकुन्ददास, मगधराय, हरिदास, बली बहादुर, सार्दूल, सलैदी और केशोदास। पिता की मृत्यु के बाद प्रतापसिंह गद्दी का वारिस बनता लेकिन वह युवराज पदवी में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया, इस कारण उसका छोटा भाई मुकुन्ददास गद्दी का वारिस बना जो सन् 1584 में गद्दी पर बैठा। मुकुन्ददास झिरी और सरमथुरा के क्षेत्र पर काबिज रहा। इसकी सन्तानें मुकुटावत जादौ कहलाईं जो सरमथुरा, झिरी, परगना, सबलगढ़ और कोठरिया (मेवाड़) में मौजूद हैं। तीसरे लड़के कस्बा बहादुर, विजयपुर, सबलगढ़ में रहे। इनकी सन्तानें बहादन के जादौ कहलाईं जो वर्तमान में सबलगढ़, विजयपुर में आबाद हैं।

मुकुन्ददास के पुत्र जगमन (जगमणि) का नाम शाहजहाँ के हिन्दू मनसबदारों में उल्लेख मिलता है (बादशाहनामा)। जगमणि के पुत्र छत्रमणि की कन्या जसकंवर का विवाह हिन्दू मारवाड़ के शासक जसवन्त सिंह के साथ हुआ। मारवाड़ के प्रसिद्ध शासक अजीत सिंह का जन्म इसी कन्या के गर्भ से हुआ। राजा छत्रमणि का एक भाई राव भूपपाल की सन्तानें इनायती के राव कहलाईं। दूसरे भाई के वंशजों में मनोहरपुरा वाले मौजूद हैं। राजा छत्रमणि के बाद उसका पुत्र रूपमणि, जिसे बाद में धर्मपाल द्वितीय कहा गया, गद्दी पर बैठा। इसने दिल्ली बादशाह को खुशकर मुक्तावतों और सबलगढ़ वालों की बगावत को मिटाया जो धर्मपाल की गद्दी पोशी का विरोध कर रहे थे। उनसे झिरी का इलाका भी ले लिया। इसके बाद करौली कहलाने वाले क्षेत्र का अविरल विकास कर उसे अपनी राजधानी घोषित करते हुए अपना राजतिलक भी इसी जगह पर सन् 1650 में कराया। इसके बाद इनका पुत्र रतनपाल तथा रतनपाल का पुत्र कुंवरपाल द्वितीय करौली के शासक बने।

इतना सर्वविदित है कि करौली की स्थापना की नींव सन् 1348 में महाराजा अर्जुनदेव ने रखी तथा उन्हीं के वंशज महाराजा गोपालदास ने करौली नगर की स्थापना की और बाद में महाराजा धर्मपाल द्वितीय ने सन् 1650 में करौली तख्त पर अपना राज्याभिषेक करवाकर इस नगर को अपनी राजधानी का दर्जा दिया।

कल्याणराय किसके इष्ट रहे-

स्थानीय ख्यातों के अनुसार महाराजा अर्जुनदेव ने इस नगर की आधारशिला रखने से पूर्व सन् 1345 में कुलदेवी के रूप में अंजनी माता (श्रीहनुमान जी की माँ) के मन्दिर का निर्माण कराया, जहाँ वर्तमान में भी नवम्बर के महीने में प्रतिवर्ष मेला लगता है। इसके बाद में गोपाल जी की प्रतिमा को कुलदेव के रूप में पूजा जाता रहा जिसे महाराजा गोपालदास अपनी दक्षिणी विजय में प्राप्त कर लाये। तदोपरान्त महाराजा गोपाल सिंह ने श्रीमदनमोहन प्रतिमा को जयपुर नरेश जगत सिंह से प्राप्तकर सन् 1749 में अपनी राजधानी में प्रतिष्ठित कर उसे रियासत का सर्वेश्वर स्वीकारा, जिसे वर्तमान में श्रीजी के नाम पर सिद्धपीठ माना जा रहा है। महाराजा भँवरपाल ने खींची राजपूतों की कुलदेवी (कैलादेवी) के प्रति अपनी अनन्य भक्ति समर्पित कर उसे स्वीकारा। इस प्रकार इष्टदेव के नाम पर यह विभिन्न देवों की मान्यताएँ अलग-अलग शासनकालों में स्वीकारी गईं, परन्तु कल्याणराय को किसने इष्टदेव के रूप में स्वीकारा? यह शोध का विषय रह जाता है। उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि कल्याणराय नामक कोई देव इस वंश का इष्ट नहीं रहा। श्रीमदनमोहन जी (श्रीकृष्ण) के विग्रह को महाराज जयसिंह अपने समय में श्रीमदनमोहन जी मन्दिर वृन्दावन से जयपुर ले गये थे। बाद में यह प्रतिमा करौली पहुँची थी।

शक्तिपीठ कैलादेवी-

"करौली की 'माँ कैलादेवी' का इतिहास"- दामोदरलाल गर्ग ने कैला देवी के बारे में लिखा है कि- "कैलादेवी का प्राकट्य बाबा केदारगिरि ने कठोर तपस्या द्वारा किया था। वर्तमान में यह शक्तिपीठ यदुवंशियों की कुलदेवी के रूप में मान्यता प्राप्त किया हुआ है, जबकि इन्हीं यदुवंशियों ने अपने प्रारम्भिक काल में इस सिद्धपीठ पर कुछ भी नहीं किया। जब ये शासक इस क्षेत्र में नवीन शहर का शिलान्यास करने जा रहे थे उस समय इन्होंने पाँच नदियों के संगम के ऊपर एक शिखर पर सर्वप्रथम अपनी कुलदेवी के रूप में माँ अंजनी माता की प्राण प्रतिष्ठा सन् 1345 में कराई, जिस पर बाद में बुर्जों सहित मन्दिर का निर्माण कराया। इससे स्पष्ट है कि उस समय कैलादेवी यदुवंशियों की कुलदेवी अथवा कोई इष्ट नहीं रही, इसी कारण इन शासकों ने त्रिकूट शिखर पर माँ कैलादेवी के मन्दिर का निर्माण नहीं कराया।

दूसरे, वर्तमान कैलाग्राम नामक क्षेत्र यदुवंशियों के आने के पूर्व से ही गागरोंन के खींची राजपूतों के शासन की अन्तिम परिधि में रहा। खींची राजपूतों के आने से पहले यहाँ एक छोटा-सा थान था, जिस पर पीतपुरा के किसी पटेल ने पाटौर चढ़ा उस थान को मन्दिर का स्वरूप सन् 1114 में दिया। इसके बाद माँ की प्रेरणा से खींची राजा मुकुन्ददास ने सन् 1116 में उसने मन्दिर की सेवा सुरक्षा का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। कहते हैं कि सन् 1153 में खींची राजा रघुदास को तत्कालीन मुगल सम्राट् ने किसी कारण मागरोंल से देश निकाला दे दिया। वहाँ से चलकर राजा कैलाग्राम आया और कैलादेवी की सेवा करने लगा। माँ की कृपा से उसे पुनः राज्य मिल गया और उसने माँ का मन्दिर बनवाया। वर्तमान भव्य देवालय के अन्दर जो छोटा-सा लाल पत्थर का बना हुआ जो मन्दिर दिखाई पड़ता है वह मातेश्वरी के परम भक्त राजा रघुदास खींची का ही बनवाया हुआ है, साथ ही माँ भवानी चामुण्डा की प्रेरणा से उसकी भी प्रतिमा मन्दिर में स्थापित कराई।"

मण्डरायल निवासी लाला वंशीलाल ने अपनी पुस्तक 'श्रीकैला चरितामृत' में चामुण्डा देवी की प्रतिष्ठा में लिखा है कि उक्त प्रतिमा, जो वंशीखेड़ा गाँव के किसी खण्डहर पड़े मन्दिर में अपूजित रखी हुई थी, जिसे करौली के राजा गोपाल सिंह ने मँगाकर चामुण्डा भवानी के रूप में कैला माता की बगल में प्रतिष्ठित कराया।

यदुवंशियों की करौली गद्दी पर महाराजा भँवरपाल ही एकमात्र ऐसे शासक रहे जिन्होंने इस सिद्धपीठ को अपनी कुलदेवी के रूप में स्वीकारते हुए इस क्षेत्र के वास्ते अनेकों योजनाओं को क्रियान्वित भी कराया। यह राजा माँ कैलादेवी का परम भक्त था तथा इसने मन्दिर पर चाँदी का ध्वज एवं माँ के मन्दिर के मुख्यद्वार के कपाटों पर चाँदी का पत्तर भी चढ़वाया। बाजार बनवाया तथा यात्रियों के स्नान आदि हेतु कालीसिल नामक नदी पर बाँध का निर्माण भी कराया। महाराजा भूमिपाल ने शाही धर्मशाला के निर्माण को पूराकर मातेश्वरी और उसके भक्तों को अर्पण कर दिया। साथ ही रोशनी के वास्ते पावर हाउस बनवाया जो महाराजा गणेशपाल के शासन सन् 1946 में जगमगाहट करने लगा।- 'आस्था राजपुत्र' मासिक, दिसम्बर 2016

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि इस देवालय के मूल मन्दिर के निर्माण का श्रेय जहाँ पीतूपुरा के पटेल को जाता है वहीं खींची राजपूतों ने स्थाई मन्दिर बनाया। बाद में इसके तत्कालीन विकास में अहम भूमिका निभाई करौली के

यदुवंशी शासकों ने, जिन्होंने इसे अपनी कुलदेवी स्वीकारते हुए वर्तमान विकास की कड़ी से जोड़ा। आज यह सिद्धपीठ श्रीकैलादेवी ट्रस्ट के अन्तर्गत तत्कालीन महाराजा परिवार से अनुबन्धित है।

उक्त सन्दर्भ में प्रश्न यह उठता है कि कैलादेवी की स्थापना से पूर्व भी यदुवंशियों की कुलदेवी (इष्टदेवी) कोई अवश्य रही होगी, तो वह कौन थी, अथवा कोई कुलदेवी थी ही नहीं? दूसरे, कैलादेवी की स्थापना कुलदेवी के रूप में खींची-चौहानों द्वारा हुई थी, इसलिए यह यदुवंशियों की कुलदेवी नहीं हो सकती है, क्योंकि भिन्न-भिन्न दो कुलों की एक ही कुलदेवी नहीं हो सकती। तो यदुवंशियों की कुलदेवी कौन है? यह एक शोध का महत्वपूर्ण विषय है।

यदि हम जातीय इतिहास लिखने वाले इतिहासकारों की पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं का अवलोकन करें तो सभी लेखकों ने यादव, यदुवंशी, जादौं की कुलदेवी के रूप में माँ योगेश्वरी का उल्लेख किया है। यदुवंशियों की कुलदेवी के नाम पर कैलादेवी का नाम कहीं भी नहीं मिलता। इससे स्पष्ट है कि यदुवंशी-जादौं की कुलदेवी योगेश्वरी हैं, न कि कैलादेवी। अब प्रश्न सामने आता है कि योगेश्वरी माता कौन है? तथा इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें पुराणों का अध्ययन करना पड़ेगा।

श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय-4, श्लोक-7-13 में वर्णन है कि जब वसुदेव जी ने अपने पुत्र को यशोदा की गोद में सुलाकर उसकी कन्या को लाकर देवकी को दे दिया तो कंस को देवकी द्वारा आठवीं सन्तान पैदा होने की सूचना मिली। कंस ने जब उस कन्या को देवकी से माँगा तो देवकी ने कन्या को अपनी गोद में छिपाकर अत्यन्त दीनता के साथ रोते-रोते कन्या को न मारने के लिए याचना की। परन्तु कंस बड़ा दुष्ट था। उसने देवकी को डपटकर उसके हाथ से वह कन्या छीन ली। अपनी उस नन्हीं-सी नवजात भानजी के पैर पकड़कर कंस ने उसे बड़े जोर से एक चट्टान पर दे मारा। स्वार्थ ने उसके हृदय से सौहार्द्र को समूल उखाड़ फेंका था। परन्तु श्रीकृष्ण की वह छोटी बहिन साधारण कन्या तो थी नहीं, योगमाया थी, उसके हाथ से छूटकर तुरन्त आकाश में चली और अपने बड़े-बड़े आठ हाथों में आयुध लिए हुए दीख पड़ी। वह दिव्य माला, वस्त्र, चन्दन और मणिमय आभूषणों से विभूषित थी। उसके आठ हाथों में धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, तलवार, शंख, चक्र और गदा- ये आठ आयुध थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नागगण बहुत सी भेंट

सामग्री समर्पित करके उसकी स्तुति कर रहे थे। उस समय देवी ने कंस से यह कहा- रे मूर्ख! मुझे मारने से तुझे क्या मिलेगा? तेरे पूर्वजन्म का शत्रु तुझे मारने के लिए किसी स्थान पर पैदा हो चुका है! अब तू व्यर्थ निर्दोष बालकों की हत्या न किया कर। कंस से इस प्रकार कहकर भगवती योगमाया वहाँ से अर्न्तधान हो गयी और पृथ्वी के अनेक स्थानों में विभिन्न नामों से प्रसिद्ध हुई। (7-13)

गर्गसंहिता-गोलोकखण्ड, अध्याय-II, श्लोक- 55-61 में भी श्रीमद्भागवत के अनुसार वर्णन मिलता है। श्लोक-60 में कहा गया है- "कंस से यों कहकर भगवती योगमाया विन्ध्यपर्वत पर चली गई। वहाँ वे अनेक नामों से प्रसिद्ध हुई।" श्लोक 56 में- "वह कन्या साक्षात् योगमाया का अवतार देवी अनंशा थी।"

हरिवंशपुराण-विष्णुपर्व, द्वितीय अध्याय से चतुर्थ अध्याय तक में यह कथा विस्तार से दी गयी है। द्वितीय अध्याय-श्लोक 35- "श्रीकृष्ण अपनी शक्ति योगमाया से कहते हैं कि- तुम नन्दगोप की पत्नी यशोदा के नवम गर्भ के रूप में हमारे कुल में उत्पन्न होओगी। भाद्रपद कृष्णपक्ष की नवमी तिथि को ही तुम्हारा जन्म होगा (एक ही रात में अष्टमी के बाद नवमी लग जाने पर देवी का यशोदा के गर्भ से प्राकट्य हुआ था- ऐसा समझना चाहिए)। श्लोक 48-49- "वहीं इन्द्र अपनी बहिन बनाने के लिए तुम्हें सादर ग्रहण करेंगे। कुशिक के गोत्र से सम्बन्ध होने के कारण तुम 'कौशिकी' नाम से प्रसिद्ध होओगी। वे देवराज इन्द्र पर्वतों में श्रेष्ठ विन्ध्यागिरि पर तुम्हें शाश्वत स्थान प्रदान करेंगे। तत्पश्चात् तुम अपने सहस्त्रों स्थानों द्वारा सारी पृथ्वी को सुशोभित करोगी।"

(कुशिक गोत्र यदुवंश का शाखा गोत्र है) अध्याय तीन (सम्पूर्ण) में स्वयं कृष्ण (विष्णु) ने 37 श्लोकों में आर्या देवी की स्तुति की है।

चतुर्थ अध्याय- श्लोक 45-48- "कंस से ऐसा घोर वचन कहकर वह देवी यथेष्ट मार्ग से अपने गणों सहित आकाश और देवलोक में विचरने लगी। वहाँ वृष्णिवंशियों के (यदुवंशियों) समुदाय से भँलीभाँति पूजित हो वह कन्या बढ़ने लगी। वसुदेव की आज्ञा से उस समय उसका पुत्रवत् पालन होने लगा।- (45-46)

टिप्पणी- जैसे वात्सल्य भाव रखने वाले उपासक भगवान् के बाल-विग्रह की उपासना या पूजा करते समय प्यार करते, लाड़ लड़ाते और उनके पालन-पोषण एवं संवर्धन का ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार वसुदेव की आज्ञा से उस चिदानन्दमयी देवी का कन्यारूप से यदुवंशियों के यहाँ पूजन होने लगा। यद्यपि वह आकाश

में चली गयी तो भी उनके आवाहन करने पर उनके यहाँ पधारकर उनके वात्सल्य और लाड़ प्यार को वह ग्रहण करती रही, ऐसा समझना चाहिए)।

जनमेजय! तुम इस देवी को प्रजापालक भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न हुई समझो। वह एक होती हुई अनंशा-अंशरहित अर्थात् अविभक्त थी, इसलिए एकानंशा कहलाती थी। योगबल से कन्यारूप में प्रकट हुई वह देवी भगवान् श्रीकृष्ण की रक्षा के लिए आविर्भूत हुई थी। (श्लोक-47)

यदुकुल में उत्पन्न हुए समस्त देवता उस देवी का आराध्य देव के समान पूजा करते थे, क्योंकि उसने अपने दिव्य देह से श्रीकृष्ण की रक्षा की थी। (श्लोक-48)

उपरोक्त पौराणिक विवरणों से स्पष्ट होता है कि यदुवंशियों द्वारा पूर्वकाल से ही पूजित भगवती योगमाया (योगेश्वरी/जागेश्वरी) ही यदुवंशियों की कुलदेवी है, कैलादेवी बताना असंगत है। यद्यपि देवी के समस्त विग्रह-रूप उसी योगमाया के ही स्वरूप हैं, मान्यता अपनी-अपनी जैसी है।

वैसे भारत में योगेश्वरी माता के नाम से कोई मन्दिर नहीं दिखाई देता है। सूत्रों से पता चला है कि महाराष्ट्र के दौलताबाद के आस-पास यदुवंशियों द्वारा स्थापित योगेश्वरी माता का प्राचीन मन्दिर है।

श्रीपाद भक्तिवेदान्त माधव महाराज, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा द्वारा प्रकाशित पुस्तक- 'श्रीब्रजमण्डल-परिक्रमा' में उल्लेख मिलता है- "कङ्काली टीले पर कंकाली देवी का दर्शन है। कंस के द्वारा पूजित होने के कारण यह कंस काली या कंकाली देवी कहलाती है। यह वही अष्टभुजा सिंह वाहिनी दुर्गा देवी है, जिसे कंस ने देवकी की कन्या समझकर उसे मारना चाहा था, किन्तु देवी उसके हाथ से छूटकर आकाश में चली गयी थी।" पूरे मथुरा मण्डल में कंकाली देवी मन्दिर बहुत प्राचीनकाल से प्रसिद्ध मन्दिर है तथा इस देवी के प्राकट्य के साथ वही श्रीकृष्ण-जन्म कथा जनमानस में जुड़ी हुई है। मथुरा का कंकाली टीला जो भूतेश्वर के पास है, पुरातत्व के दृष्टि-कोण से भी बहुत महत्वपूर्ण रहा है। यहाँ कई बार की खुदाई में प्राचीनकालीन ढेरों मूर्तियाँ तथा अवशेष प्राप्त हो चुके है जो मथुरा संग्रहालय में मौजूद हैं तथा भारतीय इतिहास की अनेक ग्रंथियों को सुलझाने में सहायक है।

करौली राजवंश राजचिन्ह-

करौली रियासत के राजचिन्ह में ढाल है जिसमें बाईं ओर भेड़ और दाहिनी ओर शेर तथा बीच में गाय का चिन्ह है। गाय के बायें कोने में नक्कारा एवं ढाल के ऊपर हिरण का सिर एवं नीचे श्रीमदनमोहन जी सदा सहाय अंकित है। जिसका तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण हमारे राज्य की रक्षा करें। यह वंश गोपालक श्रीकृष्ण का है, इसी से गौ का चित्र है। ढाल के एक ओर भेड़ और दूसरी ओर एक शेर है जो यह प्रदर्शित करता है कि यदुवंशियों के न्याय पूर्ण छत्रछाया में प्रकृति से कट्टर शत्रु शेर व बकरी जैसे सहयोग से रह सकते हैं और एक घाट पर पानी पी सकते हैं। ऊपर हिरण का सिर यों दिया हुआ कि यादव राजवंश चन्द्रवंशी है और चन्द्र का वाहन ज्योतिष शास्त्र में हिरण को माना है। करौली राजवंश यदुवंशी राजपूतों में से है, जो चन्द्रवंश की एक शाखा मानी जाती है।

-आस्था राजपुत्र, दिसम्बर 2016, पृ. 3

अब हम पीछे वर्णन कर चुके करौली के राजाओं के बारे में पुनः विचार करेंगे, कि अर्जुनदेव के बाद करौली की गद्दी पर शासन करने वाले राजा कौन-कौन थे।

अर्जुनदेव के उत्तराधिकारी-

महाराजा अर्जुनदेव के उत्तराधिकारियों को ऐतिहासिक दृष्टि कोण से दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम, जिनका राजतिलक करौली के नाम पर अन्यत्र हुआ। द्वितीय, वे शासक जिनका राज्याभिषेक करौली के तख्त पर हुआ। प्रथम पंक्ति में धर्मपाल द्वितीय (1644-1665) के पूर्व के शासकों को लेते हैं। जिनका औसत शासनकाल 30 वर्ष से भी कम आता है जिससे इस बात का अन्दाजा लगाया जा सकता है कि या तो ये लोग लम्बी आयु वाले नहीं हुए अथवा वे अपने को शासन में मजबूती से स्थिर नहीं कर सके। दूसरे शब्दों में यह माना जाता है कि प्रथम पंक्ति वाले शासकों ने स्थाई तौर से न तो मुगल सल्तनत को ही गले लगाया और न ही दृढ़ता से विरोध कर सके। जबकि दूसरी पंक्ति के शासकों (धर्मपाल, गोपाल सिंह) ने दिल्ली सुल्तान की अधीनता ही नहीं स्वीकारी बल्कि उन्हें खुश करने के लिए काम भी किये। महाराजा हरबख्शपाल ने तो अंग्रेजों से प्रथम सन्धि के नाम पर अपने को ही समर्पित कर दिया जिसका बाद के किसी शासक ने विरोध नहीं किया। इस विवेचना से ऐसा

लगता है कि प्रथम पंक्ति के शासक बगैर प्रभाव के सुरक्षा की खोज में ज्यादा रहे। इस क्रम में दिल्ली सल्तनत–भाग 2 में हबीब निजामी लिखता है कि इसके उत्तराधिकारी लगभग साधारण शासक हुए। साथ ही पारिवारिक झगड़ों में उलझे रहने के कारण शत्रुओं का मुकाबला करने में कमजोर पड़ गये।

करौली स्थापना के साथ ही इस क्षेत्र पर और इसके आस–पास शासन करने वाले यदुवंश के समस्त शासकों की इतिहासी पृष्ठभूमि ने करौली शासक का खिताब प्राप्त कर लिया, जबकि सर्वप्रथम राजधानी घोषित करने वाला शासक धर्मपाल द्वितीय था। इस प्रकार 302 वर्ष का शासन करौली के नाम पर मण्डरायल, बयाना, तिमनगढ़, उटगिरि अथवा गढ़ बहादुरपुर आदि दुर्गों से चलता रहा। करौली गद्दी पर मात्र सोलह शासकों का राज्याभिषेक हुआ। यहाँ केवल संक्षेप में उन्हीं शासकों का परिचय, उपलब्धि और इनका अन्य रियासतों, मुगल सल्तनत और ब्रिटिश सरकार के साथ रहे सम्बन्धों के बारे में बताया जा रहा है जिन्होंने क्षेत्र के विकास में विशेष भूमिका निभाते हुए अपना राजतिलक भी करौली गद्दी पर कराया। पीछे कुछ राजाओं के बारे में वर्णन कर चुके हैं जिन्होंने करौली गद्दी को सुशोभित किया। किस राजा ने कितने समय तक करौली पर शासन किया, उसका ब्यौरा संक्षेप में दे रहे हैं।

गोपालदास (सन् 1545–1569)–

महाराजा अर्जुनदेव की पीढ़ी में लगभग 240 वर्ष बाद इसका राजतिलक किन्हीं कारणों और उपलब्धियों के साथ उटगिरि दुर्ग में हुआ। 1533 ई. में अजमेर में सूबेदार रहा। करीब 12 वर्ष सेवा करने के बाद बादशाह के अनुग्रह पर पूर्वजों के क्षेत्रों को प्राप्त कर अपना राजतिलक तिमनगढ़ में कराया। बादशाही फौज की मदद से गैर आबाद करौली क्षेत्र को नये सिरे से आबाद कर वर्तमान फूटाकोट तक परकोटा खिंचवाया। करौली में 2250 गज के घेरे में दिल्ली शिल्प पर लाल पत्थर के राजमहल, जिसमें दो दरवाजे थे, बनवाये। बीच के दरवाजे पर चित्रकारी का काम आगरा के किसी कारीगर से कराया। रावले के ठीक सामने कल्याणराय मन्दिर बनवाया जिसमें 1545 ई. में भगवान् विष्णु की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई।

महाराजा गोपालदास के बाद इसका बड़ा लड़का द्वारिकादास का सन् 1569 में राज्याभिषेक हुआ। इसके बाद मुकुन्ददास करौली के शासक बने। मुकुन्ददास का लड़का जगमन था, जो बाद में यहाँ का शासक बना। यह भी शाहजहाँ की सेवा में रहा, तथा 23 फरवरी, 1630 ई. में सूबेदार इरादतखाँ के

सेनापतित्व में दक्षिण की लड़ाई में गया। इसका शाहजहाँ के हिन्दू अमीरों में 119 वाँ नाम और 8 सदी का अमीर था।

- शाहजहाँनामा- (डा० रघुवीर सिंह)

इसके बाद छत्रमणि शाहजहाँ की सेवा में रहा। ये सभी बहादुरपुर रहते हुए करौली के शासक कहलाये।

शाहजहाँ के काल में करौली गद्दी पर छत्रमन (छत्रमणि) विराजमान था। जयपुर क्षेत्र में बड़गूजरों के उपद्रव को दमन करने हेतु शाहजहाँ ने चौहान और जादवों के नाम दि. 2 मई सन् 1638 को शाही फरमान जारी किया था कि परगना त्यौती सांचौरी के आस-पास के चौहान, जादव जमींदारों को सूचित किया जाता है कि राजा जयसिंह ने सबलसिंह व परशराम आदि बड़गूजरों को परगने से निकाल दिया है अत: कोई भी उन्हें अपने परगने में सहायता या शरण न दें। (फारसी फरमानों के प्रकाश में- मुगलकालीन भारत एवं राजपूत शासक- भाग 1- अभिलेखागार, बीकानेर)

धर्मपाल द्वितीय (सन् 1644-1665)-

अब तक के समस्त शासकों में यह पहला राजा था जिसने करौली के विकास में रुचि लेते हुए स्वयं का राज्याभिषेक भी करौली के तख्त पर सं. 1707 में इसे अपनी राजधानी बनाया। इसका राजतिलक पुराने रावल में हुआ जहाँ इसने काफी निर्माण कराया। इसके बाद राजतिलक जैसी महत्वपूर्ण रस्में करौली के महलों में होने लगीं। इसने बादशाही फौज की मदद से मुक्तावतों को अपने अधीन कर उनसे झिरी का इलाका ले लिया, चूँकि इन्होंने गद्दी पर बैठते समय बलवा मचाया था। इसके एक लड़के ने सपोटरा की पहाड़ी पर एक किला बनवाया। वर्तमान में वह अस्त-व्यस्त होकर बिखरा पड़ा है। सपोटरा कस्बा इसी पहाड़ी के नीचे आबाद है। इस दुर्ग में कभी बारूद बनाई जाती थी जिसे कोटा-बूँदी रियासतों को निर्यात किया जाता था। इसने आठ शादियाँ की जिनसे सात लड़के हुए। यह 21 वर्ष शासन करके सन् 1665 में मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसकी छतरी नदी दरवाजे के बगल में ऊपर की तरफ मन्दिर के पास है। यह ठाकुर बाबा के नाम से पूजा जा रहा है। इनके सात पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं- रतनपाल, कीर्तिपाल, जसपाल, भोजपाल, गुमानपाल, हेमपाल, प्रयागपाल।

रतनपाल (सन् 1655-1688 ई.)-

धर्मपाल द्वितीय की मृत्यु के बाद बड़ा लड़का रतनपाल गद्दी पर बैठा जिसने 23 साल शासन किया। इसने अपने पूर्वजों की तरह मुगलों की अधीनता नहीं स्वीकारी। एक बार सवाई जयसिंह ने इन्हें पत्र लिखकर कहा कि बादशाह हिन्दुओं के खिलाफ है, अत: मैं और अजीत सिंह शाही इलाकों पर आक्रमण करने वाले हैं, ऐसे अवसर पर आप हमें सहयोग दें। तब महाराजा रतनपाल ने जवाब में कहा कि हिण्डौन लेना तो सरल है परन्तु बादशाह के जाने के बाद अपने हाथों में रखना कठिन होगा। फिर भी जितनी अधिक लड़ाई मुगलों के खिलाफ फैलाई जा सके उतना ही अच्छा है। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप लोगों ने निश्चित रूप से शाही इलाकों पर हमला किया तो मैं भी चम्बल के दोनों ओर के यादवों के साथ आपका साथ दूँगा। यह घटना जून 1680 की है। यहाँ यह नहीं कहा जा सकता कि अगले कुछ माह में इसने किस सीमा तक मुगलों के खिलाफ संघर्ष में भाग लिया, लेकिन यह सत्य है कि यह बहादुर और बात का धनी था।

इसके शासनकाल में शोभाराम चौबे के अभिशाप की ऐतिहासिक घटना अवश्य हुई जिसने रियासत के भावी शासकों की वंश परम्परा पर ऐसी कुण्डली मारी जिसे महाराजा गोपालसिंह से लेकर रियासत के अन्तिम चरण तक के नरेश गणेशपाल भी उसे नहीं मिटा पाये। घटना उस समय की है जब इनका पुत्र कुंवरपाल, कुँवर पदवी पर था। कुंवरपाल ने एक बार गब्बाराम चौबे को पद के अहम में कुछ ऐसा कह दिया कि गब्बाराम को रावले के दरवाजे पर अपना सर कलम करना पड़ा। जब छोटे भाई शोभाराम चौबे को यह दु:खद समाचार मिला तो वह तुरन्त रावले पर पहुँचा। काफी चिन्तन के बाद राजा को शाप देते हुए बोला, राजन्! आगे तेरा वंश नहीं चलेगा और मेरा वंश कभी अन्दर नहीं आयेगा। राजा ने शाप से मुक्ति हेतु शोभाराम को बहुत-सी जागीरें लगाईं, परन्तु शाप से मुक्ति नहीं मिल पाई। परिणामस्वरूप महाराजा गोपाल सिंह से लेकर महाराजा गणेशपाल तक किसी भी शासक के सिंहासन पर रहते संतानें नहीं हुईं।

महाराजा रतनपाल की आठ शादियाँ हुईं। कुंवरपाल द्वितीय, सोहनपाल और उदयपाल नामक तीन लड़के हुए (कहीं नौ लड़कों का उल्लेख है)।

कुंवरपाल द्वितीय (1688-1724)-

महाराजा रतनपाल की मृत्यु के बाद कुंवरपाल द्वितीय ने सं. 1745-1788 तक राज्य किया। महाराजा गोपालदास के बाद अभी तक के राजाओं में इसने सबसे ज्यादा राज्य किया। इसके समय में बादशाही क्षेत्रों में अराजकता फैल रही थी, लिहाजा सुरक्षा पर विशेष ध्यान देने के कारण यह नगर विकास पर कोई ध्यान नहीं दे पाया। इसने सात शादी की परन्तु लम्बे समय तक सन्तान नहीं होने के कारण मन से दु:खी रहता। कभी-कभी चौबे शोभाराम का शाप भी इसे कचोटता। काफी समय बाद एक तपस्वी के आशीर्वाद से एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जो समय पाकर रियासत के इतिहास में प्रसिद्ध शासक कहलाया। इसके अलावा खवासवारों से तीन सन्तानें हुईं। राजा बहुत सरल स्वभाव के और शान्तिप्रिय शासक रहे। इन्होंने 36 वर्ष तक शासन किया।

महाराजा गोपाल सिंह (1724-1757 ई.)-

जब राजस्थान की राजपूत रियासतों में काफी आन्तरिक संघर्ष चल रहे थे उस समय (सन् 1724) में यह करौली के तख्त पर बैठा। यह प्रारम्भिक अवस्था से ही बहादुर, प्रभावशाली और महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व वाला राजा रहा। करौली तख्त पर राज्याभिषेक कराने वाले शासकों में यह महानतम शासक कहलाया। 21 सितम्बर 1722 में जब सवाई जयसिंह ने जाटों के खिलाफ अपना दूसरा अभियान प्रारम्भ किया उस समय छोटी अवस्था होने के उपरान्त भी इसने अन्य अफसरों की भाँति उस अभियान में सम्मिलित होकर अपनी बहादुरी का परिचय दिया। 'वीर विनोद' के अनुसार उसने अपना राज्य सबलगढ़ से सीकरबाड़ा तक फैलाया। बाद में विजयपुर, झिरी, सरमथुरा को भी अपने कब्जे में कर लिया। इन्होंने महलों के अन्दर गोपाल मन्दिर, आमखास, त्रिपोलिया एवं नक्काड़ खाना और इनके सामने ही नया कल्याणराय का मन्दिर बनवाया। भगवद्भक्त होने के साथ कुशल प्रशासक भी था। इनके शासनकाल में चोरी, डाकेजनी की वारदातें नहीं के बराबर थी। सुबलदास गुसाईं के माध्यम से श्रीमदनमोहन जी (जिसे महाराज जयसिंह वृन्दावन से ले गये थे) को जयपुर से मँगवाकर अपनी राजधानी में विराजमान कराकर सं. 1805 में वर्तमान देवालय का निर्माण कराया तथा पूजा का प्रबन्ध कराया। रियासत 12 परगनों में बँटी हुई थी जिसमें 697 गाँव थे।

(करौली-44, कुडगाँव जीरोता-91, मासलपुर-58, बहादुरगढ़-17, उटगिरि बागड़-62, कोलारी-33, मण्डरायल-48, खरहा-8, कोटड़ी के गाँव-52, माँगरौल-31, सबलगढ़-171, विजयपुर-82)

इसके काल में यदुनाथ कवि ने 'वृत्तविलास' लिखा जिसमें यादव राजाओं की वंशावली है।

महाराजा गोपाल सिंह ने अपनी बहिन इन्दर कंवर का विवाह जयपुर के सवाई जयसिंह के साथ कर जहाँ राजपूताने की राजनीति में स्वयं का प्रभुत्व दिखलाने का अवसर प्राप्त किया वहीं अपने शासन क्षेत्र को फैलाया। महाराजा गोपाल सिंह के गद्दी पर बैठते समय राजपूती रियासतों में आन्तरिक संघर्ष चल रहे थे। बाद में इन परस्पर संघर्षों ने इतना विकराल रूप धारण कर लिया कि मराठों को जबर्दस्ती इनके मध्य हस्तक्षेप करने के अवसर मिलने लगे। यहाँ तक कि मराठों ने राजपूत जाति की शक्ति ही धूल में मिला दी। महाराजा सवाई जयसिंह ने मराठों के इस प्रकार हस्तक्षेपों को राजपूतों के लिए चुनौती मानते हुए भविष्य में मराठा आक्रमणकारियों को मुँहतोड़ जबाब देने के लिए जुलाई 1734 में समस्त रजवाड़ों को संगठित करने का प्रयास किया जिसमें सभी राजाओं की मेवाड़ के अँगोचा गाँव के पास हुरड़ा नामक स्थान पर एक सभा बुलाई गई। करौली के महाराजा गोपालसिंह भी इसमें सम्मिलित हुए। सभी निर्णय सहमति से स्वीकार किये गये लेकिन यह सम्मेलन अन्दरूनी बदनीयती के कारण सफल नहीं हो सका।

महाराजा गोपाल सिंह ने अपने शासन में करौली का नाम राजपूताने में रोशन किया। इनकी ग्यारह शादियाँ हुईं, लेकिन किसी से सन्तान सुख प्राप्त नहीं हुआ। बताते है कि चौबे शोभाराम का शाप यहाँ से फलित होने लगा। चैत्र वदी अष्टमी सं. 1814/7 फरवरी 1757 में असाध्य रोग से संघर्ष करते हुए यह राज महलों में ही गुजर गया। इसने 32 वर्ष शासन किया। भद्रावती नदी के किनारे बाग में सुन्दर चित्रों वाली एक छत्री है जिसमें राजा गोपाल सिंह के चरण चिन्ह हैं जिन्हें श्रद्धालु मनौती एवं दैविक शक्ति के रूप में आज भी पूज रहे हैं। इसी क्रम में सबलगढ़ क्षेत्र में लोगों की बड़ी श्रद्धा है। भक्तों की मान्यता है कि इनके नाम का बन्ध लगाने से जहरीले कीड़े के काटे व्यक्ति को आराम मिलता है।

करौली के राजा सुजान सिंह-

पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ (सं. 2010), सम्पादक- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल में पं. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा द्वारा लिखित लेख- 'आधुनिक ब्रजभाषा के कवि-करौली के राजा सुजान सिंह' प्राप्त हुआ। वह लिखते हैं- "इस विस्मृति और अनादर की बहिया में डूबने-उतराने वाले ब्रजभाषा के ऐसे अनेक नये पुराने उत्तमोत्तम कवि हैं, जिनकी सुमधुर सूक्तियाँ साहित्य-जगत और सहृदय ब्रजभाषा प्रेमियों में आज भी समादृत हैं, पर उनके रचने वाले अज्ञात-कुलशील हैं। उदाहरण के लिए निम्न छन्द ही लीजिए-

आगम बसंत कौ विचारि कें विदेश तजि,
आयौ मन-भावन मदन सरसेंनी सों।
आँनद अनँत भयौ नैनन विलोकति ही,
आँनन अरुँन अँनुराग रंग-रेंनी सों॥
नौतिय वियोग रुखि बिरह कौ त्रान ताहि,
काढ्यौ मनमोहन सनेह-सुख-छैनी सों।
जौलों प्यारौ पीतम विहार करै उर बरै,
तो लों उर-हार तू बिहार कर बैंनी सों॥

यह 'आगत्पतिका' नायिका का प्रशंसनीय छन्द है। इसकी तुलना किसी उच्चकोटि के कवि की उपयुक्त रचना से की जा सकती है। खोज करने से पता चला कि उक्त रम्य रचना 'करौली' (राजपूताना) के राजा 'सुजान सिंह' उपनाम 'फकीर सिंह' जी की है। सुजान सिंह जी ने लगभग सं. 1781-1812 वि. (सन् 1724-1750) में 'सुजानविलास' नाम से ब्रजभाषा में एक सुन्दर ग्रन्थ लिखा था। यह ग्रन्थ अभी देखने में आया है और उससे ज्ञात हुआ है कि उपरोक्त सुप्रसिद्ध छन्द आपकी ही अनोखी रचना है।"

यद्यपि इनके और छन्द भी प्राप्त हैं लेकिन विस्तार-भय से यहाँ उनका उल्लेख नहीं कर रहे हैं। इनके रीतिकालीन शृंगारिक छन्दों से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि इनकी कृति 'सुजानविलास' तथा उसके उत्कृष्ट छन्द रीतिकालीन कवि केशवदास तथा बिहारीलाल के समान उच्चकोटि का ब्रजभाषा साहित्य को अमूल्य देन है। इनके काल का अध्ययन करने से पता चलता है कि ये महाराजा गोपाल सिंह के समकालीन थे। सम्भवत: यह गोपाल सिंह के ही पारिवारिक-सम्बन्धी हों, जो राज-काज में रुचि न रखकर भक्ति तथा साहित्य-साधना में प्रवृत्त हुए हों।

तुरसनपाल (1757-1772 ई.)-

महाराजाधिराज गोपाल सिंह की मृत्यु के बाद और इनकी कोई सन्तान नहीं होने के कारण इसके चचेरे भाई तुरसनपाल को गद्दी पर बिठाया गया जो मौजे कोंडर (भरतपुर जिला) का रहने वाला था। महाराजा गोपाल सिंह के बनवाये आमखास, जिसे वर्तमान में गोपाल मन्दिर कहते हैं, में इसका राजतिलक चैत्र सुदी 10 बुधवार सं. 1814 वि. (सन् 1757) में हुआ। इसके शासन के आरम्भिक समय में नैपुरी दुर्ग का क्वारी नदी के तट पर महत्वपूर्ण युद्ध हुआ। जिसने इसकी ख्याति को चार चाँद लगाये।

सबलगढ़ परगने में नैपुरी नामक दुर्ग पर मुसलमान अहीर बतौर किलेदार था। क्षेत्र का सारा प्रबन्ध वह महाराजा गोपाल सिंह के शासन से ही करता आ रहा था। इस दुर्ग की सीमा से सिकरवार गोत्रीय बड़गूजरों की सीमा लगती थी। राजा गोपाल सिंह की मृत्यु के बाद इन्होंने इस किले पर अधिकार कर लिया। जब महाराजा तुरसनपाल को खबर मिली तो उन्होंने पच्चीस हजार पैदल सेना के साथ उन पर आक्रमण कर दिया। घमासान युद्ध हुआ तथा अन्त में जीत महाराजा की हुई। बताया जाता है इस युद्ध में दोनों सेनाओं के हजारों सैनिक मारे गये थे तथा नदी का जल भी लाल हो गया था। नैपुरी पर कब्जा कर पुनः उसी किलेदार को दुर्ग सौंपकर और शत्रु पक्ष को अधीन कर तुरसनपाल वापिस करौली आ गया। जहाँ कई दिनों तक विजयोत्सव मनाया गया।

महाराजा तुरसनपाल श्योपुर, बूँदी, कोटा और खींची सरदारों की भाँति जयपुर नरेश माधोसिंह के नेतृत्व में मराठा आधिपत्य के विरुद्ध चलाये जा रहे अभियान में सहयोग करने उनियाश पहुँचे। यह युद्ध 14 मई 1767 ई. में मल्हारराव और राजपूत शक्ति के मध्य झटबाड़ा (मांगरौल) में लड़ा गया जिसमें राजपूतों को पराजय का सामना करना पड़ा। जनवरी 1770 में तुकोजी होल्कर और महादजी सिंधिया ने जयपुर जाते समय इन्होंने करौली के बहुत से गाँवों को लूटा और बर्बाद किया। तुरसनपाल इन लुटेरों का विरोध करने में सफल नहीं हुआ।- (मुगल साम्राज्य का पतन, भाग I, III- सर जदुनाथ सरकार)

महाराजा तुरसनपाल ने जैसे-तैसे पूर्वजों की धरोहर को सुरक्षित रखने का प्रयास किया, परन्तु रियासत में विकास के नाम पर कुछ नहीं किया। तीन शादियाँ कीं। कुंवर पदवी (राज्याभिषेक से पूर्व) में मानकपाल, जवाहरपाल दो लड़के हुए। जवाहरपाल ने देवगढ़ को अपना ठिकाना बनाते हुए उसे जवाहरगढ़ी

का नाम दिया। यह 17 साल शासन करके कार्तिक बदी 13 सम्वत् 1829 (अक्टूबर 1772) में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

मानकपाल (1772-1804 ई.)-

24 अक्टूबर 1772 को इसका राजतिलक करौली की गद्दी पर हुआ। उस समय समूचे राजपूताने में जहाँ मराठों का आतंक बढ़ रहा था। वहाँ मुगल सत्ता भी लड़खड़ा रही थी अर्थात् सर्वत्रलूट, अत्याचार का खुला तांडव खेला जा रहा था जिसका भारी नुकसान करौली को उठाना पड़ा। उस समय यहाँ यह कहावत बहुत प्रचलित हुई 'बावन्ना की साल में लीनी ही गोपाल, भोगी तुरसनपाल ने खोई मानिकपाल।' यानि जो क्षेत्र महाराजा गोपाल सिंह ने जीते वह सभी इस राजा के शासनकाल में निकल गये।

गद्दी पर बैठने के बाद इसे मराठों से सामना करना पड़ा। मराठों ने चम्बल के दोनों ओर के इलाकों को पहले खूब लूटा और अत्याचार नरसंहार किया तथा देवगढ़, विजयपुर, सबलगढ़ पर कब्जा जमा लिया। राजा मानकपाल सिंधिया से खाई मात को भुला भी नहीं पाया था, कि सन् 1783 में नवाब हमदानी (शाही सेना का अधिकारी) ने करौली पर नजदीकी से हमला किया, परकोटों और महलों पर गोलाबारी की परन्तु रियासती फौज ने बहादुरी के साथ उसे खदेड़ दिया।

'वीर विनोद' का मानना है कि सिंधिया ने सन् 1795 में फ्रांसीसी जनरल बेपटिस्ट के सहयोग से पुन: हमला किया और उसने सबलगढ़ के साथ चम्बल के दक्षिणी किनारे का हिस्सा इनसे छीन लिया। यह हार इनके बड़े लड़के अमोलकपाल को बहुत चुभी। उसने बदले की भावना से एक अलग ही फौज तैयार की जिसे यूरोपियन अफसरों की मदद से युद्ध विद्या में निपुण किया तथा नरौली, उटगिरि, झिरी, सरमथुरा जिन्हें बागी सरदारों ने पूर्व में अपने-अपने कब्जे में ले रखा था, उनसे छीन लिये। यह बहुत ही बहादुर और दिलेर व्यक्ति था। बतलाया जाता है कि एक बार इसने राजा मानिकपाल से करौली छीनने की योजना बनाई परन्तु बहिन के हस्तक्षेप के कारण करौली के बजाय उटगिरि चला गया जहाँ इसका देहान्त हो गया! अमोलकपाल की मृत्यु का समाचार जब राजा को पता चला तो उसे बहुत बड़ा सदमा लगा और 32 वर्ष संघर्ष पूर्ण जीवन व्यतीत करके सन् 1804 में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

30 दिसम्बर 1803 में दौलतराव सिंधिया ने सर्जी अर्जुन गाँव में अंग्रेजों से संधिकर करौली का चम्बल पार का जीता हिस्सा उन्हें सँभलवा दिया। इस प्रकार चम्बल पार के (सबलगढ़, विजयपुर, जौरा, अलीपुर आदि पर) समस्त इलाकों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया, जिसे वह पुनः कभी प्राप्त नहीं कर सका।- मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 4- सर जदुनाथ सरकार।

हरबख्शपाल (1804-37 ई.)-

यह महाराजा मानकपाल की दूसरी सन्तान था। भाई अमोलकपाल और महाराजा के निधन के कारण यह गद्दी का वारिस बना। यह सन् 1804 में गद्दी पर बैठा। इसके शासनकाल में भी सर्वत्र लड़ाईयों का जोर रहा। 1812 ई. में इसको दोहरे आक्रमणों का सामना करना पड़ा। एक ओर मुहम्मद खाँ जो एक लुटेरा था, रियासत के गाँवों को लूटते हुए माँची की ओर से करौली की ओर बढ़ा, उस समय माँची के बहादुर ठाकुरों ने उसे पहाड़ी के नीचे ही रोक उसका बहादुरी से मुकबला किया। जबर्दस्त युद्ध हुआ, मुहम्मद शाह खाँ को भारी नुकसान के साथ वापिस लौटना पड़ा।

इसी तरह जयपुर के उड़ाई खाँ और रणमस्त खाँ ने रियासत के पूर्वी क्षेत्र पर हमला कर भागलपुर को लूट लिया। इसके बाद जॉन बेपटिस्ट के साथ मराठी फौज ने दक्षिण दिशा में चम्बल पारकर करौली पर चढ़ाई कर दी। मराठे करौली पर आक्रमण करते, उससे पूर्व ही महाराजा हरबख्शपाल ने किसी माध्यम से पच्चीस हजार रुपये का वार्षिक हरजाना देने का वादा कर उन्हें लौटाया-(वीर विनोद, भाग दो, खण्ड 2)।

लगातार बढ़ती जा रही सीमान्ती अराजकताओं से राजा अपनी रियासत के जानमाल की रक्षा करने में अपने आपको असहाय महसूस करने लगा। क्योंकि हर साल कोई न कोई विपदा इसके सामने चुनौती के रूप में खड़ी हो जाती और ऐसी स्थिति में इसने मित्रता, एकता और सुरक्षा को अहमियत देते हुए सर्वप्रथम अंग्रेजी (ईस्ट इण्डिया कम्पनी) की ओर अपने हाथ बढ़ाये, जिसके फलस्वरूप 9 नवम्बर 1817 ई. में छः खण्डों वाली संधि के तहत इसने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करली, जिसे राजपूताने में प्रथम संधि के नाम से पुकारा गया। यह संधि गवर्नर जनरल के सचिव जे.एडम. के हस्ताक्षरों के बाद प्रभावी हुई।-(ए. कनिंघम, वोल्यूम 3, पृ. 384-85, संधि संख्या 10)

उक्त संधि-पत्र की धारा 5 के अनुसार यह तय हुआ कि कम्पनी की आवश्यकता पर इस रियासत को अपनी शक्ति के अनुसार सैनिक सहायता देनी

पड़ेगी, वहाँ अनुच्छेद 4 के तहत माँसलपुर का जो इलाका अभी तक पेशवा के अधीन था, इस रियासत को लौटा दिया जायेगा। जिस समय उक्त संधि विचाराधीन थी उस समय इस राजा ने चम्बल के दक्षिण के कुछ इलाकों (सबलगढ़, विजयपुर) के बारे में पेशकश की। चूँकि ये क्षेत्र सिंधिया ने सन् 1795 से ही अपने अधिकार में लिए हुए थे। साथ ही राजा ने यह इच्छा व्यक्त की कि यदि ये दोनों क्षेत्र हमें नहीं मिलते हैं तो सरकार (अंग्रेजी) उन्हें अपने कब्जे में ले ले परन्तु राजा की दोनों ही बातें अस्वीकार कर दी गई।- (कनिंघम, वोल्यूम 3, पृ. 338)

इसने अपने शासनकाल में अनेक निर्माण कार्य करवाये। मण्डरायल बस्ती का परकोटा, उटगिरि दुर्ग में बाला किले का निर्माण, मेलागेट बाहर, लोहा बाजार में, राजौर और कोटा मामचारी में देवालयों का निर्माण करवाया। अपनी महारानी के नाम पर हरसुख विलास (डाक बंगला) नदी गेट बाहर नदी के किनारे सुखविलासमय कुण्ड के बनवाये। महाराजा ने छः शादियाँ की परन्तु सन्तान किसी को नहीं हुई। यह 33 वर्ष शासन करके सन् 1837 में गुजर गया। इनके राज्यकाल में करौली और जयपुर राज्य का सीमा विवाद उठा जिसे बाद में अंग्रेजों की मध्यस्थता से सुलझाया गया।

प्रतापपाल (1837-1850 ई.)-

महाराजा हरबख्शपाल द्वारा अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करने के बाद ऐसा महसूस किया जाने लगा कि अब रियासत को सीमान्ती अथवा अन्य लुटेरों से बिलकुल भय नहीं रहेगा और भावी शासक अंग्रेजों की अगुवाई रियासत को विकास के पथ पर दौड़ा सकेंगे, परन्तु करौली की कुण्डली में महाराजा गोपाल सिंह के बाद ऐसे किसी व्यक्तित्व की सम्भावना नहीं रही जो पुनः करौली का नाम प्रदेश में चमका सके।

महाराजा हरबख्शपाल के निःसन्तान मर जाने के बाद साथ ही करौली की गद्दी पर किसी भावी शासक की ताजपोशी हो, उसके पूर्व ही अगले शासकों को उस गद्दी पर अपना राजतिलक कराने के लिए लोहे के चने चबाने पड़े। गद्दी पर बैठने का मसला विवादग्रस्त हो गया, परिणामस्वरूप रियासत में भारी अव्यवस्था फैल गई। ठाकुरों में गुटबाजी के कारण अनेक बार लड़ाई-झगड़े हुए और मारकाट मची। बाहरी आक्रमण नहीं हुए लेकिन महलों में विद्रोह की ज्वालाफूट निकली। तत्कालीन शासक का खजाना विद्रोह की बलि चढ़ गया। अन्त में रियासत को कर्ज के नाम पर अंग्रेजों ने गिरवी रख लिया।

महाराजा के नि:सन्तान होने के कारण हाड़ौती के राव अमीरपाल का बेटा और जवाहरलाल का नाती प्रतापपाल को अंग्रेजी सरकार ने इस शर्त पर गद्दी देना स्वीकार किया कि यदि महाराजा हरबख्शपाल की विधवा के सन्तान हो गई तो गद्दी खाली करनी पड़ेगी, परन्तु रानी ने कोई ऐतराज नहीं किया। अन्तत: अंग्रेजी सरकार ने प्रतापपाल को गद्दी सौंप दी। प्रतापपाल के समय में भी आपसी लड़ाई जारी रही, रियासत की व्यवस्था, सुरक्षा दिन पर दिन खराब होती गयी। कई अंग्रेंज अधिकारियों ने समय-समय पर करौली आकर मामले को शान्त करने की कोशिश की लेकिन कोई सार्थक परिणाम नहीं निकलता देख पोलिटिकल एजेट की देखरेख में शासन व्यवस्था कर दी। इस प्रकार प्रतापपाल नाममात्र का शासक रहा। इसके एक मात्र सन्तान एक लड़की थी, जिसकी शादी कोटा के महरावल छत्रपाल से सन् 1854 में हुई। प्रतापपाल रियासत पर बहुत बड़ा कर्ज छोड़कर सन् 1850 में मर गया।

नरसिंहपाल (1850-1852 ई.)-

हाड़ौती का होने के कारण इसे करौली गद्दी का दावेदार घोषित किया गया। उस समय यह बाल्यावस्था में था इसलिए रियासत की व्यवस्था पूर्ववत् डिप्टी मजिस्ट्रेट सैफुल्लाह खाँ के माध्यम से चलाई जाती रही। प्रतापपाल जो कर्ज छोड़ गया था वह मूल में भरतपुर रियासत से लिया कर्ज था जिसे अभी तक अदा नहीं किया जा सकता था। फिलहाल रियासत में कोई विशेष बलवा नहीं हुआ। लोग भयभीत अवश्य थे, परन्तु वातावरण शान्त रहा।

कुछ समय बाद पुन: करौली और उसके आस-पास क्षेत्र में हिन्दू सिपाहियों तथा मुसलमानों में बलवा उठा, लेकिन अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट ने सख्ती से उसे दबा दिया। इस व्यवस्था से सर्वत्र अमन-चैन हो गया। दूसरे रियासत का कर्जा भी चुकता कर दिया गया। रियासत में दिन-दूनी रौनक बढ़ने लगी। इससे स्पष्ट होता है कि नरसिंहपाल करौली का विधिवत् शासक नहीं रहा बल्कि अप्रत्यक्ष रूप में गद्दी को लेकर ठाकुरों में परस्पर संघर्ष चलता रहा। अबोध अवस्था में यह जून 10, 1852 ई. को मर गया। रियासत का प्रबन्ध पूर्ववत् सैफुल्लाह खाँ के माध्यम से अंग्रेजी सरकार के हाथ में रहा।

भरतपाल-

इस नाम का कोई शासक करौली की गद्दी पर नहीं बैठा, बल्कि स्वयं को गद्दी का वारिस घोषित करने के कारण एवं क्रम को ध्यान में रखते हुए इसका उल्लेख किया जा रहा है।

पोलिटिकल एजेंट की सख्ती के कारण करौली का अमन-चैन लौट आया था। अचानक नरसिंहपाल की मृत्यु ने एक बार फिर करौली में भूचाल खड़ा कर दिया। प्रश्न फिर वही गद्दी के वारिस का उठा।

नरसिंहपाल के गुजर जाने पर भिन्न-भिन्न घटकों ने फिर नई चाल चलकर अलग-अलग व्यक्तियों को अपने-अपने घटकों का शिरोपा पहनाकर दंगल में उतार दिया जिससे रियासत में अराजकता फैल गई और जन-धन की हानि भी हुई। एक घटक ने भरतपाल को महाराजा की अन्तिम इच्छा के आधार पर करौली गद्दी का वारिस घोषित किया तो दूसरी तरफ 'हाड़ौती का राव करौली का राजा' वाले सिद्धान्त के अन्तर्गत मदनपाल ने कुछ रईसों और ठाकुरों के माध्यम से स्वयं को गद्दी का वारिस घोषित कर दिया। दोनों ही पक्ष अपने-अपने सहयोगियों के माध्यम से गद्दी के लिए लड़ने लगे। लड़ाई झगड़े हुए, पंचायतें हुईं, परन्तु समस्या का हल होने के बजाय, बात आपसी संघर्ष की ओर बढ़ती चली गयी। उधर लार्ड डलहौजी ने व्यपगतन (लावारिस) के आधार पर करौली को कम्पनी में मिला लिया।

बालूराम (मूलत: कोटला रियासत फिरोजाबाद का था) मदनपाल का हितैषी मित्र था। इसने अपने मित्र के हित का ध्यान रखते हुए, अन्य रियासती राजाओं से विचार-विमर्श के बाद वायसराय डलहौजी के माध्यम से अंग्रेजों की सार्वभौम सत्ता को प्रार्थना-पत्र प्रेषित कर रियासत को दस्तकी अधिकार दिये जाने की वकालत की। इस बात की सुनवाई में करीब एक साल का समय लग गया, उधर भरतपाल की मृत्यु हो गयी।

बालूराम द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र पर कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने वायसराय लार्ड डलहौजी की सिफारिश को अस्वीकार करते हुए निर्णय दिया- "चूँकि करौली राज्य प्राचीन है, साथ ही सन् 1817 की संधि के अनुसार भी करौली का राज्य अधीनस्थ न होकर संरक्षित मित्र राज्य है इसलिए राजपूताने के अन्य राजाओं की मंशा का ख्याल रखते हुए इस रियासत को भी दस्तकी अधिकार तुरन्त प्रभाव से दिये जाते हैं।- (कनिंघम, वोल्यूम 3, पृ. 35-36)। इस

अधिकार पत्र को बाद में मार्च 11, 1867 को कैनिंग के हस्ताक्षरों से सभी रियासतों को प्रसारित किया गया।

टिप्पणी- उक्त विवरणों से ज्ञात होता है कि महाराजा हरबख्शपाल की मृत्यु से लेकर मदनपाल के राज्याभिषेक होने तक रियासत की शासन व्यवस्था जैसे-तैसे पोलिटिकल एजेंटों के हाथ में रही अर्थात् सन् 1837 से मार्च 1854 (17 वर्ष) तक रियासत का कोई स्थायी शासक नहीं रहा।

मदनपाल (1854-1869)-

भरतपाल की मृत्यु के बाद दूसरा गद्दी का दावेदार राव हाड़ौती मदनपाल को मार्च 14, 1854 को विधिवत् रूप से करौली का वारिस बनाया। यह सभी की सहमति से गद्दी पर बैठा था इसलिए प्रतापपाल के समय में उठा ठाकुरों का आपसी विवाद भी शान्त हो गया। महाराजा मदनपाल, महाराजा गोपाल सिंह से करीब एक शतक बाद हुए। महाराजा मदनपाल को गद्दी दिलवाने में स्थानीय ठाकुरों के साथ नजदीकी रियासतों के शासकों का योगदान तो रहा ही लेकिन कोटला रियासत के तीनों जादों भाईयों (जयकिशन, बालूराम और भोलाराम) का शासन को स्थापित करने में जो योगदान रहा, वह भुलाया नहीं जा सका। मदनपाल ने गद्दी मिलने के बाद बालूराम को रियासत का दीवान बनाया वहीं जयकिशन को फौजी रिसाले का हाकिम नियुक्त किया। महाराजा मदनपाल बहादुर, योग्य, सुलझे विचारों के साथ-साथ उदार प्रवृत्ति वाला था। इसका विश्वास था कि प्रजा से सीधा सम्वाद ही स्वच्छ प्रशासन की आधार शिला होती है। इसलिए इसने व्यवस्था दी कि जनता का कोई भी व्यक्ति राजा से कभी भी सम्पर्क कर सकता है। अभी तक जो गलत परम्पराएँ समाज, बाजार और व्यक्तियों में फैली हुई थीं उन पर कठोरता से पाबन्दी लगाई गयी। पूर्व से चली आ रही सती प्रथा के साथ-साथ नवजात लड़कियों को मारने की परम्परा खासतौर से राजपूतों गुर्जरों एवं मीणा जाति में थी। उसे समाप्त कराने हेतु ढिंढ़ोरा पिटवाकर समाज को अवगत कराया कि सम्बन्धित कृत्य ईश्वरीय विधान के विपरीत और पाप हैं। इनके अलावा अनेक बिन्दुओं को लेकर मुनादी करादी, जैसे- खाद्यान्न वस्तुओं में मिलावट न करें तथा कम न तोलें, रिश्वत लें न दें तथा किसी के काम में तकलीफ न दें, अपने धर्म के खिलाफ काम न करें, चोरी-राहजनी पर रोक, जुआ-शिकार-मृत्यु भोज पर पाबन्दी, कुआं-मन्दिर, बाग-धर्मशाला आदि को खराब न करें, किसी भी प्रकार के जहर की बिक्री न

हो, गरीब महिलाओं को तकलीफ न दें, झूठी गवाही तथा झूठे दस्तावेज पर पाबन्दी आदि।

इसकी बहादुरी पर अंग्रेज सरकार ने आगरा के दरबार आम में 15 तोपों की सलामी की जगह 17 तोपों की सलामी का सम्मान दिया वहीं इसे ग्रेड क्रास ऑफ दि स्टार ऑफ इण्डिया (G.C.S.I.) का खिताब भी दिया। इसके शासनकाल में रियासत में कोई बलवा नहीं हुआ। महाराजा मदनपाल 15 वर्ष 7 महीने शासन कर हैजा होने से अगस्त 17, 1869 को नि:सन्तान मर गया। इसके मरने से करौली के अलावा अन्य पड़ौसी रियासतों को बड़ा सदमा लगा।

यहाँ से आगे के करौली शासकों का वर्णन हम अधिक विस्तार में न जाकर संक्षेप में ही करेंगे।

जयसिंहपाल (1871-1875)-

महाराज मदनपाल की मृत्यु के बाद गद्दी के वारिस का बलवा पुन: प्रारम्भ हो गया। राव हाड़ौती लक्ष्मणपाल जो मदनपाल का भतीजा था, गद्दी का वारिस था, लेकिन हृदयाघात से उसकी मृत्यु हो गयी। महाराजा के ससुर ठा. वृषभान सिंह ने पोलिटिकल एजेंट के कहने से एक वर्ष तक शासन किया। बाद में गवर्नर जनरल के आदेश से राव हाड़ौती बनाये गये जयसिंहपाल को 32 वर्ष की अवस्था में रियासत का वारिस घोषित किया। इसके मेहनती और व्यवहार कुशल होने के कारण बाद में इसके कार्य की प्रशंसा की गईं। 17 नवम्बर 1875 को इसका देहान्त हो गया।

अर्जुनपाल- महाराजा जयसिंहपाल के नि:सन्तान मर जाने के कारण पोलिटिकल एजेंट ने जनवरी 1876 को राव हाड़ौती अर्जुनपाल को करौली का शासक घोषित किया। 1877 में इसने दिल्ली दरबार में अपनी रियासत का प्रतिनिधित्व किया। 23 जनवरी 1882 में भारत सरकार ने इस रियासत से नमक संधि की।

भँवरपाल (1886-1927)- इसका जन्म महाराजा अर्जुनपाल के छोटे बेटे कुंवर दुर्जनपाल के यहाँ सन् 1864 को हुआ। पोलिटिकल एजेंट ने इसे 1876 मे ंराव हाड़ौती बनाया तथा सन् 1886 को करौली की गद्दी का वारिस घोषित किया। इसकी छ: शादियाँ हुईं जिनमें दो राव पदवी रहते और शेष चार महाराजा की हैसियत से हुईं। इन रानी और महारानियों के अलावा मथुरा जिले के गोगला गाँव के ठाकुर बलदेव सिंह की दो पुत्रियों से विवाह किया। इतना

सब सुख भोगने के बाद भी यह सन्तान सुख से वंचित रहा। यह धार्मिक तथा परोपकारी प्रवृत्ति का था। यह 41 वर्ष शासन करके 3 अगस्त 1927 को मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसके गुजरने से एक प्रकार से धर्म का दीप बुझ गया। पूरी रियासत में मातम छा गया।

भौमपाल (1927-1947 ई.)- यह महाराजा भंवरपाल का रिश्ते में छोटा भाई था। दोनों में परस्पर बहुत ही प्यार था। पारिवारिक भ्रमवश कुछ समय दोनों में तनाव भी रहा। अलवर रियासत के मडयौ गाँव के ठाकुर परिवार में इसकी शादी हुई। राव पदवी पर रहते इसका परिवार भरा-पूरा था। एक पुत्र और दो नाती।

जन्म- सम्वत् 1923 द्वितीय ज्येष्ठ सुदी 6 (18 जून 1866)

शादी- 1. राजा बहादुर भगवान सिंह तंवर जाखोदा वाले की लड़की से।

2. अलवर राज्य के सदिया के जागीरदार ठा. चिमन सिंह तंवर की लड़की से, जिससे एक लड़का (गणेशपाल) व दो लड़की हुई। पहली लड़की मर गई, दूसरी की शादी महीकांठा गुजरात ईडर नरेश के छोटे भाई लाल सिंह से हुई।

महाराजा भंवरपाल की मृत्यु के बाद राव हाड़ौती भौमपाल को लेफ्टिनेंट कर्नल प्राचर्ड ने भारत सरकार की ओर से करौली गद्दी का वारिस घोषित किया। राज्याभिषेक सम्वत् 1984 (सन् 1927) में हुआ। कहने का मतलब है कि इसका राज्याभिषेक भरे पूरे परिवार के साथ हुआ जब कि पूर्वजों का इतिहास इसके लिए तरसता रहा। 61 साल 8 महीना यानि वृद्धावस्था होने के कारण भारत सरकार ने रियासत के सारे अधिकार गद्दी पर बैठने के साथ ही इसे दे दिये। राजा की मौजूदगी मे ंयुवराज गणेशपाल इनका सहयोग करते। सन् 1939 में ही इसने सारे शासकीय अधिकार युवराज को सम्हालवा दिये थे।

राजा भौमपाल ईश्वर पर बड़ा भरोसा रखता था। इसके समय में कभी अकाल, महामारी अथवा भुखमरी नहीं फैली। दया, दानवीरता इसके कर्मों में वास करती। रियासत की अच्छी आर्थिक स्थिति नहीं होने के उपरान्त भी यथा सम्भव सभी वर्ग के लोगों की सहायता की। सर्वप्रथम हिन्दी को रियासत की भाषा स्वीकारा। रियासत में फैले शासकीय आतंक और बेगार आदि कुप्रथाओं को समाप्त कर प्रजा के प्रत्येक दु:ख दर्द को अपना मान उन्हें गम्भीरता से हल करने का प्रयास किया। इसने अपने शासनकाल में प्रजा-हित के अनेक कार्य किये जिनसे प्रजा इनकी सराहना करती थी। राजा को जवानी में जहाँशेर के

शिकार का शौक रहा वहीं अन्तिम समय व्यसनों ने इसे घेर लिया। सम्वत् 2004 में (सन् 1947) में राजा की मृत्यु हो गयी।

गणेशपाल (1947-15.8.1947)- इसका जन्म करौली में राव साहब की हवेली में हुआ। वंश-परम्परागत बैसला गोत्रीय गूजर जाति की धाय (अंगद की धर्मपत्नी) ने इसे पाला। महाराजा भौमपाल के गुजर जाने पर यह करौली की गद्दी का असली वारिस बना। अभी तक गद्दी पर राव हाड़ौती से दस्तक प्रजा थी। इसका राजतिलक करौली के तख्त पर बड़ी धूमधाम से वैशाख शुदी 13 संवत् 2004 (सन् 1947) को हुआ। इसकी क्रमशः दो शादियाँ खंडेला और ओइला (मथुरा) के राजघरानों में हुई जिनसे दो लड़के बृजेन्द्रपाल तथा सुरेन्द्रपाल महाराजा भौमपाल की राव पदवी में हुए। महाराजा गणेशपाल तकनीकी विशेषज्ञ होने के साथ-साथ चरित्रवान और अनुशासन प्रिय रहा।

14 अगस्त 1947 को दोपहर बाद जब यह घोषणा की गई कि देश गुलामी से मुक्त हो गया, तो इस राजा ने भी अपनी रियासत गणतंत्र भारत में विलय कर दी। इसके बाद कभी अपनी भागीदारी या हस्तक्षेप शासन में नहीं किया।

समय की माँग को देखते हुए युवराज बृजेन्द्रपाल महलों से बाहर आये। जन प्रतिनिधि के रूप में बीस वर्ष तक यहाँ के विधायक रहे। इनके कुशल व्यवहार, सरलता एवं खुशमिजाजी की आज भी जनता प्रशंसा करती है। 9 अगस्त 1983 को हृदय गति रुक जाने से 57 वर्ष की आयु में निःसन्तान मर गये। महाराजा के दूसरे पुत्र और राव हाड़ौती सुरेन्द्रपाल की करीब 45 वर्ष की आयु में 24 मई 1982 को कार दुर्घटना में मृत्यु हो गई। सुरेन्द्रपाल के लड़के कृष्णचन्द्रपाल हैं जो महाराजा गणेशपाल के बाद स्व. बृजेन्द्रपाल की गद्दी पर बैठे। साथ ही बृजेन्द्रपाल की धर्मपत्नी महारानी धैर्यकुमारी को राजमाता के सम्मान से विभूषित किया गया।

इस प्रकार यदुवंश की इस शाखा के रूप में महाराजा कृष्णचन्द्रपाल मौजूद हैं। इनके पुत्र युवराज विवस्वतपाल हैं।

करौली रियासत के प्रमुख ठिकाने-

इसी रियासत में शासकों के खानदान की 37 कोटरियाँ थीं जिनमें हाड़ौती, अमरगढ़, इनायती, रावठरा और भरतून मुख्य रहीं जिनको करौली शासक खुद तेगा बांधते तथा घोड़ा और सिरोपा देकर उन्हें सम्मानित भी किया करते।

महाराजा विजयपाल और उसके वंशधरों के ठिकाने। गोत्र आदि का विवरण–

शासक का नाम	लड़कों की संख्या	उनका विवरण
विजयपाल सं. 999	(18) तिमनगढ़	तिमनगढ़ का जीर्णोद्धार कर आबाद किया।
	गजपाल	गीजगढ़ किला बनाया। इसकी संतान भाटी कहलाई। जैसलमेर में आबाद है, इसकी एक शाखा मोरस जादौं भी रही।
	मंडलपाल	मंडरायल दुर्ग का जीर्णोद्धार कराया, औलाद का पता नहीं।
	उदयपाल	इसने छोटी। बड़ी उदेई आबाद की। छोकल जादों प्रसिद्ध रहे। औलाद हाड़ौती इलाका, बूंदी, कोटा, राजगढ़ में आबाद।
	मदनपाल	गोरडा भंडारी में रहे। संतान सिसिला (सब खेरीय) जादों कहलाई।
	बागपाल	जग और धीर (सबलगढ़) में आबाद। नि:सन्तान।
	अनेहपाल	बल्लभगढ़ में गद्दी हुई। संतान खणास से जाट कहलाये।

(विजयपाल के 11 लड़के कनावर की लड़ाई में शहीद हो गये– छतरपाल, हंसपाल, मोतीपाल, पीरानपाल, देवपाल, रूपपाल, कुंवरपाल, सतपाल, रामपाल, गंगपाल, सूरजपाल। इस विवरण में एवं करौली पोथी के (पीछे) के विवरण में भिन्नता है। दोनों में कौन–सी कड़ी सही है, निश्चित नहीं कहा जा सकता)

तिमनगढ़ सन् 1058	(11) धर्मपाल	धौलपुर आबाद किया।
	उदैलपाल	इसकी संतान छौकर, पौरस जादों कहलाई। छौकर जादों शाखा से हैं। अलीगढ़, हाथरस के 80 ग्रामों में पौरस जादौं शाखा के लोग आज भी रह रहे हैं।

		नन्दपाल	बृजवासी जादों कहलाये। नंदगाँव, बरसाने में आबाद हैं।
		देवपाल	मौजे घाटोली, पाटोली। संतान मेवाती मुसलमान हुई।
		नागराजपाल	बधेरिया मैना। संतान बहादुरपुर में आबाद है।
		सुआपाल	जाट कहलाये। मौजा सिनसिनी आबाद किया। आगे भरतपुर काबिज बिज हुए।
		भरमपाल	भरौलिया जाट। कुन्डेरा कासिनंद आबाद किया।
		हरपाल	कौम गूजर, टटवाल, तमोली इसके वंशज कहलाये।
धर्मपाल सन् 1090	(2)	कुंवरपाल	कुंवरगढ़ (गोलारी) बनवाया। रींवा गया।
		वडनपाल	संतान गौहजे जादौं कहलाई।
कुंवरपाल सन् 1101	(4)	अजयपाल	अंधेर कोटला (रीवा) में गद्दी का वारिस।
		कायमपाल	ढाढोरिया जादों कहलाये।
		आनन्दपाल	संतान मथुरा, आवागढ़ आगरा के पास आबाद।
		मनोहरपाल	जमींदारी।
अजयपाल सन् 1113	(2)	सोनपाल	गद्दी का वारिस।
		सागरमल	नि:संतान
		सोनपाल	(कुँवरसेन) सन् 1136
		नागार्जुन	गद्दी का वारिस
		नागराज	नि:संतान
नागार्जुन सन् 1146	(1)	पृथ्वीपाल	गद्दी का वारिस
पृथ्वीपाल सन् 1166	(2)	त्रिलोकपाल	गद्दी का वारिस
		भागीरथपाल	नि:संतान
त्रिलोकपाल सन् 1188	(2)	पापलदेव	गद्दी का वारिस
		धारकदेव	नि:संतान

पापलदेव सन् 1206	(1)	सासलदेव	गद्दी का वारिस
सासलदेव सन् 1226	(3)	आसलदेव	गद्दी का वारिस
		मानकचंद	नस्ल लथानावत जादौं कहलाई।
		मेलकचंद	नि:संतान
आसलदेव सन् 1254	(2)	गोकल/धूमलदेव-	गद्दी का वारिस
		बीछलदेव	नि:संतान
धूमलदेव सन् 1286	(6)	अरजनदेव	गद्दी का वारिस
		सूरनदेव	बिखासिया/ बीस्याही ठाकुर
		अखैराज	-
		रामसिंह	कैलावारे जादौं।
		झूलनदेव	-
अरजनदेव सन् 1327	(2)	विक्रमाजीत	गद्दी का वारिस
		टोडूमल	नि:संतान
विक्रमाजीत सन् 1361	(5)	अभयचंद	गद्दी का वारिस
		अजयचंद, मदनचंद, हरेकचंद, किरपाल नि:संतान गये।	
अभयचंद सन् 1382	(5)	पृथ्वीराज	गद्दी का वारिस
		औजू	सरमथुरा में गद्दी बैठा। संतान सरेरीवा जादौं।
		सौजू	मौजा विजयपुरा। संतान दादू के जादौं कहलाई।
		रायभास	नि:संतान
		माधोसिंह/भावसिंह	मौजा भावली/चौड़िया जादौं कहलाये।
पृथ्वीराज सन् 1403	(13)	उदयचंद	गद्दी का वारिस
		राव लक्ष्मणसैन	संतान खीचरे जादौं कहलाई।
		हमीर सैन	संतान मैमोरिया जादौं कहलाई।
		हरकदेव	संतान मैमोरिया जादौं कहलाई।
		अचरचदास	संतान लोवानिया जादौं कहलाई।
		हींलगदेव	संतान मैचनौठिया जादौ कहलाई।

		गोमकरन	संतान भाषावतके जादौ कहलाई।
		ओबूजी, सिकंदर जी, जामौनीमान, करकसैन,	
		भावाचंद–	नि:संतान गये।
उदयचंद सन् 1433	(4)	प्रताप बहादुर	गद्दी का वारिस
		सखयान	
		देवसैन	
		मसालजी	
प्रतापबहादुर सन् 1435	(4)	देवरूपजी	
		चन्दसैन	
		सुन्दरराय	
		अभेपाल	
चन्दसैन सन् 1449	(6)	भारतीचंद	गद्दी का वारिस
		राव जयसिंह	भूदा जादौं कहलाये
		देवबक्श	खूबाजू जादौं कहलाये
		मानसिंह	मांगरौल में, (दक्षिणी जादौं जो अब मराठों में हैं।)
		वल्लभचंद	नि:संतान
		भगवानदास	पंचभइया जादौं दक्षिण की तरफ
		भारतीचंद	गोपालदास गद्दी पर बैठा
		खांडेराव	रावगढ़ में/रामपुर में आबाद।
		भवानीदास	संतान कस्बा खंडार, खंडरिया जादौं कहलाये
		सूरजमल	देवगढ़ (उटगिरि परगने में), उदावत जादौं कहलाये।
		धरमा, मानसिंह, इनैसिंह नि:संतान रहे	
गोपालदास	(3)	द्वारिकादास	गद्दी का वारिस
		राव मुकुटदास	झिरी में काबिज हुए, मुकटावत जादौं कहलाये।

इसके वंशज सन् 1613 में शहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) के साथ मेवाड़ के खिलाफ करौली से महाराजा जयपाल के शासन में गये, कुछ वहीं बस गये, जिनमें वंशधर के रूप में श्रीयशवन्त सिंह जो आज भी कोठरिया (मेवाड़) में मौजूद हैं।

तुरसम बहादुर		बहादुरपुर, सबलगढ़, विजयपुर, बहादन के जादौं।
द्वारिकादास सन् 1533 (8)	प्रतापसिंह	नि:संतान
	मुकुन्ददास	गद्दी का वारिस
	मगदराय	सिमिली (सबलगढ़), संतान पंचवीर जादौं कहलाई। मासलपुर, मंडरायल में आबाद हैं।
	हरीदास	गाँव हरनगर, संतान हरीदास जादौं, इनकी 16 कोटरिया करौली में आज भी मौजूद हैं।
	बली बहादुर	सबलगढ़ परगने में संतान मेवली जादौं कहलाई।
	सर्दूल	मेवा बाबा के कहलाई, अब कोई नहीं।
	सलैदी	मौजाबाजने, सलैदी के जादौं
	केसोदास	नि:संतान
मुकुन्द जी सन् 1584 (5)	जगमन	गद्दी का वारिस
	राव छत्रमन	संतान छत्रमन के जादौं कहलाई
	देवमन	खोहसीमर, फतहपुर, सैमरदा/मुकुन्द के जादौं
	मदनपाल	गाँव भरतून, धूलवास, बेरोडा, खदरपुर, मुकुन्द के जादौं
	माहमन	नरोली, सिंगाकोडरी, मुकुन्द के जादौं
जगमनजी सन् 1605 (15)	छत्रमन	गद्दी का वारिस
	फत्तेमन	कोंडरिया जादौं
	अमरमन	अमरगढ़ की कोठरिया, रघुनाथपुर (ग्वालियर)
	ओजूतमन	मौजा सबलगढ़
	राजमन	मौजा सबलगढ़
	सोगामन, दीपमन, किसनमन, अंजमन, शकलमन, निलोकमन,	

			कुशलमन।
छत्रमन सन् 1631	(10)	पृथ्वीपाल	कुँवर पद में मर गया।
		धरमपाल	गद्दी का वारिस
		रावभूपाल	संतान राव इनायती रही।
		पूसतपाल	संतान डूडीरामपुरा में (कुंडगाव)
		रामपाल	मनोहरपुर की कोटरी
		मानकशाह	(खवासवार) संतान घूराकर में
		हरदास	(खवासवार) संतान घूराकर में
		स्योपाल, रूपपाल, खरकपाल	नि:संतान
धरमपाल सन् 1644	(6)	रतनपाल	गद्दी का वारिस
		रावकीरतपाल	गरेरी, हाड़ौती के राव हुए।
		भोजपाल	रामअउरा ठाकुर इनकी संतान से हैं।
		जयसिंहपाल	संतान करौली। सबलगढ़ में कुछ हैं।
		प्रानपाल/ भगवानदास	नि:संतान रहे।
रतनपाल सन् 1665	(9)	हीरापाल	–
		कुंवरपाल	गद्दी का वारिस
		मोहनपाल	संतान कभी मौजे कोंडर में रही
		अखैपाल	–
		मोतीपाल, भगोतपाल, वीरमपाल, खरगपाल, उदैपाल	नि:संतान
		(प्रागदास, गयादास, पोकरदास, खवासवार	नि:संतान)
कुंवरपाल सन् 1688	(1)	गोपालसिंह	गद्दी का वारिस (दुर्जन सिंह, रघुनाथदास, कुशलसिंह खवासवार)
गोपालसिंह सन् 1724			नि:संतान (खवासवार से तीन संतानें)
तुरसनपाल सन् 1757			महाराजा गोपालसिंह के चचेरे भाई थे।

	मानकपाल	गद्दी के वारिस (राव जवाहरपाल की संतान महाराज प्रतापपाल थे)
	निहालपाल	मंडरायल रहे।
मानकपाल सन् 1772	अमोलकपाल	उटगिरि में मर गया
	हरबख्शपाल	गद्दी का वारिस
हरबख्शपाल सन् 1804	नि:संतान	

प्रतापपाल सन् 1837 से लेकर राजा गणेशपाल तक राव हाड़ौती करौली की गद्दी पर बैठते रहे।- ('करौली इतिहास के झरोखे से'- दामोदरलाल गर्ग से उद्धृत)

इस तालिका को देखने से स्पष्ट होता है कि यह केवल करौली से सम्बन्धित राजाओं तथा क्षेत्र को ही बताती है। अन्य दूर-दराज भागों में बसे यदुवंशियों की जानकारी बहुत ही कम है। क्योंकि कुछ तथ्यों में असंगति है।

चन्द्रवंश की यदुवंशी शाखाएँ-

1- यदुवंश- चन्द्रवंश के मूलक्रम में ब्रह्मा, अत्रि, चन्द्र से चन्द्र या सोमवंश का नामकरण हुआ। चन्द्र से आगे क्रम में बुध, पुरुरवा, आयु, नहुष और ययाति हुए। ययाति के यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु पाँच पुत्र हुए। ययाति के पाँच पुत्रों में यदु सबसे बड़ा था। इसी यदु के वंशज यादव कहलाये। ययाति के सबसे छोटे पुत्र पुरु थे जिनके वंशज पुरु या पौरव वंशी कहलाये। यदु से नामकृत (निकला हुआ) वंश अपनी अति प्राचीन खाँप से वर्तमान में आज भी यादव (मूल), यदुवंशी, जादौं कहलाता है।

2- हैहय यादव- यदुवंश से निकला हैहय यादव वंश का वंश निकास यदु के पुत्र सहस्त्रजित का पुत्र शतजित का पुत्र हैहय हुआ। इसी हैहय के वंशज हैहय क्षत्रिय कहलाये। सहस्त्रबाहु अर्जुन इस वंश का बड़ा प्रसिद्ध प्रतापी शासक हुआ है। बिहार का आरा नगर इन्हीं क्षत्रियों का बसाया हुआ है। इस वंश के क्षत्रिय वर्तमान समय में मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा आन्ध्र प्रदेश में कहीं-कहीं पाये जाते हैं।

3- तालजंघी यादव- कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन का पुत्र जयध्वज और जयध्वज का पुत्र तालजंघ हुआ। तालजंघ के वंशज तालजंघी यादव कहलाये।

4- क्रोष्टु यादव- यदु के पुत्र क्रोष्टु से क्रोष्टु यादव वंश प्रसिद्ध हुआ। क्रोष्टु वंश में सम्राट् शशबिन्दु, महाराजा ज्यामघ, विदर्भ बहुत प्रसिद्ध शासक हुए हैं। विदर्भ ने दक्षिण में विदर्भ देश की स्थापना की। विदर्भ को वर्तमान में बरार कहते हैं। विदर्भ के वंशज चेदि ने चेदि राज्य की स्थापना की, आजकल जिसे चंदेरी कहते हैं। शिशुपाल चेदि नरेश दमघोष का ही पुत्र था। भीष्मक विदर्भ देश का ही राजा था जिसकी पुत्री रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण के साथ हुआ था।

5- दशार्ह यादव- विदर्भ के पुत्र क्रथ के वंश क्रम में दशार्ह हुए। इसी दशार्ह के वंशज दशार्ह यादव कहलाए।

6- मधु यादव- दशार्ह के बाद इसके वंश में भीम राजा हुए। भीम की पुत्री दमयन्ती थी जिसका विवाह निषध के राजा नल के साथ हुआ था। भीम के बाद इसी क्रम में मधु हुए। इसी मधु के वंशज ही मधु यादव कहलाए।

7- सात्वत यादव- मधु के बाद क्रमशः वंशज सात्वत प्रसिद्ध राजा हुए। सात्वत के वंशज सात्वत यादव कहलाये। सात्वत के कौशल्या के गर्भ से भजिन, भजमान, देवावृध, महाभोज, अन्धक और वृष्णि नामक पुत्र हुए जिनकी अलग-अलग कई शाखाएँ चलीं।

8- अन्धक या महाभोज यादव- कई पुराणों में इन दोनों वंशों को अलग-अलग बताया गया है और कहीं-कहीं अन्धक वंश को कहीं अन्धकवंशी और कहीं भोजवंशी लिखा गया है। हरिवंशपुराण से ज्ञात होता है कि अन्धक और महाभोज एक ही वंश था। अन्धकवंश में आहुक क्रमशः वंशज हुए। आहुक के उग्रसेन और देवक पुत्र हुए। देवक की पुत्री देवकी का विवाह वसुदेव के साथ हुआ जिससे श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। उग्रसेन का पुत्र कंस हुआ।

अंधक के दूसरे पुत्र भजमान के वंशज क्रमशः हृदीक हुए जिनके कृतवर्मा, शतधन्वा आदि पुत्र हुए। कृतवर्मा को महाभारत में भोजवंशी लिखा है।

भोजवंश- चौथी शताब्दी में यदुवंश में उत्पन्न हैहय वंश की एक शाखा माना है। ये मथुरा के क्षेत्र में स्थापित थे। यहाँ से हैहय नर्मदा घाटी में चले गये तथा भोज बरार घाटी में बसे जिसे भोजकट राज्य का नाम दिया गया। बरार का अमरौती जिला तथा विदर्भ का वर्णन कालिदास ने 'रघुवंश' महाकाव्य में किया

है। बाद में भोजों का एक वर्ग कोंकण तट पर गोवा में चला गया जहाँ जागीरदार कहलाये। सातवीं शताब्दी में पृथ्वीमालावर्मन्, कपालीवर्मन् तथा अशंकिता भोज राजाओं का उल्लेख मिलता है।

- दि क्लासीकल एज, वोल्यूम-III, पृष्ठ 190-191- आर.सी. मजूमदार।

9- वृष्णि यादव- सात्वत पुत्र वृष्णि के वंशज यादव कहलाये। इसी वंश में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ।

यदु वंश की खाँपें-

1- भाटी यादव- श्रीकृष्ण जी के पुत्र प्रद्युम्न के वंश में बहुत आगे चलकर भाटी नामक एक प्रसिद्ध शासक हुआ, उसी के नाम पर उसके वंशज भाटी यादव कहलाये। इस वंश की जैसलमेर प्रसिद्ध रियासत रही है। भाटी क्षत्रिय वर्तमान में राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश एवं दिल्ली प्रान्तों के अनेक जनपदों में बसे हुए हैं। उत्तर प्रदेश व कश्मीर प्रान्तों में भी कहीं-कहीं भाटी क्षत्रिय हैं। भाटी परिवार में 12 कुली है जो निम्न प्रकार हैं- 1. श्यामजी के सन्हैय्या भाटी 2. अमीराय भाटी 3. कूलडभाटी 4. बडवा भाटी 5. जोहो 6. सहवा 7. लाट्टवा 8. जीया 9. मोरवाया 10. जेरोगा 11. रायधण 12. बरावत। राजस्थान के जैसलमेर, बीकानेर, हनुमानगढ़, जोधपुर, बाड़मेर, चितौड़, बिहार में मुंगेर तथा भागलपुर, उ.प्र. में गाजियाबाद, मेरठ, बुलन्दशहर, हरियाणा में बल्लभगढ़, फरीदाबाद, पलवल में बसे हैं।

2- शूरसेन यादव- मथुरा के आस-पास शूरसेन क्षेत्र से शूरसेन यादव कहलाये।

शूरसेन क्षेत्र के- यादव राजा इच्छपाल के एक पुत्र विनयपाल (विनायकपाल) महोबा जाकर रहे, जहाँ उनके वंशज महोबा, बाँदा, हमीरपुर, छतरपुर आदि जिलों में बसे हैं।

3- छोकर यादव- शूरसेन क्षेत्र के इच्छपाल के बाद ब्रह्मपाल व जयेन्द्रपाल हुए। जयेन्द्रपाल के विजयपाल और उदयपाल आदि 11 पुत्र हुए। उदयपाल के वंशज छोकर हुए।

4- जादौं यादव- शूरसेन क्षेत्र से यादव वंश इधर-उधर फैला। जादौं मूलत: यादव ही हैं। ब्रजभाषा में 'य' का 'ज' उच्चारण होने से यादव से जादव (जादौं) हो गया। जादौं उत्तर प्रदेश के अलीगढ़, मथुरा, बुलन्दशहर हाथरस, एटा आदि जिलों में पाये जाते हैं।

5- खांगर यादव- जूनागढ़ के किसी राव खेतसिंह खंगार द्वितीय के वंशज खागर यादव कहलाए। इनका राज्य मध्य प्रदेश के गढ़ कुण्डार में था। ये यादव वर्तमान में झासी, हमीरपुर तथा जालौन जिले में हैं। इनकी वरदाई, तिमन, जरिया, ममनपुरिया, भड़ोसिया, विदमन, वद्दा, सोहा, जेसवार, नोगजंग, नोलखा आदि कई खाँपें हैं। अनेक पूर्वज 1200 ई. के आस-पास गुजरात से चलकर आये।

तवनपाल यादव- मथुरा क्षेत्र के यादव इच्छपाल के क्रमशः ब्रह्मपाल के जयेन्द्रपाल के विजयपाल के तवनपाल हुए। राजा तवनपाल का राज्य अलवर, भरतपुर और करौली के क्षेत्र तक फैला हुआ था। तवनपाल के वंशज तवनपाल यादव कहलाये। तवनपाल यादव की कई खाँपें हैं। तवनपाल के पुत्र सोमदेव हुए। सोमदेव के वंशज पोरच के कारण इनके वंशज पोरच यादव कहलाए जिनके मेढूँ, दरियापुर आदि ठिकाने थे। करौली के शासक धर्मपाल III के पुत्र वदनपाल के वंशज गोहेच (गोहजे) यादव कहलाए। करौली के राजा मुकुटराव के वंशज मुक्तावत यादव कहलाए। करौली राज्य में इनके सरमथुरा, झीरी, सबलगढ़ आदि ठिकाने थे। करौली के राजा गोपालदास के पुत्र द्वारिकादास के एक पुत्र मागधराय के वंशज पंचपीर यादव कहलाए। करौली के शासक मुकुन्ददास के वंशज मुकुन्द यादव कहलाये। राजा मुकुन्दपाल के भाई तुरसम बहादुर की संतति 'बहादुर यादव कहलाये जिनके बहादुरपुर और विजयपुर ठिकने थे। करौली के राजा कुंवरपाल के पुत्र सोनपाल के वंशज सोनपलिया (सोनगरिया) यादव कहलाये। राजा कुंवरपाल II के ही दूसरे पुत्र कारुपाल के वंशज डडूनिया यादव कहलाये। कुंवरपाल II के एक वंशज आनन्दपाल के वंशज आवागढ़ रहे जिससे इनके वंशज आवागढ़ के यादव कहलाये।

7- साम्मा यादव- श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब के वंशज शाम्ब यादव कहलाये। बाद में शाम्ब से साम्मा यादव कहलाने लगे।

8- चूड़ासभा यादव- शाम्ब के वंशज चूड़चन्द्र से चूड़ासभा (चूड़ासमा) यादव कहलाये जिनका सिन्ध क्षेत्र पर बहुत समय तक शासन रहा।

9- सरवैया यादव- चूड़चन्द्र के वंशज रागरिया ने गिरिनार (जूनागढ़) में अपना राज्य स्थापित किया। रागरिया और इनके वंशज सर या तीर चलाने में बड़े प्रसिद्ध हुए। जिसके कारण इनके वंशज सरवैया यादव कहलाये।

10- रैजदास यादव- सरवैयों के अलावा चूड़ासभा यादवों की दूसरी शाखा रैजदास है जो समुद्र के किनारे चोरवाड़ में रहती है।

11- **वज यादव**- सरवैयों की तीसरी शाखा वज है जो समुद्र की ओर पहाड़ियों की तरफ रहती है।

12- **जाड़ेचा यादव**- सिंध के शासक चूड़चन्द्र के वंशज ऊनड़ के बाद तामाइच हुआ जिसका वंशज जामजून (जड्डा) हुआ। जड्डा का पुत्र लाखा हुआ। लाखा के वंशज अपने पिता जड्डा के नाम से जाड़ेचा यादव कहलाये। जाड़ेचों ने गुजरात के एक बड़े भू-भाग पर शासन किया। कच्छभुज, नवानगर (जामनगर) घ्रोल, राजकोट, मोरवी व गोंडल जाड़ेचा यादव वंश की प्रसिद्ध रियासतें थीं। जड्डा के पुत्र लाखा के वंशज रायधण के वंशज रायधण जाड़ेचा कहलाये। रायधण जाड़ेचा की खंगारणी, भारानी, तमाचयानी, नौधाड़ी, कारनी, गोरानी आदि खांपें हैं। रायधण के पुत्र गज्जन और गज्जन के पुत्र हाला हुए जिनके वंशज हाला जाड़ेचा कहलाए। रायधण के छोटे पुत्र होठी के वंशज होठी जाड़ेचा कहलाए।

12- **सिंधेल यादव**- देवगिरि (दौलताबाद) के यदुवंशी राजा 'सिंधण' के वंशज सिंधेल क्षत्रिय कहलाते हैं। सिंधण का वंशज देवगिरि से जाकर बिहार में जाबसा था। वर्तमान में इनके वंशज बिहार के भागलपुर, छपरा, मुजफ्फरपुर तथा उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले में पाये जाते हैं।

14- **होयसल यादव**- यदुवंशी राजा साल ने ऋषि की आज्ञा से एक सिंह को मारा था, इनके वंशज होयसल कहलाये। ग्यारहवीं सदी में इस वंश का राज्य मैसूर के छोटे भाग पर था जिसकी राजधानी वेलापुर थी, बाद में उसकी राजधानी समुद्र में स्थापित हुई, इस कारण ये द्वारा समुद्र के होयसल के नाम से प्रसिद्ध हैं। यहाँ के राजा विनयादित्य, ड्रेयंग, विष्णुवर्धन, वीरवल्लाल, नरसिंह, वीरवल्लाल द्वितीय आदि हुए। वीरवल्लाल को मलिक काफूर ने विजय कर लिया था जिसके कारण इनका राज्य सदा के लिए समाप्त हो गया।- (आस्था राजपुत्र, इन्दौर, दि. 2016)

जादौन वंश (यदुवंश)-

शाखा-सूत्र-वंश=चन्द्र/गोत्र-कौडिण्य (या वर्तमान में जोभी हो)/प्रवर ऋषि-कौडिण्य, स्तिमिक, कौत्स/कुलदेव-श्रीकृष्ण/कुलदेवी- योगेश्वरी/वेद-यजुर्वेद/ शाखा-वाजसेनेयि/सूत्र- पारस्कर/नदी-यमुना/वृक्ष-कदम्ब या पीपल/अस्त्र-खड्ग/ध्वज-(पीला) पीतवर्ण/प्राचीन गद्दी-मथुरा/वर्तमान गद्दी- करौली राजस्थान, गुरु-दुर्वासा।- (जाति भास्कर- पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र)

यदुवंशी शाखा जादौन का नामकरण-

सभी ऐतिहासिक ग्रन्थों में जादौन शाखा का उल्लेख यादव वंश की शाखा में हुआ है। मुंहणोत नैणसी ने यादव, भाटी और जादौन को एक ही वंश माना है। कर्नल टॉड तथा चन्दवरदायी ने यदुवंश में ही भाटी व जादौन का वर्णन किया है। अधिकतर इतिहासकार व वंश लेखकों ने जादौन वंश को यदुवंश की शाखा में लिखा है।

चन्द्रवंश की यदुवंशी शाखाओं में से निकली कुछ क्षत्रिय वंशों की कुछ प्रमुख शाखाएँ इस प्रकार है- जैसलमेर राज्य का भाटी वंश, राजस्थान करौली राज्य का जादौन वंश, महाराष्ट्र नासिक देवगिरि के बीच का क्षेत्र सेउण राज्य का सेउण वंश, आन्ध्र प्रदेश देवगिरि राज्य का सिंधेल वंश, कर्नाटक मैसूर राज्य का वडियार या औडियार वंश, दक्षिण विजयनगर राज्य का संगम या होयसल वंश, गुजरात जूनागढ़ राज्य का चूड़ासभा व सरवैया वंश, गुजरात कच्छभुज नवानगर जामनगर राज्य का जाड़ेचा वंश प्रमुख हैं। यदुवंश से ही हैहय वंश तथा हैहय से ही कलचुरि क्षत्रिय वंश का निकास हुआ है।

गोपाल के वंशज- बयाना के शासक विजयपाल पर जब कंधार के शासक बूबकशाह ने आक्रमण किया जिसमें बयाना का विध्वंस और विजयपाल मुसलमानों से संघर्ष करते हुए सन् 1046 में वीरगति को प्राप्त हुए। महाराजा विजयपाल के 18 पुत्र थे, बड़ा पुत्र तवनपाल (तिमनपाल) भी बारह वर्ष तक अज्ञात स्थान पर रहा। उस समय उनके एक पुत्र गोपाल कुर्रा- आगरा उत्तर प्रदेश में स्थापित हुए। आगे इनके वंशज उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के कई स्थानों पर ठिकाने प्राप्त कर आवासित हुए।

(टिप्पणी - महाराजा विजयपाल के 18 पुत्रों के नामों में गोपाल का कहीं उल्लेख नहीं है। संभवत: उनमें से किसी का उपनाम हो या बदलकर रखा गया हो)।

राजकुमार गोपाल की बयाना राज्य के अन्तर्गत आगरा में वर्तमान फतेहाबाद और शमसाबाद में जागीर थी। महाराजा तवनपाल का वि.सं. 1190 सन् 1133 ई. का शिलालेख प्राप्त है, उस आधार पर उसके राज्य क्षेत्र में अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, गुड़गाँव के अलावा मथुरा- आगरा का यह भू-भाग भी सम्मिलित था जहाँ राजकुमार गोपाल को पिता महाराजा विजयपाल द्वारा जागीर प्रदान की गई थी। मथुरा, आगरा, भरतपुर का क्षेत्र आपसी सीमाओं से जुड़ा

हुआ है। महाराजा विजयपाल और तवनपाल के बहुत पूर्व से ही मथुरा के आस-पास के क्षेत्र पर यादव-जादौन वंश का शासन था। बयाना के किले पर बूबकशाह के आक्रमण में गोपाल ने मुगलों से कड़ा मुकाबला किया। गोपाल के दस पीढ़ी के वंशज बड़वा बही के अनुसार वि.सं. 1100 से लेकर वि.सं. 1300 तक आगरा की विस्तृत जागीर वर्तमान फतेहाबाद व शमसाबाद पर स्थापित व काबिज रहे।

आगरा क्षेत्र से गोपाल के दसवें वंश में जोगपाल के पुत्र पूरनलाल, खुरनपाल, गुरनपाल व जवाहरपाल वि.सं. 1465 ई. सन् 1408 में बरहा-भिण्ड में आये, बरहा जागीर स्थापित की जिसमें कई गाँव शामिल थे। बरहा की जागीर पर जोगपाल के वंशज वि.सं. 1465 से वि.सं. 1635 तक लगभग 170 वर्ष तक इस जागीर के स्वामी रहे। इस जागीर के अधिकार में वर्तमान बड़ोखरी, गुरयाची, अँधियारी कलाँ, सजरौली (बैड़ा), हरपुरा आदि गाँव शामिल थे। इन ग्रामों में आज भी इनके वंशज मौजूद हैं। बरहा जागीर से ही जवाहरपाल के वंशज रामराय वि.सं. 1635 में उत्तर प्रदेश के जालौन जनपद में बहराई गाँव बसाकर रहे। वर्तमान में रामराय के वंशज वहीं आबाद हैं।

यह विजयपालोत जादौन वंश मथुरा और बयाना से लम्बे समय तक आगरा क्षेत्र में रहा जहाँ जादौन वंश की आज भी बसावट है। 'क्षत्रिय राजवंश' के पृष्ठ- 345 के अनुसार जादौन उ.प्र. के अलीगढ़, मथुरा, बुलन्दशहर (अमर सिंह जादौन के सौजन्य से) आदि जिले में हैं। चेतक पत्रिका के लेख 'क्षत्रियों' का संक्षिप्त इतिहास लेखक डा० ब्रजभूषण सिंह मथुरा के अनुसार जादौन वंश के उ.प्र. में अवागढ़, कोटला, फरिहा प्रसिद्ध राज्य हैं। आगरा में अवागढ़ राजा बलवन्त सिंह के नाम पर बलवन्त सिंह कालेज प्रसिद्ध है। राजपूत वंशावली, लेखक ईश्वर सिंह महाढ़ के पृ 209 ईलियट के अनुसार आवागढ़, मीसा (एटा), सोमना (अलीगढ़), कोटला, रहिहाबाद, शमसाबाद (आगरा), मुस्तफाबाद, घिरोर (मेंनपुरी), अडीग (मथुरा), कोल, हसनगढ़, अकराबाद, सिकन्दराराऊ, खैर, किरावली, जेवर, बुलन्दशहर आदि में जादौन वंश के ठिकाने हैं।

आगरा क्षेत्र से यह जादौन वंश वि.सं. 1465 में बरहा भिण्ड में आया उस समय इस क्षेत्र पर इन्दुरखी राज्य के कछवाह राजा विक्रमादित्य का शासन था। जोगपाल के पुत्र सुरनपाल आगरा शमसाबाद से वि.सं. 1465 में स्थापित हुए तथा इनके निकट वंशज बरहा जागीर पर वि.सं. 1635 तक इन्दुरखी के राजा

रायसिंह कछवाह के शासनकाल तक रहे। बाद में इन्दुरखी राज्य की जागीर वीर सिंह देव बुन्देला और कृपाराम गौर के अधिकार में गई जिससे बरहा से जादौन वंश बरहा जागीर के फैले हुए गाँवों में जा बसे।

जोगपाल के पुत्र गुरनपाल के वंशज गुरयावत (गुरयात) जादौन कहलाये। इसके वंशज बरहा भिण्ड की जागीर के ठाकुर हुए। इन्होंने गुरयाची अधियारीकलाँ, सजरौली, हरपुरा ठिकाने बनाये।

पोरच यादव- क्षत्रिय राजवंश के लेखक रघुनाथ सिंह शेखावत पोरच यादव के वर्णन में लिखते हैं-

करौली शासक तवनपाल के पुत्र सोमदेव के वंशज पोरच के वंशज पोरच यादव कहलाये। 'क्षत्रिय जाति की सूची' लेखक ठा० बहादुर सिंह बीदासर ने लिखा है कि- सोमदेव के वंशज पोरच यादवों के उ.प्र. में मेंडू और दरियापुर ठिकाने हैं।

पूरनपाल के वंशज वर्तमान में आगरा जिले के कई ग्राम हरजूपुरा, दहनेर, कुर्रा, बालमपुर, सिकन्दरापुर में आबाद हैं जो पूरनपाल के नाम पर पुरुसोतिय (पुसोतिया) जादौनों के नाम से प्रसिद्ध हैं। जवाहरपाल कुर्रा आगरा से जरार बाह आगरा की जागीर पर वि.सं. 1435 में बसे। जवाहरपाल के वंशज उनके नाम से व जरार ठिकाने से जरिहा या जरियावत कहलाये। जवाहरपाल के वंशज इन्द्रमणि के पुत्र रामराय हुए जो वि.सं. 1635 में बरहा भिण्ड से उ.प्र. के जालौन में बहराई ठिकाना स्थापित कर रहे। बरहा ठिकाने पर रामराय ने अपने नये ठिकाने का नाम बहराई रखा जो वर्तमान में बहराई कहलाता है। वर्तमान में रामराय के वंशज जरिहा (जरियावत) जादौन वंश की यहाँ घनी बसावट है।

जोगपाल के पुत्र खुरनपाल के वंशज खुरनपालोत (खुरयात) खुरयार वा जादौन कहलाये। खुरनपाल के पुत्र विजयसिंह व विजयसिंह के पुत्र बारेलाल हुए। बारेलाल वि.सं. 1480 में अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित जागीर बरहा भिण्ड की जागीरी क्षेत्र बड़ोखरी तथा बारेलाल के पुत्र गम्भीर सिंह बड़ोखरी से इसी बरहा जागीर के गाँव गुरयाची में ठिकाना स्थापित कर के रहे।

'राजपूतों की वंशावली एवं इतिहास' में त्रिलोक सिंह धाकरे ने पोरच के सम्बन्ध में लिखा है कि "करौली के राजा विजयपाल के वंशज क्रमशः तिमनपाल, उदयपाल हुए। उदयपाल की पाँचवी पीढ़ी पर राजा सोमदेव हुए जिन्होंने सादाबाद बसाया और शासन किया। सोमदेव के पुत्र पोरच (पोच) के वंशज पोच या पोरच जादौन कहलाये। सोमदेव के चार पाँच पीढ़ी बाद राजा रतनसिंह हुए

जिन्होंने 1787 ई. तक राज्य किया जिनके राज्य में हाथरस, मेढू, हसायन तथा दरियापुर थे। अलीगढ़ गजेटियर के अनुसार राजा रतनसिंह के बाद राजा चित्रसिंह, राजा जसवंतसिंह, राजा नारायण सिंह ने राज्य किया। पोरच जादौन वंश के मड़ैला, हसायन, अंडौल, अलेदनपुर, अल्लिया नगला, दरियापुर, हाथरस तथा अलीगढ़ के आस पास 80 गाँव हैं। गुरयावत, जरियावत, खुरयावत जादौन वंश की छुटपुट बसावट आगरा, इटावा, जालौन, भिण्ड, दतिया, नरसिंह, रायसेन आदि जिलों में हैं। वैवाहिक सम्बन्ध समान क्षत्रियों से होता है।- (राजपूत क्षत्रिय वंश भास्कर- ठा० मोहन सिंह चौहान)

छोकर (यादव) जादौन-

शूरसेन क्षेत्र के इच्छपाल के बाद क्रमशः ब्रह्मपाल व जयेन्द्रपाल हुए जयेन्द्रपाल के विजयपाल व उदयपाल आदि 11 पुत्र हुए। उदयपाल के वंशज छोकर हुए। छोकर के वंशज छोकर यादव कहलाये।- (करौली इतिहास के झरोखे से- लेखक दामोदरलाल गर्ग)

करौली के राजा विजयपाल सिंह के वंश क्रम में तिमनपाल व राजा उदयपाल हुए। उदयपाल के वंशज छोकर राजपूत कहलाये। ये जिला गाजियाबाद, सीकरी (फरीदाबाद), गुडगाँव, बुलन्दशहर जिलों में निवास करते हैं।- (राजपूतों की वंशावली एवं इतिहास- त्रिलोकसिंह धाकरे)

उदयपाल सोरावड़ में बैठा जहाँ इनकी दो शाखाएँ हैं- उरलिया ठिकाना दयानतपुर, रावत ठिकाना जेवर।- (क्षत्रिय जाति की सूची- ठा० बहादुरसिंह बीदासर)

छोकर जादव गाजियाबाद, गुडगांव और बुलन्दशहर में है।- (राजपूत वंशावली- ईश्वरसिंह मडाढ़)

अमेरिया या अमरेटिया-

'क्षत्रिय वंशावली' लेखक ठा० गणपत सिंह के पृष्ठ 53 पर चन्द्रवंशीय यादव वंश की प्रशाखाओं में अमेरिया या अमरेटिया शाखा का उल्लेख हुआ है।

पालोरिया या पिलोरिया-

यह यादव वंश की प्रशाखा है। क्षत्रिय जाति की सूची के अनुसार इस शाखा का वंशज भरतपाल यादव है जो पिलोर दक्षिण के स्थान के नाम से

पिलोरिया यादव कहलाये। वर्तमान में यदुवंश की ये शाखाएँ पिलोरिया तथा अमरेटिया मालवा म.प्र. के रायसेन, नरसिंहपुर जनपद में पाई जाती है।- (राजपूत क्षत्रिय वंश भास्कर- ठा० मोहनसिंह चौहान)

बनाफर यादव-

शूरसेन क्षेत्र के यादव इच्छपाल के विनयपाल (बीरमपाल) के वंशज बनाफर यादव कहलाये।- आस्था राजपुत्र, पृ. 29

बनाफर देवसक- यह क्षत्रियों की एक जाति है। आल्हा-ऊदल इसी वंश में उत्पन्न हुए थे।- जाति भास्कर, 237

जाड़ेचा यादव- अन्य रियासतें- वीरपुरा, कोटडा (सांगाजी), कोटहा (नायाषी), मालिया मेगणी, नवरोदड़पाल, धरणा जालिया (देवाणी), भाडुवा, राजपुरा, कोठरिया, शायर, लोधी, बड़ाली खीरसरा, सीसांग, चाण्डली, वीरबाव, काकसी, आली, मोवा, प्राफा, सातोदड़, बावड़ी, मूली, लाडेरी, सांतलपुर (पालनपुर एजेन्सी) आदि अनेकों जाड़ेचों के ठिकाने हैं। इन जाड़ेचों ने गुजरात के एक बड़े-भू-भाग पर शासन किया। जाड़ेचा वंशीय क्षत्रियों ने छठी शताब्दी में राजकोट (गुजरात), सोलहवीं शताब्दी में कच्छ, नवानगर स्टेट, सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मोरवी तथा गोंडल रियासत की स्थापना की।

अन्य खाँपें- जाड़ेचों की प्रमुख खापों के अलावा अबड़ा, आमर, बराच, भोजदे, बुद्दाहेड़ा, गाहड़, जाड़ा, जेसर, कावा, कोरह, मोड़, पायड, सायव, ढाक, खंगार आदि खाँपें भी हैं।- (आस्था राजपुत्र, पृ. 29)

भाटी- चन्द्रवंशीय क्षत्रियों का कठियावाड़, जैसलमेर, गुड़गाँव तथा पंजाब के पर्वतीय क्षेत्र में काफी समय तक शासन रहा है। छठी शताब्दी में चन्द्रवंशी राजा रिज की राजधानी पुष्पपुर (पेशावर) थी जिसके पुत्र गज ने गजनी (अफगानिस्तान) बसाया। गज के पुत्र शालिवाहन (शालीबाहन कोट या स्यालकोट) के बड़े पुत्र भक्त पूरनमल के साधु हो जाने पर छोटे पुत्र बालन्द शासक बने। बालन्द के पुत्र महाराजाभाटी के नाम पर भाटी वंश चला जिन्होंने वि.सं. 686 में भट्टीक सम्वत् चलाया तथा भटनेर (बीकानेर) बसाया। भटिंडा (पंजाब) शहर भी उजड़े पड़े गोविन्दगढ़ (विक्रमगढ़) के स्थान पर इनके द्वारा आबाद किया गया। भाटी क्षत्रियों ने ही आगे चलकर तन्नौट दुर्ग, देरावल (बहावलपुर) बसाये। राजा देवराज भाटी ने तुर्क आक्रमणकारियों को देश से बाहर खदेड़कर किवाड़भाटी की उपाधि धारण की।

श्रावण सुदी द्वितीया सम्वत् 1212 विक्रमी (सन् 1155) में जैसलदेव भाटी ने जैसलमेर दुर्ग बनवाया। अलाउद्दीन खिलजी द्वारा सन् 1303 ई. में चित्तौड़ पर आक्रमण के समय उसकी सेना ने जैसलमेर किले को भी घेर लिया। तत्कालीन शासक जैतसिंह भाटी 1303 से 1311 ई. तक मृत्युपर्यन्त 8 वर्ष तक युद्ध करते रहे। उनके बाद मूलराज भाटी ने युद्ध जारी रखा। सन् 1316 ई. में राजपूतों ने किले के बाहर निकलकर शत्रुदल पर धावा बोलकर वीरगति पायी तथा स्त्रियों ने जौहर किया। जैसलमेर की जैसल भाटी द्वारा स्थापना के बाद सन् 1949 ई. तक अनेक राजाओं ने शासन किया। भगवान् श्रीकृष्ण का मूल छत्र आज भी जैसलमेर राजमहल में मौजूद है।

भाटी क्षत्रियों का शासन जैसलमेर, बीकानेर, गंगानगर, भटिंडा, नाभा, जींद, पटियाला, अम्बाला, सिरमौर (नाहन) क्षेत्र में रहा। इस क्षेत्र के अलावा भाटी क्षत्रिय जोधपुर, बाड़मेर, बुलन्दशहर, भागलपुर, मुंगेर आदि जिलों में रहते हैं।

शाखाएँ– 1. बोधा 2. लहुआ 3. माहेड़ा–भाड़ेचा 4. तावनी–तावनी भाटियों के वंशज अम्बाला रोपड़, पटियाला जिलों में रहते हैं। 5. रावलोत–जैसलमेर के दो भाटी क्षत्रिय भाई रावल कासब और रावल मारक, ने धूम मानिकपुर (जिला–गाजियाबाद, बुलन्दशहर) के राजा राजेन्द्र बहादुर सक्सैना को परास्त कर अपना राज्य स्थापित किया। कासना दुर्ग को केन्द्र बनाकर इन्होंने 350 गाँवों पर शासन किया। बाद में इस रियासत के अधिकतर भाटी राजपूत भाटी गूजर हो गये।

6– **सिरमौरिया**– सिरमौर (हिमाचल प्रदेश) के भाटी क्षत्रिय सिरमौरिया कहलाने लगे। जैसलमेर से आकर इस राज्य को आबाद करने वाले रावल सोभा जी के वंशजों ने जुब्बल, बलसन, कुम्हारसेन, थियोगर, ढाढ़ी, रवैन, थरोच, कलसी आदि छोटी–छोटी पहाड़ी रियासतों को सिरमौर राज्य में मिला लिया। सिरमौर राज्य की वर्तमान राजधानी नाहन की स्थापना सन् 1621 ई. राजा कर्मप्रकाश ने की। गुरुगोविन्द सिंह को राजा मितप्रकाश ने अपने यहाँ शरण देकर पावट में किला बनाने की अनुमति दी। सन् 1688 ई. में हुए सिरमौर राज्य पर आक्रमण के समय गुरुगोविन्द सिंह ने राजा मितप्रकाश की सहायता की। सन् 1750 में राजा कीर्ति प्रकाश ने गढ़वाल का कुछ क्षेत्र तथा नारायणगढ़, मोर्नी, पिंजौर और सिक्खों की रियासत भी इस राज्य में मिला ली।

7- जैसवार भाटी क्षत्रिय- भाटी वंशीय राजा जैसलदेव की राजधानी जैसलमेर से निकास होने के कारण जसा, जैसा, जायस, जैसवार, जायसवाल कहे जाते हैं। जैसलमेर के राजा लखनसेन के बड़े पुत्र पुण्यपाल जैसलमेर के राजा बने। दूसरे पुत्र रावल महदपाल भाटी के वंशज यमुना नदी के दोनों किनारों पर बुलन्दशहर जिले के जेवर, दनकौर परगने तथा फरीदाबाद (हरियाणा) जिले में बसे हुए हैं। इसके अलावा जैसवार भाटी भागलपुर, मुंगेर, मुजफ्फरपुर, अम्बाला, करनाल, इन्दौर, सागर, इटारसी, भोपाल, जबलपुर, रायपुर, इटावा, आगरा, मथुरा आदि जिलों में रहते हैं। मिर्जापुर, वाराणसी में भी बसे हैं।

जसावत यदुवंशी राजपूत- मथुरा, आगरा में भी हैं। मथुरा जिले में गोवर्धन, फरह तथा माँट (जायस) क्षेत्र में बसावट है।

भाटी क्षत्रियों के प्रसिद्ध गढ़- जैसलमेर, पुंगल, वीकमपुर, बरसलपुर, मम्मण, बहट, मारोठ, आसणी कोट, केहरोर।

कलचुरि क्षत्रिय- करचुरिया क्षेत्र (रींवा राज्य) में रहने वाले हैहय वंशीय क्षत्रिय, कटच्चरि, करचुरि, करच्चूरि, करचुलिया या करचोलिया कहे जाने ले। विंध्याचल का अमरकंटक मन्दिर और बनारस का कर्ण मेरु शिव मन्दिर कलचुरि क्षत्रियों द्वारा ही बनवाये गये।

सन् 670 ई. के आस-पास नर्मदा नदी के ऊपरी घाटी में कृष्णराज ने कल्चुरि राज्य की स्थापना की। कृष्णराज के पुत्र शंकरगण और पौत्र बुद्धराज प्रसिद्ध पराक्रमी शासक हुए। कलचुरियों ने आठवीं शताब्दी तक कालंजर पर शासन किया। कालंजर से कल्चुरि प्रतापगढ़ क्षेत्र में गये। कल्चुरि तिलक वामराज ने राय बरेली और इसके छोटे भाई लक्ष्मणराज ने महाराजगंज-कुशीनगर क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। वामराज ने जबलपुर के पास त्रिपुरी को राजधानी बनाकर कल्चुरि राज्य की स्थापना की। सन् 1015 ई. में राजा कोकल्ल द्वितीय का पुत्र गांगेयदेव विक्रमादित्य त्रिपुरी का प्रसिद्ध शासक हुआ जिसने अपनी विजय पताका कांगडा (हिमाचल प्रदेश), बिहार, बंगाल और उड़ीसा तक फहरायी। इसके बाद इसका पुत्र कर्ण (1041-1072 ई.) प्रसिद्ध कलचुरि शासक हुआ।

आजकल कलचुरि क्षत्रिय उत्तर प्रदेश के बलिया, गाजीपुर, गोरखपुर, बिहार के पटना, दरभंगा, मुजफ्फरपुर और मध्य प्रदेश के रींवा जबलपुर जिलों में रहते हैं। लाट के कल्याण के, दक्षिण कौशल के तथा चेदि, चेद्य, छद्देइया

आदि कलचुरि की उपशाखाऐं हैं। छत्तीसगढ़ के रायपुर जिलों में भी पाये जाते हैं।– (क्षत्रिय कुल परिचायिका– रमेश राघव से उद्धृत)

समेरिया यादव– श्रीपाल जीका, मैसूर में राज्य है।

देवगिरिया यादव– राजा भिल्लम ने सम्वत् 1244 में सेउणदेश वालों में से ही देश को बढ़ाकर देवगिरि को बसाया, जिसको मुसलमानों के समय से दौलताबाद कहते हैं। देवगिरियों को करौली वाले अपने में से समझते हैं, परन्तु यह उनका भ्रम है।

मथुरावती जाम का यादव– बिखमपाल का, मथुरा में बैठा (मथुरावत जादौन)।

सोनगिरिया यादव– सोनपाल जी का।

काबा यादव– दीपपाल का, द्वारिका।

माहोर का यादव– महीपाल का, यह माहोर में बैठा।

करिया यादव– पृथ्वीपाल जी का, जो खरेरी और बागरेन में बैठा।

मेवाती मुसलमान– देवपाल के मेवात में।

गोहजे यादव– बदनपाल जी का।

सोनपाल का यादव– बिछोर में।

सेउड के यादव– द्वारका की तरफ से गये। राजा सुबाहु ने अपने चार पुत्रों को राज्य बाँटा था, उनमें से दूसरे पुत्र दृढ़ प्रहार को दक्षिण का राज्य मिला था, उसके पुत्र से उणचन्द्र का जो देश था वह सेउण देश कहलाया, 900 सम्वत् के लगभग।

विजयनगर के यादव– द्वार समुद्र के होयसल वंशी पाये जाते हैं।

बल्लाल– यादव की होयसल शाखा में हैं। कर्नाटक दक्षिणी चोल पच्छमी का राजा था। अब दक्षिण में मरहठों से सम्बन्ध करते हें।

हाला– जाड़ेचा की शाखा है। इलाके का हालार नाम होने से यह पृथक् नाम पड़ा। हालार सोरठ के पास है।

डाभी– चूड़ासभा यादव की शाखा है। गुजरात और पश्चिमी मारवाड़ में रहते हैं।

सोमवंशी– चन्द्रवंशी, वैयागर, संकीरत और अत्रि गोत्र है, बहलोलपुर ठिकाना है, बरेली तथा प्रतापगढ़ में अधिक संख्या में बसे हैं। कुमाँयूँ के चन्द्रवंशी कहते हैं कि झूसी के चन्द्रवंशियों की एक शाखा थी, हम उसकी सन्तान हैं, जिसकी सन्तान होने का पहाड़ी राजपूत रोतेला भी दावा करते हैं।

टाँक– चन्द्रवंशी, जैसलमेर या करौली के यादवों से सम्बन्ध बतलाते हैं। मुखिया को बलात् (जबरन) मुसलमान करने से उसका नाम राजपूतों से निकल गया, सम्बन्ध (रिश्तेदारी) ऊँची जाति में हैं, संख्या में कम हैं। सहारनपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, बदायूँ, बरेली, मैनपुरी, एटा जिला में हैं, परन्तु जैसलमेर, करौली के इतिहास में इनके निकास का पता नहीं है। यह अलग ही वंश है। कुछ विद्वान् इन्हें नागवंशी लिखते हैं। टाँकों का निवास मैनपुरी, झाँसी, शाहजहाँपुर तथा अन्य कई स्थानों में है। टाँकों की एक शाखा नागवंश (बैसों) में भी है जो इससे भिन्न भेद और स्थानजन्य शाखा है। – पत्रिका–आस्था– राजपुत्र, पृ. 32

राष्ट्रकूट– यदुवंशी सात्यकि के वंशजों में राजा रट्ट बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसके वंशज राष्ट्रकूट कहलाते थे। इनका राज्य दक्षिण में भी था।

शूरसेन वंश– वृष्णि के पौत्र तथा देवमीढ़ के पुत्र शूरसेन से यह वंश चला। इस शूरसेन से 23 पीढ़ी पहले भी एक शूरसेन था जिसने शूरसेन की स्थापना की, किन्तु वृष्णि वंश अथवा शूरसेन वंश की स्थापना के समय तक शूरसेन जनपद का नाम मथुरा पड़ चुका था। यह मथुरा का नाम यदुवंशी राजा माथुर के नाम पर पड़ा था। प्रथम शूरसेन के वंशधर भी शूरसेनी कहलाते थे और जब दूसरा शूरसेन वंश चला तो दोनों शाखाएँ आपस में एक नाम से घुल मिल गई।

शूरसेनी यदुवंशी राजपूत– ये राजपूत प्रायः हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू के कुछ क्षेत्र में अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

यदुगिरि वंश– जाड़ेचा के भाई यदुमान थे। किसी यात्रा में जब वह सिन्धु के पार गया था वहाँ बिहाड़ नामक स्थान पर यदुगिरि नामक राजधानी स्थापित करके वहाँ राज्यसत्ता स्थापित की। यह उल्लेख बाबरनामा, जफरनामा और तैमूर के लेखों से प्राप्त होता है। यदुगिरि निवासी यदुभान के वंशज यदुगिरि नाम से प्रसिद्ध हुए। इस वंश की कई क्षत्रिय शाखाएँ हुईं जो यदुगिरि से चलकर मध्य तथा उत्तर भारत में आये और वहाँ राज्य तथा वंश स्थापित किये।

जादौं या जादवन राजपूत– राजा यदुभान के वंशज यदुगिरियों की एक शाखा है और इनका निवास जादौं वाटी कहलाता है। ग्वालियर, चम्बल और सबलगढ़ के आस-पास के क्षेत्र जादौंवाटी हैं। इस वंश के लोग राजस्थान, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, काशीवारा, करौली, जैसलमेर, हरियाणा के कुछ स्थानों पर तथा मध्य प्रदेश में रहते हैं।

बड़ सिर वंश– इन्हें बड़े सिर भी कहते हैं। यह जादौं वंश की शाखा है और अपनी वीरता के लिए यह वंश प्रसिद्ध था। अकबर ने इन्हें बहादुर की उपाधि दी थी।

शालिवाहन वंश– यह वंश शालिवाहन से चला जो कृष्ण के वंश में नौवीं पीढ़ी में पैदा हुए थे। कृष्ण के आठवें राजा गज ने जब अफगास्तिान पर आक्रमण करके उन्हें जीत लिया और वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया तो गज ने अपने नाम से गजनी नगर बसाया। राजा गज का एक पुत्र शालिवाहन था जिसे सुरक्षा की दृष्टि से गजनी से पंजाब भेज दिया। पंजाब में आकर इसने एक नगर बसाया और अपने नाम पर उस नगर का नाम शालिवाहनपुर (स्यालकोट) रखा। राजा शालिवाहन के 15 पुत्र हुए, जिनसे शालिवाहन वंश चला। यह वंश स्थानजन्य भी कहा जा सकता है और शब्दजन्य भी। चन्द्रवंश की यदुवंशी शाखा में यह वंश बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद यह वंश बहुत फैला और अनेक क्षत्रिय शाखाओं में विभक्त हो गया। इस वंश की शाखाएँ राजस्थान पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा अन्य क्षेत्रों में फैलीं तथा राज्य स्थापित किये। एक शालिवाहन वैसों के पूर्वज थे जो इससे भिन्न शाखा है।– आस्था राजपुत्र, इन्दौर से उद्धृत।

इसी प्रकार राजा विजयपाल के बेटा पृथीपाल गाँव खेरड़ी बागेरण में रहे (बयाना के पास जिला भरतपुर) जिनकी संतानें चजाल के करिया जादौंन और गौहजा जादौंन कहलाये। राजा विजयपाल के बेटा नन्दपाल हुए जो गाँव बरसाने, नन्दगाँव जिला मथुरा उ.प्र. में रहे जिनकी संतानें नौसानिया बरसानिया जादौंन कहलाये।

राजा ब्रह्मपाल के बेटा जयेन्द्रपाल और उनके छोटे भाई धरमपाल और जोधपाल हुए। जयेन्द्रपाल के बेटा बुधपाल गाँव महोबा रहे जिनके वंशज बनाफल जादौंन, चंदेल जादौंन कहलाये। ब्रह्मपाल के बेटा जोधपाल हुए जो गाँ टमकनपुर रहे जिनके वंशज टाँक जादौंन कहलाये। ये आगरा में धाकड़न के चौराहे पर रहते हैं और मुजफ्फर बाग आगरा में रहते हैं। राजा जयेन्द्रपाल के 16

बेटा हुए। 1. विजयपाल 2. नहीपाल 3. श्रीपाल 4. भरतपाल 5. विनयपाल 6. खिमपाल 7. रणपाल **8. सोरनपाल 9. महीपाल** 10. कच्छपाल 11. दीपपाल **12. भवनपाल 13. अन्तपाल** 14. मगनपाल **15. बागपाल 16. धनपाल**।

(चिन्हित- छः बेटों का वर्णन नहीं मिलता है)।

राजा जयेन्द्रपाल की दो बेटी हुई। 1. विजय कुंवर 2. हंस कुंवर। विजय कुंवर ग्राम सतपुर के राठौड़ अजीतसिंह को ब्याही। हंस कुंवर ग्राम नीमराना (अलवर) के रामबल सिंह चौहान के साथ शादी हुई।

जयेन्द्रपाल के बेटा नहीपाल ग्राम नाहोर रहे जिनके वंशज नाहोर के मुसलमान हो गये। इनसे खान जादौंन या पठान कहलाये। श्रीपाल ग्राम सुमेरे रहे जिनके सुमेरिया जादौंन कहलाये। और सोनरवंशी रहे जो गाँव ऊँचे गाँव जिला, बुलन्दशहर उत्तर प्रदेश में आबाद हैं।

भरतपाल ग्राम पिलोरा रहे जिनके वंशज पिलोरिया जादौन कहलाये। विनयपाल ग्राम बागड़ रहे जिनके वंशज बागड़ी जादौंन कहलाये। **विखमपाल ग्राम मथुरा रहे जिनके वंशज मथुरावत जादौंन कहलाये।** कच्छपाल ग्राम कच्छ देश (गुजरात) में रहे जिनके तीन प्रकार के जादौंन हुए। जड़ेचा, माड़ेचा, सामड़ेचा। ये गुजरात में भावनगर, कच्छ, भुज, राजकोट में आबाद हैं। रणपाल ग्राम अतेवर रहे जिनके वंशज अतेवरिया कहलाये। दीपपाल द्वारका में रहे जिनके वंशज काबा जादौंन कहलाये और ये सब द्वारका के आस-पास आबाद हैं। दीपपाल के बेटा कनकपाल कलपवास रहे जिनके वंशज कारन जादौंन कहलाये। इनके ग्राम इमलिया, फतेहगढ़ी, सिंहपुर उत्तर प्रदेश में आबाद हैं। मदनपाल ग्राम देवगिरि रहे जिनके वंशज देलिदिया यदवन कहलाये। राजा विजयपाल के बेटा निम्न हुए- 1. छत्रपाल 2. हंसपाल 3. मोतीपाल 4. पूरनपाल 5. देवपाल 6. रूपपाल 7. रुद्रपाल 8. संतपाल 9. कनकपाल 10. सूरजपाल 11. गिरिधरपाल 12. रामपाल- ये 12 पुत्र तो खन्दार के युद्ध में मारे गये और इनकी औलादें रही बाकी विजयपाल के और पुत्र इस प्रकार हैं-

1. तोहनपाल 2. सोनपाल 3. मैनपाल 4. पदमपाल 5. चन्द्रपाल 6. झिज्जपाल 7. गिरिजपाल **8. विनयपाल** 9. रितपाल 10. लोहटपाल 11. रूढपाल 12. धनपाल **13. आनन्दपाल** 14. तच्छपाल 15. कुंवरपाल **16. विरमपाल** 17. परशरामपाल 18. प्रीतमपाल 19. नन्दपाल 20. उदयपाल 21. मदनपाल 22. सोमानपाल।

राजा विजयपाल के जो पुत्र जंग में खत्म हुए, उनके साथ 360 औरत (रानी) गढ़ बयाना में सती हो गई।

उदयराज- ग्राम सेरे खाड़े मेहन्दीबाड़े रहे जिनके छोकर जादौंन कहलाये जो इनके गाँव बयाना के आस-पास आबाद हैं। राजा विजयपाल के बेटा गिरिजपाल ग्राम बड़होता रहे जिनके वंशज बड़ोतिया जादौंन कहलाये। बाद में गाँव कोनई (कोन्हई) मथुरा रहे जब से कोनईया जादौंन कहलाये। **कोनईया** जादौंन के गाँव रसमई, जिला- मथुरा उ.प्र. में जमीदार हैं और गाँव भूरगडहा और खूटीपुरा रामगढ़ ये जिला एटा में, रामनगर फतेहगढ़ी नयावास ये गाँव जिला फिरोजाबाद में हैं। भण्डारगढ़ी छबीली का नगला और बरहेन ये गाँव जिला आगरा में आबाद हैं। कातकी जिला फिरोदाबाद, ढ़ढोली जिला एटा, कुम्हेर गढ़ी जिला फिरोजाबाद सीतापुर, भोपतिपुर जिला हाथरस में और इटन्नी जिला एटा में आबाद हैं। विजयपाल के पुत्र धनपाल के पुत्र कुंवरपाल गाँव अकर्रा, कमालपुर रहे जिनके वंशज कमालिया जादौंन कहलाये जिनके गाँव छबीली का नगला, बरहन जिला आगरा, बावरपुर जिला एटा, कातकी जिला फिरोजाबाद में आबाद हैं। आनन्दपाल ग्राम सिकिर रहे जिनके वंशज गरिमा जादौंन कहलाये। विजयपाल का बेटा पदमपाल के बेटा दीपपाल ग्राम पटना में रहे जिनके वंशज पटरावत जादौंन कहलाये। पटना जिला एटा में आबाद है। चन्द्रपाल के पुत्र पेमपाल ग्राम पेमनगर रहे जिनके चौपड़े जादौंन कहलाये जिनके गाँव कातकी, रुद्रगढ़ी जिला फिरोजाबाद और भैसा जिला एटा में आबाद हैं। विजयपाल के बेटा मोहरपाल ग्राम हरतोली, मचकोली रहे जिनके वंशज समरीबार जादौंन कहलाये, ये गाँव जिला बुलन्दशहर में आबाद हैं। विजयपाल के पुत्र छत्रपाल **गाँव छातई मुरबाड़ रहे जिनके वंशज ठुकरैला जादौंन कहलाये।** इनसे निधौला वाले भी कहते हैं। जिनके गाँव अतिया कानंगला, कातकी जिला फिरोजाबाद, जैनपुरा जिला आगरा और मोहनपुर सेनउआ, लालपुर जिला एटा में आबाद हैं। राजा विजयपाल के पुत्र हंसपाल ग्राम अकराबाद रहे जिनके वंशज बकरहोर जादौंन कहलाये। विजयपाल के बेटा तुच्छपाल ग्राम तोछीगढ़ रहे जिनका वंशज कुंदेरिया जादौंन कहलाये जिनके गाँव गागनी और गुढ़ा जिला फिरोजाबाद में आबाद हैं। मितन का नगला जिला एटा और दरियापुर जिला हाथरस में आबाद हैं।

राजा विजयपाल के पुत्र रितपाल (रिटपाल) ग्राम रिठाड़ रहे जिनके वंशज दुगनावत जादौंन कहलाये। इनकी पीढ़ी के बाद राजा लक्ष्मण सिंह हुए। राजा लक्ष्मण सिंह को राज खिताब दिया 1 जनवरी ईस्वी सन् 1877 दिल्ली दरबार

में गवर्नर जनरल वायसराय ने राज खिताब दिया। आगरा में इनके गाँव वजीरपुरा, धनी की नगरिया जो आगरा में मिल चुकी है। (राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी गद्य-साहित्य के प्रसिद्ध लेखक हुए हैं)।

राजा विजयपाल के पुत्र कुंवरपाल के पुत्र मनोहरलाल ग्राम मनकला रहे जिनके वंशज मधुपुर जादौंन कहलाये जिनके गाँव सोमना, नवाना, वीरपुरा छोटी-सी रियासत गभाना जिला अलीगढ़ में आबाद हैं। कुंवरपाल के पुत्र साड़वाहन के पुत्र कनकपाल कार्क रहे जिनके वंशज नुकडिया जादौंन कहलाये जिनके गाँव मुड़सभा, महला, कठोठा, कंचनपुर, कोठिया, अवागढ़ में खिड़की मोहल्ला ग्राम बकुआवर जिला एटा श्रीरामगढ़ी जिला फिरोजाबाद में आबाद है। **राजा विजयपाल के पुत्र तोहनपाल के पुत्र धरमपाल के पुत्र कुंवरपाल** के पुत्र **आनन्दपाल** के पुत्र **नलपाल ग्राम नड़ीसमेड़ी (नरी सेमरी) रहे जिनके वंशज अमरावत बृजवासी जादौंन कहलाये।** इनकी कई पीढ़ी के बाद बादशाह अकबर ने बंगाल की लड़ाई की खुशी में राज खिताब दी। सम्वत् 1804 की साल में पहले मढ़ी के नाम से बाद में **अवागढ़** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनको 60 गाँव नान करार (बिना कर के) अवागढ़ के राजा पीताम्बर सिंह को 1804 में राजगद्दी पर बिठाया और राजा पृथ्वीपाल सम्वत् 1903 में राजगद्दी पर आसीन हुए। और राजा बलदेव सिंह को सम्वत् 1941 मिती जेठ सुदी तेरस और राजा बलवन्त सिंह सम्वत् 1948 मिती चैत्रवदी बारस दिन शुक्रवार को राजगद्दी पर बिठाया और बलवन्त सिंह ने राजपूत कालेज बनवाया सम्वत् 1960 में आगरा में। और राजा सूरजपाल सिंह को सम्वत् 1969 में अवागढ़ की राजगद्दी पर बैठाया। इनका राज गंगा व जमुना के बीच में था। इनका राज्य बहुत बड़ा था परन्तु बालियान स्टेट नहीं हो पायी। करौली राजा भँवरपाल जब जगमनपुर पधारे (गये) जब राजा बलवन्त सिंह ने आगरा कोठी पर रोककर दावत दी। जब राजा भँवरपाल ने राजा बलवन्त सिंह को दावत की खुशी में राज खिताब दी। 15 घोड़ी की बग्गी, चमर, छत्र आगरा की कोठी पर दिया। इनके खानदानी गाँव सरानी, सैनउआ, नरौरा, बरई ये गाँव जिला एटा में और जवाहरपुर जिला फिरोजाबाद में आबाद हैं।

राजा विजयपाल के पुत्र विखमपाल गाँव बयाना से बरकायतपुर रहे जिनके वंशज बड़गईया जादौंन कहलाये। इनको मथुरापति भी कहते हैं। इनके गाँव हीरा का नगला, मीसा, मलसायपुर ये जिला एटा में आबाद हैं। महेन्द्रसिंह की बसई जो जिला बुलन्दशहर में है। राजा विजयपाल के पुत्र रुद्रपाल गाँव भैकुरी टिमकौली में रहे जिनके वंशज टिमकोला जादौन कहलाये। इनको बन्दीरणछोड़

नारायण भी कहते हैं। इनके गाँव बलिनगर, कोडरी ये जिला एटा में आबाद हैं। राजा विजयपाल के पुत्र धनपाल के पुत्र गोरधन गाँव महीवीठना में आकर रहे जिनके वंशज गिरीयाड जादौंन कहलाये। गोरधन पाल के बेटा अनीराम और मनीराम हुए। अनीराम ग्राम गंगचोली में रहे सम्वत् 1400 में। मनीराम ग्राम केमार में रहे।

- (उक्त समस्त ब्यौरा जगाओं की पोथी एवं करौली पोथी से उद्धृत)

बयाना के राजा विजयपाल की मृत्यु के बाद बयाना पर यवनों का अधिकार हो जाने के कारण काफी यदुवंशी क्षत्रिय पश्चिमोत्तर की ओर पलायन कर गये, जिनमें मुख्य पलायन उस समय एटा जिले के जलेसर क्षेत्र और मध्यप्रदेश के होशंगाबाद के शिवनी मालवा क्षेत्र एवं गोंडवाना के अन्य क्षेत्रों में हुआ जिसके प्रमाण जगाओं और ताम्रपत्रों से मिल चुके हैं।

सन् 1196 से सन् 1327 तक बयाना तथा तिमनगढ़ क्षेत्र पर यवनों का अधिकार रहा। यवनों के अत्याचार भरे शासन के कारण बयाना और तिमनगढ़ के काफी यदुवंशी उत्तर-पश्चिम की ओर पलायन कर गये। इनमें कुछ तिजारा व सरहत् (उत्तरी अलवर) में जा रहे। बाद में उनमें से कुछ ने इस्लाम-धर्म अपना लिया और मेव तथा खानजादा कहलाने लगे जो आजकल अलवर-गुड़गांव क्षेत्र (मेवात) क्षेत्र में पाये जाते हैं। इसी समय बहुत से यदुवंशी राजपूत पुनः मथुरा के विभिन्न भागों में जैसे महावन, छाता, बरसाना, शेरगढ़ आदि क्षेत्रों में, भरतपुर के कामां और ड़ीग के क्षेत्र, आगरा जिले में शमसाबाद, फतेहाबाद किराबली, अछनेरा व मथुरा तथा भरतपुर सीमा के फरह क्षेत्र, बुलन्दशहर के जेबर क्षेत्र के जादौन राजपूत) जो अपने को अब छोंकर राजपूत कहते हैं वे भी इसी समय बयाना व तिमनगढ़ से आकर बसे तथा ये अहरदेओ या द्रोपाल यदुवंशी राजपूत सरदार के वंशज हैं। इनको जेबर के ब्राह्मणों ने मेवातियों से लड़ने के लिए जेबर में बसाया था। उन्होंने जेबर को मेवातियों से मुक्त कराया था। इसके अलावा उ.प्र. के अन्य जिलों जैसे कानपुर, इटावा, जालौन (कालपी), हमीरपुर, बाँदा, महोबा, छतरपुर, कोशम्बी में भी काफी यदुवंशी (जादौंन क्षत्रिय) हैं। कुछ यदुवंशी तिमनगढ़ से राजस्थान के चित्तौड़, उदयपुर, भीलवाड़ा, राजसमन्द, पाली, कोटा, बांरा जिलों में भी कुछ ठिकानों में जा बसे।

अर्जुनपाल (सन् 1327 ई.) ने कल्याणपुरी (करौली) नगर की स्थापना की। सरमथुरा के 24 गाँवों को बसाया। करौली डाँग क्षेत्र में जादौंन राजपूतों के 100 गाँव हैं। इसी के आस-पास के क्षेत्र सरमथुरा के पास धौलपुर जिले में भी

24-30 के लगभग जादौंन गाँव हैं। मध्य प्रदेश के मुरैना जिले के सबलगढ़ क्षेत्र में 50 तथा कुछ गाँव श्योपुर जिले में तथा इन्दौर जिले में भी जादौंन राजपूत पाये जाते हैं जो पाल, हरिदास एवं मुक्तावत शाखा के राजपूत हैं। इसके अलावा कुछ करौली एवं मथुरा क्षेत्र से विस्थापित मध्य प्रदेश के ही भिण्ड, गुना, विदिशा, अशोकनगर, शिवनी-मालवा, होशंगाबाद तथा रायसेन जिलों में भी बहुत से जादौंन राजपूतों के गाँव हैं।

- (डा० धीरेन्द्र सिंह जादौंन द्वारा सोसल मीडिया पोस्ट से साभार)

टिप्पणी- (क) यदि हम यदुवंशियों के पलायन और स्थापना की स्थिति का ऐतिहासिक अवलोकन करें तो स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि सबसे अधिक पलायन तथा स्थापना 11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी के मध्यकाल में ही हुआ है। जिस काल में तुर्क, पठान, यवनों ने यदुवंशियों के राज्यों पर बार-बार आक्रमण किये जिनमें भयानक नरसंहार, लूटपाट तथा नृशंसतापूर्ण धर्म परिवर्तन का दौर चला। भारत में यदुवंशियों के अधिकांश गाँवों की बसावट प्रायः इसी काल की है। इस काल में अनेक गाँव बसे, फिर उजड़े, पुनः बसे! आज भी अनेक गाँव ऐसे हैं जिनमें पूर्वकाल में कभी यदुवंशी बसते थे लेकिन आज उनमें जादौंन (यदुवंशी) का एक भी परिवार नहीं है, अन्य जातियों की बसावट है। कुछ गाँव ऐसे भी हैं जिनमें पूर्व काल में गैर जातियाँ बसती थीं लेकिन आज वे गाँव जादौंन (यदुवंशी) के कहलाते हैं। यद्यपि 15वीं और 16वीं शताब्दी में भी पलायन तथा स्थापन यदा-कदा स्थिति में चलता रहा किन्तु 16वीं शताब्दी में अकबर काल से प्रायः स्थायित्व आने लगा था।

इस स्थिति की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख इस प्रकार कर सकते हैं-

1. महमूद गजनवी (सन् 1018 ई.)- महावन तथा मथुरा पर आक्रमण तथा लूट।

2. सुल्तान मसूद द्वितीय का सेनापति अबूबक्रशाह (सन् 1046 ई.)- बयाना पर आक्रमण तथा अधिकार।

3. मुहम्मद गौरी तथा उसका सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक (सन् 1195-96)- बयाना तथा तिनमगढ़ पर अधिकार।

4. जलालुद्दीन फिरोज खिलजी (सन् 1290-1296 ई.)- तिमनगढ़ पर अधिकार।

5. अलाउद्दीन खिलजी का सेनापति मलिक काफूर तथा पुत्र शहाबुद्दीन (सन् 1296–1316 ई.)– बयाना पर अधिकार।

6. सिकन्दर लौदी (सन् 1492 ई.)– तिमनगढ़ पर अधिकार।

7. बाबर (राणा सांगा से युद्ध) सन् 1527 ई.– बयाना अधिकार।

ख– जगाओं से प्राप्त विवरण प्राय: आपसी विरोधी तथा भ्रमात्मक मिलते हैं जिनके आधार पर कोई भी तथ्य स्पष्ट तथा निश्चित नहीं हो पाता है। भिन्न-भिन्न जगाओं के विवरणों में राजाओं के नाम तथा काल का उल्लेख भिन्न-भिन्न मिलता है। दूसरे, उनके विवरणों में व्यक्तिगत वंश या परिवार की वंशावली उपलब्ध होती है, राजाओं से सम्बन्धित नहीं। विडम्बना यह है कि जादौंन (यदुवंश) का अर्वाचीन इतिहास (लगभग दसवीं शती के बाद से) जगाओं व भाटों द्वारा लिखित सामग्री पर अधिक आधारित है।

मूल यदुवंशी/जादौंन के गाँव

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बसे मूल यादव/यदुवंशी/ जादौंन के गाँवों का विवरण यहाँ प्रस्तुत है। यह विवरण विभिन्न स्रोतों से जितना प्राप्त हो सका है लिखा जा रहा है। अधिक जानकारी के लिए शोध की आवश्यकता है। सभी से सहयोग की आशा है। किसी त्रुटि के लिए पाठकों से क्षमा चाहूँगा।

महोबा जनपद के गाँव- 1. महोबा 2. कबरई 3. पहरा 4. खरका 5. सुनैचा 6. सुकौरा 7. रिवईं 8. कहरा 9. बरबई 10. बहिंगा 11. छोटी सिरसी 12. बड़ी सिरसी 13. घंडुआ 14. अटधार 15. तिंदुही 16. पचपहरा 17. गुढ़ा (गैर आबाद) 18. कुलकुंआ 19. रेवारा 20. अकबई।

बाँदा जनपद के गाँव- 1. बाँदा 2. मटौध नगर 3. मटौध ग्रामीण 4. बिल्हरका 5. हरदोनी 6. बसहरी 7. खैरादा 8. जखौरा 9. मोहन पुरवा 10. दुरेड़ी 11. बड़ोखर खुर्द 12. जौरही 13. अरबई 14. भरखरी 15. बिसण्डी (गैर आबाद) 16. सिमरिया 17. चैतहरा (गैर आबाद) 18. आलमखोड़ 19. चमरहा 20. परमपुरवा 21. खहरा 22. पटना 23. इटवा 24. करछा 25. बंशीपुरवा 26. हीरापुरवा 27. भूरागढ़ 28. करतल 29. नहरी 30. मुड़ेरी 31. सिमरिया।

हमीरपुर जनपद के गाँव- 1. हमीरपुर 2. मौदहा 3. खण्डेह 4. इचौली 5. नायक पुरवा 6. अखबई 7. सिलौली 8. भोगेचा (गैर आबाद) 9. इमालिया (गैर आबाद) 10. मालपुरा (गैर आबाद) 11. उंटिया (गैर आबाद) 12. जिगनौड़ा 13. सिसोलर।

छतरपुर (मध्य प्रदेश जिले के गाँव- 1. छतरपुर 2. सरबई 3. बरूआ 4. चन्दपुरा 5. मनवारा 6. सीलप 7. नदौता 8. गौहानी 9. रेखा 10. सिंहपुर 11. नहरी 12. पचबरा 13. बंसिया 14. हरई 15. लवड़ी।

पन्ना (मध्य प्रदेश) जिल के गाँव- 1. पन्ना 2. भीना 3. खरौनी

- (जादौन समाज के क्षेत्रीय जनप्रतिनिधियों से प्राप्त विवरण)

कोशाम्बी जिले के गाँव-

1. सोभना 2. बसेड़ी 3. दुर्गापुर 4. रामनगर 5. बनखर 6. माखरा (सीतामढ़ी) 7. तैय्यापुर 8. नदीपर।

- (जादौन समाज के क्षेत्रीय जनप्रतिनिधियों से प्राप्त विवरण)

मध्यप्रदेश के गाँव- मध्यप्रदेश के कई जिलों- विदिश, गुना, रायसेन, अशोकनगर उज्जैन, खण्डवा, ग्वालियर, हौशंगाबाद, इन्दौर, देवास रतलाभ, सीहोर, मुरैना, भिण्ड शिवपुरी तथा भोपाल आदि जिलों में अनेक जादौन गाँवों की जानकारी प्राप्त होती है। नाम के साथ 'जादौन', 'जादम' शब्दों का प्रयोग करते हैं। कुछ लोग 'यादव' भी लगाते हैं। जानकारी के अनुसार कुछ क्षेत्रों में अहीर लोग भी इन शब्दों का प्रयोग अपने नाम के साथ लगाते हैं। जिस कारण से वास्तविक यदुवंशी की पहचान करना कठिन होता है। सभी जिलों में वास्तविक यदुवंशी। जादौन समाज की बसावट की प्रामाणिक जानकारी कम उपलब्ध होती है।

चम्बल और सबलगढ़ के आस पास का क्षेत्र 'जादोंबाटी' कहलाता है। इस क्षेत्र में यदुवंशी/जादौन के अनेक गाँव बसे हैं। सरमथुरा क्षेत्र में भी जादौन के अनेक गाँव हैं जिन्हें महाराजा अर्जुनपाल ने 14वीं सदी में सरमथुरा के 24 गाँवों को बसाया था।

करौली क्षेत्र- (दुर्ग और गढ़ियाँ)-

मथुरा से पूर्वी राजस्थान में आने के बाद यदुवंशियों ने सुरक्षा तथा परिस्थितियों के वशीभूत विभिन्न स्थलों पर अनेक दुर्ग और गढ़ियाँ बनाईं जिनमें विजय मन्दिर गढ़ (बयाना), तिमनगढ़, उटागिरि, बहादुरपुर, नीदर एवं करौली प्रमुख हैं। इन किलों में ज्यादातर ठाकुरों की रहवासी गढ़ियाँ हैं।

टिप्पणी- 'वीर विनोद' में करौली की तारीख-1487- करौली का किला नारौली, ऊतगढ़, मादरेल, सपोटरा, दौलतपुरा, थाली, जबूरा, निडां, ऊड़, खुदाई। वर्तमान में मादरेल, ऊतगढ़, थाली, जबूरा, निडां, ऊड़, को क्रमशः मण्डरायल, उटगिरि, ताली, जमूरा, नींदर और औड़ के नाम से पुकारा जाता है, ये बड़े किले हैं।

इस क्षेत्र में उपरोक्त दुर्ग और गढ़ियों के अलावा कुछ ऐसी भी गढ़ियाँ हैं जिन्हें राजवंश के किन्हीं नजदीकी ठाकुरों/धावाईयों/मर्जीपात्रों ने बनवाईं जिनमें पांचोली, पिपरानी, केशपुरा, कोटरी, फतेहपुर, मांची, मोठियापुरा, खूबनगर, कांचरौदा एवं खोहरी के ऊपर वाली गली मुख्य हैं। कांचरौदा की गढ़ी सबमें खूबसूरत है तथा फतेहपुर की क्षेत्रफल में सबसे बड़ी है।

तहसील और मुख्य गाँव-

रियासत को शासन व्यवस्था के दृष्टि कोण से क्रमशः हुजूर, जिरोता (जीरोत), मण्डरायल, मासलपुर एवं उटगिरि तहसीलों में बाँटा गया है। उटगिरि तहसील में करणपुर, बहादुरपुर, निमेरा, गोठरा एवं मण्डरायल तहसील में रोधई, राजघाट, दरगमा, औड़, चन्देलीपुर, गुरदे, भाकरी, लाँगरा, नीदर एवं श्यामपुर आदि स्थानों पर चौकियाँ स्थापित की हुई थीं।

हुजूर तहसील- इस तहसील में कुड़गाँव के 91 गाँव, गुड़ला के 34 तथा शहर करौली के आस-पास के क्षेत्र हैं।

जीरोत तहसील- करौली के ठाकुरों के ज्यादातर गाँव इसी तहसील में हैं।

मण्डरायल तहसील- क्षेत्रफल में बहुत बड़ी है, इसमें ज्यादातर डाँग का हिस्सा था।

मासलपुर तहसील- 84 गाँव होने के कारण इसे 84 परगना की संज्ञा थी। सिंघनपुर, गढ़मड़ोरा मुख्य गाँव हैं।

उटगिरि तहसील- चम्बल के किनारे करणपुर, सपोटरा हैं। इस तहसील का सबसे बड़ा गाँव निभेरा है।

अन्य गाँव हरनगर, खेरागाँव तथा अकोलपुरा है।

करौली राज्य के जार्दोन जागीरदारों को कोटडियाँ (जागीर)-

करौली राज्य में ठाकुरों के खानदान की 37 कोटरियाँ थीं, जिनमें हाड़ोती, अमरगढ़, इनायती, रावठरा और भरतून मुख्य थीं।

1. गरेरी हाड़ोती जागीर- गरेरी, हाड़ोती, मांगरौल, गोपालपुर, एकट, कीरतपुरा, सूरतपुरा, बलवापुरा, गज्जूपुरा।

2. गरेरी के मातहत जागीर- पद्मपुरा, नितारा, खूबपुरा, रूपपुरा।

3. रावंत्रा जागीर- रावंत्रा, उरीच, रानेत, कानपुर, डरकोकी, रानीपुर।

4. रावंत्रा के माहत जागीर- बरोदा, गरदानपुरा।

5. शिशवरो जागीर- शिशवरों।

6. कावदा जागीर- कावदा, उम्मेदपुरा।

7. इनायती जागीर- इनायती।

8. इनायती के मातहत जागीर– गुलाबपुरा।

9. अमरगढ़ जागीर– अमरगढ़, नरौली, नीसाठें, कारोगुढ़ो, अरूढ़, बगीद, **किशोरपुरा,** सुल्तानपुरा, जरोद, भागीरथपुरा, खुशालपुरा, चतुर्भुजपुरा, डूंगरी, बाजनो, कंवरपुर, तलावका, लछमनपुरा, जतनपुरा।

10. अमरगढ़ के मातहत जागीर– मजारे।

11. बर्तूण जागीर– बर्तूण, हरसिंहपुरा, बुदपुरा, खेमपुरा, कमालपुरा।

12. माहहत जागीर (नारौली)– नारौली, चकीरी, पार्वतीपुरा, बन्दीपुरा, एदलपुरा।

13. लोलरी जागीर– लोलरी

14. सिमार जागीर– सिमार

15. खो जागीर– खो

16. सैमरदा जागीर– सैमरदा

17. फतेहपुरा जागीर– फतेहपुरा

18. केदारपुरा जागीर– केदारपुरा

19. केला जागीर– केला

20. वाजनों जागीर– वाजनों

21. महोली जागीर– महोली

22. हरनगर जागीर– हरनगर, भीकमपुरा

23. फतहपुर जागीर– फतहपुर

24. रामपुरा जागीर– रामपुरा

25. मेंगरी जागीर– मेंगरी

26. बख्तपुर जागीर– बख्तपुर

27. चैनपुरा जागीर– चैनपुरा

28. माची जागीर– माची, दीपपुरा

29. टटबाई जागीर– टटबाई

30. बिनेम जागीर– बिनेग

31. कोटो जागीर- कोटो

32. मचानी जागीर- मचानी

33. केशपुरा जागीर- केशपुरा

34. कानपुरा जागीर- कानपुरा

35. बीड़वास जागीर- बीड़वास

36. मोराखेड़ा जागीर- मोराखेड़ा, खेड़ो, कशीरामपुरा (जब्त किया गया) रेहो, मदीली।

37. बेनसाहट जागीर- बेनसाहट।

किशोरपुरा के 12 गाँव- 1. अमरपुरा 2. डोंगरी 3. बासारी 4. तलावका 5. चैनपुरा 6. भागीरथपुरा 7. लोहारपुरा 8. सुल्तानपुरा (डुण्डीपुरा) 9. हडूडा 10. किशोरपुरा 11. दलसिंहपुरा 12. अड्डा-आरामपुरा।

- (आस्था राजपुत्र, दि. 2016, इन्दौर)

उत्तर प्रदेश के जादौन गाँव- उत्तर प्रदेश में यदुवंशी/जादौन के अधिकांश गाँव पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिलों में बसे हैं। मथुरा, अलीगढ़, बुलन्दशहर, हाथरस, एटा, फिरोजाबाद, आगरा, गौतमबुद्धनगर, गाजियाबाद, नौएडा, बरेली, सीतापुर, आदि जिलों में लगभग 500 ग्रामों का ब्यौरा प्राप्त होता है। यह क्षेत्र उत्तर प्रदेश में यदुवंशी/जादौन की बसावट का सबसे बड़ा क्षेत्र है जिसमें मूल यदुवंशियों की बसावट है।

बयाना क्षेत्र में जादौन राजपूतों के ठिकाने- खरैरी, बागरैन, रेवारपुरा, खानखेडा, मेढेवारी, नगला सुल्तान, कैर, नगला तेजा, बयाना आदि।

भरतपुर जिले के जादौन राजपूतों के गाँव- डीग तहसील- माडेरा, अऊ, गहनावली, सोनगाँव, खेरिया, ऊमरा, घरवारी, नगला (गैर आबाद), कोंडेर (गैर आबाद), बरौली (गैर आबाद)।

कामाँ तहसील- कामाँ, परमदरा (गैर आबाद)।

भरतपुर तहसील- श्योराना, झीलरा, मलाह, रामनगर, जतौली घना (जाटौली), सिवार खेड़ा (गैर आबाद), किरावली, अछनेरा आदि।

रुहेलखण्ड के जादौंन राजपूत-

जिला मुरादाबाद (उ.प्र.) के मझोला (कस्बा) में जादौं राजा का बनवाया हुआ किला आज भी है जो इस बात का स्पष्ट संकेत है कि यहाँ यदुवंशी। जादौंन क्षत्रियों का आगमन हुआ है। वहाँ से 30 कि.मी. पूर्व की ओर चलने पर जादौंनों के गाँव के गाँव शुरु हो जाते है जो मीरगंज, बरेली, पीलीभीत, शाहजहाँपुर तक फैले हुए हैं। यहाँ तीन सौ ज्यादा गाँव यदुवंशियों के हैं। किले तथा गाँवों की अधिक जानकारी के लिए विशेष शोध की आवश्यकता है। (राज यदुवंशी की पोस्ट से साभार) राजयदुवंशी की पोस्ट के अनुसार यदि हम ऐतिहासिक विश्लेषण करें तो सन् 1018 में महमूद गजनवी ने जिस समय कन्नौज पर आक्रमण किया तथा लूटा था तो उस समय कन्नौज का प्रतिहार राजा राज्यपाल भयभीत होकर गंगा की बारी में जाकर रहने लगा था। सम्भवत: उसी परिस्थिति में कन्नौज क्षेत्र में बसे यदुवंशियों ने भी पलायन कर उस क्षेत्र की ओर रुख किया हो।

सीतापुर जिला (उ.प्र.) के अन्तर्गत 14 गाँव यदुवंशियों के जगाओं द्वारा बताये गये हैं, लेकिन गाँवों के नाम प्राप्त नहीं हो सके हैं। जगा के अनुसार इन गाँवों का निकास ब्रजक्षेत्र के नरी गाँव से बताया गया है। मुजफ्फरनगर बदायूँ, गाजियाबाद, ग्रेटर नोएडा में यदुवंशियों का निवास बताया जाता है। शोध की आवश्यकता है।

बिहार राज्य-

बिहार राज्य के छपरा, मुजफ्फरपुर, भागलपुर, मुंगेर जिलों में यदुवंशियों के अनेक गाँवों का पता चलता है।

हरियाणा राज्य-

गुड़गाँव, सीकरी, फरीदाबाद, बल्लभगढ़, पलवल मंडीराज, सतलज भार आदि में जादौंन तथा भाटी राजपूत बसते हैं।

पंजाब राज्य-

भटिंडा, नाभा, जींद, पटियाला, अम्बाला जिलों में भाटी राजपूत बसे हैं।

इस सम्बन्ध में दूसरा प्रमाण हमें 'दिल्ली सल्तनत (711-1526)'- डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, 'पूर्व मध्यकालीन भारत (712-1526)'- डा० अवधबिहारी पाण्डेय तथा 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'- डा० ईश्वरी प्रसाद पुस्तकों

से प्राप्त होता है- (सन् 1234-35) इल्तुतमिश ने अपने शासन में उत्तरी भारत के बहुत बड़े भाग पर अधिकार कर लिया था। उसनपे मुहम्मद गौरी द्वारा विजित प्रदेशों को पुनः जीता और राजपूताना तथा आधुनिक उत्तर प्रदेश के अधिकांश भाग को जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित किया। गंगा-यमुना में दोआब के लोग भी दिल्ली के तुर्की शासन की दुर्बलताओं से लाभ उठाने में राजस्थान से पीछे नहीं रहे। जिस समय इल्तुतमिश तुर्की रक्षकों के विद्रोह का दमन करने में लगा हुआ था, उसी समय आधुनिक उत्तर प्रदेश के अनेक जिलों ने अपनी स्वाधीनता पुनः स्थापित कर ली। बदायूँ, कन्नौज बनारस तथा कतेहर (आधुनिक रुहेलखण्ड) का प्रान्त दिल्ली से पृथक् हो गया और इन सब प्रदेशों से तुर्की सैनिकों को हिन्दुओं ने मार भगाया। जैसे ही इल्तुतमिश ने दिल्ली पर अपना प्रभुत्व दृढ़ता से स्थापित कर लिया वैसे ही उसने दोआब के हिन्दुओं के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही आरम्भ कर दी। एक-एक करके बदायूँ, कन्नौज, बनारस, कतेहर तथा उसकी राजधानी अहिक्षेत्र (आधुनिक आँबला), बहराइच, चन्दवार तथा तिरहुत पर अधिकार कर लिया। इल्तुतमिश द्वारा चारों ओर की सैनिक कार्यवाहियों से उन क्षेत्रों में बसने वाले विभिन्न राजपूत अपनी सुरक्षा हेतु राज्य के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मुख्यतः पूर्वांचल की ओर चले गये। सम्भवतः पूर्वांचल में बसने वाले अनेक क्षत्रिय इसी काल में बसे हों। पूर्वांचल में चौहान, सोमवंशी वैस, यदुवंशी (जादौन), परिहार आदि क्षत्रिय बसे हुए है। वर्तमान कोशाम्बी जिले में कुछ गाँव यदुवंशी (जादौन) के बसे हैं। कुछ वर्षों पूर्व तक कोशाम्बी, इलाहाबाद जिले के अन्तर्गत था। प्राचीनकाल में इलाहाबाद, बनारस शासन सत्ता के अन्तर्गत रहता था।

हिमाचल प्रदेश-

नाहन स्टेट (सिरमौर) में भाटी वंश बसता है।

राजस्थान- करौली क्षेत्र, ब्यावरा, भरतपुर, जैसलमेर, कोटा, कोठारिया, शाहपुरा, जयपुर, राजसमंद, बयाना, जादौंवाटी क्षेत्र, डूंगरपुर-बांसवाडा, बीकानेर, जोधपुर, बाडमेर, गंगानगर, हनुमानगढ़ जिलों में जादौंन तथा भाटियों का वास है।

राजस्थान में भाटियों के नौ गढ़ कहलाते हैं- 1. जैसलमेर 2. पूंगल 3. बीकमपुर 4. बरसलपुर, 5. मम्मण 6. बाहण 7. मारोठ 8. आसणीकोट 9. केहरोर। इन नौ गढ़ों के अन्तर्गत कई सौ गाँव हैं। विस्तार-भय के कारण नाम न देकर संख्या का उल्लेख किया गया है- जैसलमेर जिला- खड़ाले में इतने

गाँव हैं- जैसलमेर के पूर्व में- 30 गाँव, पश्चिम में- 54 गाँव, दक्षिण में कोट ले से निकले गाँव- 22 गाँवे/17 बीकानेर- 50 गाँव/ पूंगल- 40 गाँव/ जोधपुर (खरड़ या बुधेरा क्षेत्र)- 140 गाँव।

गुजरात-

स्टेट- जूनागढ़, कच्छ, नवानगर (जामनगर) ध्रोल, गोन्डल, राजकोट, मोरवी, भुज तथा द्वारका- इन नौ स्टेट में कई सौ गाँव जाड़ेचाओं के बसे हैं। इनके अलावा अहमदाबाद, गांधीनगर, सूरत जिलों में जादौंन बसते हैं।

महाराष्ट्र-

सेउड़ (नासिक), देवगिरि (दौलताबाद)।

कर्नाटक-

श्रीरंगपट्टन, मैसूर, बंगलौर, विजयनगर (शाखाएँ- 1. संगमवंश 2. सालव वंश 3. तुलुववंश 4. आरविदु वंश)।

आन्ध्र प्रदेश- हैदराबाद के कुछ क्षेत्र।

- (विभिन्न पुस्तकों से संग्रहीत)

गुजरात के जाड़ेचों की शारवाएँ-

जाड़ेचों की मुख्य शाखा चूड़ासभा है। इसकी तीन शाखाएँ हैं- सरवहिया, रैजदास तथा वज।

सम्भा, सूभरा (सम्मा सामेजा और सूमरों में से भिन्न-भिन्न पुरुषों के नाम कई शाखाएँ चलीं)। डाँग शाखाएँ- अबड़ा, आमर, बाराच, भोजदे, बुद्दा, हेड़ा, गाहड़, गज्जन, होठी, जाड़ा, जसेर, काबा, कोरह, मोड़, पायड़, रायघण, हाला, केर, सायब, रायब, खंगार, सरबहिया, कारेट आदि।

अन्य खाँपें- खंगाराणीं, भारानी, तमाचयानी, नौधाणी, कारानी, गोरानी, ढाक, डाभी। फार्बस कृत 'रासमाला' भाग-2, पृष्ठ 67 से- सांगाजी, नायाणी, मालिया मेगणी, नवरोदडपाल, देवाणी, भाडुबा।- (मुंहणोत नैणसी- भाग 2)

महाराष्ट्र-

महाराष्ट्र में 12 प्रकार के यदुवंशी हैं। शिरके, मोहिते, दाभाड़े, गायकवाड़, सावन्त, तांबड़े, तुवार, दक्षिणी जादौं (मराठों में)।

शिर के कुल- शिर के, फाकड़े, शेल के, बागमन, गावंड, मोकला- छः कुल।

तुवार वंश- तुवार, तामटे, बुलके, धावड़े, मालपवार- पाँच कुल।

- (जाति भास्कर, पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र)

गढ़वाल (उत्तराखण्ड)- बागरी नेगीया या पूंडर नेगी (बागड़ से आये), मूना नेगी, पटवाल, सिरमौरिया।

कुमायूँ- चन्द्रराजा।

पहाड़ी क्षेत्र-

खलोरिया- राज्य नाहन- (कश्मीर तथा पंजाब में इनकी अनेक शाखाएँ हैं)।

हंताल- कश्मीर तथा पंजाब में कई शाखाओं में बसे हैं।

गहोतर- कश्मीर तथा पंजाब में कई शाखाओं में बसे हैं।

हरियाना- वरदाई (छोंकर), शूरसेनी।

हिमाचल प्रदेश- शूरसेनी, सिरमौरिया।

दक्षिण भारत- सेउड वंश (नासिका), सिंधेल (देवगिरि), वाडियार या औडियार, समेरिया (मैसूर), होयसल-बल्लाल (विजयनगर-द्वारसमुद्र)। कलचुरिया शाखा-लाटके कल्याण के, दक्षिण कौशल के, चेदि या चेद्य, हैहय (उ.प्र., बिहार, म.प्र. में भी हैं।)

भाटियों की शाखा-प्रशाखाएँ-

जैसलमेर के ही एक क्षत्रिय ने नाहन राज्य (हिमाचल प्रदेश में) स्थापित किया। इस प्रकार जैसलमेर, बीकानेर, गंगानगर, भटिंडा, नाभा, जींद, पटियाला, अंबाला, सिरमौर (नाहन) तक की यह पेटी भाटी वंश की है। अंबाला जिले के भाटी तावनी तथा सिरमौर के सिरमौरिया कहलाते हैं। इस वंश के क्षत्रिय इनके अलावा अब जोधपुर, बाड़मेर, उ.प्र. के पश्चिमी जिले, बिहार के भागलपुर तथा मुंगेर जिलों में रहते हैं।

- (जाति भास्कर- पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र तथा राजपूत क्षत्रिय वंश भास्कर- ठा० मोहन सिंह चौहान)

भाटी राजपूतों की शाखाएँ-

1. अभोरिया भाटी 2. जेहाभाटी 3. सहराव या सहरावत (पंजाब में) 4. मैंसडेचा भाटी 5. लघड़ भाटी 6. जीया भाटी 7. जंझ भाटी 8. अतेराव भाटी 9. घोटड़ भाटी 10. सिधराव भाटी 11. गोगली भाटी 12. जैतुंग भाटी 13. छैना भाटी 14. छीकण भाटी 15. लोबा भाटी 16. बुधरा भाटी 17. पोहड़ भाटी 18. सिधराव भाटी (हिसार) 19. पाहू भाटी (बागड़सर या नोख, माण्ड तथा मारवाड़ के कई गाँव) 20. अणधा भाटी 21. मूलपसाव भाटी 22. राहड़ भाटी (खड़ाल, ढेरासुर, उमरकोट, भरेसट-बीकानेर) 23. हटा भाटी 24. भीया भाटी 25. बाढ़र भाटी 26. पलासिया भाटी 27. मोकल भाटी (मालवा में) 28. मायाजल भाटी 29. जसोड़ भाटी (पूर्व में लाठी और 35 गाँव, देवीकोट में कई गाँव, बड़ी सिर्ढ गाँव, जैसलमेर में 24 गाँवों की चौबीसी-जसड़ावटी, मारवाड़) 30. जैचंद भाटी 31. भणकमल भाटी (मारवाड़ में) 32. लूणराव भाटी 33. पूगली भाटी (पूगल में) 34. चरड़ा भाटी 35. लूणराव भाटी 36. रणधीरोत भाटी 37. कानड़ भाटी 38. ऊनड़ भाटी 39. सत्रा भाटी 40. कीता भाटी 41. हमीरोत भाटी 42. उरजनोत भाटी 43. केलण भाटी 44. जैसा भाटी 45. सोम भाटी 46. गोलढ़े भाटी 47. रूपसी भाटी 48. राटाधर भाटी 49. पर्वत भाटी 50. भाकलेण भाटी 51. केलायच भाटी 52. भैंसडेच भाटी 53. सातलोत भाटी 54. मढ़ा भाटी 55. ठाकुरोत भाटी 56. ढेईढ़ासोत भाटी 57. ढूढा भाटी 58. जैतसिंहोत भाटी 59. लूणकरण रावलोत भाटी 60. नारायणढ़ासोत भाटी 61. सैसमलोत भाटी 62. नैतसिंहोत 63. डूंगरोत भाटी 64. द्वारकाढ़ासोत भाटी (छायण, बारू, टेकरा जागीरें) 65. बिहारीगढ़सोत भाटी 66. अखैराजोत भाटी 67. कांनोत भाटी (तिननियार में) 68. पृथ्वीराजोत भाटी (नवैतले में) 69. ढूजाकवत भाटी (चैलक गाँव में) 70. तेजमालोत भाटी 71. उढ़ेसिंहोत भाटी 72. गिरधारीढ़ासोत भाटी (छोड़ गाँव) 73. वीरमढ़ेवोत भाटी (अडू व केसूं लू गाँव) 74. सगतसिंहोत भाटी 75. ढ़ेरावरिया भाटी (मारवाड़ में जाखड़ गाँव) 76. गाहिड़ भाटी (जोधपुर व बीकानेर में गाँव) 77. रावलोत भाटी 78. जैसावत भाटी (पूंगल)- 'आस्था राजपुत्र' मासिक, जुलाई 2007

अन्य प्रशाखाएँ- किशनावत, सावंतसी, मेहाजलोत, शेखावत, मांगलिया (चावंडदे, वीरमदे, ढेढिया शाखाएँ), रावल विजयराव से निकली शाखाएँ- मांगरिया, पाहू वापारावण, वापराव बछूका। ठा० मोहन सिंह चौहान द्वारा लिखित 'राजपूत क्षत्रिय वंश भास्कर' में 105 शाखाओं का उल्लेख है।

उत्तर प्रदेश की यदुवंशी/जादौंन शाखाएँ-

1. **तवनपाल यादव**- मड़ैला, हसायन, अंडोली, अलेदनपुर, अल्लिया नगला, हाथरस तथा अलीगढ़ के आस-पास 80 गाँव हैं।
2. **बहादुर यादव**- बहादुरपुर, विजयपुर।
3. **भृगुदे (भारद्वाज)**- हाथरस जिला नारखी क्षेत्र (फिरोजाबाद), गढ़ी भण्डार (आगरा)
4. **पुरुसोतिय (पुसोतिया)**- हरजूपुरा, कुर्रा, दहनेर, बालमपुरा, सिकन्दरापुर (आगरा जिला)
5. **जरिहा या जरियावत**- जरार, बाह (आगरा जिला), बहराई (जालौन)
6. **छोंकर यादव**- (शाखाएँ- उरलिया ठिकाना इनायतपुर, रावत ठिकाना जेबर) गाजियाबाद, बुलन्दशहर, मथुरा।
7. **पोरच यादव**- मेंढू, दरियापुर (हाथरस)
8. **खागर यादव**- (शाखाएँ- वरदाई, तिमन, जरिया, ममनपुरिया, भड़ोसिया, विदमन, बद्दा, सोहा, जेसवार, नोलखा, नोगजंग) झाँसी, हमीरपुर, जालौन।
9. **बनाफर यादव**- महोबा क्षेत्र।
10. **जैसावत**- (शाखाएँ- नारा, नायन)- मथुरा
11. **देवगिरिया (सिंधेल)**- आजमगढ़
12. **भाटी यादव**- गाजियाबाद, नोएडा, बुलन्दशहर
13. **जैसवार**- मिर्जापुर, वाराणसी, एटा, मैनपुरी, मथुरा।
14. **सोमवंशी यादव**- बहलोलपुर, बरेली, प्रतापगढ़, रोतेला (उत्तराखण्ड)
15. **नौसानिया या बरसानिया**- नन्दगाँव, बरसाना (जो अब नहीं हैं)
16. **सोनरवंशी**- ऊँचा गाँव (बुलन्दशहर)
17. **मथुरावत जादौंन**- मथुरा
18. **कारन जादौंन**- मथुरा
19. **बड़ोतिया (कोंन्हईया) जादौंन**- कोंन्हई तथा कई गाँव (मथुरा), भूरगढ़ा, ढढ़ोली, इटन्नी, खूटीपुरा, रामगढ़ (एटा), रामनगर, फतेहगढ़ी, नयावास,

कातकी, कुम्हेरगढ़ी (फिरोजाबाद) नगला धबीला, भण्डारगढ़ी, छबीली का नगला, बरहन (आगरा), सीतापुर, भोपतपुर, रसमई (हाथरस)।

20. **कमालिया जादौंन**– अकर्रा, कमालपुर, छबीली का नगला, बरहन, नगला धबीला, गोपला, नगला गोकुल (आगरा), बाबरपुर (एटा), कातकी (फिरोजाबाद)
21. **गरिमा जादौंन**– सिकिर ग्राम।
22. **पटरावत जादौंन**– पटना (एटा)
23. **चोपड़े जादौंन**– प्रेमनगर, कातकी, रुद्रगढ़ी (फिरोजाबाद), भैंसा (एटा)
24. **समरीबार जादौंन**– हरतोली, मचकोली (बुलन्दशहर)
25. **ठुकरैला जादौंन**– छाता (मथुरा), अतिया का नगला, कातकी (फिरोजाबाद), जैनपुरा (आगरा), मोहनपुर, सैनऊआ, लालपुर (एटा)।
26. **बकरहोंर जादौंन**– अकराबाद (एटा)
27. **कुंदेरिया जादौंन**– तोछीगढ़ (हाथरस), गांगनी, गुढ़ा (फिरोजाबाद), मितन का नगला (एटा), दरियापुर (हाथरस)।
28. **दुगनावत जादौंन**– वजीरपुरा, धनी की नगरिया (आगरा)
29. **मधुपुर जादौंन**– मनकला, सोमना, नवाना, वीरपुरा, गभाना (अलीगढ़)
30. **नुकडिया जादौंन**– मुड़सभा, महला, कठोठा, कंचनपुर, कोठिया, अवागढ़ में खिड़की मौहल्ला बकुआपुर (एटा), रामगढ़ी (फिरोजाबाद)
31. **अमरावत (ब्रजवासी) जादौंन** – नरी–सेमरी (मथुरा), अवागढ़, जगमनपुर, सरानी, सैनऊआ, नरौरा, बरई (एटा), जवाहरपुर (फिरोजाबाद)
32. **बड़गइया जादौंन**– बरकायतपुर, हीरा का नगला, मीसा, गलसायपुर (एटा), महेन्द्रसिंह की बसई (बुलन्दशहर)।
33. **टिमकोला जादौंन**– भैकुरी, टिमकौली, वीरनगर, कोडरी (एटा)
34. **गिरीयाड जादौंन**– महावीठना, गंगचौली, केमार (अलीगढ़)
35. **बहजवार**– बुलन्दशहर जिला।

अन्य शाखाएँ-

चंड़ोसिया, दंगेश, विसम्भरिया (अलीगढ़ जिला), धानौतिया, बरौलिया, मलईया बड़ोतिया (कोंन्हईया), सिवारिया, हाथिया, जटौलिया, भृगुदे, ठकुरेले, साबोरिया, सूतोलिया, अमरावत, जसावत, गौहते, सोनगरिया (मथुरा जिला) सुमेरिया, शालिवाहन, बड़सिर (बड़ेसिर), शूरसेनी, यदुगिरि, मुकुन्द, सोनपालिया, उरलिया, रावत, करिया, तुलवा, बिलादरिया, डाहलिया, चोल, कलहंस, राष्ट्रकूट, जाइया आदि शाखा- उपशाखाएँ हैं।

- (राजपूत क्षत्रिय वंश भास्कर, 'आस्था राजपुत्र' तथा जगाओं द्वारा प्राप्त विवरण)

जाड़ेचा वंश (गुजरात)-

गुजरात के जाड़ेचा अपनी उत्पत्ति श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब से मानते हैं। साम्ब के वंशज चूड़चन्द्र से चूड़ासभा (चूड़ासमा) यादव कहलाये जिनका सिंध क्षेत्र पर बहुत समय तक शासन रहा। सिंध के शासक चूड़चन्द्र के वंशज ऊनड़ के बाद तामाइच हुआ जिसका वंशज जामसून (जड्डु) हुआ। जड्डा का पुत्र लाखा इस वंश का प्रसिद्ध राजा हुआ। लाखा के वंशज अपने पिता जड्डा के नाम से जाड़ेचा यादव कहलाये। जाड़ेचों ने गुजरात के एक बड़े भू-भाग पर शासन किया। कच्छ भुज, नवानगर (जामनगर), घ्रोल, राजकोट, मोरवी तथा गोंडल जाड़ेचा वंश की प्रसिद्ध रियासतें थीं। जड्डा के पुत्र लाखा के वंशज रायधण के वंशज रायधण जाड़ेचा कहलाये। रायधण जाड़ेचा की खंगाराणी, भाराणी, तमाचयानी, नौधाणी, कारानी, गोरानी आदि खांपें हैं। रायधण के पुत्र गज्जन और गज्जन के पुत्र हाला हुए जिनके वंशज हाला जाड़ेचा कहलाये। रायधण के छोटे पुत्र होठी के वंशज होठी जाड़ेचा कहलाये।

जाड़ेचों की पीढ़ियाँ- 1. गाहरियो 2. ओढो 3. ढाहर 4. छाहड़ 5. फूल 6. लाखा 7. महर 8. मोकलसी 9. खतसी 10. दल्ला 11. हम्मीर बड़ा 12. हम्मीर के पुत्र रायधण और हाला 13. फूल 14. अलैदियो 15. जनागर 16. लोदी 17. भीम 18. दल्ला (दूसरा) 19. साहिब 20. राहिब 21. बड़ा भीम 22. बड़ा हमीर 23. अमर 24. भोजराज 25. वासा 26. ओटा 27. हमीर (दूसरा) 28. खंगार 29. भारा 30. मेघ 31. रायधण 32. तमायची।

दूसरी अन्य वंशावली में चूड़चन्द्र के पौत्र रा गारिया से रा दयाल हुआ जिसके पु रा नवधण (सं. 894) से खंगार छठा (सं. 1642) तक के 32 वंशजों की वंशावली दी है। - (मुंहणोत नैणसी की ख्यात भाग-2, पृ. 153, 175)

भाटी-वंश (जैसलमेर)

इसे भट्टी वंश भी कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति चन्द्रवंशीय राजा भाटी से हुई। श्रीकृष्ण ने मथुरा को छोड़कर जब द्वारका को अपनी राजधानी बनाया तो उसके वंशजों ने काठियावाड़, कच्छ, ग्वालियर, मथुरा, धौलपुर, करौली, जैसलमेर तथा गुड़गाँव तक राज्य स्थापित किया था। इस वंश की एक शाखा ने पंजाब के पर्वतीय क्षेत्र में राज्य स्थापित किया था। यह क्षेत्र 'यदु की डाँग' कहलाता है। सन् 623 ई. में इस वंश के राजा रिज की राजधानी पुष्पपुर (पेशावर) में भी होनी प्रमाणित हो चुकी है। उसके पुत्र गज ने अपने नाम से गजनीपुर (वर्तमान गजनी) बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। इसका पुत्र शालिवाहन महान शासक था। शालिवाहन कोट (वर्तमान स्यालकोट) इसी शासक का कीर्ति स्तम्भ है। इसी शालिवाहन का एक पुत्र भक्त पूरणमल था जिसने संन्यास ले लिया था और बाद में नौ नाथों में चौरंगीलाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका दूसरा पुत्र बालन्दराज्य का अधिकारी बना। बालन्द का पुत्र ही भाटी (भट्टी) था जिसके वंशज भाटी (भट्टी) क्षत्रिय कहलाते हैं। इन्होंने सन् 629 ई. (वि. सं. 686) में भट्टीक सम्वत् भी चलाया। इन्होंने भटनेर (बीकानेर) को बसाया तथा गोविन्दगढ़ (विक्रमगढ़) जो उन दिनों उजड़ा पड़ा था, को बसाकर नाम भटिंडा (पंजाब) रखा।

भाटी के पुत्र मंगलराव ने स्यालकोट से आकर राजस्थान के उत्तरी पश्चिमी भाग और बहावलपुर के क्षेत्र को जीतकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। इसके पुत्र केहर ने सन् 730 में तन्नौट दुर्ग बनवाया। इसके पुत्र विजयराव ने देरावल (बहावलपुर) बसाया। विजयराव के पुत्र देवराज ने तुर्की आक्रमणकारियों को कई बार पीछे ढकेला। जैसलदेव ने सन् 1155 ई. में जैसलमेर दुर्ग बनाकर वहीं अपनी राजधानी बनाई। तब से आज तक यह राज्य जैसलमेर राज्य कहलाता है। जैसलदेव के वंशधर सिंधु जो पटियाला के शासक थे, विजातीय स्त्री से विवाह कर पाने के कारण जाति से बाहर हो गये, जिनके वंशज इसी क्षेत्र में सिंधु जाट हैं। सिंधु जाट के वंशज फूल के तीनों पुत्रों ने नाभा, पटियाला और जींद को अपनी अलग-अलग राजधानी बना ली। ये तीनों रियासतें आज तक भी फुलकियाँ कहलाती हैं। - (राजपूत वंशावली - ईश्वर सिंह मडाढ़)

श्रावण सुदी द्वितीया सम्वत् 1212 वि. (सन् 1155 ई.) में जैसलदेव भाटी ने जैसलमेर दुर्ग बनवाया। अलाउद्दीन खिलजी द्वारा सन् 1303 ई. में चित्तौड़ पर

आक्रमण के समय उसकी सेना ने जैसलमेर किले को भी घेर लिया। तत्कालीन शासक जैतसिंह भाटी (1303-1311 ई.) मृत्युपर्यन्त 8 वर्ष तक युद्ध करते रहे। उनके बाद मूलराज भाटी ने भी युद्ध जारी रखा। सन् 1316 ई. में राजपूतों ने किले के बाहर निकलकर शत्रुदल पर धावा बोलकर वीरगति पायी तथा स्त्रियों ने जौहर किया। जैसलमेर की जैसल भाटी द्वारा स्थापना के बाद से सन् 1949 ई. तक अनेक राजाओं ने शासन किया। भगवान् श्रीकृष्ण का मूलछत्र आज भी जैसलमेर राजमहल में मौजूद है।

भाटी क्षत्रियों का शासन जैसलमेर, बीकानेर, गंगानगर, भटिंडा, नाभा, जींद, पटियाला, अम्बाला, सिरमौर (नाहन) क्षेत्र में रहा। इस क्षेत्र के अलावा भाटी क्षत्रिय जोधपुर, बाड़मेर, उ.प्र. के पश्चिमी जिलों तथा बिहार के मुंगेर, भागलपुर जिलों में रहते हैं।

जैसलमेर, पुंगल, बीकमपुर, बरसलपुर, मम्मण, बहट, मारोठ, आसणीकोट, केहरोर- ये नौ भाटी क्षत्रियों के प्रसिद्ध गढ़ हैं। इन नौ गढ़ों के अन्तर्गत कई सौ गाँव हैं।

भाटी राजपूतों की शाखा- प्रशाखाएँ विस्तृत है।

लाहौर के यादव राजा बालन्द जी ने वि.सं. 291 में हिसार को जीतकर उसे अपने राज्य में स्थापित किया था। इनके 12 पुत्र हुए। दूसरे कुंवर सम्भाजी ने सिंध के परिहारों से राज्य छीनकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया था। सम्भाजी ने परिहारों की जाम पदवी भी छीनकर स्वयं धारण कर ली। इसीलिए वे और उनके वंशज (जाम+चा) जाड़ेचा या जाड़ेचा कहलाये। इनकी राजधानी सभानगर थी।

- (राजपूत वंशावली- ईश्वर सिंह मडाढ़)

'जाति भास्कर' में पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र ने लिखा है कि- "भारत की समस्त जातियों में यदुवंश बहुत प्रसिद्ध है। यह वंश चन्द्रवंश की उच्चकोटि का है। यदुवंश क्षय होने पर श्रीकृष्ण की सन्तान जाबुलिस्तान तक गई और गजनवी तथा अमरकन्द के देशों को बसाया। और फिर भारत को लौटे और पंजाब पर अधिकार जमाया। पीछे मरुभूमि में आये और वहाँ लंगधा, जोहिया और मोहिला लोगों को निकालकर क्रमशः तन्नौट, देरावल और सं. 1212 में जैसलमेर बसाया जो कृष्ण के वंशधर भट्टी (भाटी) लोगों की राजधानी है। 'राजस्थान का इतिहास' में डा० गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है- "जैसलमेर का राजवंश

राजपूतों की चन्द्रवंशीय यादवों की भाटी शाखा में है। इस वंश का मूलपुरुष भाटी है जिससे इसके वंशज भाटी कहलाने लगे।

पुरानी ख्यातों व वंशावलियों तथा दन्तकथाओं के आधार पर भाटी राजवंश के प्रधान राज्य प्रवर्तक शासकों में रज और गज का नाम आता है, जो पंजाब में छठी शताब्दी में शासक थे। सातवीं शताब्दी में इस वंश के शालिवाहन और बालन्द प्रसिद्ध राजा हुए जो पंजाब पर ही राज्य करते थे। फिर उत्तरोत्तर इस वंश के भाटी मंगलराव, मंजसराव, केहरजी और तन्नूजी प्रसिद्ध राजा हुए। मंजसराव का पंजाब से राजस्थान के रेगिस्तान में आना हुआ। केहर के द्वारा तन्नौट के किले का निर्माण कराया माना जाता है।

भाटियों की वंशावलियाँ बहुत विस्तृत हैं इसलिए वंशावली का उल्लेख नहीं किया गया है। पाठकों की जानकारी हेतु जाड़ेचा वंश तथा भाटी वंश का संक्षेप में वर्णन दिया गया है।- (राजपूत क्षत्रिय वंश भास्कर- ठा० मोहनसिंह चौहान)

भारतीय इतिहास लिखने वाले प्राय: अधिकांश इतिहासकारों ने दक्षिण भारत के साम्राज्यों तथा यदुवंशी शासकों का वर्णन किया है। यहाँ निम्नलिखित इतिहासकारों की लिखित पुस्तकों से दक्षिण भारत के यदुवंशी शासकों का वर्णन किया जा रहा है- 1. दक्षिण भारत का राजनीतिक इतिहास- डा० विशुद्धानन्द पाठक 2. दक्षिण भारत का इतिहास- डा० नीलकंठ शास्त्री 3. प्राचीन भारत का इतिहास- डा० रमाशंकर त्रिपाठी 4. भारत का वृहत् इतिहास- (भाग 2,3)- आर.सी. मजूमदार 5. विजयनगर साम्राज्य का इतिहास- श्रीवासुदेव उपाध्याय

दक्षिण भारत के यदुवंशी राज्य-

प्राचीनकाल में यदुवंशियों का राज्य हिन्दुस्तान के उत्तरी भाग के बड़े क्षेत्र पर फैला हुआ था। काठियावाड़ तथा द्वारका में एवं राजपूताना में इनके राज्य होने के कारण प्राप्त होते हैं। प्राचीन ताम्रपत्र, शिलालेख एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थों में इस वंश का पूर्ण इतिहास प्राप्त होता है। अर्जुन पाण्डव के द्वारा श्रीकृष्ण के वंशज वज्र को किसी तरह द्वारका से बचाकर इन्द्रप्रस्थ की गद्दी पर बैठाया गया था। वज्र का पुत्र प्रतिबाहु तथा प्रतिबाहु का पुत्र सुबाहु प्रसिद्ध शासक हुए। पहले इस वंश की राजधानी शूरसेन के समय में मथुरा थी जो राज्य शूरसेन के नाम से प्रसिद्ध था। वज्र (वज्रनाभ) ने इन्द्रप्रस्थ के बाद मथुरा को राजधानी बनाया था। इसके वंशधरों ने मथुरा के बाद बयाना, कामां, तिमनगढ़, करौली

आदि में राज्य स्थापित किये। वज्र के वंशज द्वारका होते हुए दक्षिण भारत की ओर चले गये जहाँ उन्होंने अनेक राज्यों की स्थापना की।

देवगिरि के यादव-

प्रारम्भ में जब मान्यखेट के राष्ट्रकूट तथा कल्याण के पश्चिमी चालुक्य दक्कन के स्वामी थे तब यह राजकुल सामन्तवर्गीय था। कल्याण के चालुक्यों के पतन के बाद यादवों का उत्कर्ष हुआ और कालान्तर में उन्होंने एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की। इस राजकुल का प्रथम महान राजा मिल्लम पंचम था जिसने कलचुरी विद्रोह तथा होयसलों की प्रसार नीति से परेशान चालुक्य शक्ति की दयनीय स्थिति से लाभ उठाकर 1187 ई. के लगभग सोमेश्वर चतुर्थ के दुर्बल हाथों से कृष्णा नदी के उत्तर के प्रान्तहीन लिए। मिल्लम पंचम ने अपनी राजधानी देवगिरि (हैदराबाद रियासत में वर्तमान दौलताबाद) में स्थापित की और सम्राटों के विरुद धारण किए। दक्षिण की ओर अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ाने में वह सफल न हो सका क्योंकि 1191 ई. के लगभग लक्कुंडी (धारवाड़ जिला) के युद्ध में वीर-वल्लाल प्रथम होयसल ने उसको परास्त कर मार डाला। भिल्लम का उत्तराधिकारी उसका प्रथम पुत्र जैतुगी अथवा जैत्रपाल प्रथम (1191-1210 ई.) हुआ जिसने भयानक युद्ध में तैलंगों (त्रिकलिंगों) के राजारुद्रदेव को मारकर काकतीय सिंहासन पर उसके भतीजे गणपति को बिठाया। इस प्रकार अपने समकालीन राजाओं में यादवों ने धीरे-धीरे अपना प्रभाव बढ़ाया।

जैतुगी प्रथम का पुत्र सिंघण यादव राजकुल का प्रथम राजा था और अपने लगभग 1210-1247 ई. के लम्बे शासन में उसने बहुत से देश जीते। उसने 1215 ई. के लगभग वीरभोज को परास्त किया और पर्नाल अथवा पन्हल के दुर्ग पर अधिकार के पश्चात् कोल्हापुर का शिलाहार प्रदेश अपने शासन में सम्मिलित कर लिया। इसके बाद वीर वल्लाल द्वितीय होयसल के राज्य में कृष्णानदी के पास अपनी सीमा विस्तार कर सिंघण ने अपने पितामह के अपमान का बदला लिया। यादवराज ने अन्य विदेशियों से भी सफल संघर्ष किया और मालवा के अर्जुनवर्मन् तथा छत्तीसगढ़ के चेदिराज जाजल्ल को परास्त किया। बघेल राजाओं के समय में उसने गुजरात पर भी कम से कम दो आक्रमण किये। सिंघण की विजय नीति से यादव राज्य की सीमाएँ उसी प्रकार फैल गयी जिस प्रकार कभी पश्चिमी चालुक्यों की हो गयी थीं।

सिंघण के बाद उसका पौत्र कृष्ण अथवा कन्हर (लगभग 1247–1260 ई.) गद्दी पर बैठा। पता लगता है कि उसका भी मालवा, गुजरात तथा कोंकण के राजाओं से युद्ध हुआ।

कृष्ण के बाद उसका भाई महादेव (लगभग 1260–1271 ई.) गद्दी पर बैठा और उसने शिलाहारों से और मालवा के अर्जुनवर्मन् तथा छत्तीसगढ़ के चेदिराज जाजल्ल को परास्त किया। उत्तर कोंकण छीन लिया। महादेव और रामचन्द्र अथवा रामराज (लगभग 1271–1309 ई.) के शासनकाल में विख्यात ब्राह्मण मंत्री हेमाद्रि अथवा हेमाद पन्त हुआ जो हिन्दू धर्मशास्त्र सम्बन्धी अपने ग्रन्थों के लिए प्रसिद्ध है। यह भी ज्ञात होता है कि रामचन्द्र उस सन्त ज्ञानेश्वर का संरक्षक था जिसने 1297 ई. में भगवद्गीता पर एक मराठी टीका लिखी।

रामचन्द्र के शासनकाल में करा का शासक अलाउद्दीन खिलजी दक्षिण की ओर बढ़ा और उसने 1294 ई. में देवगिरि को अचानक घेर लिया तथा रामचन्द्र को बन्दी बना लिया। बाद में उसे सशर्त मुक्त कर दिया। जब अलाउद्दीन ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया तथा रामचन्द्र द्वारा शर्त पूरी न करने पर दिल्ली में दण्ड देने की भावना जागी। 1309 ई. में रामचन्द्र के मरने के बाद उसके उत्तराधिकारी शंकर ने भी दिल्ली को कर भेजना बन्द कर दिया। 1312 ई. में मलिक काफूर ने आकर शंकर को हराया और मार डाला। इस प्रकार यादवकुल का गौरवहीन अन्त हुआ। बाद में रामचन्द्र के जामाता हरपाल ने मुसलमानों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाने का प्रयत्न किया परन्तु उसका विद्रोह दमन कर दिया गया और सुल्तान मुबारक की आज्ञा से स्वयं उसकी जीते जी खाल खींच ली गयीं।

त्रिपुरी के कलचुरी-

कलचुरी अथवा कटचुरी कार्तवीर्य अर्जुन (सहस्त्रार्जुन) के वंशज कहे जाते हैं। इस प्रकार वे यदुवंश की उस हैहय जाति की शाखा थे जो रामायण-महाभारत और पुराणों के वंशों में विशेष प्रख्यात है और जिन्होंने नर्मदा की घाटी में अपनी राजधानी माहिष्मती अथवा मान्धाता के केन्द्र से राज्य किया था।

कलचुरी (चेदि देश पर अधिकार के कारण उन्हें चेदवंशीय भी कहते हैं) कोकल्ल प्रथम के शासनकाल में विख्यात हुए। उसने त्रिपुरी (वर्तमान तेवर) को अपनी राजधानी बनाया। त्रिपुरी डहाल अर्थात् जबलपुर के प्रदेश में स्थित

थी। कोकल्ल ने नौवीं सदी के अन्त और दशवीं सदी के प्रारम्भ में शासन किया। उसके वैवाहिक सम्बन्धों तथा राजनैतिक क्रियाशीलता से इस कुल की बहुत शक्ति बढ़ी। उसने नट्टा देवी नाम की एक चन्देल राजकुमारी से विवाह किया और स्वयं अपनी कन्या कृष्ण द्वितीय (लगभग 875–99 ई.) को प्रदान की। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कोकल्ल प्रथम ने अपने राष्ट्रकूट जामाता को बेंगी के विनयादित्य तृतीय (पूर्व चालुक्य राज) के विरुद्ध आश्रय तथा सहायता दी। इसी प्रकार उसने प्रतिहारों के गृह–युद्ध के समय भोज (भोज द्वितीय) की भी उसके भाई महीपाल के विरुद्ध सहायता की। कोकल्ल प्रथम एक शक्तिशाली शासक था।

कोकल्लदेव के उत्तराधिकारी के बारे में मतभेद होते हुए भी गांगेयदेव जिसकी तिथियाँ 1019 और 1041 ई. के बीच हैं, निश्चय प्रबल राजा था। उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की और वह महोबा से प्राप्त एक चंदेल अभिलेख में 'संसार का विजेता' कहा गया है। इस अतिशयोक्तिपूर्ण बयाना के बावजूद यह प्रमाणित है कि उसने कीर देश अथवा कांगडा घाटी तक उत्तर भारत में घावे किये और प्रयाग तथा वाराणसी के जिलों पर प्रतिहारों के पतन के बाद अधिकार कर लिया। एक लेख से स्पष्ट है कि गांगेय ने वि.सं. 1076 (1019 ई.) के कुछ पूर्व तिरहुत पर अधिकार कर लिया। एक अभिलेख में उसके उत्कल (उड़ीसा) और कुन्तल (कन्नड़ प्रदेश) के राजाओं को हराने का उल्लेख मिलता है। भोज परमार ने अन्त में उसे हराकर उसकी शक्ति क्षीण कर दी।

गांगेयदेव का पुत्र और उत्तराधिकारी लक्ष्मीकर्ण अथवा कर्ण था जो कलचुरी राजाओं में सबसे शक्तिमान हुआ। अपने लम्बे शासनकाल (1041–1072 ई.) के बड़े भाग में उसने उत्तर भारत पर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव रखा और अपने राज्य की सीमाओं का बहुत विस्तार किया। बनारस तक, जहाँ उसने कर्ण मेरु नाम के शिवमन्दिर का निर्माण कराया, उसकी प्रभुता स्थापित हुई (कर्ण ने त्रिपुरी के समीप एक नयी राजधानी कर्णवती (वर्तमान करनवेल) भी बसाई– एपीग्राफिया इण्डिका–2)। इसी प्रकार उत्तर–पश्चिम में कीरों (कांगड़ा) के देश पर उसने आक्रमण किया। कर्ण ने भी अपने पिता की ही तरह उत्तर में धावे किये और प्रतिहारों के नष्ट प्रायः कन्नौज राज्य पर अपना प्रभाव जमाया। कर्ण ने अपने समकालीन चन्देल राजा विजयपाल अथवा देववर्मन् को भी परास्त किया। पूर्व में कर्ण का संघर्ष नयपाल और उसके पुत्र विग्रहपाल तृतीय के साथ

भी हुआ जिसमें सम्भवत: विग्रहपाल की जीत हुई। इसके बाद कर्ण ने गुजरात के चालुक्य राजा भीम प्रथम (लगभग 1020–1064 ई.) की सहायता से धारा के भोज परमार को बुरी तरह हराया। कर्ण की शक्ति का प्रभाव चोड़, कलिंग और पाड्य राजाओं तक पर पड़ा परन्तु अपने शासन के अन्त में कर्ण की अनेक बार पराजय हुई।

अपने अन्तिम काल में शासन का भार वहन न कर सकने के कारण कर्ण ने गद्दी हूण-कुलीय रानी आवल्लदेवी से उत्पन्न अपने पुत्र यश: कर्ण को दे दी। यश: कर्ण ने कई लड़ाईयाँ लड़ी, लेकिन वह अपने पिता कर्ण द्वारा स्थापित साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सका, और धीरे-धीरे पिता द्वारा जीते हुए राज्य उसके हाथों से निकलते चले गये। बाद में इसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में कलचुरियों की शक्ति सर्वथा विनष्ट हो गई।

द्वारसमुद्र के होयसल-

होयसल (पोयसल) अभिलेखों में अपने को "यादव कुलतिलक" अथवा "चन्द्रवंशीय क्षत्रिय" लिखते हैं। इस राजकुल का ऐतिहासिक संस्थापक साल था जिसने किसी ऋषि के कहने से व्याघ्र को लौहदण्ड से मारकर ख्याति पायी। कहते हैं कि इस घटना (पोय साल अर्थात् मारना, साल) के परिणाम स्वरूप इस राजकुल को पोयसल अथवा होयसल संज्ञा मिली।

ग्यारहवीं सदी ई. के आरम्भ में होयसलों की शक्ति बढ़ी। इस कुल के प्रारम्भिक राजाओं मैसूर के एक छोटे भाग पर शासन किया और वे चोलों अथवा कल्याण के उत्तरकालीन चालुक्यों को अपना अधिपति मानते रहे। धीरे-धीरे विनयादित्य (राज्यारोहण लगभग 1045 ई.) और उसके पुत्र इरेयंग ने अपनी शक्ति बढ़ायी, परन्तु बिट्टिग विष्णुवर्धन (लगभग 1110–1140 ई.) के समय में ही होयसल दक्षिण भारत की राजनीति में प्रभावशाली शक्ति बन सके। इस राजा ने अपनी राजधानी वेलापुर से हटाकर (हसन जिले में वर्तमान वेलूर) से हटाकर द्वारसमुद्र (हलेविद) में स्थापित की और अपने को चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ से प्राय: स्वतंत्र कर लिया। कहा जाता है कि उसने चोलों, मदुरा के पाड्यों, मालाबार के निवासियों, दक्षिण कनाडा के तुलुवों तथा गोवा के कदम्बों को परास्त किया और कृष्ण तथा कांची तक धावे किये। इस प्रकार विष्णुवर्धन ने एक विस्तृत भू-भाग पर, जिसमें प्राय: सारा मैसूर और निकटवर्ती प्रदेश शामिल थे, अपना प्रभुत्व स्थापित किया। पहले वह सम्भवत: जैन था परन्तु आचार्य रामानुज के सम्पर्क में आने के बाद वह वैष्णव हो गया।

होयसल विशाल मन्दिरों के निर्माता थे और उन्होंने अनेक इमारतें बनवाईं जो आज भी हलेविद् में और अन्य स्थानों में खड़ी हैं और उनकी कला-प्रियता तथा धर्मानुराग को प्रकट करती हैं।

मान्यखेट (मालखेड़) के राष्ट्रकूट-

इस राजकुल के उत्तरकालीन अभिलेखों के अनुसार उनकी उत्पत्ति यदु से थी और उनके पूर्वज का नाम रट्ट था जिसके पुत्र राष्ट्रकूट ने इस कुल को अपना नाम दिया। पाँचवीं शताब्दी से अनेक राष्ट्रकूट वंश दक्षिण के विभिन्न भागों में राज्य करते हुए पाये जाते हैं। इनमें से दो सतारा प्रदेश में राज्य करते थे। एक अन्य शाखा सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चालुक्यों के करद के रूप में अचलपुर (एलिचपुर) के एक छोटे से प्रदेश पर शासन करती थी। या तो इस शाखा ने अथवा औरंगाबाद जिले की एक दूसरी शाखा ने अन्ततोगत्वा एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। इस वंश का पहला प्रसिद्ध राजा इन्द्र था। उसने एक चालुक्य राजकुमारी से विवाह किया था। 710 ई. के लगभग उसका बेटा दन्ति दुर्ग गद्दी पर बैठा और इस वंश की महत्ता स्थापित करने वाला राजा बना।

अपने पूर्वजों की भाँति दन्तिदुर्ग ने करद शासक के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया था और अपने स्वामी विक्रमादित्य द्वितीय के दोनों प्रसिद्ध अभियानों में- काँची के पल्लवों और उत्तर के अरब आक्रमणों के विरुद्ध भाग लिया था। विक्रमादित्य द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसने स्वयं अपने विजय अभियान आरम्भ कर दिये। उसने नन्दिपुरी (भड़ोच के पास) के गुर्जर और मालवा के गुर्जर-प्रतिहार राज्यों को जीता और अपना प्रभुत्व मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग पर फैलाया। इसने चालुक्य कीर्तिवर्मन् द्वितीय को भी हराया और वह दक्षिण के अधिकांश भाग का सम्राट् हो गया।

इसके थोड़े ही दिनों बाद दन्तिदुर्ग नि:सन्तान मर गया और उसकी गद्दी पर लगभग 758 ई. में उसका चाचा कृष्ण बैठा। कृष्ण ने चालुक्य सम्राट् को हराया और इस प्रकार 760 ई. में चालुक्य शक्ति का प्राय: अन्त ही हो गया। इसके बाद कृष्ण ने मैसूर के गंगों और वेंगी के पूर्वी चालुक्यों को भी पराजित किया। पूर्वी चालुक्यों ने उसके साथ मैत्री कर ली। इस प्रकार राष्ट्रकूट समस्त चालुक्य साम्राज्य के शासक हो गये। 773 ई. में कृष्ण की मृत्यु हो गयी। उसने अपनी विजयों द्वारा राष्ट्रकूटों की शक्ति को संगठित किया, किन्तु उसका सबसे बड़ा कार्य एलोरा के कैलाश मन्दिर का निर्माण है जो पहाड़ी चट्टानों को काटकर बनाया गया है। अगला राजा गोविन्द द्वितीय भोग-विलास में बुरी तरह लिप्त

रहता था, इसलिए उसके छोटे भाई ध्रुव ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। गोविन्द द्वितीय ने अपने मित्र राजाओं की सहायता से अपना अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा की, किन्तु ध्रुव ने उन्हें एक घनघोर युद्ध में पराजित कर गोविन्द को अपदस्थ कर दिया। ध्रुव के राज्यारोहण से राष्ट्रकूटों के इतिहास में एक नये अध्याय का आरम्भ होता है। वे अब अपने दक्षिण स्थित राज्य से ही सन्तुष्ट न थे, उनकी ललचायी आँखें उत्तर भारत के उपजाऊ मैदानों पर भी पड़ी।

इस प्रकार दक्षिण से निपटकर ध्रुव ने उत्तर भारत पर विस्तृत अभियान की योजना बनाई। उत्तर भारत के दो प्रमुख राजाओं– वत्सराज और धर्मपाल दोनों को पराजित कर वह अपनी विजयिनी सेना को गंगा और यमुना के दोआब तक ले गया था। इस महान् विजय की स्मृति में राष्ट्रकूट ध्वज पर दोनों नदियों के प्रतीक अंकित किये गये। उसने अपनी विजय स्थायी बनाने का यत्न किया और 790 ई. में वह अपनी राजधानी को लौट आया। 3 वर्ष पश्चात् जब वह मरा, राष्ट्रकूटों की शक्ति और कीर्ति बहुत बढ़ गयी थी। वह भारत के सभी बड़े राजाओं को परास्त कर चुका था और हिमालय से कन्याकुमारी के बीच उसके अधिकार को चुनौती देने वाला कोई न बचा था। ध्रुव ने अपने छोटे पुत्र गोविन्द तृतीय को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। अपने पिता की ही भाँति गोविन्द तृतीय ने भी उत्तर भारत की ओर सैनिक अभियान किये और उसे भी वैसी ही सफलता मिली। यह भी कहा जाता है कि गोविन्द तृतीय हिमालय तक पहुँच गया था और प्रयाग, बनारस और गया भी गया। एक बार पुनः हिमालय से कन्याकुमारी तक सारी शक्तियाँ पराजित हुईं और प्रायः समस्त भारत को राष्ट्रकूटों की प्रभुता स्वीकार करनी पड़ी।

इस समय राष्ट्रकूट शक्ति और कीर्ति चरम सीमा पर पहुँच गयी थी, किन्तु 814 ई. में गोविन्द तृतीय के मरते ही उसका पतन आरम्भ हो गया। उस समय उसका पुत्र और उत्तराधिकारी अमोघ वर्ष 13–14 वर्ष का बालक था। गोविन्द का भतीजा कर्क जो गुजरात और मालवा का उपराज था, उसका संरक्षक हुआ। शीघ्र ही चारों ओर विद्रोह आरम्भ हो गये और पराधीन राज्य स्वतंत्र होने लगे। कर्क ने विद्रोह का दमन किया तथा अमोघ वर्ष ने पुनः गद्दी प्राप्त करली। यहाँ बताते चलें कि अमोघ वर्ष प्रथम तथा कर्क के बेटे ध्रुव प्रथम के मध्य भी दीर्घकाल तक वैमनस्यता बनी रही बाद में समझौता होकर एकता बनी। 60 वर्षों से अधिक काल तक राज्य करने के पश्चात् 878 ई. के लगभग अमोघ वर्ष की मृत्यु हुई। अमोघ वर्ष स्वयं एक विद्वान् तथा लेखक था।

अमोघ वर्ष के बेटे और उत्तराधिकारी कृष्ण द्वितीय का शासनकाल विपत्ति पूर्ण था। चालुक्य, राजा विजयादित्य तथा प्रतिहार भोज प्रथम ने इसे हराकर अपने राज्यों को स्वतंत्र कर लिया। 888 ई. के कुछ समय बाद राष्ट्रकूट उपराजाओं की गुजरात शाखा का भी अन्त हो गया। 914 ई. के लगभग कृष्ण द्वितीय की मृत्यु हुई और उसका पौत्र इन्द्र तृतीय गद्दी पर बैठा। इसके पश्चात् अमोघ वर्ष द्वितीय, अमोघ वर्ष तृतीय, कृष्ण तृतीय, खोट्टिग तथा कर्क द्वितीय, आदि राजा शासक बने किन्तु अपने राज्य की सुरक्षा करने में असमर्थ रहे। लगभग 974 ई. के बाद में इस राज वंश का कोई शक्तिशाली राजा नहीं हुआ।

विजयनगर का यादव साम्राज्य-

दक्षिण भारत में मुसलमानी प्रभुत्व तथा संस्कृति को मिटाकर विजयनगर के सम्राटों ने पुनः हिन्दू धर्म की स्थापना की। परन्तु दक्षिण में शताब्दियों पूर्व से ही आर्य संस्कृति का पूर्ण विकास था। विजयनगर ने फिर से उसको नवजीवन प्रदान किया और जनता अपने प्राचीन स्वरूप को समझ गई। ईसा की 14वीं सदी में दक्षिण भारत में हिन्दू जाति की रक्षा का प्रश्न था। प्राचीन धर्म पर होने वाले प्रहार से समाज को बचाना था। यही कारण है कि भारतीय-संस्कृति की रक्षा करने वाले एक राज्य की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति विजयनगर साम्राज्य की स्थापना से की गई, जबकि दक्षिण में समाज की दशा शोचनीय हो गई थी।

विजयनगर के प्रथम राजवंश को 'संगमवंश' कहा जाता है। इस वंश के आदि पुरुष का नाम संगम था। यह चन्द्रवंशी यादव था। इसका उल्लेख अनेक शिलालेखों में पाया जाता है। इसके पिता का नाम अनन्त तथा माता का नाम मेघाम्बिका था। इसके पूर्व पुरुषों के विषय में अनेक बातें ज्ञात हैं, जिनके कारण इतिहासकार इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि यह वंश होयसल वंश की ही शाखा था। इन दोनों के वंशों में अनेक समानता पाई जाती है। संगम ने अपने गुणों से यदुवंश को सुशोभित किया।

संगम का मूल स्थान मैसूर के पश्चिमी भाग में 'कलास' नामक स्थान है। इसी भाग में प्रसिद्ध शंकराचार्य ने अपने आदि-पीठ शृंगेरी मठ की स्थापना की। इस पर संगम के पुत्र हरिहर, बुक्क आदि बड़ी श्रद्धा रखते थे। विजयनगर की स्थापना के बाद हरिहर तथा उसके समस्त भाईयों ने विजय के उपलक्ष्य में इस प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान की यात्रा की थी। होयसल वंश का प्रतापी शासक बल्लाल ने अपनी जाति वालों की एक विशाल सभा की। इसी सभा में संगम के पुत्रों को

विधर्मियों के आक्रमण को रोकने का कठिन कार्य सोंपा गया। बल्लाल तृतीय जीवन-पर्यन्त हरिहर महामण्डलेश्वर (प्रान्त-अधिपति) के स्वरूप में ही शासन प्रबन्ध करता रहा। दक्षिण भारत में आर्य सभ्यता को पुनः जीवित करने की भावना से प्रेरित होकर 1336 ई. में हरिहर ने अपने भाईयों को साथ लेकर शृंगेरी मठ के प्रधान श्रीपाद भारती तीर्थ विद्यारण्य के समीप यात्रा की। इसने विद्यारण्य के आदेशानुसार विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की। वह स्वतंत्र शासन होने पर भी अपने को 'महामण्डलेश्वर' तथा होयसल भूमि का राजा कहता रहा। जबकि उसके समस्त भ्राताओं ने हरिहर को सम्राट् मान लिया था और उसके शासन में प्रान्त के अधिपति थे। उसने तुंगभद्रा नदी के किनारे पर एक नगर बसाया जिसका नाम विजयनगर पड़ा। यहीं उसकी राजधानी रही।

विजयनगर की स्थापना के बाद हरिहर ने कदम्ब, कोंकण, तेलगु तथा मदुरा के मुसलमान शासकों, यहाँ तक कि तत्कालीन दिल्ली के तुगलक शासक का दमन किया। शासन के अन्तिम काल में हरिहर ने अंग, कलिंग तथा सुदूर पांड्य चक्रवर्ती पर भी विजय प्राप्त की। हरिहर प्रथम सन् 1355 में इस संसार से चला बसा। उसकी मृत्यु के पश्चात् बुक्क सिंहासन पर बैठा।

बुक्क ने शासक होकर सर्वप्रथम साम्राज्य का सुचारू रूप से संचालन करने के लिए द्वारसमुद्र से अपनी राजधानी विजयनगर को हटा लिया। लेखों में वर्णन मिलता है कि बुक्क की युद्ध-कुशलता से तथा उसकी तलवार की चमकाहट से शत्रुओं के दिल दहल उठते थे। इसने आन्ध्र, अंग और कलिंग पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। बुक्क का पर्याप्त समय नये स्थापित बहमनी राज्य के प्रसिद्ध शासक मुहम्मद शाह (सन् 1358-1377 ई.) से युद्ध में व्यतीत हुआ जिसमें उसकी जीत हुई थी। राजा बुक्क ने राज्य-प्रबन्ध आदर्श मार्ग पर व्यवस्थित किया। अपने मंत्रियों की सहायता से हिन्दू धर्म का पुनरुद्धार किया। प्रधान माधवाचार्य जो इसके गुरु थे और साथ ही साथ विजयनगर राज्य के मंत्री पद पर भी मौजूद थे, उन्होंने पश्चिमी भाग- वनवासी प्रान्त से तुरुष्कों को निकालकर जीर्ण मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया तथा प्रजा वर्ग में सुख-शान्ति की स्थापना की। दूसरे मंत्री सायणाचार्य थे जिन्होंने बुक्कराय की अनुमति से चारों वेद और तत्सम्बन्धी ब्राह्मण ग्रन्थों पर विस्तृत तथा प्रामाणिक भाष्य बनाया। इसकी विद्वान् पत्नी गंगा देवी ने अपने ऐतिहासिक महाकाव्य 'मथुरा विजयम्' में मदुरा की विजय का वर्णन बड़ी रोचकता के साथ किया है।

बुक्कराय के शासन के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र हरिहर द्वितीय विजयनगर साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। संगम वंश का यह सर्वप्रथम शासक था जिसने राज्य प्रबन्ध हाथ में लेती ही सम्राट् की महान पदवी धारण की। इसने चोल, चेर तथा पांड्य राजाओं को परास्त किया था अत: इसे शार्दूल मदभंजन की पदवी दी थी तथा इसकी ख्याति चारों तरफ फैल गई थी। हरिहर द्वितीय ने साम्राज्य को विस्तृत तथा सुशोभित करके भारतीय संस्कृति की रक्षा में अपना जीवन बिताया। इसका प्रमाण लेखों में तथा विद्वानों के रचित ग्रन्थों में मिले हैं। वह अपने पिता बुक्क के समान धर्म का पालक था तथा अपने कार्य व धर्म की उन्नति करके प्रजा की सुख और सम्पत्ति प्रदान की। यही कारण था कि प्रजा उसके समय में सतयुग की बात सोचने लगी। हरिहर अपने समय का बड़ा दानी राजा था, वह षोड़श महादान दिया करता था। हरिहर द्वितीय की सन् 1404 में मृत्यु होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र देवराज विजयनगर राज्य का अधिकारी हुआ। उसे भी बहमनी के नबाव से युद्धरत रहना पड़ा। वह राग-रंग तथा नाचने में व्यस्त रहता था, अतएव मुसलमानी सेना को उस परास्त करने का अवसर मिल गया तथा विजयनगर राज्य को बहुत बड़ी हानि हुई। देवराज की मृत्यु के बाद उसका पुत्र विजयराज गद्दी पर बैठा। उसने नौ वर्ष तक राज्य किया।

विजयराज के पश्चात् उसके पुत्र देवराय द्वितीय ने विजयनगर के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली वह एक आदर्श शासक था। उसके समय में संगम वंश की उन्नति चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। वह एक विद्वान् व्यक्ति, पंडितों का आश्रयदाता तथा प्रजापालन में संलग्न रहने वाला राजा था। देवराय ने सन् 1443 ई. में प्रसिद्ध किले मुद्गल, रायचूर और बंकापुर को जीत लिया। विजयनगर की सेना ने कृष्णा नदी तक अधिकार कर लिया और बीजापुर तथा सागर तक की भूमि को रौंद डाला। इटली निवासी प्रसिद्ध यात्री निकोली सन् 1421 ई. में देवराय के शासनकाल में विजयनगर राजधानी में आया था। उसने विजयनगर राज्य के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। सन् 1442 ई. में ईरानी दूत अब्दुलरज्जाक विजयनगर आया था और वह अपने साथ ईरान के बादशाह द्वारा भेजी गईं भेंटे और पत्र लाया था जो राजा को पेश किये गये। अब्दुल रज्जाक ने भी विजयनगर का प्रशंसात्मक वर्णन किया है।

देवराय ने अपने जीवन के अन्तिम समय में बहमनी राज्य तथा लंका पर आक्रमण किया था। संगम वंश का सबसे प्रतापी नरेश देवराय द्वितीय ही था। राज्योन्नति की चरम सीमा तथा सुख व शान्ति की पराकाष्ठा इसी के समय में

दिखलाई पड़ती है। ऐसे आदर्श मार्ग पर कार्य करते हुए देवराय ने बाईस वर्ष शासन किया। सन् 1446 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी। इसके पश्चात् संगम वंश की अवनति प्रारम्भ हो गई।

देवराय की मृत्यु के पश्चात् संगम वंश के अन्तिम दो शासकों ने पच्चीस वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उसके पुत्र मल्लिकार्जुन को राज्यभार संभालना पड़ा। मल्लिकार्जुन के बाद विरुपाक्ष ने शासन प्रबन्ध संभाला, लेकिन वह नाम मात्र का राजा था। विजयनगर के अन्तिम दो राजाओं का समय कष्ट के साथ व्यतीत हुआ तथा सन् 1486 ई. तक संगम वंश का अन्त हो गया।

शाखाएँ-सालुव वंश-

विजयनगर के संगम वंश का राज्य समाप्त होने पर सालुव वंश का राज्य आरम्भ होता है। सालुव राजा यदुवंशी थे। सालुव वंश का प्रथम शासक नरसिंह था। नरसिंह चन्द्रगिरि के अधिनायक पद पर नियुक्त था तथा संगम वंश की ओर से दक्षिण का शासन प्रबन्ध करता था। सन् 1486 ई. में स्वतंत्र रूप से विजयनगर राज्य का शासक बन गया। नरसिंह सात वर्ष तक शासन करता रहा। नरसिंह बाद उसका पुत्र इम्मादी नरसिंह सालुव वंश का दूसरा राजा था। पिता के समान उसका भी राज्य विस्तृत था।

तुलुव वंश-

सालुव इम्मादी नरसिंह नाम मात्र का शासक था। जनता उसके शासन से असंतुष्ट थी, अतएव अधिक विरोध होने के कारण नरेश ने स्वयं राज्य प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया तथा तुलुव वंश का प्रथम शासक बन गया। सालुव नरसिंह की मृत्यु के बाद 1493 ई. से 1505 ई. तक शासन का भार नरेश पर ही रहा था। वह राज्य विस्तार कर सन् 1507 तक शासन करता रहा। नरेश नायक की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र वीर नरसिंह विजयनगर का शासक हुआ। वह स्वतंत्र रूप से 6 वर्ष तक शासन करता रहा। इसके शासन में साम्राज्य का काफी विस्तार हुआ। तुलुव वंश का तीसरा शासक कृष्णदेवराय था। विदेशियों ने कृष्णदेवराय की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। शौर्य में इसकी विक्रमादित्य से समता की जाती है। कृष्णदेव सर्वप्रिय, न्यायकर्ता तथा व्यवहार कुशल शासक था। इसके राज्यकाल में विजयनगर की सर्वांगीण उन्नति हुई। कृष्णदेवराय की मृत्यु के बाद विजयनगर की अवनति शुरू हो गई। बाद के राजा साम्राज्य की अवनति को रोकने में असमर्थ रहे।

आरविदु वंश-

तुलुव वंश के पश्चात् विजयनगर के शासन का भार आरविदु वंश पर पड़ा। रामराय इस वंश का प्रथम ऐतिहासिक शासक था। वह कृष्णदेवराय के मंत्री श्रींग का पुत्र था। रामराय ने शासक बनते ही अपने समस्त शत्रुओं को पराजित किया। उसका राज्य समस्त दक्षिणी भाग में फैल गया। लंका के राजा ने भी रामराय की अधीनता स्वीकार की। गोवा के पुर्तगालियों के साथ विजयनगर के पर्याप्त व्यापारिक सम्बन्ध थे। अहमदनगर में मुसलमान धर्म पर कुठारघात होने से समस्त बहमनी रियासतें एक हो गईं। सत्तासी वर्ष की आयु में भी रामराय ने अपनी सेना को संगठित किया। विजयनगर के दो मुसलमान सेनापतियों ने राजा को धोखा दिया। तालिकोट स्थान पर भयंकर युद्ध हुआ! रामराय बुरी तरह से घायल हो गया तथा उसे पकड़ लिया गया तथा मार डाला। यह युद्ध सन् 1565 में हुआ था। इस युद्ध से विजयनगर की शक्ति नष्ट हो गई। शस्त्र और शास्त्र की चिन्ता में जीवन बिताते हुए नब्बे वर्ष की आयु में रामराय की मृत्यु हुई।

तालिकोट के युद्ध का प्रभाव दक्षिणी भारत पर अत्यधिक पड़ा। जैसा अत्याचार मुसलमानी सेना ने विजयनगर साम्राज्य तथा राजधानी में किया वैसी भयंकर विनाश, लूट और अत्याचार की बातें संसार के किसी युद्ध में सुनने को नहीं मिलती। यद्यपि इस युद्ध के पश्चात् भी तिरुमल, श्रीरंग, श्रीवेंकटपति देवराय, श्रीरंग द्वितीय ने विजयनगर राज्य पर शासन किया तथा राज्य विस्तार भी किया था, किन्तु अन्तिम शासक श्रीरंग के शासन में अशान्ति तथा गृहयुद्ध छिड़ गया और विजयनगर राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। सन् 1614 ई. लगभग आरविदु वंश के साथ ही साथ विजयनगर साम्राज्य का भी सदा के लिए लोप हो गया।

इस साम्राज्य की महत्ता क्यों थी तथा इसको भारतीय इतिहास में इतना महत्व क्यों दिया जाता है? इस बाबत इतना ही कहना है कि हिन्दू-साम्राज्य के प्रतिष्ठापक तथा हिन्दू-साम्राज्य के रक्षक ये विजयनगर सम्राट् न होते तो आज हमारी हिन्दू संस्कृति का नाम भी न रहता। दक्षिण भारत में भारतीय संस्कृति को बचाने का श्रेय इन्हीं यादव राजाओं को प्राप्त है। इन तीन सौ वर्षों के सुशासन में इन यादव सम्राटों ने दक्षिण भारत में मुसलमानों के पैर नहीं जमने दिये।

मैसूर का वाडियार वंश-

वाडियार एक भारतीय हिन्दू वंश था जिसने मैसूर राज्य पर सन् 1399 ई. से लेकर सन् 1947 ई. तक राज किया। इसका अन्त भारत की आजादी के बाद रजवाड़े की अधिकृत रूप से विदाई के बाद हो गया। मैसूर राज्य का मूलपुरुष विक्रम था जो 14वीं सदी में काठियावाड (द्वारका) से मैसूर गया था। इसके वंशज विजयराज और कृष्णराज यादव दो भाई थे। इस राजवंश की शुरुआत का एक दिलचस्प इतिहास है। विजय और कृष्ण नामक दो राजकुमार देवजामनी की करुण दशा का पता चलता है जो अपने पिता की मौत के बाद एक अन्य स्थानीय शासक द्वारा परेशान की जा रही थी। विजय और कृष्ण उस शासक का वध करके राज खानदान की रक्षा करते हैं। नतीजतन राजकुमारी का विवाह विजय से होता है और विजय वहाँ के शासक बनाये जाते हैं। मैसूर की परम्परा अपनाते हुए उन्होंने अपना नाम यदुराय रखा। उन्हें यदुराय वाडेयार भी कहा जाता है। 1423 ई. तक उन्होंने मैसूर पर राज किया। वाडेयार का राज मौजूदा मैसूर शहर के आस-पास तक सिमटा था। अपने समय के अन्य शासकों की तरह वाडेयार भी विजयनगर साम्राज्य के अधीन थे। जया चामराजा वाडेयार ग्याहरवें इस वंश के अन्तिम शासक हुए। इनके वंशज चामराज से हैदर अली ने राज्य छीन लिया परन्तु चामराज के पुत्र कृष्णराज ने अंग्रेजों की सहायता से अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया जो भारत की स्वतन्त्रता के समय तक बरकरार रहा।

- (विभिन्न पुस्तकों से संग्रहित)

मई 2015 ई. में एक पारम्परिक समारोह में यदुवीर कृष्णदत्ता चामराजा वाडियार का मैसूर राजघराने के प्रमुख के तौर पर राजतिलक हुआ। अमेरिका से शिक्षा प्राप्त यदुवीर प्रमोदा देवी के दत्तक पुत्र हैं। अम्बा-विलास पैलेस में हुए शानदार समारोह में वैदिक मंत्रोच्चार के बीच 23 साल के नये राजा को चाँदी के सिंहासन 'भद्रासन' पर विराजमान किया गया। यदुवीर वाडियार राज्य घराने के 27वें राजा हैं। मैसूर राज्य यादव क्षत्रियों को प्रसिद्ध राज्य रहा है।

मैसूर का प्रसिद्ध दशहरा-पर्व-

दशहरा पर्व का क्षत्रिय परम्परा में विशिष्ट महत्व है। मैसूर के वाडियार (यादव) वंश ने इस परम्परा को राजकीय भव्यता प्रदान की है। वर्तमान में मैसूर के दशहरा पर्व को देखने विश्वभर से लोग आते हैं। समारोह का मुख्य आकर्षण ऐतिहासिक स्वर्ण-सिंहासन जिस पर राजा बैठता है, हाथी की पीठ का

850 किलोग्राम वजन का हौदा जनता के दर्शनार्थ बनवाया गया है तथा अपनी भव्यता के लिए दुनिया में प्रसिद्ध है।

– (आस्था राजपुत्र, दि. 2016, पृष्ठ–17 तथा अमर उजाला (दैनिक)– 17 मई 2015

परिशिष्ट - 1

मथुरा जिले के यदुवंशी जादौन राजपूतों के गाँव

मथुरा जिले के जादौन राजपूतों ने सन् 1972 में 'श्रीब्रजमण्डल यदुवंशी राजपूत (क्षत्रिय) महासभा' का गठन किया और उक्त संगठन को दिनांक 22/4/1972 में आगरा से रजिस्टर्ड कराया, जिसका प्रधान कार्यालय बरसाना के समीप करहला गाँव है। उक्त महासभा वर्तमान में भी चल रही है। इस संगठन में 52 गांवों को उल्लखित किया गया है। अधिकांश गांव छाता तहसील के अन्तर्गत हैं। कुछ गांव भरतपुर जिला (राजस्थान) के भरतपुर तथा डीग तहसील के अन्तर्गत आते हैं। इनमें से कुछ गांवों में पूर्वकाल में जादौन बसते थे, वे आज जादौन रहित है। महासभा ने सभी गांवों को बसावट तथा क्षेत्रीय आधार पर सात खण्डों में भिन्न-भिन्न घार के नामों से उन्हें बाँटा है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

(क) तिरवाया घार - 1. घानौता, 2. बरका, 3. बुखरारी, 4. रूपनगर, 5. बुद्धगढ़ी, 6. फूलगढ़ी, 7. खैरार (शेरनगर), 8. सुजावली (इन आठ गांवों का घानौता से निकास है, घानौतिया कहलाते हैं तथा आपसी भाईचारा है) 9. शहजादपुर, 10. बढ़ा, 11. बिसम्भरा, 12. ओवा (गैरआबाद), 13. छिनपारई।

(ख) छाता घार - 1. छाता, 2. रनवारी, 3. सैमरी, 4. नगला देवीसिंह, 5. नगला बृजा, 6. दद्दी गढ़ी, 7. अजनौठी (गैर आबाद), 8. बिलौठी (गैर आबाद)।

(ग) सूतौलिया घार - 1. करहला, 2. मड़ोई, 3. पिसावा, 4. लोधोली, 5. रहेरा, 6. साँखी, 7. अलवाई, 8. उमराया, 9. कुंजेरा, 10. घरवारी, 11. सहार (गैर आबाद)।

(घ) साबोरिया घार - 1. कमई, 2. हाथिया, 3. चिकसौली, 4. गाजीपुर, 5. संकेत, 6. ततारपुर, 7. देवपुरा, 8. डिरावली, 9. पाली, 10. कोन्हई, 11. नरी।

(ड़) लठावन घार- (डीग तहसील) - 1. अऊ, 2. ऊमरा, 3. माडेरा, 4. गहनावली, 5. सोनगांव, 6. खेरिया, 7. दादू का नगला (गैर आबाद), 8. कोडेर (गैर आबाद)।

(च) मलाया घार (भरतपुर तहसील) – 1. मलाया, 2. रामनगर, 3. झीलरा, 4. जाटौली (जतौली घना), 5. स्योराना।

(छ) आजनोंक घार – 1. आजनोंक (अंजनवन)।

इनके अलावा मथुरा तहसील में मथुरा, वृन्दावन, राल, जुलेंदी, जिखनगांव है। माँट तहसील में बेरा तथा महावन तहसील में बन्दी जादौन राजपूतों का बड़ा गांव है।

गोत्र – मथुरा जिले के जादौन क्षत्रियों में विभिन्न गोत्र मिलते हैं- धानौतिया, बरौलिया, मलईया, बड़ौतिया (कोन्हईया), सिवारिया, हाथिया, जटौलिया, भृगुदे (भारद्वाज), ठकुरेले, साबोरिया, अमरावत, गौहजे, सोनगरिया सूतोलिया आदि। विवाह गोत्र बचाकर होते रहे हैं।- (मूल स्रोत-'मथुरा जिले की बोली'- डा० चन्द्रभान रावत, पृ० 85-86)

मथुरा जिले के जादौन गाँवों का विवरण- मथुरा जिले के जादौन क्षत्रियों के कुछ गांवों का ब्योरा मुझे प्राप्त हुआ है। जिन स्रोतों से विवरण प्राप्त हुए हैं वे निम्नलिखित हैं-

1. मथुरा- ए डिस्ट्रिक्ट मेमोअर- एफ.एस.ग्राउस।

2. जगाओं से प्राप्त प्राचीन पोथियों से विवरण।

3. राव सागरपाल सिंह जादौन राजपूतों के गांवों का लगभग सन् 1875 के ब्रिटिशकालीन दस्तावेजों का विवरण।

4. जादौन समाज में बुजुर्गो द्वारा प्राप्त जनश्रुतियां।

5. श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा – प्रकाशक, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

वर्तमान जेवर निवासी जगा सुनील कुमार शर्मा/पुत्र स्व. शंकर लाल शर्मा, मूल निवासी खकावली (राज.) से कुछ गांवों की बसावट का ब्यौरा जो प्राप्त हुआ है वह इस प्रकार है-

1. मलाया – मलाया गांव भरतपुर के पास लगभग 3 किमी. दूरी पर बसा है। यह गांव मथुरा जिले के जादौन राजपूतों के 52 गांवों में सम्मिलित है। राजा विजयपाल के पुत्र तिहनपाल की संतान मलरावत, जिसकी धौलपुर जिले के कंचनपुर गाँव में ससुराल थी, वहाँ आकर रहने लगा। वहाँ के जमींदार की बेटी रामदेवी उसकी पत्नी थी। रामदेवी बहुत वीर नारी थी। उस समय कंचन पुर मुस्लिम शासक के अन्तर्गत था। वहां का सूबेदार बहुत अत्याचारी था। मलरावत

ने उसके अत्याचार को सहन नहीं किया और अन्य यदुवंशियों को साथ लेकर उसके खिलाफ युद्ध छेड़ दिया। दोनों पक्ष युद्ध करते करते भरतपुर के पास सिवार खेड़ा जो धना में (विशाल वन प्रदेश, वर्तमान में घना पक्षी बिहार) में था, वहां तक आ गये। अन्त में मलरावत ने सिवारखेड़ा में उस मुस्लिम सूबेदार का सिर काट दिया। पीछे से भारी संख्या में मुस्लिम सेना आ गई जहाँ दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। अन्त में मलरावत वीरगति को प्राप्त हुआ तथा पत्नी रामदेवी पति के साथ सती हो गई। भरतपुर घना में आज भी इसके प्रमाण देखने को मिलते हैं।

सिवार खेड़ा के पास मलरावत के वंशजों ने एक गांव बसाया जिसका नाम मलरावत के नाम पर मलाया (मलाह) रखा गया, जो आज यदुवंशियों का बड़ा गांव है। कंचनपुर और मलाया गांव का आज तक वैवाहिक सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। मलाया से पहले सिवारखेड़ा जो घने में बसा था उसकी बसावट संवत् 1105 सन् 1048 में हुई थी, बाद में मलाया संवत् 1127 सन् 1070 में बसा। मलाया गांव सिवार खेड़ा से आकर बसा था इसलिए उसका गोत्र सिवारिया है। मलाया से अन्य स्थानों में बसने वाले मलईया कहलाते हैं। राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश के सात जिलों में मलईया बसे हैं। उसी काल में सिवार खेड़ा सेकुछ लोग उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानों में आकर बस गये जहाँ उन्हें सिवारिया कहते हैं। भरतपुर के पास 4 अन्य जादौन गांव है- रामनगर, जाटौली, झीलरा तथा स्योराना इनका निकास भी मलाया से है। सोरनसिंह से स्योराना, रामसिंह से रामनगर, मलाया से झीलरा तथा जटरावत से जटौली बसी। जटौली से छाता आदि गांवों में बसे जादौन जटौलिया कहलाते हैं। तथा अपना गोत्र जटोलिया (जटौला) बताते हैं। मलाया से ही कुछ जादौन रनवारी आदि गांवों में संवत् 1187 सन् 1130 में आकर बसे जो उन गावों में मलईया कहलाते हैं तथा अपना गोत्र मलईया बताते हैं।

2. रनवारी - ब्रिटिशकालीन दस्तावेज सन् 1875 के अनुसार-इसका रकवा 1536 एकड़ है। मालिकाना थोक दो हैं। जिनमें पाँच लम्बरदार है। महाराजा विजयपाल की मृत्यु (सन् 1046 ई.) के बाद बयाना पर यवनों का अधिकार हो गया। उस समय यदुवंशी राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर पलायन कर गये। उसी समय कुछ यदुवंशी जिला भरतपुर की डीग तहसील के बरौली गांव में आकर बस गये। कुछ वर्षो के बाद यवनों द्वारा पुनः बयाना पर आक्रमण तथा अधिकार किये जाने पर राजा कुँवरपाल के पुत्र आनन्दपाल मथुरा आकर रहे, उसी समय बरौली गाँव से यदुवंशी इस स्थान पर

आकर बसे जो रनवारी गांव कहलाता है। अर्थात यह गांव बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बसा था। बरौली गांव से आकर बसने के कारण निवासी भी बरौलिया कहलाते हैं। इसी गांव में कुछ सिवारिया तथा मलईया भी आकर बस गये थे। वर्तमान में बरौली गांव में एक भी जादौन परिवार नहीं है, पूरा गांव जाटों का बड़ा गांव है, लेकिन आज भी दोनों गांव इसी बसावट को महत्व देते हैं तथा दोनों गांवों का भाईचारा विशेष रूप से चल रहा है। एक जनश्रुति के अनुसार रनवारी गांव में पूर्वकाल में कोली जाति का निवास था जिन्हें यदुवंशियों ने मारकर भगा दिया था।

पौराणिक आधार पर रनवारी गांव भगवान् श्रीकृष्ण तथा राधाजी की लीलास्थली भी है। उल्लेख मिलता है कि यहाँ श्रीकृष्ण तथा राधाजी का सखियों सहित फूलों से युद्ध (लीला) हुआ था जिस कारण इस स्थान का नाम रणबाड़ी (युद्धस्थली) पड़ा जो कालान्तर में रनवारी हो गया। यहाँ इसी लीला से संबंधित श्रीकृष्ण की वंशी द्वारा एक कुंड का निर्माण हुआ जो श्याम कुंड कहलाता है। रनवारी गांव ब्रज में 'श्रीसिद्धबाबा मन्दिर' के लिए भी प्रसिद्ध है, जहाँ प्रतिवर्ष श्रीसिद्धबाबा, का वार्षिकोत्सव मनाया जाता है जिसमें समस्त ब्रजक्षेत्र तथा विदेशी सन्त तथा वैष्णवा एकत्रित होते हैं। रनवारी गांव का महत्व इस बात से और भी अधिक हो गया है कि यहाँ कलियुग के आदि यदुवंश प्रवर्तक तथा भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र 'श्रीवज्रनाभ महाराज' की विशाल तथा आकर्षक प्रतिमा भारतवर्ष में प्रथम बार चार साल पूर्व रनवारी गांव के यदुवंश समाज ने स्थापित की थी, जो वर्तमान युग में यदुवंश के इतिहास का मूल प्रतीक है। रनवारी गांव छाता-गोवर्धन मार्ग पर स्थित जादौन धार का एक गांव है। रणवारी का तात्पर्य स्मरविलास या विविध प्रकार के क्रीड़ाविलास के स्थान से है। यह मन्दिर गौड़ीय सम्प्रदाय से संबंधित है।

3. हाथिया - राजा विजयपाल के पुत्र तिमनपाल (तहनपाल) के वंशज राजा गेंद ब्रज क्षेत्र के गांव हाथिया (बरसाना के पास) आकर बसे। सन् 1875 ई० के ब्रिटिश कालीन दस्तावेजों में विवरण इस प्रकार है- 4466 एकड़ रकवा का जादौन राजपूतों का यह गांव मेव बाहुल्य है, यह एक बड़ा गांव है। महादजी सिंधिया में ग्वालियर ने रूपनगर के साथ हाथिया या गांव को सन् 1792 ई० में कृपा शंकर ज्योतिषी को दिया था जिसे उनके वंशज गोविन्द लाल ने सन् 1814 ई० में मथुरा के नगर सेठ व जमींदार लाला बाबू को 21000 रु. में बेच दिया और लाला बाबू ने इस गांव को वृन्दावन में अपने कृष्णचन्द्र मन्दिर की व्यवस्था के लिए लगा दिया। सन् 1829 में उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र श्रीनारायण

इस गांव के जमींदार हुए। पहले गौरवा राजपूतों के पास इस गाँव का 14 विस्वा मालिकाना हक रहा और 5 विस्वा जादौन व ब्राह्मणों के पास एवं शेष एक विस्वा मेव मुसलमानों के पास था। अब इनके पास 5 प्रतिशत माफीदारी रही और शेष जमींदारी लालबाबू के वंशजों के हाथ में रही। गांव में एक बड़ा आम का बाग है और एक नई मस्जिद। एफ. एस. ग्राउस ने 'मथुरा- ए डिस्ट्रिक्ट मेमोअर' में हाथिया गांव का उल्लेख किया है (सन् 1883)।

4. नरी- हाथिया गांव से कुछ यदुवंशी फूटी बिलौठी में आकर बसे। फूटी बिलौठी से संवत् 1127 (सन् 1070 ई०) में राजा नलराज सिंह ने आकर नरी गांव बसाया। सिद्ध नरी के साथ 'जादों' शब्द संवत् 1127 में प्रयोग हुआ है। नलराज सिंह बरसाना में चौहानों में ब्याहे थे। इनकी पत्नी का नाम अजुध्या देवी था जो सती हुई थी। नलराज के पुत्र का नाम अहलदे था। नलराज के भाई दूल्हेराज ने जाटनी का डोला लूटा था, उसके जाट हुए जिनके 14 गांव बसे है। तूमौला गांव (कोसी के पास) से इनका निकास है इसी कारण नरी गांव से इन जाटों की पाल का आपसी भाईचारा है। नरी गांव का गोत्र राजा अमरावत के नाम पर उमरावत है। एक अन्य जगा की जानकारी के अनुसार सीतापुर जिला (उ.प्र.) में जादौन के 14 गांव हैं जिनका निकास नरी गांव से है। इस प्रकरण में कहा जाता है कि इन 14 गांव के जादौन समाज ने यह आन ठान रखी थी कि जब तक नरी गांव के यदुवंशी हमसे बसने के लिए नहीं कहेंगे तब तक हम पक्के मकान बनाकर नहीं रहेंगे। शताब्दियों तक नरी गांव का जादौन समाज संभवत: अनभिज्ञता के कारण अपने जादौन समाज से सम्पर्क नहीं कर पाया और व लोग इन्तजार में लम्बा वक्त गुजार गये। तदोपरान्त वर्तमान में उन्होंने समय के साथ चलते हुए मकान भी बना लिये हैं तथा अपने कमाने खाने में लगे हुए हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है अपनों से न जुड़ना यदुवंश समाज की सबसे बड़ी कमजोरी रही है।

ब्रिटिश कालीन दस्तावेजों (सन् 1875) में नरी गांव का विवरण इस प्रकार है- नरी गांव सन् 1830 ई० तक बेगम साहिबा की निजी जागीर था। सन् 1830 ई० में इस गांव का पहली बार लगान बना जो 2650 रुपये था। गांव चार थोक में बटा हुआ था जिसमें प्रत्येक की दो पट्टी थीं और उनके आठ लम्बरदार थे। गांव में एक हलकाबन्दी स्कूल, दो छोटे मन्दिर और तीन तालाब है जिन्हें बिसीखर, सूर्यकुंड और लाल मेव के नाम से जाना जाता है। लाल मेव तालाब एक मेवाती ने खोदा था इसलिए उसके नाम से जाना जाता है। यहाँ दाऊजी का

प्रसिद्ध प्राचीन मंदिर है जिसे वज्रनाभ जी ने स्थापित किया था। ठाकुर चतुर्भुज सिंह जो एक जमींदार थे, नरी गांव से सन् 1704 ई० में जलेसर जाकर रहने लगे जिनके वंशजों ने बाद में अवागढ़ राज्य की स्थापना की जिसमें बहुप्रसिद्ध राजा बलवन्त सिंह हुए जिन्होंने आगरा में एक राजपूत कालेज की स्थापना की जोबाद में बलवन्त राजपूत कालेज और अब राजा बलवन्त सिंह कालेज के नाम से जाना जाता है।

- (मथुरा का इतिहास-भगवान् सहाय पचौरी)

नोट - नरी गांव तथा अवागढ़ स्टेट के इतिहास की विस्तृत जानकारी के लिये पढ़े-

1. एफ. एस. ग्राउस द्वारा लिखित- 'मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर' पृष्ठ-11

2. भगवान सहाय पचौरी द्वारा लिखित - 'मथुरा का इतिहास' पुस्तक।

3. डा० धीरेन्द्र सिंह जादौन द्वारा सोशल मीडिया पर प्राप्त तत्संबंधित विभिन्न पोस्ट।

5. करहला- बयाना के पास सूतौली गांव से निकास है। सूतौली से कोंकेरा गांव आकर बसे। कोंकेरा से चलकर चार भाईयों ने चार गांव बसाये- करहला, रहेरा, अलवाई तथ घरवारी (डीग के पास) आपस में भाईचारा है। इसे सूतौलिया धार भी बोलते हैं जिसमें जादौन के ग्यारह गांव आते हैं। इसी गांव में कुछ परिवार कंचनपुर से आकर बस गये जो कंचना कहलाते हैं। इस गांव में ब्रज की रास परम्परा को प्रसार करने वाले आचार्य घमंड देव जी का प्राचीन मन्दिर है। यह श्रीराधा जी की प्रिय सखि ललिता जी का जन्मस्थान है। यहाँ कंकण कुंड, कदम्ब खण्डी, झूला, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीविठ्ठलेश तथा श्रीगोकुलनाथ जी का बैठक हैं। भाद्र पूर्णिमा तिथि में बूढ़ी लीला प्रसंग में यहां रासलीला होती हैं।

ब्रिटिश कालीन दस्तावेज सन् 1875 के अनुसार - करहला गांव जादौन जमीदारों ने सन् 1811 में लाला बाबू को 300 रूपये में बेच दिया। यहाँ कृष्णकुण्ड सरोवर के चारों तरफ बहुत बड़े क्षेत्र में कदम्ब खण्डी फैली हुई है। करहला में तीन मन्दिर व एक हलका बंदी स्कूल है। यह गांव श्रीकृष्ण की लीला स्थली है तथा भादों शुक्ल 7 को यहां रास होता है।

6. कमई - सिनसिनी (डीग के पास) के नजदीक साबौरा गांव से निकास है। यहा जादौन समाज का बहुत बड़ा गांव है। कमई घार में यदुवंशियों

के ग्यारह गांव है जो साबौरिया कहलाते हैं। यह गांव श्रीकृष्ण की लीला स्थली है तथा दाऊजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। होयाया गोत्र मिलता है।

ब्रिटिश कालीन दस्तावेज के सन् 1875 के अनुसार - 3939 एकड़ का बड़ा गांव है। 1857 के स्वतंत्र संग्राम में यहाँ के जादौन जमीदार गौरवा राजपूतों से अपने भाई बन्धुओं के साथ लड़ते हुए मारे गये। यहाँ के निवासियों ने अपने खर्चे पर एक बड़ा स्कूल बनवाया। कमई गांव चौरासी कोस यात्रा का एक पड़ाव है। भादों शुक्ल 6 को यहां रासलीला व चैत्र कृष्ण 5 को यहां फूल डोल का मेला लगता है। यहां चार छोटे मन्दिर व तीन पवित्र सरोवर हैं जिन्हें हरिकुंड, बलेदव कुंड व पीरीपोखर कहते हैं। गांव के 14 लम्बरदार हैं। यह अष्टसखियों में प्रमुख सखी विशाखा जी का जन्म स्थान है।

7. धानौता आदि आठ गांव- विजयमंदिरगढ़ (बयाना) से भानू खेरा आये, वहाँ से रहेरा की पिलोखर, वहाँ से आजनोठ, आजनोठ से छातई (छाता), वहाँ से धानौता आये। धानौता से फूलगढ़ी उर्फ खैरार आये। धानौता जेठ सुदी 2 संवत् 969 सन् 912 शुक्रवार को बसा। फूलगढ़ी उर्फ खैरार साड़े साती 3/4 क्षेत्र में बसा। फूलगढ़ी वैशाख सुदी 3 शनिवार संवत् 1184 में बसी शेरनगर (खैरार) संवत् 1705 सन् 1648 आषाढ़ सुदी 5 शुक्रवार को मौहर्रम वाले दिन मुसलमानों को मारकर भगाया तब खैरार बसा। रूपनगर रूपन द्वारा, बुद्धगढ़ी बुद्धन द्वारा, सुजावली (सुजानो लड़की द्वारा) बसाये। इनके अलावा बरका तथा बुखरारी दो गांव हैं, इनका निकास भी धानौता से है। इन आठ गाँवों का निकास धानौता गांव से है तथा घानौतिया कहलाते हैं। आपस में भाईचारा है। बुलंदशहर में हीसौटी तथा अलीगढ़ में माधोगढ़ आदि लगभग 150 गांव धानौता से निकले हैं। ठकुरेले गोत्र बताया गया है। अन्य जानकारी के अनुसार कौंडेर से निकास बताया जाता है। शहजादपुर (मझोई गांव से निकास बताया जाता है) बढ़ा (रामपुर से निकास), बिशम्भरा, ओहवा (ओवा) तथा छिनपारई- ये पांच गांव मिलाकर 13 गांवों को तिरवाया घार कहा जाता है। बरका में मलईया, पारूआ तथा बुखारारी में कंचना, कोन्हईया, पारूआ आदिअन्य गोत्री भी बसते हैं।

ओबा (UBA) - ब्रिटिशकालीन दस्तावेज सन् 1875 के अनुसार- यह गांव ग्वालियर नरेश महादजी सिंधिया द्वारा शेषमल मिश्रा को माफी में दिया गया था। सन् 1836 में यह गांव इनके वंशजों के लिए निश्चित कर दिया गया और जिसका राजस्व सरकार को 130 रूपये मिलता था। गौतम ब्राह्मण मूलत: गांव के जमींदार थे जिनके पास सब थोड़ा ही हिस्सा है जब कि शेष गांव के

जादौन राजपूत जमींदार हैं। गौतमों के पास 8.5 विस्वा और शेष किशोरीलाल जादौन के पास। यमुना नदी किनारे पर रूपराम बरसाना वालों द्वारा बनवाया गया मन्दिर है जहाँ पर वार्षिक मेलों का चैत्र कृष्ण 5 को फूल डोल व सावन शुक्ल 5 को हिंडोला का आयोजन होता है। यहाँ मोहना बाग नामक एक आम का बाग है जो उसे लगाने वाले मोहन ब्राह्मण के नाम पर बोला जाता है। वर्तमान में इस गांव में कोई जादौन परिवार नहीं हैं।

बुखरारी – एफ. एस. ग्राउस ने अपनी पुस्तक 'मथुरा–ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर' में बुखरारी गाँव के बारे में लिखा है कि सोलहवीं सदी में शेरशाह के शासन काल में सड़क पर स्थित बुखरारी गांव के संस्थापक लश्कर खान की यादगार में उसके नाती ने एक मकबरा बनवाया था। ग्राउस ने बरका, बढ़ा, बिशम्भरा तथा शहजापुर गांवों का भी उल्लेख किया है।

8. अऊ (डीग के पास) – अऊ गांव डीग भरतपुर सड़क पर जादौन राजपूतों का बड़ा गांव है। करैनुआ गांव से निकास बताया जाता है। करैनुआ ही गोत्र है। अऊ गांव से अन्य गांवों में बसे जादौन परिवार अऊचिया कहलाते है।

9. कोंन्हई– बयाना से चले साबौरे (सिनसिनी के पास) आये। साबोरे से निकास। वहां से आकर 11 गांव बसे जो साबोरिया धार कहलाते हैं। गांव में बघौला, जगदम्बा आदि अन्य खापें भी बसती हैं। कोंन्हाई गांव से अन्य गांवों में बसे जादौन परिवार कोंन्हईया कहलाते हैं। यह गांव (कोंन्हाई) राधाकृष्ण की माधुरी लीला से जुड़ा हैं। एक समय श्रीकृष्ण यहीं पर श्रीराधाजी की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब बहुत देर तक राधाजी नहीं आई तो श्रीकृष्ण ने सखियों से पूछा कि– 'किशोरी जी क्यों ना आई?' कृष्ण के 'क्यों ना आई' पूछने के कारण ही इस स्थल का नाम 'क्यों नाई' हो गया। क्यों नाई का अपभ्रंश 'कोनाई' हुआ, जो इस स्थल का वर्तमान नाम हैं। यह गांव श्रीराधाकुण्ड से चारमील उत्तर–पूर्व में स्थित है। यहां ग्वाल कुंड और गोकुंड दर्शनीय हैं।– (श्रीब्रजमंडल परिक्रमा से उद्धृत)

पिसावा– रॉकौली (राज.) से निकास बताया जाता है। गाँव में कोंन्हईया, ओबिया, पेंखरिया, पारूआ आदि अन्य खाँपों के परिवार भी बसते हैं। यह गाँव श्रीराधा–कृष्ण की लीलास्थली है।

ब्रिटिशकालीन दस्तावेज 1875 के अनुसार– छाता परगना का महत्वपूर्ण गाँव है। यहाँ सम्भवत: पूरे जिले में सबसे घने व सुरम्य जंगल देखने को मिलते है। यह गाँव काफी हद तक जंगलों एवं खुले वन मार्गों की श्रृंखला का केन्द्र है।

एक बहुत ही सुन्दर कदम्ब के वृक्षों की पट्टी, पापरी, पसैण्डू, ढ़ाक व सिहोरा के वृक्षों के साथ फैली हुई है जिनमें वानर सेना के झुंड के झुंड रहते हैं। गांव के पूर्वी छोर पर करील, रेजा व पिलुआ की झाड़ी है लेकिन पश्चिमी छोर सुन्दर बागों से घिरा हुआ है जिससे गांव में सुगन्धि महकती रहती हैं। यहां पर किशोरी कुंड सरोवर व दो मन्दिर है जिनका परिक्रमा के समय तीर्थयात्री दर्शन करते हैं। भादों माह के शुक्लपक्ष की नवमी को यहां उत्सव होता है। गांव का देय राजस्व 1950 रूपये है तथा तीन थोकों में विभाजित है जिसके आठ लम्बरदार हैं।

'ब्रजभक्ति विलास' में नारायण भट्ट जी ने इसे पिपासा वन कहा है। एफ. एस. ग्राउस ने उल्लेख किया है कि गोचारण के समय ग्वाल वालों को प्यास लगने पर बलदेव जी ने जल लाकर उनको पिलाया था, इसीलिए इस गांव का नाम 16 वीं शताब्दी में गोकुल गुसाईयों ने प्यासाई अर्थात् प्यास आई दिया जो कालान्तर में पिसाया कहलाया। यहाँ तृष्णा कुण्ड और विशाखा कुंड हैं। गाँव के पास ही उत्तर-पश्चिम में मनोहर कदम्बखण्डी है जिसे महाभारत के प्रमुख पात्र गुरु द्रोणाचार्य पुत्र 'अश्वत्थामा की झाड़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रत्येक शनिवार को इस झाड़ी की अपार जन समूह परिक्रमा करता है। इस कदम्बखण्डी की विशेषता है कि इसकी लकड़ी को कोई व्यक्ति अपने स्वयं के दैनिक उपयोग में नहीं ले सकता है। साथ ही इसी वर्ष गाँव में कलियुग के आदि यदुवंश-प्रवर्तक एवं भगवान् श्रीकृष्ण के प्रपौत्र 'श्रीवज्रनाभ महाराज' का मन्दिर भी बन चुका है, जो यदुवंश के इतिहास का प्रतीक है। यह कदम्बखण्डी सन्तों की तपोस्थली है।

11. आजनौक-

ब्रिटिश कालीन दस्तावेज (सन् 1875) के अनुसार- अंजन शिला के नाम पर इस गाँव का नाम आजनौक पड़ा। यहाँ किशोरीकुण्ड नामक एक पवित्र सरोवर है। भादों माह में यहाँ रासलीला होती है। गाँव के तीन लम्बरदार है तथा रकवा 1304 एकड़ है।

ब्रजमण्डल परिक्रमा के अनुसार- यह अष्टसखियों में से एक विख्यात श्रीविशाखा सखी का निवास स्थान है। यहाँ श्रीकृष्ण ने अपनी प्राणवल्लभा श्रीराधा जी के नेत्रों में अंजन (काजल) लगाया था, इसलिए यह लीलास्थली आजनौक नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ रासमण्डल है जहाँ रासलीला हुई थी। गाँव के दक्षिण में किशोरी कुण्ड है। कुण्ड के पश्चिम तट पर अंजनी शिला है, जहाँ

श्रीकृष्ण ने श्रीराधाजी को बैठाकर अंजन लगाया था। यहाँ रासबिहारी का सुन्दर मन्दिर है।

12. सैमरी-

दरअसल गाँव का नाम सैमरी है। छाता से चार मील दक्षिण-पूर्व में सैमरी गाँव स्थित है। सैमरी के पास ही दक्षिण दिशा में एक मील दूर नरी गाँव है। प्राचीनकाल से ही इसे सामूहिक रूप में नरी-सैमरी ही कहा जाता है। सैमरी गाँव में श्रीकृष्ण-राधा की मान लीला की प्रमुख पात्र यूथेस्वरी श्यामरी सखी का निवास था। सम्भवत: श्यामला सखी के नाम पर इस गाँव का नाम सैमरी पड़ा है। गाँव में नरी-सैमरी देवी के नाम से एक प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। स्थानीय लोगों के अनुसार आगरा के धांधू भगत नगर कोट कांगडा (हिमाचल प्रदेश) से देवी को लेकर आये थे इसलिए इसका इतिहास आगरा से जुड़ा हुआ है तथा चैत्र माह के वार्षिक मेले में सबसे पहली पूजा आगरा के परिवार द्वारा की जाती है। बताया जाता है कि अजीत बाबा ने मन्दिर का निर्माण कराया था। देवी की सेवा-पूजा चार गाँव सैमरी, नगला देवीसिंह, नगला बिरजा तथा दद्दी गढ़ी के जादौंन राजपूत लोग करते हैं। ये चारों गाँवों के जादौंन राजपूत एक ही पूर्वज के वंशज हैं। चैत्र मास की अमावस्या से पूर्णमासी तक देवी का वृहत् मेला गलता है जिसमें उनकी दिव्य आरती होती है। मन्दिर लगभग चार सौ वर्ष प्राचीन बताया जाता है।

ब्रिटिश कालीन दस्तावेज सन् 1875 के अनुसार - आगरा-दिल्ली रोड पर बसा सैमरी गाँव सन् 1836 तक बेगम साहिबा की जागीर का गाँव रहा है। इसके बाद इस गाँव का राजस्व निर्धारित हुआ जो कि 2930 रुपये है। गाँव में 11 लम्बरदार हैं। रिकार्ड लिखने के लगभग 100 वर्ष पूर्व इस गाँव में से 2 मजरे (नगला) बने जिन्हें नगला ब्रजा व नगला देवी सिंह के नाम से जाना जाता है और उनके कुछ समय बाद तीसरा मजरा बना जिसे दद्दी गढ़ी के नाम से जानते हैं। सन् 1857 में यहाँ जादौंन राजपूतों एवं गौरवा राजपूतों में भयंकर लड़ाई हुई। इस गाँव में कई छोटे-छोटे आधुनिक मन्दिर हैं तथा एक अत्यन्त प्राचीन देवी का मन्दिर है जो स्थानीय स्तर पर बहुत ही प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध है। वर्ष में एक पखवाड़े तक चलने वाले दो वार्षिक मेले लगते हैं। सैमरी गाँव में ढाक के पेड़ों का एक जंगल है।

13. छाता (छत्रवन)-

छाता (छत्रवन) कस्बा दिल्ली-आगरा राष्ट्रीय राजमार्ग-2 पर मथुरा से दिल्ली की ओर लगभग 33 कि.मी. दूरी पर स्थित है। छाता, हरियाणा तथा राजस्थान से लगी सीमाओं पर मथुरा जिला की एक तहसील है। छाता श्रीकृष्ण लीला से सम्बद्ध एक पौराणिक स्थान है। 'ब्रजभक्ति विलास' तथा ब्रजयात्रा सम्बन्धी अन्य पुस्तकों में भी इसका प्राचीन नाम छत्रवन मिलता है, जो ब्रज के प्राचीन वनों में से एक है। विवरण मिलता है कि छत्रवन में ग्वाल बालों द्वारा श्रीकृष्ण को छत्र धारण कराकर ब्रज का राजा (छत्रपति) घोषित किया था, जिससे यह छत्रवन कहलाया। कालान्तर में छत्रवन से छाता नाम हो गया। छाता के बारे में एक ऐतिहासिक विवरण भी मिलता है- 'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास' के अनुसार शेरशाह शूरी (सन् 1540-1545) ने छाता में एक विशाल सराय बनवाई थी जिसके दोनों सिरों पर मुख्य दरवाजों (देहली गेट तथा आगरा गेट) पर विशाल छतरियों का निर्माण कराया जिसके कारण छाता नाम पड़ा। यह सराय आज छाता के मध्य में वास्तुकला का अद्‌भुत नमूना है। एफ.एस. ग्राउस द्वारा लिखित 'मथुरा-ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर' ग्रन्थ में भी छत्रवन-छाता तथा सराय शाही का विवरण मिलता है। कस्बे में नौ मन्दिरों तथा चार मस्जिदों का भी उल्लेख है।

श्रीचतुर्भुज मन्दिर (चार भुजावाला) छाता का निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रमुख तथा प्रसिद्ध मन्दिर है। यह कस्बे के मध्य में सराय शाही की पूर्वी चार चहार दीवारी से लगा हुआ है। मन्दिर निर्माण की प्राचीनता के बारे में मन्दिर के वर्तमान पुजारी पं. श्रीरामजी ने बताया कि यह मन्दिर सराय शाही का निर्माण पूरा होने पर उसके अवशेष सामग्री से बनवाया गया था। गाँव के उत्तर पूर्व कोने में सूर्यकुण्ड तथा पश्चिम कोण में चन्द्रकुण्ड स्थित है। कस्बे में दाऊजी मन्दिर, गोपाल मन्दिर, गंगाजी मन्दिर आदि कई मन्दिर हैं।

कस्बे में जादौंन राजपूतों के पाँच थोक हैं। लगभग इतनी ही संख्या जाट जाति की है। इनके अलावा ब्राह्मण, वैश्य तथा मुसलमान भी काफी संख्या में हैं। पूर्वकाल में छाता में मिर्घा जाति का वर्चस्व था। बताया जाता है कि जादौंन क्षत्रियों ने उन्हें मारकर भगा दिया था। विभिन्न खाँपों के जादौंन यहाँ बसते हैं।

नोट- छाता से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी के लिए पाठक वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन द्वारा प्रकाशित शोध ग्रन्थ 'ब्रज संस्कृति विश्वकोश' द्वितीय

खण्ड में मेरे द्वारा लिखे लेख 'छाता का चतुर्भुज मन्दिर' से पढ़कर कर सकते हैं।

14. उमराया-

यह भी एक पौराणिक गाँव है। विवरण मिलता है कि यहाँ श्रीराधाजी को उनकी सखियों ने सुन्दर सिंहासन पर पधराकर उमराव होने की घोषणा की थी। उमराव लीला के कारण इस गाँव का नाम 'उमराओं' पड़ा जो कालान्तर में उमराया कहलाता है। यह स्थान राधास्थली के रूप में भी प्रसिद्ध है। तत्पश्चात् पूर्णमासी जी ने यहाँ पर राधिका को ब्रजेश्वरी के रूप में अभिषिक्त किया। यहाँ किशोरीकुण्ड भी है। किशोरीकुण्ड से ही श्रीराधाविनोद-विग्रह प्रकट हुए थे। श्रीलोकनाथ गोस्वामी यहीं पर भजन करते थे। ये श्रीराधाविनोद जी ही लोकनाथ गोस्वामी के आराध्यदेव हैं। अब यह श्रीविग्रह जयपुर में विराजमान है। यह मन्दिर गौड़ीय सम्प्रदाय से सम्बन्धित है।

ब्रिटिश कालीन दस्तावेज सन् 1875 के अनुसार- उमराया गाँव महादजी सिंधिया ने बालकृष्ण शास्त्री को जागीर में दिया था जो सन् 1862 में ब्रिटिश सरकार द्वारा उनके वंशजों को निश्चित कर दिया गया। वैसे मूल रूप से गूजर गाँव के जमींदार थे जिन्होंने 12.5 विस्बा हिस्सा कायस्थों को बेच दिया लेकिन बाद में गाँव के नये व पुराने जमींदार दोनों आर्थिक परेशानियों में घिर गये। उन्होंने डीग के एक जादौन ठाकुर परसा को बेच दिया, बाद में गूजरों ने कुछ हिस्सा वापस ले लिया और इस गाँव का कुछ हिस्सा ऊंदी के रामबल जाट को दे दिया। अब इस गाँव में तीन जातियों के अलग-अलग थोक हैं। इसी गाँव का एक मजरा ऊमरपुर रनवारी के जमींदार के अधिकार में आ गया जिसके पास इसकी आमदनी का 5% प्रतिशत माफी में था और उमराया के जमींदारों के पास 7 प्रतिशत माफी में था। यहाँ बिहारीजी का अत्यन्त प्राचीन मन्दिर व किशोरीकुण्ड नाम का एक पवित्र सरोवर है और छैकुर की बहुत बड़ी झाड़ी है।

15. लोधोली (लुधौली)-

यह गाँव पिसावा गाँव से आधामील पश्चिम में है। यहाँ पर ललिता जी ने श्रीराधा और कृष्ण दोनों का मिलन कराया था। दोनों परस्पर मिलकर यहाँ अत्यन्त लुब्ध हो गये थे। लुब्ध होने के कारण इस स्थान का नाम लुधौली पड़ा। गाँव के बाहर उत्तर में ललिताकुण्ड है जहाँ दोनों का मिलन हुआ था। कुण्ड के पूर्वी तट पर ललिताबिहारी जी का दर्शन है। ब्रिटिशकालीन दस्तावेज सन्

1875 के अनुसार- गाँव का 410 एकड़ का रकवा है। कदम्ब की झाड़ियों से घिरा एक सरोवर है जिसे ललिताकुंड कहते हैं। गाँव के तीन लम्बरदार हैं।

16. साँखी-

यह लीला स्थान छाता- गोवर्धन मार्ग पर पड़ता है। यहीं पर श्रीकृष्ण ने शंखचूड़ दैत्य का वधकर उसके मस्तक से मणि निकालकर श्रीबलदेव जी को दी थी।

ब्रिटिशकालीन दस्तावेज 1875 के अनुसार- इस गाँव का रकबा 1607 एकड़ है। भादों माह में यहाँ रास का आयोजन होता है।

17. पाली-

पाली गाँव छाता- गोवर्धन मार्ग पर स्थित है। महन्त पीताम्बरलाल और उनके चेले सालिगराम को सन् 1839 तक इस गाँव की राजस्व माफी मिली हुई थी लेकिन सन् 1849 में ही महन्त बालमुकुन्द के साथ 950 रुपये राजस्व निर्धारित हुआ जो अब देय था। कुछ समय बाद महन्त ने इस गाँव को जादौन राजपूतों व अन्य को बेच दिया। यहाँ मुरलीमनोहर का मन्दिर है तथा करील व छैंकुर की बहुत बड़ी झाड़ी है। गाँव का रकवा 690 एकड़ है।- (ब्रिटिशकालीन दस्तावेज सन् 1875)

18. संकेत-

बरसाना न नन्दगाँव के बीच में बसा हुआ है जो सन् 1812 में लालाबाबू मथुरा को 301 रुपये में बेच दिया था। बाद में इसे जादौन राजपूतों ने खरीद लिया और इस समय जादौन राजपूत जमींदार हैं। यहाँ राधारमण जी का मन्दिर है जिसे बरसाना के रूपराम कटारा ने बनवाया था। इसके अलावा दो अन्य मन्दिर और भी हैं जो राजा व वर्धमान व महाराजा ग्वालियर ने बनवाये। यहाँ कृष्णकुण्ड व विमलाकुण्ड नाम के दो पवित्र सरोवर हैं।- ब्रिटिशकालीन दस्तावेज सन् 1875)

19. देवपुरा-

देवपुरा गाँव का रकवा 710 एकड़ है। यहाँ पर गोपालजी का मन्दिर है और ठाकुर मौहकम सिंह द्वारा बनवाई गई एक कचहरी है जो कि वर्तमान जादौन जमींदारों के पूर्वज थे। गाँव बराबर के दो थोक में बटा है जिसके तीन लम्बरदार हैं।- (ब्रिटिशकालीन दस्तावेज सन् 1875)

20 गाजीपुर-

गाजीपुर गाँव के दस-दस बिस्वा के दो थोक हैं, एक थोक के जमींदार ब्राह्मण हैं और दूसरे थोक के जादौंन ठाकुर। कुल मिलाकर पाँच लम्बरदार हैं। यहाँ प्रेम सरोवर नाम का एक सरोवर है जिसमें भादों माह में डोंगा (नौका) लीला होती है। इसे बरसाना के रूपराम कटारा ने पक्का करवाया। किशोरीवल्लभ, ललितमोहन व गोपालजी के मन्दिर का भी निर्माण रूपराम ने करवाया। मन्दिर के ठीक सामने एक चार दीवारी युक्त एक सुन्दर बगीचा है जिसमें एक छतरी बनी हुई है जो रूपराम ने अपने भाई हेमराज की याद में बनवाई। भादों माह के शुक्लपक्ष की 12 को यहाँ रासलीला का आयोजन होता है। गाँव का रकवा 634 एकड़ है।- (ब्रिटिशकालीन दस्तावेज सन् 1875)

21. बन्दी-

यह गाँव मथुरा जिले में बलदेव- राया मार्ग पर 4 कि.मी. दूरी पर स्थित जादौंन राजपूतों का बहुत बड़ा गाँव है। इस गाँव में बन्दी-आनन्दी देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है जिसमें बन्दी-आनन्दी तथा मनोवांछा देवियों के दर्शन मिलते हैं। मुख्य रूप से बन्दी देवी के नाम से बन्दी ग्राम प्रसिद्ध है। उल्लेख मिलता है कि बन्दी देवी भगवान् श्रीकृष्ण की परम भक्त तथा सेविका थीं। वर्ष में दो बार नवरात्रियों में यहाँ देवी मन्दिर पर विशाल मेला लगता है। मन्दिर का संचालन ट्रस्ट द्वारा होता है। लगभग दो वर्ष पूर्व बन्दी जादौंन समाज के द्वारा कलियुग के यदुवंश प्रवर्तक एवं भगवान् श्रीकृष्ण के प्रपौत्र 'श्रीवज्रनाभ महाराज' की मूर्ति-स्थापना बन्दी देवी के मन्दिर में कराई जा चुकी है। यहाँ का समाज काफी शिक्षित है। यहाँ बन्दी-आनन्दी के नाम से एक सुन्दर सरोवर तथा घने कदम्बों की झाड़ी है।

परिशिष्ट-2

अहीर जाति

जातीय इतिहास की अनेक पुस्तकों के अध्ययन के उपरान्त यह बात स्पष्ट हो जाती है कि- आजकल जातीय इतिहास लिखने वाले भारतीय लेखक निरपेक्ष इतिहासकार नहीं हैं। आजकल अधिकांश लेखक अपने जातीय महत्व को उच्च श्रेणी में पहुँचाने की महत्वाकांक्षा में अन्य उच्च श्रेणी वर्णों तथा जातियों के इतिहास से अपने को जोड़ते जा रहे हैं और उनके महापुरुषों से अपनी उत्पत्ति की कल्पना सृजित कर बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिख रहे हैं तथा समाजों को भ्रमित कर रहे हैं। अन्य उच्च वर्ण-जाति के इतिहास को बिना शोध किये मनमाने ढंग से अपना बनाकर लिख रहे हैं, जबकि उन्हें स्वयं अपने अस्तित्व और इतिहास का कोई ज्ञान नहीं है, जो एक प्रकार से किसी विशेष वर्ण-जाति के महान इतिहास तथा संस्कृति का अपहरण कर उसे नष्ट तथा दूषित करने का घृणित कार्य है।

कहा जाता है कि जो अपना इतिहास नहीं जानता, वह खुद को भी नहीं जानता क्यों कि इतिहास ज्ञान से ही व्यक्ति या समाज की पहचान बनती है। आज संसार की अनेक जातियाँ अपने इतिहास, संस्कृति के ज्ञान बिना लुप्त हो चुकी हैं। देखने में आता है कि वर्तमानकाल में मूलतः यादव-यदुवंशी-जादौन क्षत्रिय समाज अपने इतिहास-संस्कृति और अस्तित्व को भूला हुआ है तथा आधुनिक काल के जातीय घालमेल में दन्त कथाओं एवं अप्रामाणिक इतिहास को यत्र-तत्र पढ़कर या सुनकर भ्रमित हो रहा है।

गत बीसवीं सदी से जिस तरह से यदुवंश इतिहास के साथ छेड़-छाड़ हो रही है वह किसी से छिपी नहीं है, कुछ इतिहासकारों और अंग्रेजों ने यदुवंश इतिहास को तोड़-मरोड़कर पेश किया है। इन इतिहासकारों ने सिर्फ वही इतिहास बताया जिसमें क्षत्रिय-राजपूत कमजोर रहे। इस भ्रामक इतिहास से बचने के लिए मूल यादवों को अपना वास्तविक और प्रामाणिक इतिहास सामने लाना होगा।

वर्तमान भारतीय राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में जातीय समीकरण एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। समय के चलते यदुवंश का मूल उपनाम 'यादव' अन्य विशेष जाति ने अपना लिया है, साथ ही अन्य कई जातियाँ भी अपने को यादव-यदुवंशी कह रहे हैं। विडम्बना यह है कि यदि जातीय समीकरण ऐसे ही बदलते

रहे तो भारत के मूल यदुवंशियों का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा और भविष्य की मूल यदुवंशीय पीढ़ियों को अपना नाम, पहचान और अस्तित्व ढूँड़ना मुश्किल हो जायेगा।

कल तक जो जातियाँ खुद को राजपूतों-क्षत्रियों से भिन्न हुआ बताती थीं, आज सम्पन्न होने पर वे लोग यदुवंश के गौरवशाली इतिहास को भी अपना बता रहीं हैं। आजकल अधिकतर युवावर्ग इण्टरनेट पर गूगल तथा विकिपीडिया में अपना इतिहास खोज रहे हैं। तथ्यहीन इतिहासकारों की पुस्तकों का सन्दर्भ देकर सोशल मीडिया पर अर्थ का अनर्थ कर रहे है। अपना कोई प्रामाणिक उत्पत्ति- इतिहास न होने के कारण शब्दजाल को अपने पक्ष में प्रस्तुत कर अपने तथा अन्य समाजों को भ्रमित कर रहे हैं लेकिन मात्र कहने से किसी की जाति या वर्ण नहीं बदला करता है, हकीकत को सभी जानते हैं। लगता है कि कुछ जातियों ने यदुवंश इतिहास को बलात् अपहरण करने के लिए इण्टरनेट पर एक प्रकार का शीतयुद्ध छेड़ रखा है।

मैं इण्टरनेट पर अहीरों द्वारा डाली गई पोस्टों का ब्यौरा तथा यादव-यदुवंश के इतिहास को लिखने वाले यादव (छद्मनाम) लेखकों द्वारा लिखी अनेक पुस्तकों के बिलकुल निराधार, तथ्यहीन, ऐतिहासिक रूप से अप्रामाणिक तथा कल्पित कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ जिससे पाठकों को उनकी ओछी मानसिकता का पता चल सके। उन जातियों की उत्पत्ति का कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं है, इनमें कोई पूर्व से आभीर भिन्न जाति लिखता है तो कोई अहीर को आभीर से उत्पत्ति का उल्लेख करता है। कोई श्रीकृष्ण से जोड़कर यदुवंश से उत्पत्ति बताता है तो कोई पर्जण्य से उत्पत्ति लिखता है। कोई चौहान कुल की शाखा बताता है तो कोई अहीर जाति को अलग ही बताता है। कोई यदुवंशी आहुक राजा से उत्पत्ति लिखता है तो कोई देवमीढ़ यदुवंशी राजा की वैश्यकन्या पत्नी से उत्पन्न होना लिखता है। कोई अम्बष्ठ जाति से तो कोई आर्यों से और कोई इन्डोशिथियन से। अर्थात् उनकी उत्पत्ति के बारे में कोई इतिहासकार निश्चित नहीं है एवं वे स्वयं भी नहीं हैं, केवल कयास लगाये जा रहे हैं। एक-एक शब्द के आधार पर उत्पत्ति ढूँढ़ने की कोशिश की जा रही हैं। बिना कुछ सोचे समझे, बिना इतिहास तथा पुराणों का अध्ययन किये अनाप-शनाप लिख रहे हैं। उन्हें स्वयं यह नहीं पता कि इतिहास क्या है और हम क्या लिख रहे हैं? उनके कुछ उल्लेख इस प्रकार हैं-

1. पौराणिक दृष्टि से अहीर या आभीर यदुवंशी राजा आहुक के वंशज हैं। इसकी पुष्टि हेतु शक्ति संगम तंत्र तथा हरिवंश पुराण का उल्लेख किया है।

स्पष्टीकरण- शक्ति संगम तंत्र पुस्तक की कोई जानकारी नहीं है पुस्तक हो सकती है लेकिन यदुवंश का सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास पुराणों में मिलता है। हरिवंश पुराण के हरिवंश पर्व के अध्याय- 37 में वभ्रुवंश का वर्णन पढ़ें। इस अध्याय में श्लोक 17-20 के अन्तर्गत अभिजित् के एक पुत्र आहुक तथा एक पुत्री आहुकी दो जुड़वाँ सन्तानें हुई। इसी अध्याय के श्लोक 26-29 में आहुकी का विवाह अवन्ति के राजवंश में हुआ तथा आहुक के काशिराज की पुत्री से देवक और उग्रसेन दो पुत्र हुए। देवक के चार पुत्र तथा सात पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। इन सातों पुत्रियों का विवाह वसुदेव जी के साथ हुआ। उग्रसेन के नौ पुत्र थे उनमें कंस सबसे बड़ा था। यहाँ हरिवंश पुराण के अनुसार आहुक द्वारा अहीरों की उत्पत्ति मात्र कल्पना है। हरिवंश पुराण के अलावा श्रीमद्भागवत्, मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण, कूर्मपुराण तथा पद्मपुराण में भी आहुक राजा के सम्बन्ध में हरिवंश पुराण के अनुसार ही वर्णन है, अहीर उत्पत्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है।

दूसरे आहुक राजा यदुवंश में उत्पन्न क्षत्रिय थे, न कि अहीर या आभीर।

'दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डिया पीपुल' वोल्यूम 1,- 'दि वैदिक एज'- आर.सी. मजूमदार पुस्तक में तथा अन्य प्रसिद्ध इतिहासकारों द्वारा वंशवलियों में आहुक राजा का पुराणानुसार वर्णन मिलता है। 2. यादव वंशावली में दर्शाया है- सात्वत-वृष्णि-देवमीढुष- दो पत्नी (मदिषा तथा वैश्यवर्णा) मदिषा से शूरसेन- वसुदेव आदि। वैश्यवर्णा से पर्जण्य-नौ नन्द।

2. **स्पष्टीकरण**- आगे लिखा है कि नंद और वसुदेव वृष्णिवंशी यादव थे तथा दोनों चचेरे भाई थे। यह वंशावली तथा विवरण अप्रामाणिक तथा कपोल-कल्पित है। किसी भी पुराण में या किसी भी प्रसिद्ध इतिहासकार की यादव वंश तालिका में देवमीढुष राजा द्वारा अहीर नन्दों की उत्पत्ति इस प्रकार नहीं लिखी है। **'पर्जण्य'** शब्द एक वैदिक देवता है। वैदिक साहित्य में (ऋग्वेद में) पर्जण्य का अर्थ बादल या वर्षा करने वाले देव के लिए प्रयोग हुआ है। एक स्थान पर सूर्य के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। पुराणों के अनुसार देवमीढुष की एक ही पत्नी थी मारिषा, जिससे शूरसेन उत्पन्न हुए।

3. भारत में यादवों के जितने राज्य रहे हैं- होयसल, सेन, चालुक्य आदि वे सभी यादव कृष्ण पुत्र साम्ब तथा प्रद्युम्न के वंशज हैं।

स्पष्टीकरण– भारत में जितने भी मूल यादव (यदुवंशी) राज्य रहे हैं वे सभी कृष्ण पुत्र साम्ब तथा प्रद्युम्न के वंशज हैं, यह तथ्य तो यदुवंश के इतिहास से प्रमाणित है, लेकिन उन राज्यों में अहीरों का शासन कभी नहीं रहा। दूसरे, लगता है कि ऐसी अप्रामाणिक बातों को लिखने वालों ने कभी इतिहास उठाकर पढ़ा ही नहीं है। उन्हें इस बात का पता ही नहीं है कि होयसल को छोड़कर सेन तथा चालुक्य यदुवंश में नहीं हैं।

4. मौसल पर्व में **कृष्ण ने साम्ब को शाप दिया था** कि तुम्हारी पत्नियों का भोग आभीर करेंगे जो कृष्ण के समय में ही आभीरवाल के शासक बन गये।

स्पष्टीकरण– महाभारत के पूरे मौसल पर्व में कहीं भी इस प्रकार का विवरण नहीं है। लगता है कि लेखक ने महाभारत की शक्ल ही नहीं देखी है इसीलिए मनगढन्त उल्टी–सीधी बातें लिख रहे हैं।

5. कुछ अहीर लेखक आभीर जाति से अहीर जाति की उत्पत्ति लिखते हैं। कहते हैं कि आभीर से अपभ्रंश अहीर हो गया है।

स्पष्टीकरण– आभीर जाति एक प्राचीन जाति है जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण (युद्धकाण्ड) तथा महाभारत (मौसल पर्व) में मिलता है, लेकिन अहीर जाति का उल्लेख कृष्ण जन्म से प्रारम्भ होता है। अनेक विद्वान्, इतिहासकार तथा पुराण, आभीर जाति को जंगली, लुटेरे तथा हिंसक लिखते हैं जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण महाभारत के मौसल पर्व में अर्जुन के साथ जाते हुए शेष यदुवंश के धन, बालक, स्त्रियों को पंचनद के रास्ते में आभीरों ने लूट लिया था जबकि उस समय नन्द आदि अहीरों का निवास ब्रजक्षेत्र था और वे मानवतावादी थे, तो फिर ये आभीर जाति से उत्पन्न कहाँ से और कब से हुए।

अनेक शिक्षित अहीरों ने अनेक पुस्तकें भी लिखी है– जैसे, 'यादवों का वृहत् इतिहास'– डा० जयनारायण सिंह यादव, 'यदुकुल का इतिहास'– रामदेव यादव, 'यादव इतिहास'– स्वामी सुधानन्द योगी, 'गुजरात का यदुवंश'– स्वामी सुधानन्द योगी, 'अहीरों का इतिहास', दिल्ली से प्रकाशित मासिक पत्रिका– 'यादव कुल दीपिका' आदि। अहीरों द्वारा लिखित पुस्तकों को पढ़ने से स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि मूल यादव–यदुवंशी समय परिवर्तन के साथ अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक नहीं हो सके जिसका लाभ उठाकर अहीर जाति अपने को कृष्ण–संस्कृति से जोड़कर 'यादव' उपनाम (मूल यादवों का) प्रयोग करने लगे। और आज वे अपने को मूल या यदुवंशी कहकर यदुवंश से उत्पत्ति का असफल प्रयास कर रहे हैं। साथ ही स्वयं यादव बनकर मूल यादव–यदुवंश

से उत्पत्ति का असफल प्रयास कर रहे हैं कि अहीर वंश अर्थात् नन्दवंश ही वास्तविक यदुवंश है अर्थात् यदुवंश का इतिहास ही नन्दवंश का इतिहास है जो केवल श्रीकृष्ण के लालन-पालन तक सीमित है। अब तो अहीर लोग श्रीकृष्ण के साथ-साथ कलियुग के यदुवंश प्रवर्तक तथा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रपौत्र श्री वज्रनाभ जी को भी हड़पने में लग गये हैं जबकि वज्रनाभ जी के मथुरा राज्य पर शासनकाल में अहीर जाति का कोई प्रमाण ही नहीं है। वज्रनाभ काल तथा उनसे परवर्तीकाल में भी अहीरों का यदुवंश से सम्बन्ध का कोई प्रमाणिक उल्लेख नहीं मिलता है। ईसा की दूसरी शती से 'अहीर' शब्द का उल्लेख मिलता है, इससे पूर्वकाल में सभी पुराणों तथा इतिहास में नन्द आदि के लिए 'गोप' शब्द मिलता है, अहीर शब्द नहीं।

पौराणिक साहित्य में इनकी मिश्रित उत्पत्ति बताई गई है। अहीरों को वायुपुराण में 'म्लेच्छ' कहा गया है। व्यास स्मृति में गोप (अहीर) को नीच जाति में तथा अस्पृश्य लिखा है। पतंजलि ने उनका सम्बन्ध शूद्रों से जोड़ा है। मनु ने अहीर को ब्राह्मण पिता तथा अम्बष्ठ स्त्री से उत्पन्न माना है। कई पुराणों में अहीर जाति को वैश्य जाति के अनुरूप बताया है। इस प्रकार प्रायः सभी छोटी-मोटी जातियों की उत्पत्ति मिश्रण के परिणाम स्वरूप हुई है। अहीर जाति के बारे में पौराणिक, ऐतिहासिक जितने भी वर्णन या उल्लेख मिलते हैं, प्रायः सभी में स्पष्टतः अहीर जाति यादव (मूल), यदुवंशी से भिन्न जाति है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वर्तमान सामाजिक जीवन में भी हमेशा से रहा है। यदुवंशियों का अहीर जाति से किसी भी प्रकार (रिश्ते-नाते, विवाह-सम्बन्ध, बसावट, गोत्र, व्यावहारिक चाल-चलन आदि) का कोई भी सामाजिक, व्यावहारिक सम्बन्ध नहीं रहा है। प्राचीन काल से ही सामाजिक जीवन दोनों का भिन्न रहा है।

एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि एक ओर तो अहीर कथित यादव (वर्तमान में) कृष्ण के वंशज, यदुवंश में उत्पन्न (यदुवंशी), क्षत्रिय तथा राजपूत बनने का प्रयास कर रहे हैं और दूसरी ओर अहीर ग्वाला, यादव आदि पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जाति बनकर सत्ता से राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक आरक्षण का पूरा लाभ ले रहे हैं। सपा सरकार के काल में सन् 1997 (उ.प्र. में) पिछड़ी जाति की लिस्ट में अहीर, गोप, ग्वाला, यदुवंशी शब्दों को समानार्थी लिखा है तो सवाल उठता है कि अहीर जाति तो छद्म यादव-यदुवंशी, क्षत्रिय-राजपूत उच्च वर्ण में होकर भी पिछड़ी जाति बनकर आरक्षण का पूरा लाभ ले रही हैं और मूल यादव-यदुवंशी लिस्ट में

अहीर के समानार्थी होने पर भी उन्हें आरक्षण के लाभ से क्यों वंचित रखा गया है। उक्त तथ्य से अहीरों की दोगली तथा ओछी मानसिकता स्पष्ट होती है कि एक तरफ अहीर पिछड़ी जाति है इसलिए आरक्षण का लाभ भी लेते रहें और दूसरी तरफ हम समाज में उच्च वर्ण- क्षत्रिय भी कहलायें, तो किसी तत्सम्बन्धित महत्वपूर्ण वंश से अपनी मनगढन्त उत्पत्ति का इतिहास भी गढ़ लें, चाहें उसके लिए कुछ भी करना पड़े।

पिछड़ा वर्ग आयोग, लखनऊ, 2012 की रिपोर्ट में भी यादव/यदुवंशी/जादौंन को अहीर जाति से स्पष्ट भिन्न लिखा है।

इतना स्पष्ट है कि वर्तमान में उपरोक्त जाति मूल यादव-यदुवंशी-जादौंन के इतिहास को मिटाने में हर प्रकार से गुप्त रूप से लगे हुए हैं। यहाँ तक कि यदुवंश समाज को भ्रमितकर यदुवंशियों की मूल सांस्कृतिक धरोहरों को भी धनबल, सत्ताबल तथा जनबल द्वारा खरीदने तथा बलात् अपहरण कर स्वयं अपनाने में लगे हुए हैं। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ- स्वामी सुधानन्द योगी (अहीर) ने अपनी पुस्तक 'गुजरात का यदुवंश' की भूमिका में लिखा है- "ज्यों-ज्यों शिक्षा एवं राजनैतिक चेतना बढ़ रही है, उसी प्रकार यादवों (अहीर) में यादव इतिहास की माँग भी बढ़ रही है। यह शुभ लक्षण है क्योंकि किसी विद्वान् की यह बात शत-प्रतिशत ठीक है कि- यदि आप किसी समाज को मिटाना चाहते है तो उसको लठ्ठ लेकर मारने की जरुरत नहीं, उसका सच्चा इतिहास मिटा दीजिए वह धीरे-धीरे आप मर जायेगी।"

यह बात बिलकुल सत्य है और अहीर जाति गुप्त रीति से इसी चाल का अनुसरण कर रही है।

परिशिष्ट-3

गोत्र-सम्बन्धी वैज्ञानिक-दृष्टिकोण

हम सभी जानते हैं कि स्त्री में गुणसूत्र XX और पुरुष में XY गुणसूत्र होते हैं। इनकी सन्तान में माना कि पुत्र हुआ (XY गुणसूत्र) अर्थात् इस पुत्र में Y गुणसूत्र पिता से ही आया यह तो निश्चित ही है, क्योंकि माता में तो Y गुणसूत्र होता ही नहीं है। और यदि पुत्री हुई तो (XX गुणसूत्र) यानी यह गुणसूत्र पुत्री में माता व पिता दोनों से आते हैं।

1. XX गुणसूत्र- XX गुणसूत्र अर्थात् पुत्री, अस्तु XX गुणसूत्र के जोड़े में एक X गुणसूत्र पिता से तथा दूसरा X गुणसूत्र माता से आता है। तथा इन दोनों गुणसूत्रों का संयोग एक गाँठ-सी रचना बना लेता है CROSSOVER जिसे कहा जाता है।

2. XY गुणसूत्र- XY गुणसूत्र अर्थात् पुत्र, यानी पुत्र में Y गुणसूत्र केवल पिता से ही आना सम्भव है क्योंकि माता में Y गुणसूत्र है ही नहीं, और दोनों गुणसूत्र असमान होने के कारण पूर्ण CROSSOVER नहीं होता केवल 5% तक ही होता है और 95% Y गुणसूत्र ज्यों का त्यों (INTACT) ही रहता है।

तो महत्वपूर्ण Y गुणसूत्र हुआ, क्योंकि Y गुणसूत्र के विषय में हमें निश्चित है कि यह पुत्र में केवल पिता से ही आया है। बस, इसी Y गुणसूत्र का पता लगाना ही गोत्र-प्रणाली का एकमात्र उद्देश्य है जो हजारों लाखों वर्ष पूर्व हमारे ऋषियों ने जान लिया था।

वैदिक गोत्र प्रणाली और Y गुणसूत्र-

अब तक हम यह समझ चुके हैं कि वैदिक गोत्र प्रणाली Y गुणसूत्र पर आधारित है अथवा Y गुणसूत्र को ट्रेस (खोज) करने का एक माध्यम है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति का गोत्र अत्रि है तो उस व्यक्ति में विद्यमान Y गुणसूत्र अत्रि ऋषि से आया है या अत्रि ऋषि उस Y गुणसूत्र के मूल हैं। चूँकि Y गुणसूत्र स्त्रियों में नहीं होता, यही कारण है कि विवाह के पश्चात् स्त्रियों को उसके पति के गोत्र से जोड़ दिया जाता है।

वैदिक/हिन्दू संस्कृति में एक ही गोत्र में विवाह वर्जित होने का मुख्य कारण यह है कि एक ही गोत्र से होने के कारण वह पुरुष व स्त्री भाई-बहन कहलायेंगे, क्योंकि उनका प्रथम पूर्वज एक ही है। परन्तु क्या ये थोड़ी अजीब बात नहीं है कि जिन स्त्री या पुरुष ने एक दूसरे को कभी देखा तक नहीं और दोनों अलग-अलग देशों/क्षेत्रों में परन्तु एक ही गोत्र में जन्मे, तो वे भाई बहन हो गये?

इसका मुख्य कारण एक ही गोत्र होने के कारण गुणसूत्रों में समानता का भी है। आज के आनुवंशिक विज्ञान के अनुसार यदि समान गुणसूत्रों वाले दो व्यक्तियों में विवाह हो तो उनकी सन्तान आनुवंशिक (वंशानुगत) विकारों के साथ उत्पन्न होगी। ऐसे दम्पत्तियों की सन्तान में एक सी विचारधारा, पसन्द, व्यवहार आदि में कोई नयापन नहीं होता। ऐसे बच्चों में रचनात्मकता का अभाव होता है। विज्ञान द्वारा भी इस सम्बन्ध में यही बात कही गई है कि सगोत्र शादी करने पर अधिकांश ऐसे दम्पत्ति की सन्तानों में आनुवांशिक दोष अर्थात् मानसिक विकलांगता, अपंगता, गम्भीर रोग आदि जन्मजात ही पाए जाते हैं। शास्त्रों के अनुसार इन्हीं कारणों से सगोत्र विवाह पर प्रतिबन्ध लगाया था।

इस गोत्र का संवहन यानी उत्तराधिकार पुत्री को एक पिता प्रेषित न कर सके, इसलिए विवाह से पहले कन्या दान कराया जाता है और गोत्र-मुक्त कन्या का विवाह कर भावी वर अपने कुल गोत्र में उस कन्या को स्थान देता है, यही कारण है कि उस समय विधवा-विवाह भी स्वीकार्य नहीं था, क्योंकि कुल-गोत्र प्रदान करने वाला पति तो मृत्यु को प्राप्त कर चुका है। इसीलिए कुण्डली मिलान के समय वैधव्य (विधवा) पर विशेष ध्यान दिया जाता और मांगलिक कन्या होने पर ज्यादा सावधानी बरती जाती है।

आत्मज या आत्मजा का सन्धि विच्छेद-

आत्म+ज अथवा आत्म+जा

आत्म=मैं, ज या जा=जन्मा या जन्मी यानी मैं ही जन्मा या जन्मी हूँ।

यदि पुत्र है तो 95% पिता और 5% माता का सम्मिलन है। यदि पुत्री है तो 50% पिता और 50% माता का सम्मिलन है। फिर यदि पुत्री की पुत्री हुई तो वह डी एन ए 50% का 50% ही रह जायेगा। फिर यदि उसके भी पुत्री हुई तो उस 25% का 50% डीएनए रह जायेगा। इस तरह से सातवीं पीढ़ी में पुत्री जन्म में यह प्रतिशत घटकर 1% रह जायेगा। अर्थात् एक पति-पत्नी का ही डीएनए

सातवीं पीढ़ी तक पुनः-पुनः जन्म लेता रहता है, और यही है सात जन्मों का साथ।

लेकिन जब पुत्र होता है तो पुत्र का गुणसूत्र पिता के गुणसूत्रों का 95% गुणों को आनुवांशिकी (वंशानुगत) में ग्रहण करता है और माता का 5% (जो कि किन्हीं परिस्थितियों में 1% से भी कम हो सकता है) डीएनए ग्रहण करता है और यही क्रम लगातार चलता रहता है, जिस कारण पति और पत्नी के गुणों युक्त डीएनए बारम्बार जन्म लेते रहते हैं, अर्थात् यह जन्म-जन्मान्तर का साथ हो जाता है। इसीलिए अपने ही अंश को पितर जन्म-जन्मान्तरों तक आशीर्वाद देते रहते हैं और हम भी अमूर्त रूप से उनके प्रति श्रद्धा-भाव रखते हुए आशीर्वाद ग्रहण करते रहते हैं। यही सोच हमें जन्मों तक स्वार्थी होने से बचाती है और सन्तानों की उन्नति के लिए समर्पित होने का सहारा देती है।

एक बात और, माता पिता यदि कन्यादान करते हैं तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे कन्या को कोई वस्तु समझते हैं, बल्कि इस दान का विधान इस निमित्त किया गया है कि दूसरे कुल की कुलवधू बनने के लिए और उस कुल की कुलधात्री बनने के लिए उसे गोत्र मुक्त होना चाहिए। डीएनए मुक्त तो हो नहीं सकती क्योंकि भौतिक शरीर में वे डीएनए रहेंगे ही, इसलिए मायका अर्थात् माता का रिश्ता बना रहता है, गोत्र यानी पिता के गोत्र का त्याग किया जाता है। तभी वह भावी वर को यह वचन दे पाती है कि उसके कुल की मर्यादा का पालन करेगी यानी उसके गोत्र और डीएनए को दूषित नहीं होने देगी, वर्णशंकर नहीं करेगी, क्योंकि कन्या विवाह के बाद कुलवंश के लिए रज का रजदान करती है और मातृत्व को प्राप्त करती है। यही कारण है कि प्रत्येक विवाहित स्त्री माता समान पूज्यनीय हो जाती है। यह रजदान भी कन्यादान की ही तरह कोटि यज्ञों के समान उत्तम दान माना गया है जो एक पत्नी द्वारा पति को दान किया जाता है।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अलावा यह संस्कारगत पवित्रता किसी अन्य सभ्यता में दृश्य ही नहीं है!

- (सोशल मीडिया से प्राप्त अनाम पोस्ट से उद्धृत)

परिशिष्ट-4

सहगमन, जौहर एवं शाका: विश्लेषण

प्राय: ऐसा माना जाता है कि जौहर एवं शाके तब ही हुए है जब आक्रान्ता विदेशी प्राय: इस्लाम धर्मानुयायी रहे एवं विजित देशी प्राय: हिन्दू-धर्मानुयायी क्षत्रिय रहे। यह प्रवाद प्राय: सत्य है। इसका अपवाद 'तनोट' आदि का शाका शब्द प्रचलन में आया। मुस्लिमों में लड़ते हुए मरने को हिन्दू क्षत्रियों ने शाका कहा।

भाटियों द्वारा किये गये शाकों का विवरण-

1. जैसलमेर की ख्यातानुसार भाटी शालिवाहन के समय चौथी शताब्दी के अन्तिम दशक में गजनी के गढ़ में हूणों से युद्ध होने पर शाका हुआ। 1,30,000 व्यक्ति मारे गये। जौहर हुआ अथवा नहीं स्पष्टत: ज्ञात नहीं होता। यह शाका भी भाटियों ने किया।

- (जैसलमेर की ख्यात, पृ. 34, लेखक- प्रो. जी.एल.एल. देवड़ा)

2. लगभग 654 ई. या इसके तत्काल पश्चात् गजनी के किले में जादम अथवा भाटियों का अरबी-योद्धाओं से युद्ध हुआ जिसमें भाटियों की ओर के लगभग 3 लाख व्यक्ति मारे गये। फलत: इनसे गजनी छूट गया। इनके कुछ बचे हुए भाटी अन्यत्र बसने को मजबूर हुए। डा० देवड़ा ने इसको जैसलमेर की ख्यातानुसार शाका माना है किन्तु इनमें से कुछ लोग युद्ध से विरत होकर दक्षिणी खुरासान के 'धूर' पहाड़ी क्षेत्र में जा बसे। अत: इसे शाका कहना उचित नहीं। शाका वही माना जा सकता है जहाँ बचाव पक्ष लड़कर नि:शेष हो जाये, युद्ध से बचकर एक व्यक्ति भी न आये।

- (जैसलमेर की ख्यात, पृ. 34, लेखक- प्रो. जी.एल.एल. देवड़ा)

3. तन्नौट (तनोट) के स्वामी तन्नु भाटी के समय सन् 841 में भटिंडा के पँवारों और बराहों ने आक्रमण किया। तन्नु भाटी पँवारों से अधिक लड़ने में असमर्थ थे। अत: उन्होंने जौहर करवाकर प्रात:काल केशरिया धारण करके

शाका किया। इसमें 70,000 व्यक्ति रणखेत रहे। यही वह शाका तथा जौहर है, जिसका सम्पन्न होना क्षत्रियों के बीच हुए युद्ध के कारण माना गया है।

- (पूगल का इतिहास, पृ. 76, लेखक- हरीसिंह भाटी)

4. यादवों (यदुवंशी) द्वारा किये गये एक अन्य जौहर का विवरण और मिलता है जिसके अनुसार महाराजा विजयपाल यदुवंशी और अबूबकर कंधारी के बीच कनावर (बयाना व वैर के मध्य) का सन् 1046 में युद्ध हुआ। महाराज जीतकर जब दुर्ग की ओर दुश्मन के झण्डे वगैरह लेकर लौट रहे थे, तब दुर्गरक्षक ने समझा कि दुश्मन आ रहा है। उसके कहने पर गढ़ में क्षत्राणियों ने जौहर कर लिया।

- (चित्तौड़ की ज्वाला: रानी पद्मिनी, लेखक- दामोदर लाल गर्ग)

5. 'पूगल का इतिहास' में हरीसिंह भाटी ने काका-भतीजे के सन् 1152 के युद्ध व शाके का वर्णन न करके भतीजे भोज (यह दुसा जी का पौत्र व विजयराज लांझा का पुत्र था, जैसल इसका ताऊ लगता था) का मरना गजनी के सुल्तान मुहम्मद से हुए युद्ध में लिखा है। जब कि मुहणोत नैणसी व जैसलमेर की ख्यातानुसार काका जैसल ने गजनी के मुहम्मद सुल्तान के साथ भतीजे भोज पर लुद्रवा में हमला किया। भोज ने अपने साथियों सहित शाका किया। जैसल वही है जिसने सन् 1155-56 में जैसलमेर किले की स्थापना की।

6. जैसलमेर के रावल मूलराज भाटी के समय में सन् 1254 ई. में सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी की सेना के आक्रमण होने पर मूलराज की क्षत्राणियों ने किले में जौहर किया एवं किले के बाहर मूलराज और उसके पुत्र देवराज व इसके पुत्र हम्मीर आदि ने लड़कर शाका किया।

- (पूगल का इतिहास, पृ. 77, लेखक- हरीसिंह भाटी)

7. सन् 1305 में अलाउद्दीन खिलजी व जैसलमेर के दूदा भाटी जसोड़ के मध्य हुए युद्ध में भाटी हारे। क्षत्राणियों ने जौहर किया। क्षत्रियों के मुण्ड कटे जिनको खिलजी का सेनापति बोरियों में भरकर दिल्ली ले गया। गढ़ में केवल राख मिली।

- (पूगल का इतिहास, पृ. 77-78, लेखक- हरीसिंह भाटी)

8. रोहणी (सिंध) का किला भाटी राजपूतों का था। इसको महराबल अमरसिंह (सन् 1659-1702 के समय में बलोचों एवं छीना राजपूतों ने आ

घेरा। महराबल जैसलमेर से रोहणी पहुँचते उसके एक दिन पूर्व ही किलेदार भाटी सरदार ने विवश होकर पहले जौहर सम्पन्न कराया, तत्पश्चात् केशरिया पहन के शाके का वरण किया।

- (जैसलमेर की ख्यात, 29-30, लेखक- प्रो. जी.एल.एल. देवड़ा)

- 'सम्मेलन' (त्रैमासिक शोध पत्रिका), भाग 100, संख्या 1, सन् 2015 से उद्धृत

लेख- ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल

परिशिष्ट-5

प्राचीन भारत के विश्व प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र

बौद्धधर्म की उन्नति के साथ-साथ बौद्ध-विहार भी शिक्षा के केन्द्र बन गये तथा कुछ ख्याति प्राप्त महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के रूप में विकसित हो गये। प्राचीन भारत के प्रमुख विश्वविद्यालयों का विवरण इस प्रकार है-

1. तक्षशिला-

वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले में स्थित तक्षशिला प्राचीन समय में गान्धार राज्य की राजधानी थी। रामायण के अनुसार भरत ने अपने पुत्र तक्ष के नाम पर इस नगर की स्थापना की थी। महाभारत से पता चलता है कि परीक्षित् के पुत्र जनमेजय ने इसे जीता तथा यहाँ अपना प्रसिद्ध नागयज्ञ किया था। तक्षशिला की इतिहास में प्रसिद्धि का कारण उसका ख्याति प्राप्त शिक्षा केन्द्र होना था। शिक्षा प्राप्त करने वालों में राजा तथा सामान्यजन दोनों ही सम्मिलित थे। सबके साथ समानता काव्यवहार किया जाता था। कोशल के राजा प्रसेनजित्, मगध का राजवैद्य जीवक, सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणक्य, बौद्ध विद्वान् वसुबन्धु आदि ने यही शिक्षा प्राप्त की थी। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि यह धनुर्विद्या तथा वैद्यक की शिक्षा के लिए पूरे विश्व में प्रसिद्ध था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपनी सैनिक शिक्षा यहीं पर ग्रहण की थी। चाणक्य यहाँ का मुख्य आचार्य था। जातक ग्रन्थों से पता चलता कि तक्षशिला में धार्मिक विषयों के अतिरिक्त लौकिक विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। मगध का राजवैद्य जीवक वैद्यक का प्रसिद्ध विद्वान् बन गया। उसने मगधराज बिम्बसार, अवन्ति नरेश प्रद्योत तथा महात्मा बुद्ध की चिकित्सा करके उन्हें रोगमुक्त किया था। तक्षशिला में दूर-दूर से विद्यार्थी यहाँ तक कि यूनान से भी, शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। जातक ग्रन्थों के अनुसार यहाँ 18 विषयों की शिक्षा दी जाती थी। यहाँ विधि (कानून), औषधि तथा सैन्य विज्ञान के विशेष विद्यालय थे। यहाँ धनुर्विद्या, आखेट, हस्तिविद्या, पशु भाषा विज्ञान आदि की भी शिक्षा की उचित व्यवस्था थी। इस प्रकार तक्षशिला में मानविकी, विविध विज्ञानों, व्यवसायों तथा शिल्पों आदि की उच्चतम शिक्षा प्रदान की जाती थी।

पश्चिमोत्तर भारत में स्थित होने के कारण तक्षशिला विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा आक्रान्त होता रहा। सिकन्दर के समय यहाँ का राजा आम्भी (आम्भीक) था जिसने स्वदेश के विरुद्ध उसकी मदद की थी। यूनानी लेखक इस देश की समृद्धि का उल्लेख करते हैं। मौर्यकाल में यहाँ उत्तरापथ की राजधानी थी। मौर्यकाल के बाद यहाँ इन्डोयूनानी, शक तथा कुषाण राजाओं का शासन रहा। तक्षशिला पर चौथी शती में गुप्त राजाओं का प्रभाव रहा। इसके बाद हूणों के बर्बर आक्रमण ने यहाँ की प्राचीन समृद्धि एवं सभ्यता को नष्ट कर दिया। सातवीं शती के चीनी यात्री हुएनसांग के समय में यह नगर उजाड़ हो चुका था। तत्पश्चात् तक्षशिला का इतिहास अन्धकारपूर्ण हो गया। 1863 ई. में कनिंघम ने इस स्थान के खण्डहरों का पता लगाया। 1913 से 1929 तक मार्शल ने यहाँ व्यापक पैमाने पर खुदाईयाँ करके पुरातात्विक महत्व की अनेक वस्तुएँ प्राप्त की। इनसे पता चलता है कि तक्षशिला बौद्ध सभ्यता का प्रमुख केन्द्र रहा था। तक्षशिला जैन-धर्म का भी तीर्थस्थल कहा गया है।

इस प्रकार तक्षशिला प्राचीन भारत का एक प्रसिद्ध सांस्कृतिक एवं व्यापारिक स्थल था।

2. बनारस-

तक्षशिला के समान बनारस भी इस समय शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र था। यहाँ तक्षशिला के शिक्षा प्राप्त स्नातक आचार्य के रूप में कार्य करते थे। यह संगीत की शिक्षा के लिए विश्वविख्यात था। विद्यालयों में धनी तथा निर्धन दोनों ही वर्गों के छात्र शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे।

3. नालन्दा-

प्राचीन भारत के शिक्षा केन्द्रों में नालन्दा विश्वविद्यालय का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है। बिहार राज्य की राजधानी पटना के दक्षिण में लगभग 40 मील की दूरी पर आधुनिक बड़गाँव नामक ग्राम के समीप यह स्थित था। राजगृह से नालन्दा की दूरी लगभग 8 मील है। सर्वप्रथम यहाँ एक बौद्ध-विहार की स्थापना गुप्तकाल में करवाई गयी। चीनी यात्री हुएनसांग लिखता है कि इसका संस्थापक 'शक्रादित्य' था जिसने बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों के प्रति विशेष श्रद्धा के कारण इसकी स्थापना करवायी थी। 'शक्रादित्य' की पहचान कुमार गुप्त प्रथम (415-455 ई.) से की जाती है जिसकी सुप्रसिद्ध उपाधि 'महेन्द्रादित्य' की थी। 'महेन्द्र' तथा 'शक्र' एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। कुमार गुप्त के पुत्र तथा

उत्तराधिकारी बुद्धगुप्त (बुधगुप्त) ने अपने पिता के कार्य को जारी रखा। इस प्रकार गुप्तवंश के पाँच राजाओं द्वारा इसके विहार बनवाये गये। मध्य भारत के शासक की पहचान सम्राट् हर्ष से की जाती है। जिसने नालन्दा में एक ताम्रविहार बनवाया था। हर्षकाल तक आते-आते नालन्दा महाविहार एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हो गया। ग्यारहवीं शती के अन्त तक हिन्दू तथा बौद्ध दाताओं द्वारा नालन्दा में मठ था विहार बनवाये जाने का क्रम चलता रहा।

नालन्दा विश्वविद्यालय में न केवल भारत के कोने-कोने से अपितु चीन, मंगोलिया, तिब्बत, कोरिया, मध्य एशिया आदि देशों से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। ह्वी ली यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या दस हजार बताता है। यहाँ अध्ययन-अध्यापन का स्तर अत्यन्त उच्चकोटि का था। यद्यपि नालन्दा महायान बौद्धधर्म की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था तथापि यहाँ अन्य अनेक विषयों की शिक्षा भी समुचित रूप से प्रदान की जाती थी। पाठ्यक्रम में महायान तथा बौद्धधर्म के अठारह सम्प्रदायों के ग्रन्थों के अतिरिक्त वेद, हेतुविद्या, शब्दविद्या, योगशास्त्र, चिकित्सा, तंत्रविद्या, सांख्य दर्शन के ग्रन्थों आदि की शिक्षा व्याख्यानों के माध्यम से दी जाती थी। हुएनसांग जिसने स्वयं 18 महीने तक रहकर अध्ययन किया लिखता है कि यहाँ सैकड़ों की संख्या में अत्यन्त उच्चकोटि के विद्वान् निवास करते थे। इन सभी की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी।

नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में ग्रन्थों का विशाल संग्रह तथा प्राचीन पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित थीं। हाँ 'धर्मराज' नामक पुस्तकालय तीन भव्य भवनों-रत्नसागर, रत्नोदधि तथा रंजक- में स्थित था। इस प्रकार नालन्दा अपने ढंग का अद्भुत एवं निराला विश्वविद्यालय था तथा प्राचीन शिक्षा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र था जिसकी ख्याति न केवल भारत अपितु विदेशों में भी फैली हुई थी। वास्तव में यह एक विश्व भारती था जहाँ से सम्पूर्ण देश में संस्कृति का प्रसार होता था। हर्ष के बाद लगभग बारहवीं शती तक इसकी ख्याति बनी रही। बारहवीं शती के अन्त में मुस्लिम आक्रान्ता बख्तियार ने इस विश्वविद्यालय को सन् 1193 ई. में ध्वस्त कर दिया। यहाँ के भिक्षुओं की हत्याकर दी गयी बहुमूल्य पुस्तकालय को जला दिया। इतिहासकारों के अनुसार इस पुस्तकालय में लगी आग 2 साल 3 महीने 11 दिन तक जलती रही थी। इस प्रकार एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के शिक्षा केन्द्र का अन्त दुःखद हुआ।

4. विक्रम शिला-

बिहार प्रान्त के भागलपुर जिले में स्थित विक्रम शिला नालन्दा के ही समान एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का शिक्षा केन्द्र रहा है। विक्रम शिला के महाविहार की स्थापना पाल नरेश धर्मपाल (775-78) ने करवायी थी। उसने यहाँ मन्दिर तथा मठ बनवाये और उन्हें उदारतापूर्वक अनुदान दिया। धर्मपाल के उत्तराधिकारी तेरहवीं शती तक इसे राजकीय संरक्षण प्रदान करते रहे। परिणाम स्वरूप विक्रम शिला लगभग चार शताब्दियों से भी अधिक समय तक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय बना रहा।

विक्रम शिला विश्वविद्यालय में छः महाविद्यालय थे। प्रत्येक में एक केन्द्रीय कक्ष तथा 108 अध्यापक थे। केन्द्रीय कक्ष को 'विज्ञान भवन' कहा जाता था। विश्वविद्यालय में अध्ययन के विशेष विषय व्याकरण तर्कशास्त्र, मीमांसा, तंत्र, विधिवाद आदि थे। बारहवीं शती में लगभग तीन हजार विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करते थे। इनमें अधिकांश तिब्बत के थे। इस प्रकार विक्रम शिला ग्यारहवीं-बारहवीं शती में भारत का सर्वाधिक सम्पन्न, सुसंगठित तथा प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय था। इस प्रकार यहाँ के आचार्यों ने भारतीय ज्ञान-विज्ञान को अन्तर्राष्ट्रीय जगत में प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

सन् 1203 ई. में मुस्लिम आक्रान्ता बख्तियार खिलजी ने विक्रम शिला विश्वविद्यालय को दुर्ग के भ्रम में ध्वस्त कर दिया। भिक्षुओं की सामूहिक हत्या कर दी गयी तथा ग्रन्थों को जला दिया गया। इस समय विश्वविद्यालय के कुलपति शावय श्रीभद्र थे। वे अपने कुछ अनुयायियों के साथ किसी प्रकार बचकर तिब्बत भाग गये। इस प्रकार एक गौरवशाली शिक्षण संस्थान का अन्त बड़ा दुःखद रहा।

परिशिष्ट-6

(क) पर्जण्य (पर्जन्य)

(पर्जण्यः- पृणन् जनयति अर्थ में पृ+जन+यत्=पर्जण्य)

ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त का एक अपना देवता है, जिसमें उस देवता की स्तुति की गई है। यास्क ने देवता का अर्थ किया है- "देवी दानाद् द्योतनाद् दीपनाद् वा" पदार्थों को देने वाले, प्रकाशित होने वाले अथवा प्रकाशित करने वाले को देवता कहा जाता है। ऋग्वेद में देवताओं की कुल संख्या 33 है।

ऋग्वेद में पर्जण्य को साधारण देवता माना गया है। पर्जण्य की स्तुति के केवल तीन सूक्त हैं। पर्जण्य का अर्थ है- जल को बरसाने वाला मेघ। इस देवता का वर्णन इसी रूप में किया गया है। मेघ को जल भरने का एक बड़ा पात्र कहा गया है, जिसे दृति कहते हैं।

पर्जण्य औषधियों को उत्पन्न करने वाला देवता है। इसकी उपमा वृषभ से दी गई है, जिसकी सवारी जल से भरे हुए मेघ हैं। यह अंकुरों को उत्पन्न करता है और पृथ्वी को विस्तृत बनाता है। पर्जण्य को दिव्य जलों का पिता कहा गया है। जल को बरसाते हुए वह बिजली के एवं सिंह गर्जनाओं के साथ जलमय रथ पर आरूढ़ होकर आकाश में विचरण करता है।

पर्जण्य को औषधियों, तृणों और अंकुरों का जन्मदाता कहा गया है। यह गौओं, घोड़ियों और अन्य मादा जातियों में गर्भाधान की सामर्थ्य को उत्पन्न करता है। एक स्थान पर पर्जण्य को द्युलोक एवं पृथ्वी लोक का पिता कहा गया है। दूसरे स्थान पर द्युलोक को इसका पिता तथा पृथ्वी को पत्नी कहा गया है। पर्जण्य शब्द का अर्थ है- जन्म अर्थात् उत्पन्न होने वाले चर और अचर को पूर्ण करने वाला।

पर्जण्य सूक्त-

मण्डल-5, ऋषि-अत्रि, देवता-पर्जण्य, सूक्त-83, छन्द-1,5,6,7,8 और 10 मंत्र में त्रिष्टुप, 2,3,4 में जगती तथा 9 में अनुष्टुप।

सहिता पाठ-

1. अच्छ वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवासा।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदान रतो दधात्योषधीषु गर्भम्॥

अनुवाद– हे स्तुति करने वाले तुम बलवान पर्जण्य की ओर अभिमुख होकर प्रार्थना करो! इन स्तुतियों की वाणियों से उसकी स्तुति करो। हवि रूपी अन्न से अथवा नमस्कार के साथ उसकी सब प्रकार से सेवा करो। जलों को बरसाने वाला, शीघ्र दान देने वाला और गर्जता हुआ पर्जण्य औषधियों में गर्भ रूप जल को धारण कराता है।

2. वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावता यत्पर्जंयः स्तनयन हन्ति दुष्कृतः॥

अनुवाद– पर्जण्य वृक्षों को नष्ट करता है और राक्षसों को मारता है। इसलिए इसके महान वध से सारा संसार डरता है। क्योंकि पर्जन्य गरजता हुआ पापियों को मारता है, इसलिए निरपराध व्यक्ति भी इस बलवान या बरसते हुए पर्जण्य से डरकर दूर भागते हैं।

3. रथीव कशयाश्वां अभिक्षिपन्ना विर्दतान्कृणुते वर्ष्यां अह।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जण्यः कृणुते वर्ष्यं नभः॥

अनुवाद– चाबुक से घोड़ों को भगाते हुए रथी के समान अहो यह पर्जण्य वर्षा करने वाले दूतों जैसे मेघों को प्रकट करता है। जब यह पर्जण्य अन्तरिक्ष की वर्षा से युक्त करता है तो सिंह के समान गर्जना करने वाले या हिंसा करने वाले इस मेघ की गर्जनायें दूर से सुनाई देती हैं।

4. प्रवाताः वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति॥

अनुवाद– जब कि पर्जण्य पृथिवी की अपने जल से रक्षा करता है, अर्थात् इसको सींचता है, तब हवायें (वर्षा के लिए) चलती हैं, बिजलियाँ गिरती हैं, वनस्पतियाँ अंकुरित होती हैं या बढ़ती हैं, अन्तरिक्ष जल की बूंदों को टपकाता है और भूमि सम्पूर्ण संसार के हित के लिए समर्थ हो जाती है।

5. यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।
यस्य व्रते ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ॥

अनुवाद– जिस पर्जन्य के कर्म में अथवा अनुशासन में रहकर पृथिवी अत्यधिक झुक जाती है, जिस पर्जन्य के कार्य खुरों से युक्त गौ आदि पशु पूर्ण होते हैं अर्थात् पुष्ट होते हैं, अथवा खुर के परिणाम से युक्त स्थान के समान यह पृथिवी जल से भर जाती है और जिस पर्जन्य के कर्म से नाना प्रकार की वनस्पतियाँ अंकुरित होती हैं, ऐसे हे पर्जन्य तुम हमारे लिए महान सुख को प्रदान करो।

6. दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः।
अर्वाङ्तेन स्तनयिलुनेहि अपो निषिन्चन्नसुरः पिता नः॥

अनुवाद- हे मरुतो! तुम अन्तरिक्ष से हमारे लिए वर्षा को प्रदान करो, वर्षा करने वाले व्यापक मेघ की धाराओं क्षरित करो। हे पर्जन्य! तुम इस गरजते हुए मेघ के साथ हमारे सम्मुख आओ। जलों का सिंचन करते हुए तुम जलों को देने वाले और हमारा पालन करने वाले हो।

7. अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यन्चं समा भवन्तद्वतो निपादाः॥

अनुवाद- हे पर्जन्य! पृथिवी के अभिमुख हो शब्द करो, गर्जना करो, औषधियों में गर्भ स्थानीय जल का आधा करो, जल से भरे हुए रथ द्वारा अन्तरिक्ष में सब ओर परिभ्रमण करो, मशक के समान जल से भरे हुए मेघ को, जो अच्छी प्रकार से बँधा हुआ है नीचे की ओर अच्छी प्रकार से खींचो अथवा नीचे की ओर अच्छी प्रकार से बन्धन से मुक्त करो। पानी के भर जाने से ऊँचे और निचले स्थान एक जैसे हो जावें।

8. महान्तं कोशमुदचा निसिन्च स्यन्दतां कुल्या विसिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वध्याभ्यः॥

अनुवाद- हे पर्जन्य! तुम अपने महान जल रूप भण्डार को आकाश में ऊपर को उठाओ और नीचे की ओर बरसा दो। नदियाँ अच्छी प्रकार से जल से भरी हुई पूर्व की ओर बहें। द्युलोक और पृथिवी को तुम जल से अच्छी प्रकार से भिगो दो। गौओं के लिए प्रचुर परिमाण में पीने के लिए जल होवें।

9. यत्पर्जन्य कनिक्रदत् स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि॥

अनुवाद- हे पर्जन्य! जब तुम अत्यधिक शब्द करते हुए और गरजते हुए दुष्टों को (वर्षा के बाधक दैत्यों को) मारते हो, यह सारा संसार और जो कुछ भी इस पृथ्वी पर है, प्रसन्न हो जाता है।

10. अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्थन्वान्यत्येतवा।
अजीजन ओषधी भोजनाय कम् उत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम्॥

अनुवाद- हे पर्जन्य! तुम वर्षा को बरसा चुके हो। अब इस वृष्टि को निश्चय से अच्छी प्रकार से रोक लो। तुमने जलहीन प्रदेशों को मरुस्थलों को जल से युक्त बना दिया है और उनको पार करने योग्य कर दिया है। तुमने भोग

करने के लिए वनस्पतियों को उत्पन्न किया है और तुम प्रजाओं से स्तुति को प्राप्त कर चुके हो।

(सायण भाष्यानुसार पीटर्सन की हिन्दी व संस्कृत व्याख्या से उद्धृत)

दूसरा उदाहरण–

ATRI'S HYMN (V-83) TO PARJANYA (THE STORMGOD)

IS PARHAPS THE MOST STRIKING EXAMPLE:

1- HE STRIKES DOWN THE TREES, HE STRIKES ALSO THE RAKSHASAS,

THE WHOLE WORLD IS AFRAID OF (PARJANYA) CARRYING MIGHTY ARMS,

EVEN THE SINLESS QUAKE BEFORE THE BULL-LIKEGOD,

WHEN PARJANYA, THUNDERING, STRIKES THE EVIL-DOERS,

2- WINDS BLOW FAST AND LIGHTNINGS FLASH,

PLANTS SHOOT UP AND HEAVEN SWELLS;

QUICKENING SHOWERS FALL FORALL

WHEN PARJANYA GLADDENS THE EARTH WITH HIS SEED.

3- ROAR AND THUNDER, SOW THE SEED,

COME FLYING HITHER IN SQUELCHING CAR;

TURN DOWNWARD THE SKIN UNBOUND,

SO THAT BE LEVELLED HIGH LANDS AND LOW,

(THE VEDIC AGE, VOL. I, P.348-R.C. MAJUMDAR)

तीसरा उदाहरण– "वर्षा का वैदिक देवता पर्जन्य है।"– प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता,– दामोदर धर्मानन्द कोसंबी

अतः पर्जण्य एक ऋग्वैदिक देवता है, उसके किसी वंश या सन्तान होने का प्रश्न ही नहीं उठता, जैसा कि अहीर अपनी उत्पत्ति यदुवंशी राजा देवमीढ़ के काल्पनिक पुत्र पर्जण्य बताते हैं।

(ख) आभीर

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम और समुद्र की प्रतीक वार्ता में आभीर जाति के बारे में वर्णन मिलता है (युद्धकाण्ड, सर्ग 22, श्लोक 32, 33, 34)-

उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित पुण्यतरोमम्।
द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान्॥32॥

अर्थात् प्रभो! जैसे जगत में आप सर्वत्र विख्यात एवं पुण्यात्मा हैं, उसी प्रकार मेरे उत्तर की ओर द्रुमकुल्य नाम से विख्यात एक बड़ा ही पवित्र देश है।

उग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः।
आभीर प्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम्॥33॥

अर्थात् वहाँ आभीर आदि जातियों के बहुत से मनुष्य निवास करते हैं जिनके रूप और कर्म बड़े ही भयानक हैं। वे सब के सब पापी और लुटेरे हैं। वे लोग मेरा जल पीते हैं।

तैर्न तत्स्पर्शनं पापं सहेयं पापकर्मभिः।
अमोघः क्रियतां राम अयं तत्र शरोत्तमः॥34॥

अर्थात् उन पापाचारियों का स्पर्श मुझे प्राप्त होता रहता है, इस पाप को मैं नहीं सह सकता। श्रीराम! आप अपने इस अमोघ उत्तम बाण को वहीं सफल कीजिये।

महाभारत के मौसल पर्व के अध्याय-7 के अनुसार आभीरों को म्लेच्छ, डाकू, लुटेरे बताया गया है।

(दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल- भाग-1 (दिवैदिक एज)- आर.सी. मजूमदार) पृ. 308 के अनुसार-

SOME YEARS AFTER THE BHARATWAR, THE VRISHNIS AND YADAVAS OF GUJARAT PERISHED IN FRATRICIDAL STRIBE AND KRISHNA DIED. ARJUNA WAS SENT TO BRING THE SURVIVORS OF THE YADAVAS, BUT ON HIS WAY BACK HE WAS ATTACKED AND DEFEATED BY THE ABHIRAS.

(पाणिनिकालीन भारतवर्ष- प्रो. वासुदेव शरण अग्रवाल)-

कात्यायन में 'महाशूद्र' नामक जाति विशेष का उल्लेख किया है (4/1/4)। काशीका के अनुसार यह आभीर जाति की संज्ञा थी। आभीर महाशूद्र क्यों कहलाये? इनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इस प्रकार ज्ञात होती है। शक-यवनों

की तरह ही जो पतंजलि के समय में शूद्रों में गिने गये, विदेश से आने वाली आभीर जाति भी उसी प्रकार शूद्रों में परिगणित हुई।

पतंजलि में 'शूद्राभीरम्' उदाहरण में (त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम, 1/2/72, वा. 6) इस पद में शूद्रपद से सामान्य शूद्र और आभीर पद से विशेष प्रकार के शूद्रों का ग्रहण किया गया है। उत्तरी सिन्ध के पूर्वी भाग में शूद्र और उसके पास ही आभीरों का बड़ा क्षेत्र था जिसके कारण शूद्राभीरम् यह नामों का जोड़ा प्रचलित हुआ होगा।

पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र- 'जाति भास्कर' पुस्तक में 'आभीर (गौली)' शीर्षक, श्लोक 128-129 में उल्लेख मिलता है- माहिष्य की स्त्री में ब्राह्मण द्वारा जो पैदा हो वह आभीर है तथा ब्राह्मण द्वारा आभीर पत्नी में भी आभीर ही पैदा होता है। इनका समूह घोष में रहता है जहाँ बहुत-सी घास तृण हो तथा समीप में जल हो वहाँ निवास होता है। पशु-पालन इनका काम है। यह धर्म में शूद्र जाति से कुछ हीन हैं। बहुत से लोगों का मत है कि आभीर शब्द से बिगड़कर अहीर बन गया है। इस जाति में अनेक विवाद हैं।

विष्णु पुराण, पंचम अंश, अध्याय 38, (श्लोक-12-31, 52) में आभीरों के लिए- आभीर, दस्यु, लुटेरे, पापकर्मा, दुर्भद, लुब्धहृदय, म्लेच्छ, नीचवर्ग शब्दों का उल्लेख मिलता हैं। उदाहरण स्वरूप-

ततो लोभस्समभमवत्पार्थेनैकेन धन्विना।
दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमाना दस्यूनां निहतेश्वराः॥13॥
ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहृतचेतसः।
आभीरा मन्त्रयामासुस्समेत्यात्यन्त दुर्भदाः॥14॥

अर्थात् उस समय अनाथा स्त्रियों को अकेले धनुधारी अर्जुन को ले जाते देख लुटेरों को लोभ उत्पन्न हुआ॥13॥ तब उन अत्यन्त दुर्भद, पापकर्मा और लुब्धहृदय आभीर दस्युओं ने परस्पर मिलकर सम्मति की॥14॥

प्रेक्षतस्तस्य पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः।
जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः समस्ता मुनिसत्तम॥28॥

अर्थात् हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अर्जुन के देखते-देखते वे म्लेच्छगण वृष्णि और अंधकवंश की स्त्रियों को लेकर चले गये॥28॥

अहोऽति बलवद्दैवं विना तेन महात्मना।
यद सामर्थ्ययुक्तेऽपि नीचवर्गे जयप्रदम्॥31॥

अर्थात् अहो! दैव बड़ा प्रबल है, जिसने आज उन महात्मा कृष्ण के न रहने पर असमर्थ और नीच लोगों को जय दे दी॥31॥

जिस प्रकार आभीरों (गोपों) के आर्य अथवा अनार्य होने के सम्बन्ध में विद्वान् एक मत नहीं हैं, उसी प्रकार आभीर मूलरूप से भारतीय थे अथवा विदेशी इस विषय में भी विद्वानों के विभिन्न विचार हैं।

श्रीमद्भागवत के एक प्रसिद्ध श्लोक में जिन किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिंद, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खस आदि हीन जातियों के लोगों की शुद्धि विष्णु रूप भगवान् कृष्ण का आश्रय ग्रहण करने से बतलाई है, उनमें आभीरों की भी गणना की गई है। इससे आभीरों के अनार्य और विदेशी होने का संकेत मिलता है–

"किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकंका यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः

(भागवत, 2-4-18)

अर्थात् किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन और खस आदि नीच जातियों तथा दूसरे पापी जिनके शरणागत भक्तों की शरण ग्रहण करने से ही पवित्र हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान भगवान् को बार-बार नमस्कार है।

डा० भंडारकर का मत है कि आभीर गण भारत में बहुत बड़ी संख्या में आये थे। वे पहले पंजाब से मथुरा तक और फिर मथुरा से सौराष्ट्र-काठियावाड़ तक फैल गये थे। आरम्भ में उनका जीवन घुमंतू खानाबदोशों की तरह का था वे अपने पशुओं को लेकर घूमते फिरते थे। फिर वे उत्तरी भारत के बहुत बड़े भाग में बस गये। कालान्तर में उन्होंने महाराष्ट्र के उत्तरी भाग में एक साम्राज्य की स्थापना की थी। वायुपुराण में आभीरों के दस राजाओं का उल्लेख मिलता है। नासिक में आभीर नरेश शिवदत्त के पुत्र ईश्वर सेन का एक अभिलेख मिला है जो तीसरी शताब्दी का जान पड़ता है। काठियावाड़ के गुंदा नामक स्थान से प्राप्त आभीर सेनापति रुद्रभूति के दान का अभिलेख उससे पुराना है। इससे समझा जा सकता है कि आभीर गण भारत में प्रथम शताब्दी के लगभग आये थे।

यदि डा० भण्डारकर का उक्त मत प्रामाणिक माना जाय तब मथुरा मण्डल में निवास करने वाले कृष्ण-काल के पुराने आभीरों को विदेशी न मानकर भारतीय अनार्य ही कहा जावेगा। वे पहले घुमंतू गो-पालक मात्र थे बाद में वे

एक लड़ाकू जाति बन गये। महाभारत में दुर्योधन के पक्ष में लड़ने वाले जिन संशप्तक गणों का अर्जुन से बड़ा भीषण युद्ध हुआ था, वे शूरसेन जनपद के आभीर ही थे। वे भी जरासंध के आक्रमण काल में मथुरा मण्डल के यादवों के साथ मथुरा से निष्क्रमण कर द्वारका के निकटवर्ती प्रदेश में बस गये थे। कालान्तर में आभीरों ने यादवों की भाँति ही भारत के पश्चिमी और दक्षिण–पश्चिमी भागों में अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित किये थे।

इस समय आभीर जाति अपने मूल रूप में तो नहीं है, किन्तु परिवर्तित रूप में विद्यमान है। उनका परिवर्तित रूप जिन जातियों में मिलता है, उनमें अहीर जाति का नाम उल्लेखनीय है। 'गूजर' और 'जाट' जातियाँ भी सम्भवत: आभीरों के परिवर्तित रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं, यद्यपि इसके विषय में निश्चय पूर्वक कहना सम्भव नहीं है।

– (ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास– डा० प्रभुदयाल मीतल)

परिशिष्ट -7

'जादौंन' शब्द की उत्पत्ति

वर्तमानकाल में हम देखते हैं कि मूल यादव/यदुवंशी अपने मौलिक नाम के आगे उपनाम के रूप में जादौं, जादौंन, जादव आदि शब्दों का प्रयोग भारत के अधिकतर क्षेत्रों में कर रहे हैं। उन्होंने अपने मूल वंश-जाति-सूचक यादव/यदुवंशी शब्द का प्रयोग करना प्रायः बन्द सा कर दिया है जो इनके मूलवंश की पहचान थी इस विशिष्ट भूल के कारण देश की अन्य पिछड़ी जातियों ने आजकल इन मूल शब्दों को अपना लिया है और स्वयं मूल यादव/यदुवंशी लिख रहे हैं तथा अपने को श्रीकृष्ण वंश से जोड़कर मूल यादव/यदुवंशी घोषित कर रहे हैं। इसी कारण मूल यादव/यदुवंशी/जादौंन वंश का अस्तित्व समाप्ति की ओर है। अब देखना यह है कि मूल यादव/यदुवंशी का उपनाम 'जादौंन' शब्द कहाँ से तथा कब से आया? इस शब्द की उत्पत्ति भाषा- व्याकरण की एक सामान्य प्रक्रिया है जो इस प्रकार है-

1. शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी में याज्ञवल्क्य प्रणी तो नियमः के अनुसार- "अथ यजुर्वेदे शुक्ले स्वर प्रक्रिया कथ्यते। यकारस्य पदादिस्थस्य संयुक्तस्य ऋकारेणयुक्तस्य आदिमध्याबसानस्थस्य द्वित्वस्य च चवर्ग तृतीय जकारोच्चारणम्। वकारस्य संयुक्तस्या संयुक्तस्प च द्वित्तोचारणम्।"

2. पद पाठ च- 'यज्ञा यज्ञियामिति यज्ञा। यज्ञियम्' इत्थं विच्छेदे कृते यज्ञियपदस्य आदिभूतो यकारः तत्र-तत्र सर्वोऽपि यः अन्तस्थानाम् आदिः जशब्दः=जकाररूप ध्वनिर्जायते, सुस्पष्ट इति। अर्थात् यकारः चवर्ग-तृतीयत्वेन जकारेणोच्चारणीयः।- (शुक्ल यजुर्वेद संहिता)

उक्त भाषा व्याकरण नियमों के अनुसार 'य' वर्ण बोलचाल की भाषा में 'ज' वर्ण में परिवर्तित हो जाता है, जैसे-यज्ञ=जग्य, यमुना=जमुना, यजमान=जजमान, यत्न=जतन, युवा=जवान, यश=जस, यादव=जाधव, यदुपति=जदुपति, यादवपति=जादौंपति, यादवराय=जादौंराय, यशोदा=जसोदा, यम=जम, यथा=जथा, यूथ=जूथ, योद्धा=जोधा, युद्ध=जुद्ध आदि।

अतः यादव (मूल) शब्द ही कालान्तर में बोलचाल की भाषा में 'जादव' हुआ तथा इससे अपभ्रशरूप होते-होते जादौं या 'जादौंन' हुआ।

हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि 'यादव' शब्द का अपभ्रंश रूप हमें 16-17वीं शताब्दी के भक्तिकाल में दिखाई देता है जिस काल की भक्ति रचनाओं में गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, रसखान आदि भक्त-कवियों ने अपनी श्रेष्ठ रचनाओं में जादौं, जादवपति, जादौंराय, जदुवंश आदि शब्दों का प्रयोग किया है। ययाति पुत्र यदु से उत्पन्न यदुवंश है तथा उस वंश को ही यादव वंश कहा गया और यादव वंश के वंशजों को 'यादव' कहा गया है। इसके प्रमाण हमारे वेद, पुराण तथा इतिहास में मिलते हैं। देखने से ज्ञात होता है कि इतिहासानुसार भक्तिकाल से पूर्व यदुवंशियों के लिए 'यादव' शब्द का ही प्रयोग हुआ है।

अत: मूल यादव-यदुवंशियों को वर्तमान काल के जातीय घालमेल को देखते हुए अपभ्रंश 'जादौंन', 'जादौं' शब्द के साथ-साथ अपने मूलवंश के प्रतीक 'यदुवंशी' शब्द का भी प्रयोग करना चाहिए जिससे भविष्य में उनकी सन्तति की मूल पहचान बनी रहे।

परिशिष्ट-8

स्वामी विवेकानन्द के विचार

स्वामी जी के अमेरिका प्रवासकाल में उन्हें खेतड़ी (राजपूताना) के महाराज अजितसिंह बहादुर का (4 मार्च 1895 का) अभिनन्दन प्राप्त हुआ। महाराज के साथ हुए प्रश्नोत्तर शैली में स्वामी जी ने जो अपने अनेक बिन्दुओं पर महान विचार रखे, उनके कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत है जो हम भारतीयों के लिए विशेष महत्वूपर्ण तथा उल्लेखनीय हैं-

1. शक्ति- अधिकांश मनुष्य शक्ति को उसी समय शक्ति समझते हैं जब वह उनके अनुभव के योग्य होकर स्थूलाकार में उनके सामने प्रकट हो जाती है। उनकी दृष्टि में समरांगण में तलवारों की झनझनाहट आदि ही परम स्पष्टत: प्रत्यक्ष शक्ति के विकास मालूम होते हैं और जो आँधी की भाँति सामने से चीजों को तोड़-मोड़कर उथल-पुथल पैदा न कर देती हो, वह उनकी दृष्टि में जीवन की अभिव्यक्ति नहीं है- वरन् मृत्यु स्वरूप है। इसीलिए शताब्दियों से विदेशियों द्वारा शासित एवं निश्चेष्ट, एकताहीन एवं देशभक्तिहीन भारत उनके निकट ऐसा प्रतीत होगा, मानो वह गलित अस्थि-चर्म से ढँकी हुई भूमि मात्र हो।

ऐसा कहा जाता है- योग्यतम ही जीवन-संग्राम में जीवित बचता है। जो लोग एक पल में समस्त विश्व को रक्तरंजित कर सकते है, उनके लिए तारीफ की झड़ी लग सकती है, जो लोग कुछ लाख लोगों के सुख के लिए संसार के अधिकांश लोगों को भूखा मार सकते हैं, वे भी गौरवान्वित हो सकते हैं, किन्तु जो लोग अन्य लोगों का अन्न न छीनकर लाखों मनुष्यों को सुख और शान्ति प्रदान करते हैं, वे क्या किसी प्रकार का सम्मान प्राप्त करने योग्य नहीं हैं? शताब्दियों से दूसरों के ऊपर किसी भी प्रकार का अत्याचार न करके लाखों के भाग्य का संचालन करने वालों के कार्य में क्या किसी प्रकार की शक्ति का विकास प्रकट नहीं होता?

सभी प्राचीन जातियों के पौराणिक ग्रन्थों में उनके वीरों की गाथाओं में यह देखा जाता है कि उनका जीवन उनके शरीर के किसी विशेष छोटे से अंश में केन्द्रित था, और जब तक उनका वह अंश अछूता रहा, तब तक वे अजेय रहे। इसी प्रकार प्रतीत होता है कि मानो प्रत्येक राष्ट्र के पास एक विचित्र जीवन केन्द्र है, और जब तक वह केन्द्र अक्षुण्य बना रहेगा तब तक किसी प्रकार की दु:ख या विपत्ति उस राष्ट्र का विनाश नहीं कर सकती।

धर्म ही है वह भारत की यह जीवनी-शक्ति, और जब तक हिन्दू जाति अपने पूर्वजों से प्राप्त इस महान उत्तराधिकार को नहीं भूलेगी, तब तक संसार में ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है, जो उसका ध्वंस कर सके।

अतीत का महत्व- जो लोग सदैव अपने अतीत की ही ओर दृष्टि लगाये रखते हैं, आजकल सभी लोग उनकी निन्दा किया करते हैं। वे कहते हैं कि इस प्रकार निरन्तर अतीत की ओर देखते रहने के कारण ही हिन्दू जाति को नाना प्रकार के दु:ख और आपत्तियाँ भोगनी पड़ती है। किन्तु मेरी तो यह धारणा है कि इसका विपरीत ही सत्य है। जब तक हिन्दू जाति अपने अतीत को भूली हुई थी तब तक वह संज्ञाहीन अवस्था में पड़ी रही, और अतीत की ओर दृष्टि जाते ही चहूँ ओर पुनर्जीवन के लक्षण दिखाई देते रहे हैं। भविष्य को इसी अतीत के ढाँचे में ढालना होगा, अतीत ही भविष्य होगा।

अतएव हिन्दू लोग अतीत का जितना ही अध्ययन करेंगे, उनका भविष्य उतना ही उज्ज्वल होगा, और जो इस अतीत के बारे में प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित करने की चेष्टा कर रहा है, वह स्वजाति का परम हितकारी है। भारत की अधोगति इसलिए नहीं हुई कि हमारे पूर्व पुरुषों के नियम एवं आचार-व्यवहार खराब थे, वरन् उसकी अधोगति का कारण यह था कि उन नियमों और आचार-व्यवहारों को उनके न्यायसंगत निष्कर्षों तक नहीं ले जाने दिया गया।

भारत का इतिहास पढ़ने वाला प्रत्येक विचार शील पाठक यह जानता है कि भारत के सामाजिक विधान प्रत्येक युग के साथ परिवर्तित हुए हैं। आरम्भ में ये नियम एक ऐसी विराट् योजना के पुंजीभूत रूप थे, जिसे क्रमश: भविष्य में फलीभूत होना था। प्राचीन भारत के ऋषिगण इतने दूरदर्शी थे कि उनकी ज्ञानराशि के महत्व को समझने में विश्व को अब भी सदियों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी और उनके वंशधरों द्वारा इस महान उद्देश्य को पूर्णरूप से ग्रहण करने की यह अक्षमता ही भारत की अधोगति का एकमात्र कारण है।

क्षत्रिय- क्षत्रिय सदा से ही भारत का मेरुदण्ड रहे हैं, अतएव वे ही विज्ञान और स्वतंत्रता के सनातन रक्षक हैं। देश से अंधविश्वासों को हटा देने के लिए चिरकाल से ही उनकी वाणी प्रतिध्वनित हुई है, और भारत के इतिहास के आदि से अन्त तक पुरोहितों के अत्याचार से साधारण जनता की रक्षा करने के लिए वे स्वयं एक अभेद्य दीवार की भाँति खड़े रहे हैं।

जब उनमें से अधिकांश घोर अज्ञानता में निमग्न हो गये, और शेष थोड़ों ने मध्य एशिया की जंगली जातियों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित कर भारत में पुरोहितों की शक्ति दृढ़ करने के लिए तलवार हाथ में ली, तब भारत के पाप का प्याला लबालब भर गया और भारत-भूमि एकदम नीचे डूब गयी- और इससे उसका उद्धार उस समय तक नहीं होगा, जब तक कि क्षत्रिय स्वयं न जागेंगे तथा अपने को मुक्त कर शेष जाति के पैरों से जंजीरों को न खोल देंगे। पुरोहित प्रपंच ही भारत की अधोगति का मूल कारण है। मनुष्य अपने भाई को पतित बनाकर क्या स्वयं पतित होने से बच सकता है।

- ('स्वामी विवेकानन्द साहित्य संचयन' से साभार उद्धृत)

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पुस्तकें

वैदिक साहित्य

1. ऋग्वेद – दयानन्द संस्थान, दिल्ली
2. यजुर्वेद – दयानन्द संस्थान, दिल्ली

शुक्लयजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी – श्रीकाशी विश्वनाथ, वाराणसी (याज्ञवल्क्य संहिता)

ईशावास्योपनिषद् – गीताप्रेस, गोरखपुर

केनोपनिषद् – गीताप्रेस, गोरखपुर

वृहदारण्यकोपनिषद् – वाराणसेयं संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

ऋक्-सूक्त-सुधाकर (भाष्य) – सायणाचार्य

वृहद् श्रीशुक्ल यजुर्वेद संहिता (वाजसनेय संहिता) – पं. दौलतराम गौड़ वेदान्ताचार्य

वेद कथाङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर

मनुस्मृति – मनुकृत – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

पौराणिक साहित्य-

श्रीमद्भागवत महापुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
श्रीमद्भागवत महापुराण (पूर्वार्द्ध) – सम्पा. सुदर्शन सिंह 'चक्र'
श्रीमद्भागवत पुराणम् (भावार्थ बोधिनी) – श्रीधरस्वामी कृत
श्रीमद्भागवतम् – श्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
श्रीवृहद्भागवतामृतम् – श्रीसनातन गोस्वामीपाद कृत
भागवत दर्शन – स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती
श्रीमद्भागवत रहस्य – पूज्यपाद श्रीरामचन्द्र डोंगरे जी
विष्णु पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
ब्रह्म पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
मार्कण्डेय पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
भविष्य पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
मत्स्य पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
पद्म पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
अग्नि पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
वराह पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
स्कन्द पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
शिव पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
श्रीमद्देवीभागवत पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
कूर्म पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
वायु पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर

ब्रह्मवैवर्त पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
नारद पुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर
हरिवंश पुराण (खिला भाग–महाभारत) – गीताप्रेस, गोरखपुर
तीर्थाङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर
कृष्णाङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर
धर्माङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर
हिन्दू–संस्कृति–अंक – गीताप्रेस, गोरखपुर
भक्त–चरिताङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर
पुराण–कथाङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर
संत–अंक – गीताप्रेस, गोरखपुर
मानवता–अंक – गीताप्रेस, गोरखपुर
संत–वाणी–अंक – गीताप्रेस, गोरखपुर
विष्णु–अंक – गीताप्रेस, गोरखपुर
नारी–अंक – गीताप्रेस, गोरखपुर
देवताङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर
वामन पुराणाङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर
अवतार–कथाङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर
श्रीरामभक्ति अंक – गीताप्रेस, गोरखपुर
रामाङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर
पातंजलि योग प्रदीप – गीताप्रेस, गोरखपुर
योग वाशिष्ठाङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर
योग तत्वाङ्क – गीताप्रेस, गोरखपुर
महाभारत (संपूर्ण) – गीताप्रेस, गोरखपुर
महाभारत मीमांसा – श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य
भागवत परिचय – गीताप्रेस, गोरखपुर
पार्थ–सारथि (श्रीकृष्णचरित–तृतीय खण्ड) – श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'
श्रीमद्भगवद्गीता (तत्त्व प्रकाशित) – श्रीकेशवाचार्य काश्मिरि कृत
श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रसे, गोरखपुर
श्रीमद्गीतातत्त्व विवेचनी (टीका) – श्रीजयदयाल गोयन्दका
श्रीमद्भगवद्गीता (साधक संजीवनी) – श्रीरामसुखदास जी
श्रीमद्भगवद्गीता (गीतोपनिषद्) – भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
श्रीमद्वाल्मीकिय रामायण – महर्षि वाल्मीकि कृत
अध्यात्म–रामायण – श्रीवेदव्यास कृत
श्रीरामचरितमानस – गोस्वामी तुलसीदास कृत
रामायण (गो० तुलसीदास कृत) – पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत

संस्कृत साहित्य–

निरुक्त – यास्क कृत
साख्यकारिका – ईश्वर कृष्ण कृत
मेघदूत – महाकवि कालिदास

अभिज्ञानशाकुन्तलम् – महाकवि कालिदास
कृष्णचरित्र – विद्यासागर कृत
उत्तररामचरितम् – महाकवि भवभूति
शिशुपालवधम् – माघकवि
रघुवंश महाकाव्य – महाकवि कालिदास
हर्षचरित – महाकवि बाणभट्ट

हिन्दी साहित्य-

हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
विनय पत्रिका – गोस्वामी तुलसीदास
कवितावली – गोस्वामी तुलसीदास
सूरसागर – महात्मा सूरदासजी
प्रेम वाटिका – भक्त रसखान
प्रेम माधुरी – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
सत्यार्थ प्रकाश – महर्षि दयानन्द सरस्वती
क्यों? (धर्म दिग्दर्शन) – पं. माधवाचार्य शास्त्री
पुराण दिग्दर्शन – पं. माधवाचार्य शास्त्री
अजात शत्रु – श्रीजयशंकर प्रसाद
महारानी दुर्गावती – श्रीवृन्दावनलाल वर्मा
विजय पर्व – डा० रामकुमार वर्मा

अन्य धार्मिक-ग्रन्थ -

श्रीभक्तिरसामृत सिन्धु – श्रीरूपगोस्वामी कृत
श्रीभक्तमाल (भक्तिरस बोधिनी टीका) – श्रीप्रियादास कृत
श्रीभक्तमाल- श्रीनाभादास जी – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
ब्रजभक्ति विलास – श्रीनारायण भट्ट जी
निर्णय सिन्धु – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
धर्मसिन्धु (टीका) – श्रीमिहिरचन्द्र कृत
धर्मशास्त्र का इतिहास (पाँचों भाग) – डा० पाण्डुरंग वामन काणे।
राधाकृष्ण भक्त कोश (खण्ड-1) – वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन
हिन्दू धर्मकोश – संपा. डा० राजबली पाण्डेय
सनातन धर्म शताब्दी ग्रन्थ – प्रकाशक, श्रीसनातन धर्म सभा, भरतपुर
राधा अंक – सर्वेश्वर प्रेस, वृन्दावन (विशेषांक)
वृन्दावनांक – सर्वेश्वर प्रेस, वृन्दावन (विशेषांक)
ब्रज के रसिकाचार्य – अवधबिहारीलाल कपूर
श्रीचैतन्य सम्प्रदाय – डा० नित्यानन्ददास
आचार्य शंकर – स्वामी अपूर्वानन्द

श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा – श्रीकेशवदेव मठ, मथुरा
जैन-साहित्य – जैन पुस्तकालय, चौरासी, मथुरा

ऐतिहासिक पुस्तकें-

क्षत्रिय वंशावली – ठा. उदयनारायण सिंह
राजपूत वंशावली – ठा. ईश्वर सिंह मडाढ़
क्षत्रिय कुल परिचायिका – रमेश राघव
राजस्थान का इतिहास – कर्नल जेम्स टॉड
भारत का वृहत् इतिहास – श्रीनेत्र पाण्डेय
जाति भास्कर – पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र
बुलन्दशहर जनपद का राजनैतिक इतिहास – प्रो. चिन्तामणि शुक्ल
भारत का सम्पूर्ण इतिहास – आर.सी. अग्रवाल
राजपूत वंशावली – पं. घासीराम भाट
यदुवंशी जादौंन राजपूत इतिहास (अनुशीलन)– रणजीत सिंह यदुवंशी
ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास – डा० प्रभुदयाल मीतल
मध्य प्रदेश का इतिहास एक दृष्टि में – डा० श्रीकृष्ण सिंह सौढ
श्रीविष्णुस्वामी और उनका सम्प्रदाय – प्रकाशन, अ.भा. विष्णुस्वामी महासभा
पृथ्वीराज रासो – कविचन्द वरदाई
कुरुक्षेत्र का इतिहास – साधना पाकेट बुक्स, दिल्ली
प्राचीन राजवंश और बौद्धधर्म – अच्युतानन्द घिल्डियाल
ब्रज के धर्म-सम्प्रदायों का इतिहास – डा० प्रभुदयाल मीतल
ब्रज का इतिहास (भाग 1, 2) – डा० कृष्णदत्त वाजपेयी
मैं हिन्दू हूँ – गुरुदत्त
भारतीय संस्कृति के तत्त्व – शान्तिप्रसाद अग्रवाल
श्रीघमण्डदेवाचार्य और उनका रासमण्डल – सेवा ट्रस्ट, करहला (मथुरा)
इस्लाम के अपेक्षित आदर्श – अनवर शेख (लन्दन)
ब्रज की कलाओं का इतिहास – डा० प्रभुदयाल मीतल
माँ कैलादेवी का इतिहास (शोध) – श्रीदामोदरलाल गर्ग
इस्लाम-अरब राष्ट्रीयता का साधन – अनवर शेख (लन्दन)
भारतीय कला – डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
कितने दूर कितने पास – एस. अब्दुल्लाह तारिक
राजपूत क्षत्रिय वंश भास्कर – ठा. मोहन सिंह चौहान
प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – डा० कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव
पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ – प्रधान सम्पादक, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
भारत का वृहत् इतिहास (भाग-1,2,3) – रमेशचन्द्र मजूमदार
श्रीयदुवंशी (जादौंन) क्षत्रिय समाज, – मध्य प्रदेश - श्रीराम यादव
बर्नियर की भारत यात्रा – अनु. श्रीदामोदरलाल गर्ग
शूद्रों का प्राचीन इतिहास – रामशरण शर्मा

प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता – दामोदर धर्मानन्द कोसंबी
आधुनिक भारत में जाति – एम.एन. श्रीनिवास
भारत का प्राचीन नगर बयाना – श्रीदामोदरलाल गर्ग
ब्रजलोक साहित्य और संस्कृति – डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
करौली इतिहास के झरोखे से – श्रीदामोदरलाल गर्ग
हिन्दू मान्यताओं का वैज्ञानिक आधार – डा० भोजराज द्विवेदी
फाहियान का भारत दर्शन – अनु. श्रीदामोदरलाल गर्ग
हुएनच्यांग की भारत यात्रा – जगमोहन वर्मा
डा० बर्नियर की भारत यात्रा – अनु. बाबू गंगाप्रसाद गुप्त
करौली राज्य का इतिहास – दामोदरलाल गर्ग
सांस्कृतिक गुजरात (रासमाला) – अलेक्जेण्डर किनलॉक– अनु. गोपाल नारायण बहुरा
अलबेरुनी वर्णित भारत (भाग 1, 2) – अनु. सन्तराम बी.एस.
मुँहणोत नैणसी की ख्यात (भाग 1, 2) – अनु. रामनारायण दूगड
वोल्गा से गंगा – राहुल सांकृत्यायन
मथुरा जिले की बोली – डा० चन्द्रभान रावत
ब्रजभाषा – डा० धीरेन्द्र वर्मा
पश्चिमी भारत की यात्रा (ट्रैवल्स इन वैस्टर्न इण्डिया) – कर्नल जेम्स टॉड, सम्पा. – गोपाल नारायण बहुरा
ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
जाटों का इतिहास – प्रो. कालिकारंजन कानून गो
चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास – डा० अयोध्याप्रसाद पाण्डेय
क्षत्रिय राजवंशों का इतिहास – देवीसिंह मंडावा
यदुकुल का इतिहास – रामदेव बाबू यादव
टॉड कृत राजपूत जातियों का इतिहास – संपा.– डा० देवीलाल पालीवाल
कला और संस्कृति – डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के साक्षी – भरतपुर, अलवर, करौली, धौलपुर–
– राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
फारसी फरमानों के प्रकाश में मुगलकालीन भारत व राजपूत शासक – (भाग 1, 2) – राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
राजपूताने का प्राचीन इतिहास – पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
यादवों का वृहत् इतिहास – डा० जयनारायण सिंह यादव
गुप्तयुगीन मथुरा – जितेन्द्र कुमार, राजकीय संग्रहालय, मथुरा
रिपोर्ट–मरदुमशुमारी राजमारवाड़ 1891 ई. – रायबहादुर मुंशी हरदयाल सिंह

उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्र (भाग बी-मथुरा)- डा० कृष्णदत्त वाजपेयी
युग-युगों में उत्तर प्रदेश (भाग 1, 2, 3) - डा० कृष्णदत्त वाजपेयी
मथुरा का इतिहास - डा० भास्कर पचौरी
गुप्तयुगीन भारत - संपा., जितेन्द्र कुमार - राजकीय संग्रहालय, मथुरा
मथुरा का इतिहास - डा० भगवान सहाय पचौरी
प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य - बाबू वृन्दावनदास
उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास - डा० विशुद्धानन्द पाठक
ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख - प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी
राजपूतों का प्रारम्भिक इतिहास - चिन्तामणि विनायक वैद्य
मथुरा जनपद का राजनीतिक इतिहास - प्रो. चिन्तामणि शुक्ल
दक्षिण भारत का इतिहास - डा० नीलकंठ शास्त्री
प्राचीन भारत - डा० सत्यकेतु विद्यालंकार
बुद्धकालीन भारतीय भूगोल - डा० भरतसिंह उपाध्याय
अलीगढ़ जनपद का राजनैतिक इतिहास - प्रो. चिन्तामणि शुक्ल
एटा जनपद का राजनैतिक इतिहास - प्रो. चिन्तामणि शुक्ल
राजा भोज - डा० भगवतीलाल पुरोहित
श्रीकृष्ण जन्मस्थान स्मारिका - प्र. श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा संस्थान, मथुरा
मैं कामवन हूँ - संपा. भगवान मकरंद
प्राचीन भारत का इतिहास - डा० रमाशंकर त्रिपाठी
पाणिनीकालीन भारतवर्ष - डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
क्षत्रिय जाति की सूची - ठा. बहादुर सिंह बीदासर
राजपूत शाखाओं का इतिहास - देवीसिंह मंडावा
दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास - डा० विशुद्धानंद पाठक
उत्तर प्रदेश - देश और लोग - सुबोधनाथ झा
मध्य प्रदेश - शिव अनुराग पटैरया
भारत का इतिहास - रोमिला थापर
अन्धकार युगीन भारत (सन् 150-350 ई. तक)- काशीप्रसाद जायसवाल
सल्तनतकालीन भारत का इतिहास - आबिद रिजवी
प्राचीन भारतीय अभिलेख - डा० दिनेश चन्द्रा
भारतीय वास्तुकला का इतिहास - डा० कृष्णदत्त वाजपेयी
चैतन्यमत और ब्रजसाहित्य - डा० प्रभुदयाल मीतल
राजस्थान का इतिहास - डा० गोपीनाथ शर्मा
पूर्व मध्यकालीन भारत (712-1526) - डा० अवधविहारी पाण्डेय
दिल्ली सल्तनत (711-15265) - डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव
यादव इतिहास - सुधानंद योगी
गुजरात का यदुवंश - सुधानंद योगी
कौटिल्यकालीन भारत - आचार्य दीप शंकर
कन्नौज का इतिहास - आनंदस्वरूप मिश्र

विजयनगर साम्राज्य का इतिहास	– श्रीवासुदेव उपाध्याय
युग–युगों में काशी – सम्पादक	– प्रो. वी.एन. श्रीवास्तव, इलाहाबाद
युग युगीन सरयूपार – सम्पादक	– प्रो. वी.एन. श्रीवास्तव, इलाहाबाद
भारतीय संस्कृति के तत्त्व	– शान्ति प्रसाद अग्रवाल
राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे	– डा० राघवेन्द्र सिंह मनोहर
जयपुर राज्य का इतिहास	– हनुमान शर्मा
आगरा जनपद का राजनीतिक इतिहास	– प्रो. चिन्तामणि शुक्ल

अंग्रेजी साहित्य–

ARCHAEOLOGICAL SURVEY OF INDIA-

1- EPIGRAPHIA INDIA - Vol. III (1894-95)
EPIGRAPHIA INDIA - Vol. XVII (1923-24)
2- A. CUNNINGHAM - Vol. I, VI, VII, X, XX, XXI
3- THE HISTORY AND CULTURE OF THE INDIAN PEOPLE-
R.C. MAJUMDAR, A.D. PUSALKER-BHARATIYA VIDYA BHAVAN, MUMBAI
Vol. I - THE VEDIC AGE
Vol. II - THE AGE OG IMPERIAL UNITY
Vol. III - THE CLASSICAL AGE
Vol. IV - THE AGE OF IMPERIAL KANAUJ
Vol. V - THE STRUGGLE FOR EMPIRE
Vol. VI - THE DELHI SULTANATE
4- MATHURA - A DISTRICT MEMOIR - F.S. GROWSE
5- ENCYCLOPAEDIA OF CITIES AND TOWNS IN INDIA-
Vol. 8, 9 - UTTAR PRADESH
Vol. 6, 7 - MADDHYA PRADESH
Vol. 14 - RAJSTHAN
6- GAZETTEER OF INDIA - UTTAR PRADESH-
DISTRICT - MATHURA, ETAH, ALLAHABAD, ALI GARH, ATAWA
7- ANTHROPOLOGICAL SURVEY OF INDIA - PEOPLE OF INDIA-
RAJSTHAN- Vol. XXXVIII (PART- ONE, TWO)
UTTAR PRADESH- Vol. XLII (PART- ONE, TWO, THREE)
8- UTTAR PRADESH DISTRICT GAZETTEERS- MATHURA- (1968)- GOVERNMENT PRESS, LICKNOW (U.P.)
9- HISTORY OF INDIA- DR. ISHWARI PRASAD

10- ANCIENT CITIES AND TOWNS OF RAJASTHAN- DR. K.C. JAIN
11- RAJASTHAN THROUGH THE AGES- VOL.I - DR. DASHARATHA SHARMA
12- RAJASTHAN THROUGH THE AGES- VOL. II- D.R. G.N. SHARMA
13- ANCIENT INDIAN TRADITIONS- F.E. PARGITER

गजेटियर्स-

जिला-मथुरा, अलीगढ़, एटा, इटावा, इलाहाबाद, आगरा

शोध पत्र-पत्रिकाएँ-

1. 'सम्मेलन' शोध पत्रिका (त्रैमासिक)- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
2. 'हिन्दुस्तानी' शोध पत्रिका (त्रैमासिक)- हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।
3. 'नागरी प्रचारिणी ' पत्रिका (त्रैमासिक)- प्रकाशक- काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
4. अवध का क्षेत्रीय इतिहास विशेषांक - अंक 3, सम्पादक- प्रो. बी.एन. श्रीवास्तव, इलाहाबाद
5. प्रयाग क्षेत्रीय इतिहास पत्रिका विशेषांक - अंक 3, सम्पादक- प्रो. बी.एन. श्रीवास्तव, इलाहाबाद
6. 'ब्रज भारती' (मासिक)- साहित्य मण्डल, मथुरा
7. ब्रजनन्दिनी (त्रैमासिक)- ब्रज चेतना समिति, कोसीकलाँ
8. ब्रज सलिला (त्रैमासिक)- वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन
9. 'साहित्य भारती' शोध पत्रिका (त्रैमासिक)- उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ
10. 'कल्याण' मासिक अंक- गीताप्रेस, गोरखपुर
11. 'क्षत्रिय वंश' (बुलेटिन)- भोपाल
12. 'कादम्बिनी' (मासिक)- जु. 1986 हिन्दुस्तान टाइम्स लि., नई दिल्ली
13. 'नवनीत' (मासिक) - बम्बई
14. आस्था राजपुत्र (मासिक) विशेषांक- इन्दौर (दि. 2016)
15. यू.एस.एम. पत्रिका (त्रैमासिक)- गाजियाबाद
16. यदुसत्ता (मासिक)- भोपाल
17. राजकुल, दि. 2016 - दिल्ली
18. जय यदुवंश (वार्षिक)- इन्दौर
19. ग्रहों का खेल (मासिक)- जोधपुर

दैनिक समाचार-पत्र-

1. अमर उजाला
2. हिन्दुस्तान